



# गोस्वामी तुलसीदास

श्रेष्ठ

स्व० बाबू शिवनन्दन सहाय

सम्पादक

धीनलिनविलोचन शर्मा

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

प्रकारात्

बिहार-राष्ट्रमापा-परिपद्  
पटना

७) बिहार-राष्ट्रमापा-परिपद्

संशोधित पुनमुद्रित संस्करण

शकाब्द १८८८, विक्रमाब्द २०१७, सृष्टाब्द १९६१

मूल्य ५५० न० पै० मात्र

पुरख

सर्वोदय प्रेम

दासकुमार दास, पटना-४

## वक्तव्य

परिपद के संचालक-मंडल ने, कई वर्ष पूर्व, एक प्रस्ताव द्वारा यह निर्णय किया था कि बिहार के प्राचीन मुलेखकों की अप्राप्त कृतियों के पुनर्मुद्रण की व्यवस्था परिपद द्वारा की जाय। उक्त निर्णय के अनुसार पुनर्मुद्रण के योग्य पुस्तकों के चुनाव के लिए परिपद ने जो समिति बनाई थी उसने स्य० धाबू शिवनन्दन सहाय की अधुना अप्राप्य पुस्तक 'गोस्वामी तुलसीदास' को चुना।

स्य० धाबू शिवनन्दन सहाय की साहित्य-सेवा और उनके हिन्दी उद्यान के कार्य विशिष्ट स्थान रखते हैं। जीवनी-लेखकों में उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। सच तो यह है कि जीवनी-लेखन में वे मार्ग-दर्शक थे। गोस्वामी तुलसीदास, मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु और भारतन्दु हरिश्चन्द्र की प्रामाणिक जीवनीयाँ स्य० धाबू शिवनन्दन सहाय की अमर दान हैं, भिन्नें हिन्दी-भाषामापी भद्रा और आदर से सदा स्मरण करेंगे। अपने समय में यह 'गोस्वामी तुलसीदास' बहुविख्यात ग्रंथ था और बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा यह प्रामाणिक माना गया था। यही कारण था कि इस पुस्तक को पटना विश्व विद्यालय ने धी० ण० की परीक्षा में पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्थान दिया था तथा युक्तप्रदेश (उत्तरप्रदेश), मध्यप्रदेश तथा पंजाब की सरकारों ने अपने-अपने पुस्तकालयों के लिए इसे स्वीकृत किया था।

प्रस्तुत पुस्तक की प्रेस-कॉपी लेखक ने अपने जीवन-काल में ही तैयार कर दी थी, किन्तु हमें खेद है कि वे इसे पुनर्मुद्रित रूप में स्वयं देख न सक। उन्होंने अपनी प्रेस-कॉपी में स्थान-स्थान पर अपने हाथों चिट्ठे साट-साटकर और मुद्रित पृष्ठों की पंक्तियाँ काट-छाँटकर आवश्यक परिवर्द्धन और परिवर्धन किया था। हमने उनका द्वारा प्रस्तुत प्रेस-कॉपी को बड़ी सावधानी से नकल कराई और फिर उसका सम्पादन कराया। इस प्रकार, हमें प्रसन्नता है कि १९१६ ई० की

यह प्रथम प्रकाशित कृति लेखक द्वारा सशोधित और परिवर्द्धित तथा विद्वान् सम्पादक क द्वारा सम्पादित होकर, पैंतालीस साल क बाद एक नये रूप में, प्रकाशित हुई है। लेखक क जीवन और उनकी कृतियों पर प्रस्तुत ग्रंथ के सम्पादक श्रीनक्षत्रविज्ञोचन शर्मा ने यथास्थान प्रकारा वाक्ता है। हम सम्पादन-कार्य के लिए श्रीशर्माजी क प्रति आभारी हैं।

धिरवास है, परिपद क अन्य प्रकारानों की तरह यह पुस्तक भी हिन्दी संसार में आदर पाने की अधिकारियी होगी।

बिहार-राष्ट्रमापा-परिपद-कार्यालय पटना  
हरिशयनी प्रकाशनी २०१० वि

} सुषनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'  
संवासक



प्रेमम है भाई नहि पायो कोऊ पुत्ररत्न तीसरे को पाँच नाम नीच जो गलायो है ।  
रघु, हरि, राम हर, श्याम इन शब्दन में नन्दन' लगाये नाम पूरन सुहायो है ॥  
करै श्यामनन्दन बकीकी, रामनन्दन जू बाकीपुर जमिमें किरानी काम पायो है ।  
रघु, हर खै मुनसिकी के सिरिस्तेदार, हरिखो जवानी सुरधाम को सिषायो है ॥

बस्तासा

सुधन रामनन्दन सुखद, भीमवेशनन्दन धई ।  
सुध हरनन्दन भीतपर श्रीगुणेशनन्दन कहै ॥

दोहा

है सुध काक्षियहाय को, शिवनन्दन इक नाम ।  
अपर महानन्दन गयो, बालकाल सुरधाम ॥

सवैया

मतिन पाहि सुनायत हौं सुदृढान्त कष्टु अथ आपन खास ।  
सम्पत बभिस सै दस मात भयो मम जन्म सुधासिन मास ॥  
वार निमाकर दूज तिथी रितु शारदि पक्ष औंजार प्रकास ।  
याम अमूर्ध मयो धति मोद द्विपे उमखो सय केर दुसाम ॥

आदि पद्यो पारमी करामत बस्ती के पास, पुनि पूज्यपाद पितु नह मों पढ़ायो है ।  
पाछ पढ़ि बाकीपुर कियो इन्टरेन्स पास, शीघ्र प्रमु बोयम किरानी बनबायो है ॥  
मयो एकवट पुनि अभ्यस किरानी तिमि अथ मुतरजिम को पदवर पायो है ।  
'शिव' की कृपासे कम्पा तीन युग पुत्र पायाँ ज्येष्ठ मुत सुख जगदीश ने दिस्वायो है ।'

(ख) भारा नै पच्छिम निकट,  
अम्बितवारपुर ग्राम ।  
नदी कुँडमर पर बसत  
सोमा लमत ललाम ॥

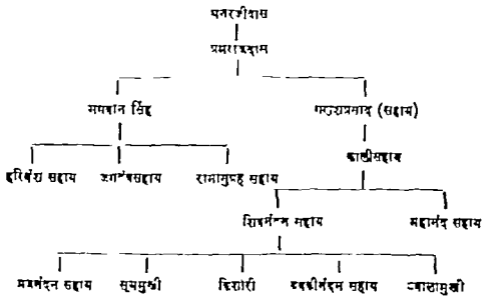
x

x

‘धई पुरातन गवि यह, कायय कर अरघान ।  
जैह भौयारतय दुमरे, बसत प्रसिद्ध महान ॥

'छोसेया' पठवी अर्ह, दिल्लीपती प्रदत्त ।  
 कोठ कोठ कानुन गोप पुनि, म कहु काल विगत ॥  
 महामान्य भगवान सिंह रहे तही गुनवान ।  
 नगर अधनपुर म हुन करत सकासत काम ॥  
 गुप्तहाय तिनक तनय तामू कालिमहाय ।  
 पूज्यपाद मो मम पिता, कहन भित्त हरपाय ॥  
 दिय सुवन जो दास को, सानुकृत हरि होइ ।  
 करत सकासी कहत तिहि, प्रजनदन सय कोइ ॥'

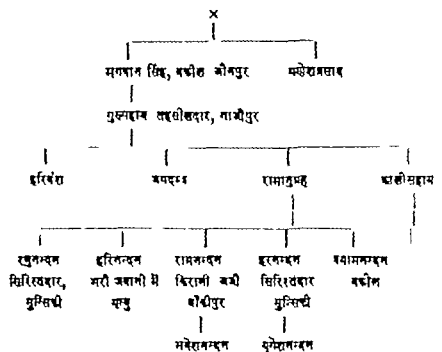
भीरिहरनाथ न प्रजनदन महाय का यह बरा हनु, अतः पूर्वोक्त प्रबंध में प्रस्तुत किया है—



किन्तु यहाँ यह विचारणीय है कि स्वयं शिवरंजन सहाय ने अतः पूर्वोक्त के जो विवरण दिये हैं उनमें इस बंश-वृक्ष में भिन्नता है। शिवरंजन सहाय के विवरण के अनुसार उनके पूर्वज मगवान सिंह थे उनका पुत्र थे गुप्तप्रहाय जिनके पुत्र हुए शिवरंजन सहाय के पिता कालीसहाय। जान क्यों भीरुसिंहनाथ का नाम इस भिन्नता थी और नहीं गया और उन्हीं इनकी आर वान-बीन न थी। अरे निर्देशन में शोच-कार्य करनेवाले भीगोपालजी



'दर्याफिराज' ने शिवमन्दन सहाय द्वारा प्रस्तुत निबन्धों के आधार पर मेरी मुद्रिका के लिए यह संसन्धान तैयार किया है, जिसे प्रायोगिक माना जा सकता है—



शिवमन्दन सहाय

जन्म संवत् १०१०

आरिबन शास्त्र द्वितीया

मधेशमन्दन सहाय बचील द्वारा

(तथा अन्य अनेक संतान)

शिवमन्दन सहाय की सन्तान श्रीवर्मा राममण्डल दास ने लिखी है। उनका निबन्ध के बाद मुद्रिका २ में श्रीमदश्वमेधिविहारी शास्त्र लक्ष्मण श्रीवर्मा लिखी थी जिसका एक संशोधन नहीं किया जा रहा है—

१ सन्धि दिल्ली-आरिब-राममाना दि० भा ४४ ३० १२।

२ भा १ मन्थर १२३० ( ) ।

“इनके पिता मु शी कालीसहाय अपनी परिपाटी के अनुकूल पारसी भाषा में निपुण और निष्ठात थे। तदनुकूल बालक शिवनन्दन सहाय भी तेरह वर्ष की अवस्था तक अपने पूज्य पिता के अधीन पारसी भाषा का अध्ययन करत रहे। परन्तु उस समय तक अँगरेजी भाषा की प्रभावता सर्व-स्वीकृत हो चुकी थी अतएव मे भी अँगरेजी पढ़ने के लिए पटना भेजे गये और वहाँ इनका नाम पटना कास्मिन्स में लिखाया गया। विद्याभ्ययन में इनकी अभिरुचि स्वामाधिक थी। महासमय परीक्षाओं को उत्तीर्ण करते सन् १८८० ई० में इन्होंने इण्टेन्स परीक्षा पास की। परन्तु परिवार की उस समय आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि कॉलेज में इनके पढ़ने का प्रबन्ध हो सके, अतएव इन्हें कॉलेज की पढ़ाई का विचार छोड़ देना पड़ा।

कॉलेज तो छोड़ा परन्तु इनका विद्याभ्ययन आजीवन बना रहा। परिवार के विचार से इन्होंने नौकरी कर ली। पटना में जमी कचहरी में सेक्रेटरी क्लक का पद इन्हें मिला। महासमय में एकाठपट्ट हेड क्लर्क और अन्त में अनुवादक (ट्रांसलेटर) हुए। कुछ अन्त के लिए वे सरिखेदार के पद पर भी प्रतिष्ठित हुए थे। परन्तु ऊँचा सुनने के कारण रबाबी रूप से यह पद प्राप्त न कर सके। नौकरी के काल में सदा ये लक्ष्य पदाधिकारियों की प्रतिष्ठा क भावन बन रहे। अन्त में, सन् १९१४ ई० में पेशम खेकर अपने सुयोग पुत्र तथा सुखेकक का० प्रजनन्दन सहाय बन्धील के साथ आरा में निवास करने लगे।

स्कूल में इनकी अतिरिक्त भाषा पारसी थी। पहले इनके वहाँ हिन्दी का आार बहुत कम था। उस समय भी साहित्य से इनको प्रेम था। उसका विकास अँगरेजी शिक्षा में होता था। इनके लेख ‘इन्डियन इतिहास’, ‘बिहारी तथा ‘साइड ऑफ दि ईस्ट’ में प्रकाशित होते थे। बाद को हिन्दी के अनन्य प्रेमी प० अम्बिकादत्त व्यास, साहित्याचार्य, प्रोफेसर पटना कॉलेज तथा का० रामदीन सिंह अम्बेडकर तथा अधिष्ठाता खडगबिन्दास प्रस, क समागम से हिन्दी का प्रेम इनके हृदय में अङ्कुरित हुआ। पहले तो इन्होंने प० अम्बिकादत्त व्यास-रचित योगेश्वर माटक का अनुबाण अँगरेजी में किया। आगे चलकर हिन्दी के अतिरिक्त अध्ययन से इनका रचना प्रवाह भी इसी स्रोत में प्रकाशित हुआ।

इनके भ्रम-मुक्त उदासीन पंथ के साथ, रियासत पटियाला के अंतग्त माटिहा निवास बाबा ब्रह्मचालात्री थे। इन पंथ के अनुयायी होने के कारण शिवनन्दन सहाय ने शुभमुखी का भी अध्ययन किया था। वे बैंगला से जानत थे और प्रारंभ में तो पदात्त अँगरेजी में ही लिखते थे। इनकी प्रारंभिक रचनायुं इन्डियन इतिहास ‘बिहार टाउन्स’, ‘बिहार हेरास’ ‘कान्ट ऑफ एशिया’ आदि समामासिक अँगरेजी पत्रों में प्रकाशित होते थे।

किन्तु अवधबिहारी शरणजी ने इनको उपयुक्त धीरानी में ठीक ही दिखा दी— हिन्दी-साहित्य के अध्ययन मटाकदि धीगोरवामी दुर्गनीवासी तथा कविभेद का० मारण्डु हरिकम्पत्री के पत्रों में इनके हृदय पर पूरा प्रभाव हुआ। इन दोनों आदेश कवियों के ये कानि से अन्त तक मग्न बने रहे। मारण्डुकी की माटकावली से प्रभावित हो

इन्होंने अपने नाम में एक मठक-मठकी स्थापित की। इस प्रकार, अपने नाम-निहिन्नी की शिवा तथा माटकककी का उपरोक्त हिन्नी में प्रदान किया।

इन कविनों की कविताओं में पद्य-रचना की ओर इनकी प्रवृत्ति करार। पटना में सिद्धों के दशम पुत्र के रथान हर मण्डिर छोड़े' में बाबा सुनेरसिंह के स्वयं तृतीय पुत्र धीमरदात के बंशपरों में से और काम्बशाक के अन्धे धीमिबन्धन सहायकी में इन्हीं की अपना काम्बतुत्र बनाया। आपने अपने गुदकी इस प्रकार की है—

श्री गुरु-गन गुन-गाम करत गुन-मन्य कथत निव ।  
 अप पूजा सौ ध्यान मजन मौ सदा निरत पित ॥  
 काम्य-शास्त्र-मर्मज्ञ कुसल कविता रचना मई ।  
 गृहद साधु घट्टु मन्थ रचित परकाशित जित्हु बई ॥  
 श्री गुरु दमम जनम अल पटना नगर वजागर ।  
 विहि गही पर हुते मवन्त महा पयिडत वर ॥  
 दास दीन पै द्या नेह सब दिन दिखरावत ।  
 अतिहि प्रीति मौ काम्यरीति हूँ कलुक सिखावत ॥

काम्य-गुणा का स्वाद मिलने पर इसकी प्रभावता इनके हृदय में बराबर समस्या-पूर्ति से इनकी तृप्ति कदापि नहीं होती थी और वह स्वसन कल्प का लक्ष्ये जाती में 'कविमण्डल और 'कविस्माक' नामी दो संस्थाओं में समस्या-पूर्ति करती थी। बाबू टिबनन्दन सहाय अपनी समस्या-पूर्तियों की इन्हीं दोनों में मेरे दिनों के उपरान्त पटना से ही 'समस्या-पूर्ति' प्रकाशित करने का प्रबन्ध किया तब संवाकक तो ये थे, परन्तु सम्पादक इनके सुयोग्य आत्मज सफ्फास-छोटक कवि बन गहाय थे।

बा० टिबनन्दन सहाय १ मई १९३२ को पलायन से काम्बन्ध की १९३२ को ४३ संवत् में दिवंगत हुए थे। जब इस अन्तिम रोम का अन्त हुआ था, मैं 'सुकवि' के लिए समस्या-पूर्ति कर रहे थे।

[ दो ]

सहायकी की कविनों की साहित्य की प्रवृत्ति है। इसे यथासंभव प्रामाण्य सुने डॉ० मावाप्रयाद गुन, धीमोशाककी 'रवराजिण कटुसंधादक, फलना-विश्वविद और हरिहरकाय से को साहाय्य प्राप्त हुआ है उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

१ History of Akhayarpar (महमेकक इन्गदन सहाय)—बिहार पटना—१९३५।

- २ विचित्र संग्रह (कुछ बौगरेषी कविताओं का अनुवाद)—सङ्गविज्ञान प्रेस, पटना, १९०० (प्रथम संस्करण), १९०५ (द्वि० संस्करण), १९०६ (तृ० संस्करण) ।
- ३ सचित्र हरिरचन्द्र (जीवनी)—सङ्गविज्ञान प्रेस, पटना, १९०५ ।
- ४ भोद्योतारामशरण भगवानप्रसादजी की सचित्र जीवनी—सङ्गविज्ञान प्रेस, पटना, १९०० ।
- ५ सुदामा (नाटक)—सङ्गविज्ञान प्रेस पटना १९०० ।
- ६ स्व० बाबू साहिबप्रसादसिंह की जीवनी—१९०० ।
- ७ कृष्ण सुदामा (पद्य)—सङ्गविज्ञान प्रेस, पटना १९०० ।
- ८ उच्च नाटक (तथा सुदामा नाटक)—सं० ब्रजनन्दन सहाय सङ्गविज्ञान, प्रेस, पटना, १९०१ ।
- ९ गोस्वामी तुलसीदास (भूमिका में ही हुई विधि २४ ११ १९१६)—१९१७ ।
- १० मठ पत्रास वर्षों में हिन्दी की दशा—आरा-जागरी-प्रचारिणी सभा, १९२० ।
- ११ श्रीमती ग महाप्रभु—सङ्गविज्ञान प्रेस पटना, १९२७ ।
- १२ चरित्र, अर्थात् भारतेन्दु काम्य-संग्रह—सङ्गविज्ञान प्रेस, पटना, १९२७ ।
- १४ स्वामी दयानन्दमठप्रोफेसर—(दो भाग) ।
- १५ अम्बिकादत्त व्यास-कृत गोर्खकट नाटक का बौगरेषी में अनुवाद ।
- १६ दिग्दर्शक गुहणों की जीवनी—आरा-जागरी-प्रचारिणी सभा ।
- १६ बंगाल का इतिहास ।

## [ तीन ]

उपरोक्त शताब्दी के उत्तरार्ध के अंतिम वर्षों में जब जीवनी और आलोचना विषयक पुस्तकें हिन्दी में लिखी जाने लगी, तब यह भी स्वाभाविक था कि उनके विषय प्रभावशाली बनते जाते जो अपने आदर्श चरित्र तथा उत्कृष्ट काम्य दोनों के लिए ही समान रूप से स्मरणीय माने जाते थे और आज भी माने जाते हैं । इनमें भी तुलसीदास ऐसे थे, जिनपर अधिकाधिक लेखकों का लिखना स्वयात् स्वाभाविक था । बिरबैरवरायण शर्मा का तुलसी-चरित प्रकाश १८७७ में और कमलकुमारी देवी लिखित गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित्र १८९५ में प्रकाशित हुए थे । शिवनन्दन सहाय के प्रस्तुत ग्रन्थ, गोस्वामी तुलसीदास के १९१७ में प्रकाशित होने के पूर्व तुलसीविषयक उपर्युक्त दो ही रचनयुक्त पुस्तकें उल्लेख्य हैं,

१ इसमें उनकी जीवनी तथा कुछ अन्य विवरण हैं, याचक गुन बंगाल गुन अमरदास गुन रामदास गुन अनुभूति गुन हरनोबिन्द गुन हरिराम गुन हरिकृष्ण गुन सेनगदास गुन गोविन्दसिंह बंशजीर बाबा सऊजन्द बाबा इनामदाससिंह बाबा बाबूसिंह बाबा सुन्दरसिंह तथा बाबा केदारसिंह की जीवनी तथा सुन्दरसिंह कृत अन्धा की समालोचना तथा बरसंहार में गोबिन्द के विद्वंसिंह गुन अन्न साहब दसैं पारहाह का अन्व और अन्वकर्ता का चरित्र । अरब-विहारी काल द्वारा लिखित जीवनी में देखा सकिय है कि दसैं शिवन गुहणों की जीवनी है पुस्तक में अन्व अन्न विषय भी है देखा कर ही गर् मूनी से स्पष्ट होगा ।

यद्यपि इनमें भी तुलसी का जीवन-चरित ही वर्णित है, जब कि तीसरी पुस्तक में विस्तृत जीवनी तो है ही साथ ही साथ कृतियों का विराट् विवरण और साक्षिक मूल्यांकन भी है।

शिवनन्दन सहाय ने इन सभी प्राचीन भक्त-चरित-लेखकों तथा समसामयिक विद्वानों एवं टीकाकारों आदि के मत-मतांतरों का स्यासपाल उल्लेख कर अपने ग्रंथ को प्रामाणिक बनाने की चेष्टा की है, जिन्होंने सविस्तर या संक्षेपतः पुस्तकों या पत्र-पत्रिकाओं में तुलसीदास के जीवन का साहित्य पर दृष्टि लिखा था। इनमें निम्नलिखित का उल्लेख किया जा सकता है—  
महतमास मिनावास-कृत महत्तमास की टीका, धीसीताराम भगवान प्रसाद-कृत महत्तमास की टीका, बेडीनाथदास-कृत गूढ गोदा-कृत शिवसिंह सरोज इंवीरिजल यजेदियर, महादेव प्रसाद-कृत भक्तिविद्यास भीराबाचरण गोस्वामी-कृत भवमहतमास, तुलसीराम अमवाल-कृत वर्ष महत्तमास, रामाप्रतापसिंह-कृत भक्तकल्पद्रुम, भक्तिसिंधु बृहद् रामायण-आहात्म्य रघुवरदास-कृत तुलसीचरित महाराज रघुरामसिंह-कृत महत्तमास राम-रसिकावली हिंदी नवलेख हरिहर-कृत महत्तमास हरिभक्तिप्रकाशिका, बहादेवदास-कृत राधापुर माहस्य आदि तथा रेबर्ट एडविन प्रीमर एफ् एस्० माउज विलसन मिर्चल एनामरघुवरदास, रानी कमलकुमारी (कमलकुमारी) रामगुलाम द्विवेदी सुभाकर द्विवेदी, रघुराजकिशोर, गोपीरंजकर द्विवेदी मोकेशचरितम शास्त्री, जोगेन्द्रमोहन एन आसाप्रसाद रामेश्वर भट्ट, बैजनाथदास रघुवराय शर्मा, शिवनन्दन मिश्र रोशनराज काङ्गिहा स्वामी सुखदेवराज सन्तेना रामचरणराय शिवरामसिंह गुरसहाय साह, शानी संतसिंह शिवराज साहक आदि।

इनके अतिरिक्त कास-क्रम की दृष्टि से शिवनन्दन सहाय के पूर्व तुलसीदास पर विचार करनेवाले ही ही अन्य विद्वान् हैं, जिनका उल्लेख वे नहीं कर पाये हैं। ये विद्वान् हैं—पार्सी व दासी तथा एल्० पी टेसीटरी पहले मंडलीवी और दूसरे इतालवी और फलत सहायजी के सम्बन्ध में दुष्प्राप्त। सहायजी के बाद तुलसीदास पर जो सम्बन्ध-अनुसन्धान हुए हैं उनपर यहाँ कुछ कहना अनावश्यक है।

शिवनन्दन सहाय-लिखित यह पुस्तक ही वस्तुतः तुलसीविषयक प्रथम सर्वांगपूर्ण पुस्तक है और साथ ही यह है कि इसके पूर्व हिन्दी के किसी प्राचीन कवि पर हिन्दी में इतनी बृहद् एवं ऐसी सुविचारित पुस्तक नहीं लिखी गई थी। यहाँ यह उल्लेख अप्रासंगिक न होया कि शिवनन्दन सहाय की ही पुस्तक सचिव हरिनन्दन, जो १६२ में प्रकाशित हुई थी हिन्दी के द्वितीयाधुनिक साहित्यकार पर भी लिखित सर्वप्रथम तथा परिपूर्ण पुस्तक है क्योंकि पुस्तक का यह बहुत बड़ा भाग बहुत प्रकाशित हो ही नहीं पाया जिस प्रकाशक तब समय प्रकाशित करने का साहस न कर पाया होया, और बाद में जिसे सहायजी के धर्मिष्ठ मित्र 'हरिऔध' की सहायजी के पुत्र ब्रजनन्दन सहाय से मौजदर से गये तो इसका लौटाये जाने की भी बात ही न आई और जिसे अब सुप्त ही समझना चाहिये।<sup>१</sup>

इसमें उन्देह नहीं कि शिवनन्दन सहाय तुलसीदास तथा हरिनन्दन-विषयक अपने दो ग्रन्थों के कारण हिन्दी में अविमरखीय बन रहेंगे।

१ आनाम शिवनन्दन सहाय संशुद्ध।

धीरोस्वामी तुलसीदासजी नामक प्रस्तुत पुस्तक में दो खंड हैं। पहले खंड में बड़े विस्तार से, उनह परिच्छेदों में तुलसीदास के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। इन परिच्छेदों के शीर्षक तुलसी के जीवन के निरूपित विभिन्न पक्षों को स्पष्ट चोतित करते हैं। शीर्षक हैं—बचपन और अन्तर्यामि, जाति और अन्नक अन्नमी, बाह्यावरण विवाह रामपुरवास धीरामाश्रम भी हनुमानजी विषयक दो-एक अन्य बातें काशीवास-हार्ताण्ड निरुद्धी-यमन प्रद-गमन किन्नरूट तथा अरुण-वास मित्र और सम्मान, बंधु और देशत्र, भ्रमण, स्वभाव तथा रत्नगणना। तुलसी जी जीवनी के पुनर्निर्माण के इस प्रयास की सर्वातिशायी विरायता यह है कि लेखक ने प्राचीन कवियों के जीवन-वृत्त के लक्षण में अनभूतियों का जो महत्त्व है उस टीका-की समझा है और इस रूप में प्रायः सामग्री का सम्यक् उपयोग किया है। प्राचीन साहित्य के इतिहास में उन भूतियों का कमल इसी कारण महत्त्व नहीं होता कि उनके अतिरिक्त प्रायः अन्य कोई आधार प्राप्य रहता ही नहीं। इस पुस्तक के प्रथम खंड के सवर्ष में डॉ० माताप्रसाद गुप्त जी यह आलोचना कि इस खंड को व्यापक पढ़ने पर कुछ एसा लगता है कि अनभूतियों को उनकी योग्यता से अधिक महत्त्व दिया गया है, युक्ति-रहित है और यह कमा-दान बनाकर कह कि 'यह सही है कि उस समय तक अनभूतियों के अतिरिक्त कवि के जीवन-वृत्त-संबंधी सामग्री बहुत कम थी।' प्राचीन कवियों के सम्बन्ध में सवर्ष प्रायः यही स्थिति पाई जाती है कि उनके सम्बन्ध में, प्रामाणिक जीवनी या आत्मचरित के अभाव में अंतस्थाचय तथा उनके समकाली अनभूतियों का ही एकमात्र आधार प्राप्त रहता है। बहुधा अंतस्थाचय से कवि वृत्त का वह काल प्राप्त होता है, जिसे अनभूतियों की सहायता से ही मात्र और रक्त कि बहुधा स्वर्न तक प्राप्त हो जाते हैं। इसी कारण परम्परा प्राप्त प्राचीन अनभूतियों का क्या ही महत्त्व है, यद्यपि यह भी टीका है कि उनमें भी प्राचीन अर्वाचीन की दृष्टि से सुनाव करना पड़ता है यह देखना पड़ता है कि दृष्टिकोण-विशय की पुष्टि के लिए तो कोई अनभूति आधुनिक काल में गढ़ नहीं ली गई है, और अंततः यह भी कि अंतस्थाचय के प्रतिबल तो वे नहीं हैं। यदि अनभूतियों को सर्वथा महत्त्वहीन मान लिया जाय तो प्राचीन कवि-वृत्त के पुनर्निर्माण का प्रयास ही व्यर्थ है।

अतः किंवदन्त सहाय के द्वारा तुलसी-जीवनी अनभूतियों के उपयोग का प्रश्न है उनके प्रयास का यही महत्त्व नहीं है कि उन्होंने बिखरी तथा लुप्त होने के खतरे में पड़ी हुई अनकालक अनभूतियों का संछलन-भाज कर दिया है, बल्कि यह भी कि उन्होंने इन अनभूतियों का अरुण-वास उपयोग किया है और इन प्रकार तुलसी का सर्वांगी व्यक्तित्व पुनर्निर्मित कर सफल में सफलता पाई है। उन्हें इसका धेय भी है कि उन्होंने एक बार अनभूति विराय को अंतस्थाचय से अस्थापित किया है और दूसरी ओर, अंतस्थाचय से उरस्यक तथ्य विषय में अनभूति की सहायता से प्राण-संचार कर दिया है। यही कारण है कि इस पुस्तक का जीवनी-खंड 'मस्तमास' प्रकार का न होकर वास्तविक जीवनी की दृष्टि में परिगणनीय है।

इस पुस्तक के द्वितीय खंड में तुलसीदास की कृतियों के साहित्यिक महत्त्व पर साधारणतः पृथक् कृतियों को प्यान में रखते हुए तथा समवेत रूप से भी विचार किया गया है। जैसा इस खंड के तीस परिच्छेदों के उद्धृत शीर्षकों से स्पष्ट है। शीर्षक ये हैं—कविताराहित्य तथा भाषा बोधवामी तुलसीदास इत प्रभावशाली रामायण की सृष्टि, रामायण का रचना काल रामायण का मूलाधार रामायण का वास्तविक नाम रामायण का विषय, रामायण में कृतियों का आभाव रामायण में नहीं रच, रामायण में रूपकादि की बहार रामायण में राक्षसीवि विचार, रामायण के पात्र-वर्ग रामायण का आचार और प्रकार, खेपक और फाटखोंद रामपरितमनाम के संस्करण तथा टीकाएँ कवित रामायण तथा कवितानन्दी, पीतानन्दी, विनयप्रसिद्ध दाहावली रामायण प्रथम जानकीमयस्य पार्वतीमयस्य, कृष्णगीतावली, वैराग्य संश्लेषिणी, रामलक्ष्मणहनु, छठसई या रामछठसई, गोसाई की श्री संस्कृतज्ञता गोसाई की का मत और शास्त्रीयता तथा अप्यारम रामायण ।

इस खंड के संबंध में डॉ० माताप्रसाद गुप्त का यह कथन उचित है कि समालोचना बहुत कुछ बहिरंग है अंतरंग नहीं तथा कहीं-कहीं लोकक ने तुलसीदास की तुलना शेषस्यपिब से करके अपने कवि को दूसरे से भेद सिद्ध करने का बल दिया है।<sup>१</sup> फिर भी तुलसी के आलोचक विनयप्रसाद दाहावली की इन दो कृतियों के संबंध में यह भी अविचारशील नहीं दे कि उस युग में बलि एक हद तक भी अंतरंग आलोचना हुई केवल बहिरंग ही नहीं, तो यह भी अन्याय ही है। इसके साथ ही साथ यह भी उल्लेखनीय है कि बहिरंग हो या अंतरंग और पूरा धृष्टाभावना के बावजूद आलोचक प्रशंसनीय भाषा में बहिर्निष्ठ दृष्टिकोण बनाये गए सक्त है यह हमरी बात है कि आलोचक को अपनी महत्ता के कारण आलोचक की पदाक्षत की विशेष अपेक्षा भी थी नहीं।

दूसरी कृति—शेषस्यपिब से अनापरयक तुलना आदि—के संबंध में भी हमें यह स्मरण रखना होगा कि पद्यसिद्ध शर्मों या कृष्णविहारी विश्व जैसे परवर्ती आलोचकों की तदाकथित तुलनात्मक आलोचना क अक्षयम और आह-नाह की तुलना में ना और भी बाद क उन विद्वानों की अपेक्षा जो तुलसी तथा विश्व-साहित्य पर विचार करते पाये जात हैं, विनयप्रसाद दाहावली क अतिरंज भी नियमित और सीमित ही हैं।

पूर्ण रूप से छेने पर पुस्तक की विरासताओं के संबंध में डॉ० गुप्त के इन शब्दों की आशुति पर्याप्त है प्रथम को दृष्टियों से उपादेय है एक तो इसके पहले कवि के संबंध में जो कुछ लिखा गया था इस प्रथम में उन पर संमीरतापूर्ण विचार किया गया है और दूसरे भाग में अपने पृथक्की संस्कृत प्रयोग की जो प्रतिबन्धाया मिलती है उसकी ओर स्पष्ट कर से दर्शने-पदत हमी प्रथम में तुलसीदास के पाठ्यों का प्यान आकल्पित किया है।<sup>२</sup>

१ तुलसीदास प्र सं० मूमिका पृ० १२।

२ उपरिबन्ध।

शिवमन्दन सहाय की इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक के पुनर्मुद्रण के संपादन का भार बहर परिपद के अधिकारियों ने मुझे गौरवान्वित किया है। पुस्तक भार पहले ही सलम हो सकती थी किन्तु मर कारण अत्यधिक विलंब हो गया है, जिसके लिए मैं गद्द प्रकट करने के प्रतिरिक्त और कर ही बना सकता हूँ।

पुनर्मुद्रण में अपासमन पुस्तक के मूल रूप को सुरक्षित रखा गया है। मूल पुस्तक से पत्र-तब जो थोड़ी-बहुत निचताएँ हैं वे इस कारण कि मूल पुस्तक की जो प्रति आबाय शिवमन्दन सहायजी को स्व० शिवमन्दन सहायजी से मिली थी उनमें शिवमन्दन सहायजी ने स्वयं कहीं-कहीं कुछ आबरमक संशोधन और परिवर्धन कर दिये थे और इनका ध्यान रखना तथा इन्हें मवास्थान सम्मिलित कर लेना आबरमक सम्मता गया।

मे परिपद के वर्तमान संपालक डॉ० मुबनस्वरनाथ मिश्र 'मापक' का आभारी हूँ कि उन्होंने इस भूमिका की प्रतीक्षा की कोई अपयि निधारित नहीं की। परिपद के प्रकाशना पिछागी श्रीमन्पलास मंडल का जब धैय समाप्त ही हो गया तब यह भूमिका तयार हुई, जो तमक प्रति भी मेरी अनन्य कृतज्ञता है। सहस्रमिणी भीमती कुमुा शमा न बकारी पुस्तकें पार-वार जुटाई न होनी, जिनमें से दो-चार का ही उपयोग फल दिया ता सब हाने पर भी मैं वे कुछ श्रुप्त लिख न पाता। प्यारी बेटी मीनू स भी पाठ मित्राने में फल काम दिया है जिसका मूक्य तसे मामूम नहीं।

—नलिनधिलोचन शमा







# समर्पण

भीमान् बनेलीनरेय  
आनरेबुल राजा कीर्त्यानन्द सिंह जी  
के  
कमनीय करकमलों में  
भीमान् की छवामय आह्ला से  
यह तुच्छ प्रथ  
अत्यन्त भद्रा और ममतापूर्वक  
सादर समर्पित ।

ग्रन्थकर्ता



## प्रथम संस्करण की भूमिका

प्रिय पाठकवर्ग,

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी के विषय में जो कुछ पुस्तकों तथा लेखों में लिखा गया है प्रायः सर्वों को देखकर आज कई वर्ष हुए यह जीवनी तैयार की गयी थी। सामग्रियों के प्रस्तुत करने में अर्ना (जिला सारन) निवासी बाबू गोविन्द नारायण जी० ए० ने बहुत परिश्रम किया था। इस पुस्तक के प्रकाशक होने की भी उनकी इच्छा थी, किन्तु यह अभिलाषा पूरी होने के पूर्व ही वे इस संसार से अलक्ष्ये। उनके स्वगवास के अनन्तर उनके परम स्नेही बाबू ब्रजेन्द्रप्रसाद, एम० ए० जी० एल०, मुन्सिफ, बाबू अयोध्याप्रसाद, एम० ए०, डिप्टी क्लर्क तथा विहार के विख्यात अंग्रेजी कवि बाबू रघुवीर नारायण प्रभृति इस के शीघ्र प्रकाशित होने के प्रयत्न में प्रवृत्त हुए और सफलतापूर्वक यथासाध्य उनलोगों ने इस कार्य में हमलोगों की सहायता की।

हिन्दीरसिक श्रीमान् आनरेबुल राजा कीर्त्यानन्द सिंहजी वनौक्षीनरेरा ने अन्त-पूर्वक इस के प्रकाशन में विशेष आर्थिक साहाय्य प्रदान कर हमलोगों को बाधित किया है। यह कहना बाहुल्य है कि यदि श्रीमान् की वया नहीं होती, तो आम इस पुस्तक को हमलोग पाठकों को भेंट नहीं कर सकते। हमलोग श्रीमान् को शार्दिक पन्थवाद देते हुए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि माण्डवा में नित्य प्रति बनका स्नेहवर्द्धन होता रहे और आप इस की उन्नति में सदैव वद्वपरिहर रहें।

ईस्वी सन् १९१५ के सेप्टेम्बर के अन्त में प्रेस में यह पुस्तक छपने के लिए दी गयी। उस समय तक बहुत सी अन्य बातों की जानकारी हो जाने से पूर्व लिखित कापी में यथावश्यक काटछाँट और परिवर्द्धन कर दिया गया। प्रेस ने वादा किया था कि दो मास में पुस्तक छापकर तैयार कर दी जायगी, किन्तु यह प्रतिज्ञा काय में परियात नहीं हो सकी। लगभग एक परस में पूरी हुई।

इधर प्रबंधकार को भारत का पट्टर खुलवाना पड़ा और तत्पश्चात् वे स्वर से पीड़ित हो गये। परिय्याप्त यह हुआ कि वे प्रफ स्वयम् नहीं देख सके और जन के हाथ से प्रूफ का संशोधन निकल गया।

पुस्तक में शुद्धाशुद्ध पत्र देने में हमलोग व्यय का हंश तथा व्यय सम्मिलते हैं। आशंकित किसी को नहीं दखा गया कि उसके अनुसार पुस्तक को शुद्ध कर पाठ करे।

अब तो जैसा है आप लोगों के आगे है। आशा है कि पाठक वर्ग इसकी त्रुटियों की ओर ध्यान मही देकर इस के विषय के नाते इसे अपनावेंगे।

बाबू बाजार—धारा  
२४ नवम्बर, १९१६ ई०।

}

विनीत  
रघुनाथप्रसाद सिंह



# विषयानुक्रमणी

## प्रथम खण्ड

प्रथम परिच्छेद	
जन्म काल और जन्म स्थान	१—८
द्वितीय परिच्छेद	
जाति और जनक-जननी	९—११
तृतीय परिच्छेद	
शास्त्रावस्था	१२—१६
चतुर्थ परिच्छेद	
विवाह	१७—२७
पंचम परिच्छेद	
गुरु	२८—३८
षष्ठ परिच्छेद	
राजापुर वास	३९—४४
सप्तम परिच्छेद	
भी राम दर्शन	४५—४९
अष्टम परिच्छेद	
भी हनुमानजी विषयक दो-एक अन्य बातें	५०—५४
नवम परिच्छेद	
काशीवास वृत्तान्त	५५—६०
दशम परिच्छेद	
दिल्लीगमन	६१—६६
एकादश परिच्छेद	
ब्रह्म-नामन	६७—७०
द्वादश परिच्छेद	
शिशुकूट तथा अश्वपत्तन	७१—८१

त्रयोदश परिच्छद मित्र और सम्मान	८२— ९४
चतुर्दश परिच्छद बन्धु और वशव	९५—९७
पंचदश परिच्छद भ्रमण	९८—१०८
षोडश परिच्छद स्वभाव	१०९—१११
सप्तदश परिच्छद स्वगणपथान	११२—११८

### द्वितीय खण्ड

प्रथम परिच्छद कविता शक्ति तथा काव्यमाया	१२१—१२९
द्वितीय परिच्छद मोक्षामी तुलसीदासकृत प्रस्थावली	१३०—१३१
तृतीय परिच्छद रामायण की सृष्टि	१३२—१३७
चतुर्थ परिच्छद रामायण का रचनाकाल	१३८—१३९
पंचम परिच्छद रामायण का मूलधार	१४०—१४१
षष्ठ परिच्छद रामायण का वास्तविक नाम	१४२—१४३
सप्तम परिच्छद रामायण का विषय	१४४—१७७
अष्टम परिच्छद रामायण में पुरुषों का आभाव	१७८—१८५
नवम परिच्छद रामायण में मर्षों का	१८६—१९२
दशम परिच्छद रामायण में रूपकादि की बहारा	१९३—१९७

एकादश परिच्छेद रामायण में राजनैतिक विचार	१८८—१९९
द्वादश परिच्छेद रामायण के पात्र वर्ग	२००—२१९
त्रयोदश परिच्छेद रामायण का आधार और प्रचार	२२०—२३०
चतुर्दश परिच्छेद द्वेषक और काट-काट	२३१—२३८
पंचदश परिच्छेद रामचरित नामस के संस्करण की टीकाएँ	२३९—२५३
षोडश परिच्छेद कवित्तरामायण या कवितावली	२५४—२६२
सप्तदश परिच्छेद गीतावली	२६३—२७३
अष्टदश परिच्छेद विनयपत्रिका	२७४—२७८
ऊनविंशति परिच्छेद बोहावली	२७९—२८१
विंशति परिच्छेद रामाज्ञा	२८२—२८७
एकविंशति परिच्छेद बानकी मङ्गल	२८८—२८९
द्वाविंशति परिच्छेद पार्वती मङ्गल	२९०—२९३
त्रयोविंशति परिच्छेद कृष्णगीतावली	२९४—२९७
चतुर्विंशति परिच्छेद बैराम्य वन्दीपनी	२९८—२९९
पञ्चविंशति परिच्छेद बरधै या बरवा रामायण	३००—३०२



पर्विंशति परिच्छेद	
रामकथा नवतु	
सप्तविंशति परिच्छेद	३०३—३०४
सतसई वा राम सतसई	
अष्टाविंशति परिच्छेद	३०५—३०६
गोसाई जी की संस्कृतकथा	
नवविंशति परिच्छेद	३१०—३१६
गोसाई जी का मठ	
त्रिंशत् परिच्छेद	३२०—३२६
बाह्यकीय तथा आभ्यासरामायण	
उपसंहार (क)	३२७—३४०
उपसंहार (ख)	३४६
उपसंहार (ग)	
	३५०—३५१

गोस्वामी तुलसीदास



श्री सीतारामजी ।

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी

छुप्यै

श्री सियराम अनन्य उपासक परम भक्त्यर ।  
ध्यायो आठो आम युगस्त पद पदुम नेहघर ॥  
श्री रामायण, किनय आदि रनि हरि गुन गायो ।  
मयमागर के धरन हेसु दद पोत धनायो ॥

श्री तुलसी के परताप हैं, कसि हूँ आम गराम नित ।  
सियराम नाम कख्यान हित, कहत सकल उमहाव पित ॥

## प्रथम परिच्छेद

### जन्मकाल और जन्मस्थान

अगदादरणीय परम पूजनीय प्रातःस्मरणीय अद्वैतानाममपदस्य कं उत्कृष्ट लक्षण वैश्याय शिरोमणि महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म लगभग संवत् १४८१ में हुआ। जैसे 'ईतिहास' नामक मुद्रिकायात श्रीरामक कर्म के रचयिता मुत्तान-वेणीय प्रसिद्ध अदि 'होमर' की जन्मभूमि कहलाने के लिये उस की मृत्यु के अनन्तर सात गौष<sup>१</sup> आपस में मगड़ने लगे थे विस ही इतिहासपुर विप्रकृत निष्कृत्य हाजीपुर राजपुर तथा तारी के कई एक गौष हमारे अरिजनायक के जन्मस्थान कहलाने का दावा करत हैं। अिबर्तन साहब ने तारी का दावा अवरदस्त समझा है। परन्तु उन्होंने इन का कोई कारण नहीं बताया है। हाँ! श्री सीतारामदरश भवनामप्रवाद की<sup>२</sup> ने

१ शिवसिद्ध सरोज में सं १५८३ के लगभग लिखा है। श्री रात्री कमल कुंभरी में भी यही सब सं माना है। रेवेण्ड एड्विन प्रीन्स ने जन्मकाल सं० १६० — १० के मध्य में लिखा है श्रीर मानसमर्बक के प्रेमी लोग इस घोड़े के आपार पर मन ऊपर सर जात्रिये सर पर हींहे एक। तुलसी प्रगटे रामवत राम जन्म की देख ॥” सं १५५४ मानते हैं (मर्षक का १३५४<sup>३</sup> हाहा इतिथे)। परन्तु अचिकरत लोगों ने सं० १५८३ माना है।

२ इस के सम्बन्ध में यह पद बहुत प्रसिद्ध है—

“Seven rival towns contend for Homer dead,  
Through which the living Homer begged his bread.”

“पाइडा जे० एम० बार्मन एम० ए० द्वारा संपादित पोपटून 'ईतिहास के अनुवाद में इन स्थानों के नाम स्मर्ता रोहम कोसीकन सलामिन क्रिपास अर्गस तथा एन्थ्य दिप ह्य हैं। श्रीर पाइडा पिपोडार एसाइम बकसी एम ए० द्वारा संपादित ग्रन्थ में लिखा है कि होमर की अनाया माता अगस में रहती थी। बाण्डिया में नहीं किनारे होमर का जन्म हुआ श्रीर समर्बा (स्मर्ता) में एक शिकर का गृहिकात्र इस की माता संग्रहलने लगी। उग तिपक न पीछे उस स अपना रिवाज पर होमर को अपना 'भोग्युत बना लिया।” इत्यादि।

३ इस ग्रन्थ के अन्तर्क में इस की भी जीवनी लिखी है जिन उपरा क्रिपा अर्बादियानी अर्गसि बाण्ड गारिम्बेय नारायण की ए० ने संपादित किया है।

स्वरचित 'महन्माल' की टीका में लिखा है कि रात्रापुर में जाकर यह बात मन्त्रीमौलि निश्चय की गयी है कि गोसाईं जी का जन्म तारी में हुआ था और बिरह होने के पीछे रात्रापुर में निवास कर उन्होंने वहाँ मन्त्र किया है। इसी से वहाँ गोस्वामी जी को स्थापित की हुई संछ्दमोक्षम श्रीहनुमान जी की मूर्ति है और भी रामायण अयोध्याकांड भी है। और इस विषय में पत्र द्वारा पूछने पर उन्होंने कृपापूर्वक हमें लिख मेला है कि "तारी में जन्म बड़े २ महन्माली बताते हैं, कई एक प्रसिद्ध रामायणी लोगों ने अपने २ रामायणी गुणों से मुना है; संस्कृत में जो महन्माल का उल्लेख है उस में भी तारी ही लिखा है रात्रापुर के बूढ़ों से भी मुना गया है कि तारी ही में गोस्वामी जी का जन्म हुआ था रात्रापुर में नहीं। अयोध्यानिवासी श्री रामसरंजयणि जी ने भी कवित रामायण की टीका में तारी ही को जन्म-स्थान माना है।"

जो लोग यमुनातटवर्ती रात्रापुर को यह गौरव प्रदान करते हैं उनका यह कथन है कि शिवसिंह ने गोस्वामी जी के सहजासी पस्का निवासी श्रीवेणीमाधव दास कृत 'गोसाईंचरित्र' के आधार पर रात्रापुर को जन्मस्थान माना है प्रसिद्ध रामायणी पवित्रत रामगुलाम द्विवेदी जी<sup>२</sup> ने भी उसी को जन्मस्थान बताया है; रामायण की गाथा भी रात्रापुर प्रान्त ही की है। गोसाईं जी की हस्तलिखित रामायण अयोध्याकाण्ड अध्यायों में वहाँ बतलाया है और सोम आत्र भी वहाँ गोसाईं जी का स्नानादि एवं प्राय की संस्थापित भी महावीर जी की मूर्ति दिखलाते हैं। परन्तु जब टाऊर शिव सिंह जी का लिखा जन्म संबन्ध मानने में रात्रापुर के पक्षपाती असम्मत् दीखते हैं तो उनका लिखा हुआ जन्मस्थान क्योंकि ठीक समझ आया। उन्होंने गोस्वामी जी के साथी वेणीमाधव दास जी का पत्र देखकर जैसे जन्मस्थान लिखा है वैसे ही जन्म संबन्ध भी। फिर एक को प्रामाणिक और दूसरे को अप्रामाणिक मानना क्या न्यायसंगत होगा।

१ श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद कृत महन्माल की टीका प्रथम संस्करण, पृ० १०६९ देखिए।

२ य मिरजापुर के रहनेवाले प्रसिद्ध रामायणी थे। रामचरित मानस के विद्यार्थी प्रवाही में वे गोस्वामी जी के शिष्य भी थे। परन्तु बनारस के स्वर्गीय सुप्रसिद्ध ज्योतिषी महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर त्रिबेदी जी कहते हैं कि 'गुलामीदास जी के कोई संबंध नहीं था यदि होत तो वे लोग कबीरवंशी, दरियादासी इत्यादि के समान अपने को 'गुलामीदास' के नाम से प्रसिद्ध करते। उस रीति के सम्प्रदायी लगे न हों (और इन का प्रचारित कोई सम्प्रदाय मुना भी नहीं जाना) परन्तु हमने किसी को इन से रामायण पढ़ने या शिष्य ही होने की बात अप्रामाणिक नहीं हो सकती। क्योंकि क्रिया के पाम कृत करने से कोई इस व्यक्ति का सम्प्रदायी शिष्य नहीं हो सकता। यदि जमी बात होती तो मिरात हल के पढ़नेवाले अपने का मिरातगोही' और मरुतप के पढ़नेवाले अपने को 'मौलबंगोही' प्रसिद्ध करते। और शिष्य तो सभी दासग बिना अपना कोई सम्प्रदाय बसाय बना सकते हैं। पवित्रत रामगुलाम जी का पृच्छान्न अन्वय लिखा गया है।

और जैसे वं रामगुलाम जी ने इस विषय में अन्वेषण कर राजापुर को अन्मस्थान माना है जैसे ही धोरो के अन्वेषण से तारी अन्मभूमि सिद्ध हुई है और बहुत से लोग तारी को प्रभावता देते हैं । एवम् राजापुर के कई बूटों भी मोस्ताई जी का वहाँ अन्मस्थान नहीं मानते हैं ।

रामायण की माया राजापुर के प्रान्त की माया होने से भी लोगों को कुछ सहायता नहीं मिल सकती । कोई किसी विशेष माया में ग्रन्थ लिखने के कारण वहाँ की वह माया है वहाँ का निवास नहीं कहा जा सकता । ऐसा मानने से कितन भारतवासी विद्यायती क्लेशाने लग जायेंगी । और कितने विद्यावतियों की भी गिनती हिन्दुस्तानियों में होने लगेगी भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों के निवासियों की बात तो बूट रहे ।

फिर राजापुर से तारी २ ६ ही कोच पर यमुना के एक ही तीर पर है<sup>१</sup> एवम् दोनों स्थानों की माया भी एक ही है । और अधिक अन्तर भी हो तो क्या विरक्त होने के बाद वहाँ निवास करने के समय वहाँ के लोगों के संसर्ग से मोस्ताई जी को सच प्रान्त की माया मान लेने में कोई कठिनाई हुई होगी । और रामायण में सर्वत्र एक ही माया देखी भी तो नहीं आये । इसी से मुकवि मिर्जापी दासजी ने कहा है तुलसि पप बोलू अये सुकविन के घरदार । तिनकी कविता में मिसी माया विभिन्न प्रकार । और कृष्ण गीतावली की माया ब्रह्माया होने से क्या मोस्ताई जी का अन्मस्थान ब्रह्मरूप में माना जायगा ।

विचार कर देखने से रामायण अशोष्णाक्षर की प्रति और भी हनुमान जी की मूर्ति आदि राजापुर में होने से मोस्ताई जी का वहाँ अन्मस्थान सिद्ध नहीं होता बल्कि विरक्त होने के परचात ही इनका वहाँ निवास करना अनिश्चित प्रतिपादित होता है । क्योंकि लक्ष्मण में तो मोस्ताई जी ने घर करने के योग्य ने ही नहीं और विवाह के अन्तर तो इन्हें पत्नीमेग ही में आसक्त पाते हैं । तब इन सब बातों क होने की विशेष सम्भावना इसके विरक्त होने पर ही है और जो घर छोड़कर विरक्त हो जाता है वह माया गौब ही में जाकर बैरा नहीं अमाता और नहीं देवमन्दिर आदि संस्थापित नहीं करता ।

फिर रामायण की रचना इन्होंने ४१ वर्ष की अवस्था में की है । तो क्या ये पाँच ही क माते रामायण लिख कर एक प्रति वहाँ के जाने और मन्दिर आदि बना आये जिसमें लोग जानें कि वही हमकी अन्म भूमि थी । यदि इन को यह बात प्रसिद्ध करने की

१ काशी नागरी प्रचारिणा समा द्वारा प्रकाशित रामायण पृष्ठ ८ देखिये ।

२ यह पुस्तक दुर्भे पर और इन्ने पत्रका एक सखन ने पन्नाहाबाद से प्रकाशित ११ अगस्त १९१० ई के संगीतरी पत्र 'सीडर' में लिखा था कि बाँदा जिला की मऊ तहसील में प्रायः २ मील पर और राजापुर से १५ मील पूर्व यमुना के दाहिने तट पर तारी बूट का नाम प्रचलित है । दासजी विषयन के अनुसार यह शोकाच में नहीं है बल्कि यह अयम्मात्र नहीं कि ३०० वर्षों के मध्य में नदी का राव बदल गया हो ।

हृष्टा होती तो य इस विषय में कोई कविता ही छर देते जिस से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती ।<sup>१</sup>

अतएव बिन कारणों से लोग राजापुर को इनका जन्मस्थान होना बताते हैं उमसे यह बात प्रमाहित नहीं होती । परन्तु राजापुर गोस्वामी जी को अपना ही जन्मा में बहुत तत्पर है । बहुत लोगों को निज पद का प्रतिपादक बनाता जाता है और उस ने अपने निकटवर्ती अटवार प्रामनिवासी बसवेश कवि से अपने माहात्म्य की कविता में अपने यहाँ यमुना के तट पर गोस्वामी जी का 'आमार' होना ब्रह्मनामा है ।

उक्त पुस्तक में राजापुर महल एवम् राजापुर प्राम की सीमा इस प्रकार बर्णित हुई है ।

### अथ राजापुर महल की सीमाएं

“दक्षिण में वाल्मीक सैल एक योजन<sup>२</sup> पै नैऋत<sup>३</sup> में चित्रकूट योजन अड़ा है । सात कोम पच्छु अमरे ही नाथ दुइ कोस यमुना में आय पयअपनि समा है । उत्तर में चण्डिका भवानी मात कोम ही पै पूरव मऊ में सियाराम घोऊ मा है हैं । एते बीच परदा प्रान्त माहि मक्षद्व कर्हे राजापुर महल की अधिक यड़ा है ।”

### अथ राजापुर की सीमाएं

“पूरय में प्रमुपाट तुलसी गोमाई धान जासु छल रामायण्य जाहिर समाम है । दक्षिण शियाला पाटशाला डाकखाना धाना जा सो एक मील खटवार सम प्राम है । पश्चिम में सैफ्ट मोषन महावीर मठ सोंहि सियारामानुज म्हांकी अभिराम है । उत्तर यमुना मो की धारा जल सियाम रंग दस दक्षद्व दास करत प्रयाग है ।”

राजापुर में श्री हनुमान स्थान सिद्धिदायिनी भवानी श्री राम और श्री भैरवादि के कई एक मन्दिर हैं और प्रति वर्ष काठिक और बैशाख की पूर्णिमा को वहाँ मेला भी हुआ करता है ।

१ १२ सितम्बर १९१० ई० के उक्त 'सीधर' में श्री तसुराज शिरोर बी० ए० ने लिखा था कि यह सम्बद्धपूर्ण बात है, कि गोमाई जी कभी फिर अपनी जन्मभूमि पर गये । क्योंकि उन्होंने स्वयम् कहा है—

तुलसी वहाँ न जाइये, जहाँ जन्म को छँव ।

गुन चांगुन जाने नहीं परी पादिसा बाँप ॥’

इससे अनुमान होता है कि गोमाई जी पुन अपने प्राम में गये नहीं और गये तो वहाँ उन के साथ सम्बद्धवहार नहीं हुआ । उक्त कवि त्रिक से भी कहा है—

बहस आँदर का बदन में कृद कृप दोर्गा धारा

शल्ल बयों इय रंग म घाना यदुपाँ घोंकडा ।

१ चार फास परिमाण ।

२ दक्षिण-पश्चिम काग ।



११ दिनों तक मेला रहता है। कई हजार मनुष्य आस पास के ग्रामों से बाहर रेत खादि बग़ारे हैं।

‘निस्सन्देह विद्या बान्दा’ परगना मऊ में यमुना छट पर राजपुर एक प्रसिद्ध ग्राम है और करीबी नामक (जो आइ पी०) रेलवे स्टेशन से उत्तर-पूर्व १ कोस पर बसा है। एक समय राजपुर बाण्डा का एक प्रधान स्थान था। परन्तु अब वह बाध नहीं है। ‘इरिबयन इन्टीरिमेन्ट गजेटियर’ में लिखा है कि ‘दन्त कथा के अनुसार यह सौंठ भाया रामायण’ के मुक्तिमात रक्षिणा तुलसीदास से बसाया—और वहाँ उन्होंने कई एक अपूर्व निजम प्रकलित किये जो अभी तक माने जाते हैं। वहाँ (सिवाय देवमन्दिरों के) कोई अन्य मकान फरार का नहीं बनाया जाता और देखादि वहाँ रहने नहीं पाती।<sup>१</sup>

यह आइरेवी लेज प्यान बैंक के योग्य है। तुलसी ने दन्तकथा राजपुर के ग्राम ही में सुनी होगी और दन्तकथा के अनुसार राजपुर बोस्वामी जी का बसाया हुआ है (जाममूमि नहीं है)। इनका ग्राम बगाना और वहाँ कई एक कठिन निदमों का फरार करना जो आज तक मान जाते हैं कबल साधु हान के अनन्तर बास करने का प्रमाण हो सकते हैं। क्योंकि साधु

१ श्री शशिभद्र मोहनदास ने बग़ला मसिक पत्र ‘प्रवासी भाग ११ अक्टूबर २ में राजपुर विद्या और बान्दा ग्राम लिखा है। अमानकारी के कारण उन्होंने ने पंसी भूक की है।

२ Rajapur town (or Majhgawan)—Town in the main Tahsil of Banda District U P situated on the bank of Jamuna 18 miles North East of Karwi, population (1901) 5 491 Rajapur is the name of the town, and Majhgawan that of the Mouza or village area within which it is situated. According to tradition the town was founded by Tulsidas the celebrated author of the vernacular version of the Ramayan and his residence is still shown. He is said to have established several peculiar restrictions which are scrupulously observed no houses (except shrines) are built of stone and potters, barbers and dancing girls are rigorously excluded. The only public buildings are police station, P office, school and dispensary Rajapur was for a time chief commercial centre of the District. Owing to its position on the Jamuna, but many of the merchants have migrated to Karwi and the place is declining. Besides the export of country produce, there is a small manufacture of shoes and blankets.—Imperial Gazetteer of India Vol XXI

महात्माओं की आज्ञा के अनुसार कार्य करने की शक्ति ही उष्यत हो जाते हैं। कोई बालक या स्त्री स्नेहरत युवक का बचाना ऐसा नियम नहीं पसन्द करता।

हमारे स्वर्गीय युवक मित्र बाबू गोखर्ण सिंह २२वीं अक्टूबर से १० नवम्बर १९११ ई० तक राजपुर में ठहरे थे। उनसे भी ज्ञात हुआ है कि राजपुर में कवि मंगलदीन शर्मा एवम् कई एक बूढ़ा स्थितों आज भी वर्तमान हैं जो राजपुर को गोस्वामी जी का जन्म स्थान होना नहीं बताते। कई महीने हुये कि हम को द्वारा निवासी स्वर्गीय बाबू छीताराम महाशय दफ्तर कलकत्ती के मकान पर राजपुर के ५० रघुनन्दन जी से मेट हुये थी वे भी कहते थे कि राजपुर में गोसाईं जी का जन्म नहीं हुआ था।

इन्हीं सब कारणों से हम राजपुर को गोस्वामी जी का निवास स्थान मानते हैं जन्म स्थान मानने को तैयार नहीं हैं।

हमने सन्देह नहीं कि तारी एक छोटा सा गाँव है और वहाँ गोसाईं जी के स्थान का कोई चिन्ह नहीं है। परन्तु बिन्दु नहीं रहना स्वामाधिक बात है, क्योंकि छद्मस्थावस्था में तो वे पत्नी प्रेम ही में मग्न रहते थे और विरक्त होने के पीछे इनका वहाँ रहना कहा नहीं जाता जो बात भी स्वामाधिक है, तब कोई अवशिष्ट बिन्दु आने तो क्यों से ?

राजपुर में गोस्वामी जी का स्थान पर बन्दे से ४२००) लगा कर श्रीराम जी का एक मन्दिर बना है। उस में गोस्वामी जी की मूर्ति भी स्थापित हुई है और विधिपूर्वक पूजा हुमा करती है। ७२०) प्रान्तिक सरकार से भी मिला है और सरकार की ओर से उन की वास्तुगत में एक संगमरमर की तखती लगाई गई है और बन्दा वेनेबासो का नाम दूसरे पर्यार पर लुदा है।

राजपुर में गोसाईं जी के स्मारक बिन्दु संस्थापित होने एवं उचक सम्मानित किये जाने में कोई आपत्ति नहीं क्योंकि गोस्वामी जी का वहाँ प्रथम काल निवास करने से उचको भी इन से निरवय सम्बन्ध है। हम तो यही कहेंगे कि त्रिन २ स्थानों को गोस्वामी जी से किसी प्रकार का सम्बन्ध था उन सब स्थानों में इन का स्मारक बिन्दु स्थापित होना चाहिए।

पवित्र महादेव प्रसाद जी ने 'मक्ति विज्ञान' में राजपुर में गोस्वामी जी का मानिहाल और जन्म माना है और लिखा है कि 'गोस्वामी' जी के पिता माता का स्थान परबीजा था,

१ अथ सप्तमक से प्रकाशित 'माधुरी', अथ ७ अथ २ पृष्ठ ७६१ में एक महाशय गौरीशंकर शिवेदी ने सोरो निवासी पंडित गोविन्द बरसम जी शास्त्री के किसी सेल के आधार पर लिखा है कि गोसाईं जी का जन्म सोरो (शुकर पत्र) मुद्रकता योगमार्ग में हुआ था।

सोरो बासगाँव के पास ईटा जिला में है। शास्त्री जी वहाँ के रहने वाले हैं। रामचरित मानस के रचयिता अनुमानक प्रथम माहव ने पदस पदस सोरो को शुकर क्षेत्र हाता लिगा और तब से देशीय विदेशीय सब धर्मक उमका अनुकरण करते हैं।

सोरो के बचन में ईटा के चिह्नक शब्दपर में लिग्य मारा है कि बाराद रप घारी भगवान ने यहाँ दिग्दर्शक का रूप किया। पाह वैसा अनुसन्धान और जानकारी है।

वर्मस्विति अन्तरवैद्य तारी में हुई और वहीं से सनसोगों के आने पर राजापुर में गोसाईं जी का जन्म हुआ ।' इसमें घोसाईं जी का तारी और राजापुर से सम्बन्ध तो अच्छे ढंग से जोड़ा गया परन्तु देवा सिखने का परिचित जी ने क्या प्रमाण पाया यह बात हाठ नहीं होती । अतएव इस की समाप्तोचना की आवश्यकता नहीं ।

## द्वितीय परिच्छेद

### जाति और जनक जननी

गोस्वामी जी न जन्म ग्रहण कर किसी ब्राह्मण ही कुल को पवित्र किया या इसमें तो सन्देह नहीं क्योंकि यह बात इन के लेखों ही से प्रकट है। परन्तु आप कौन ब्राह्मण थे इस में मतभेद है। मिरजापुरनिवासी तुलसीराम अमबाल कृत उद्भवमाल तथा राजा प्रताप सिंह कृत 'महकल्पद्रुप' में आप को अन्वयुक्त्र ब्राह्मण लिखा है। किन्तु ठाकुर शिवसिंह पंडित राम गुलाम त्रिबेदी, डाक्टर विमलन एम् बहुत से अन्य महाशय आप को सरयूपारी ब्राह्मण बताते हैं और उस में कोई शुक्ल गर्गमोत्री और कोई पराशरमोत्री त्रिबेदी पर्यीजा के मानते हैं। पर्यीजा के दूजे से यह सम्भव होगा कि य उस दूजे भेष्टी में थे जिन के पूर्वपुरुषगण पर्यीजा स्वाम में रहते थे और वहाँ से इधर उधर पैग एम् मित्र २ स्वामी में जा बसे। 'तुलसी पराशर गोत्र दूजे पर्यीजा का' एसा भी काष्ठ बिह्ला स्वामी<sup>२</sup> में भी लिखा है।

द्वि. अर्धे २ राजापुर प्रान्त में अन्वयुक्त्र ब्राह्मणों का अभाव बता कर मोसाइ जी को सरयूपारी ब्राह्मण होना और कोई बांदा जिला भर में अन्वयुक्त्रों ही की अभिपत्ता दिखा कर इन्हें अन्वयुक्त्र होना बताते हैं। परन्तु जिस नगर में पहले एक बंगदेशीय बापु का दरान भी दुर्लभ या वहाँ आज बड़ा २ बंगाली टोला देखा जाता है एम् वहाँ एक दिन सुसलमान भाइयों का घना आवास था आज वहाँ उन की स्मृति भी नष्ट नहीं जाती। तब किसी विरोध स्थान में किसी विरोध जाति के आधुनिक अभाव या आधिक्य से वहाँ की प्राचीन (२०० वर्ष पूर्व की)

- १ "पदरीवा मृप प्रतार हरि मन्माल वासिक मनित ।  
राम धाम बनबाय अपप को अनुमय हीनो ॥  
स्वाम धाम धर्ममूमि रमिक्रम को मुर दीनो ॥  
रमिक उरासक धनुज प्रम पञ्चि पदवाने ।  
जगकराज सम मनत भक्ति मागीत बगाने ॥  
मन्मन्मन्मन्म नामपरि विहा प्रम सबमगनित ।  
पदरीवा मृप "

(भी बुदावत निपानी भीरापावरण गोस्वामी कृत नव मन्माल रमिसे ।)

२ जय बागीवामी रूप पद काश्चिना स्वामीटवामि । घालपम स्वाभरग स्वाय वेदान्त पशा पदु । करत बाद अनुवाद पंथिन संग मदा रदु । शुक्ल कही अमदाय पूया कथों बाल वितावन । जीम काठ की बालि नहीं कथों हरि गुन गावन । तप जीम का म्पो मरु मई राम नाम बिलु मय जंजास ।

(भी रावावरण गोस्वामी कृत 'नयमन्माल ५० १६)

गोस्वामी तुच्छीदास

भारतवा विषय नहीं की जा सकती जब तक हम कार्य के साधन के लिये अन्य सामग्री नहीं हो  
एवम् उम समय की कुछ आर बाते न्यूनाधिक ज्ञात न हों।

हमार एक सुविष्ट विहित मित्र मे हम से कहा है (और स्मरण आता है कि हम मे किसी  
उत्सुक मे भी पढ़ा है) कि सरयूपारीय ब्राह्मण मे कान्भद्रुज ही है, क्योंकि जो कनौजिया ब्राह्मण  
भी रामचन्द्र जी के यहाँ यह मे दान प्रदण कर सरयूपार ही में बस गये थे ही लोग सरयू  
जाने का हाल स्पष्ट नहीं लिखा हुआ है किन्तु उस मे भरबभेय बस के समन जब कि  
रामचन्द्र को मर और पुत्र से मिलान हुआ है और वेदान्तियों से ब्राह्मणों के बुलाये जाने की बात  
देखी जाती है।<sup>1</sup> इस से कनौज के ब्राह्मणों का भी यहाँ जाना निरवय है। यद्यपि उस मे  
बातगदि बन का विशेष बलान नहीं है कि किस को बना दिया गया परन्तु इतना अवश्य लिखा है  
कि लोगों को प्रभु दान दिया गया। जिस मे जो मांगा उसे नहीं मिला; मांगते बेर हुई देते  
बिन्दव नहीं हुआ।<sup>2</sup> यदि उस समय न मिला हो तो उन्हें कायीर आदि किसी अन्य स्थल  
पर मिली होगी क्योंकि वासीक जी ने लिखा है कि रामचन्द्र ने अनेक बार भरबभेयादि यज्ञ<sup>3</sup>  
उपन्यस किये थे वरतपि उन्होंने मे सबों का सखिलर विषय (निबरण) नहीं दिया है।

कनौज के ब्राह्मणों का अन्य प्रदेशों में बुलाये जाने का प्रमाण बंगाल के इतिहास में भी  
बताया है। बंगदशाधिपति आसिस्वर न भी बंगदशापर के निमित्त ३ ब्राह्मणों को कनौज ही से  
बुलाया था और पहले पर हमारे कोई एक ब्राह्मण बंगाली मित्रों ने कहा है कि वे लोग अपन  
को कान्भद्रुज भी कहते हैं। बिहार के प्रायः सभी जनपदों तथा पड़े लिखे सरयूपारीय ब्राह्मण भी  
अपने को कान्भद्रुज कहते हैं और कोई २ सरयूपारी कनौजिया कहते हैं। हम न ऐसे कई लोगों  
से पूछ कर इस बात का निरवय किया है और कदाचित् इसी कारण से किसी लेखक ने  
गोस्वामीजी का कान्भद्रुज और किसी न सरयूपारीय लिखा है। हमारी समझ में यह बात  
उत्तम होती कि हमारा इनमें सरयूपारी कान्भद्रुज करें।

कोई २ कहते हैं कि पहले अर्थात् रामचन्द्र के समय कनौज का नाम महोदय था और  
वहाँ के लोग उम समय कान्भद्रुज (कनौजिया) नहीं कहलाते होते। रामचन्द्र के समय यह  
रामचन्द्र नाम से प्रयात था यह बात तो रामायण से विहित नहीं होती। परन्तु एकदा  
कोई अन्य नाम होने से भी वहाँ के ब्राह्मणों को यज्ञ के अवसर में जान और दान पाने में कोई  
आगत नहीं हुई होगी। फिर उम समय वहाँ के ब्राह्मण जिस नाम से प्रसिद्ध हों किन्तु गोस्वामी  
जी के जन्म के से बहुत दिन सरयूपारी कनौजिया आदि पर्वतियां सुप्रयात हो रही थी और  
यज्ञ उपन्यसि पूर्वाक पचना से भी लोग परिचित थे।

मंकि गिनु तथा 'बुद्ध रामायण मादाय्य के अनुगार इन के किता का नाम  
प्रोत्सागम आता का नाम तुलसी एवम् इन का बालदान का नाम रामबोता था। इनके लेखों में  
१ 'देवागलगतता प ५ शिवा घम्ममसहितता। चार्मत्रपण्य ताम्भर्वांतरबभेयाव  
नरमण ॥ उत्तर कावच सर्ग ६१ श्लोक १३।  
२ उत्तर कावच सर्ग ६२।  
३ उत्तर कावच सर्ग ६३ श्लोक ८६।

इनके पिता के नाम का तो कहीं प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु इनकी माता के नाम का प्रमाण लोग इस बीपार्ई में 'सम्पु प्रसाद मुमति द्विय हुलसी' और रहीम खान पाना' के 'इस अर्दा रा बोहे में "गर्म लिये हुलसी फिर हुलसी से सुत होय" बताते हैं एवम् इनका पहला 'रामबोला' नाम होने का प्रमाण 'कवित रामानन्द तथा विनय पत्रिका' का इन पदों में पाते हैं "साहब मुजान जिन खान हु की पस कियो 'रामबोला'। नाम हीं गुलाम राम साही बो" (क रा० उ० अष्ट कवित नम्बर ६४), और "राम की गुलाम नाम रामबोला राम राक्यो काम इहै नाम द्वै हो कब हू कहत हीं" (विन० पद ७२)।

ये पद केवल यही बात प्रकटित नहीं करते कि इनका आवि में रामबोला नाम था बल्कि इनसे यह भी सिद्ध होता है कि शिरक होने और हुलसीवास नाम पान का पूर्व भी ये कविता किया करते थे एवम् बालकाल ही से इनकी इस और प्रकृति की तथा स्त्री के उपदेश के पूर्व भी इनका भी राम में अवरय स्नेह था। स्त्री का वाक्य अग्निहोत्र में आहुति के समान होकर उस स्नेह को पूर्णरूप से प्रकटित और प्रकटित कर दिया। कवितावली तथा विनय पत्रिका में इन का मिला २ समय के बनाये कवित तथा पद समावेशित हैं।

मियर्सन साहब ने १८६३ के 'इन्डियन एन्टिक्वेरी (Indian Antiquary) पत्र का पृ ३३ टिप्पणी में तीन दोहे दिये हैं। उनमें इनकी माता पिता, गुलाम पत्नी रबशुर खान के नाम बखित हुये हैं। परन्तु वे किस प्रय का या किस के रचे दोहे हैं यह बात आपने नहीं लिखी है। कवि इत प्रबंधों में तो वे दोहे अवरय नहीं केये जाते। हम उन दोहों को नीचे उद्धृत कर देते हैं—

“दूब आत्मा राम है, पिता नाम अग जान।  
माता हुलसी कहत सघ तुलसी के मुन कान ॥  
प्रह्लाद ठभारन नाम है गुरका मुनिये साथ।  
प्रगट नाम नहीं कहत जो, कहत होय अपराध ॥  
दीन यन्तु पाठक कहत समुर नाम सय कोइ।  
रत्नायस्ति तिय नाम है सुत वारक गत होइ ॥”

इन सब नामों की सत्यता में हम बाह कोइ अन्य स्पष्टि संका करें, किन्तु इस बात में सभी सहमत होंगे कि आपकी माता मिस्किनबह परम धन्य और पुण्यवति (सी) थीं जिनके उदर से ऐसे महान महामा का जन्म हुआ कि जिसकी रचनायें इस अधर्मशासक (परायण) समय में भी लाखों मनुष्यों को सदाकारी अपहितकारी महिजनभारी बना रही हैं। और ईश्वर प्रेमियों को तो वे सदा हितकारिणी हुई हैं आपने रामानन्द में स्वयम् भी लिखा है और बहुत ठीक लिखा है "पुत्रवती मुखी अग सोइ। रघुवति भक्त आयु मुन होई। आपन इन्हीं बीपार्ई में अपनी पूजनीय माता की गुणरूप से स्तुति भी की है कि 'तू धन्य है जिसकी पवित्र कोख से जन्म ग्रहण करने से मेरा मन ईश्वरपादपद का अनुयायी हुआ है।"

## द्वितीय परिच्छेद

### वल्ग्यावस्था

प्रवाद है कि पोसाई जी का जन्म अमुकमूल में हुआ था और गृहस्थ (सुहृत्) विष्णुमणि<sup>१</sup> में लिखा है कि "मूल क थापि श्री = श्री और ज्येष्ठा के अन्त की वेरह परी 'अमुकमूल' है। इस में जो वास्तव उत्पन्न हो उसे त्याग दे अथवा आठ वर्ष तक उमरा मु ह न द्ये क्योंकि ऐसा वाक्य विवृहता होता है।"<sup>२</sup>

आज कल तो कोई ऐसे वाक्य को त्याग नहीं सज्जा क्योंकि ऐसा करने वाले को ताकिरातहिन्द I. P. C. की ३१० धारा (बच्चा) के अनुसार कारावार की विपत्ति अथवा मेदनी पड़ेगी। कदाचित् सुसलमायी शासनकाल में ऐसा किया जाता हो। पर उस समय भी क्या सब माता पिता को ऐसा बन्धु हृदय होता था कि ऐसे पुत्र को जन्म स्रष्ट ही क परित्याग कर देते थे। यह बात माता पिता के स्वाभाविक अनिर्बन्धीय पवित्र स्नेह के विरुद्ध प्रतीत होती है। प्रतिदिन देखा जाता है कि सम्मान के मुख के लिये माता पिता कैसा २ जन्म उठाने को सदा तत्पर रहते हैं। यही २ तो ऐसी फल देवने मुलने में आती है कि वे मन मुग्ध हो जाता है और बुद्धि बधिन हो जाती है।

हमारे बहुत से पाठक यह बात जानते होंगे कि हुमायू के रोगग्रस्त होने पर उन के पिता बाबर ने रोमी की कारपाई के बुद्धिक परिक्रमा करके ईस्वर से यह प्रार्थना की थी कि "हे प्रभो इस क बदले मेरा प्राणान्त हो पर यह निरोप हो जाय" परम करणामय ईस्वर ने उनकी निष्कण्ट प्रार्थना सुन भी ली। हुमायू निरोग हो गये और बाबर को स्वर्ग इष्ट संसार से क्या करना पड़ा।

मिनाहात्र उर्दू जोखने 'तकक़ातनासरी' में लिखा है कि जब बंगाल प्रकट क अन्तिम हिन्दू राजा लक्ष्मणिया (या गुमेन वा अष्टाक्षमन) की माता को प्रगल्बीडा होने लगी तो ज्योतिषियों ने कहा कि यदि शान्त लक्षण ही जन्मा तो वह शीघ्र ही मर जायगा। किन्तु यदि अमुक समय जन्म तो १ वर्ष पयन्त राज्यसुख भोग्या। यह सुनकर उनकी माता ने अपने को उलटा ईगा दिया और शुभ श्री उपरिषठ होने पर वे उठारी यः। पुत्र का जन्म तो शुभमूर्त में हुआ परन्तु पुत्र के जन्माणार्थ उर्दे अथवा प्राण न्योहावर करना पड़ा।

१ इस संघ की रचना गोमा जी की के समय में हुई थी।

२ अयोध्याय प्रमाण्ड प्वा मूयन्त वाग्विनिता वल्गनायः।

जाने गिद्य लव परिब्रह्म मुने वितास्वाधममाकरयन्त ॥"

सब माता पिता बन्ध हृदय होते हों वा नहीं परन्तु अमुकमूल में जन्मे हुए बालकों की मृतशान्ति और गोमुख प्रसन्नान्ति विधि भी शास्त्रानुसार की जाती है। और जब गोस्वामी की के जन्म संम(ब)र् ही में विवाद है और कोई उसे १२२४, कोई १२२२, कोई १२२६ और कोई १९००—१९१० बतलाते हैं और मास दिवस का कुछ पता ही नहीं तो अमुकमूल की बात उठानी ही अनुचित है। क्या किसी वर्ष, किसी मास किसी दिवस में इन का जन्म क्यों न हुआ हो 'अमुकमूल' इन क पीछे लगा ही हुआ था ? यह तो बड़ा आश्चर्य जनक कौतुक है। जो लोग 'अमुकमूल' की कथा कहते हैं उन्हें प्रथम स्वामी जी की जन्म कुँ(कुँ)इली इस्तगत कर के उसे सबसाधारण को दृष्टिगोचर कराना चाहिए। हमारी समझ में सबसे सोमों का प्तान गोस्वामी जी कृत नीचे लिखी हुई कविताओं पर गया है 'अमुकमूल' की बात उठई गई है।

“मातु पिता जग जाय तज्यो विधिहुँ (हुँ) न स्तिथी कहु मात भ्रष्टाई।  
नीध निरादर माजन कादर कहुन दूकन लागि ब्रह्माई ॥ राम सुभाय सुन्यो तुलसी  
प्रमुसों कहुो धारक पेट ब्रह्माई। स्वारय को परमारय को रघुनाय सु साहय पोर  
न लाई ॥”

(क० रा० ४० का० ५७)

“जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि यस पाए दूक सब के विदित बात  
बुनि सो। मानस बचन काय किये पाप सत भाय राम को कहुाय दास दगायाज  
पुनि सो। राम नाम को प्रमाठ पाठ महिमा प्रताप तुलसी सो अग मानियत महा  
मुनि सो। अतिहि अभागे अनुरागत न राम पद मूढ़ ऐसो बड़ी आचरज दलि मुनि  
सो।”

(क० ४० का० ७२६)

“जननि जनक तज्यो, जनम करम यिनु विधि सिरज्यो अयहरे। मोहि  
सो कोउ = कहत राम को सो प्रसंग केहि करे ॥ फिरयो क्षलात त्रिनु नाम उदर  
लागि दृपदु दुपित मोहि हरे। नाम प्रसाद क्षात रसाल फल अय हौं बधुर वदरे

(यिनप० प० २२७ पद)

“आयो कुल मंगल यथासो न यजायो मुनि मयो परिताप पाप अननी  
जनक को। धारे त क्षलात यिक्षलात द्वार = रीन मानत हौं धारि फल आरहि धनक  
को ॥ तुलसी सो साहिय समर्थ को सुसेबकहि मुनत मिहात सोब विधिहुँ गनक को।  
नाम राम रायरे सयानो कैषों धायरो जो फरत गिरी त गहु तिन त जनक को।”

(क० रामायण ३० का० ७३ कविच)

दियसंग छाह लिलते हैं कि “आप क मा बाप क त्याग देने पर एतदा साधु ने आप  
को धरम उठा लिया होना क्योंकि कोई भ्रष्ट गुरु तो ऐसे बातक से कोई सम्बन्ध ही नहीं  
रज सद्गता वा और बचन में यह अचरय उठी साधु के साथ रहते आर भारतवर्ष में प्रमथ



करते होंगे और उसी क्षण से या उसकी संकली के किसी अन्य क्षण से रामचरित मुने होंगे  
 ऐसा कि उन्हें नै स्वयं क्या है।<sup>१</sup>

‘मैं पुनि निज गुरु सन मुनी, कथा सो सूकरसेव ।

समुझी नहीं तस याज्ञपन, तब अति रहेंक अचेत ॥

पादही पृथ्वि प्रीति छाह्य क यह कथन कि ‘एक दो पदों के आधार पर इतनी  
 उन्मी बीवी ब्याख्या उठानी उचित नहीं’<sup>२</sup> बहुत ठीक है। और सोचकर देखने से स्पष्ट है पदों  
 से यह सिद्ध भी नहीं होता कि इनके पिता माता ने जन्म ग्रहण करते ही उन्हें कहीं चेंक दिना  
 और कोई क्षण या पुरुष ने उन्हें टठाकर अपने पास रखा। इन पदों से तो इतना ही विदित  
 होता है कि—

(१) मिथुन (शाश्वत कुल) में इनका जन्म हुआ।

(२) इन के जन्म के समय आनन्दोत्सव नहीं हुआ, बाहे माता पिता की दरिद्रता  
 के कारण हो बाहे पापग्रह के परिहास के शोक ही के कारण हो।

(३) अज्ञातत्वा ही से पेट के कारण उन्हें सब प्रकार के लोगों का द्वार खंक्रना  
 पड़ा।

(४) माता पिता ने उन्हें जन्मा कर तब दिना और ज्ञान ने उन्हें भागहीन बनाया।

यदि सबकुछ इनकी (के) माता पिता उन्हें चेंक देते या त्याग देते तो उन्हें अपनी आदि  
 शक्ति का ज्ञान और अनुभव बपाया नहीं करने का ज्ञान कबे ज्ञात होता। ये बातें न उन्हें  
 स्वयम् ही ज्ञात होतीं और न उन्हें कोई बड़ा ही छुड़ा। क्योंकि उन लोगों ने यदि उन्हें चेंक  
 या त्यागा होगा तो जन्म खेंते ही। कुछ कास पोषण प्राप्त करने पर एवम् उन्हें बदन होने  
 पर त्यागना संभव नहीं थीसता। और अब लोग कहिये उन्हें घर ही में रखते तब फिर कुछ  
 दिनों के बाद त्याग ही क्यों देते। यह बात सुनो है कि भी हनुमान जी का भी रामचन्द्र जी  
 की हता से उन्हें सब बातें ज्ञात हो गईं। अथवा महान् महातमा ईश्वर के लक्ष्य प्रेमी और  
 अपने भक्त विहाय होते हैं अतएव मृत भविष्य और वर्तमान सब जानने को ये समर्थ हो गये।  
 यहाँ पर इस विषय की आलोचना सब रस पर नहीं हो रही है।

‘तबने से केवल चेंक देने या त्याग देने ही का शोक नहीं होता। इस से उन लोगों  
 के परलोक गमन का भी आशय निकल सकता है। इस से निश्चय होता है कि इन के पिता  
 माता ने उन्हें चेंक नहीं दिया या और वे लोग इन के जन्म के परवाह कुछ दिन जीवित भी  
 रहे’ तब से इन को चरना ज्ञान ज्ञानने का अवसर मिला।

१ तुलसीदास के विषय में डा. इविचपन एण्डियरजी सन् १८९१ ई० के  
 पृ० २३ में लिखते हैं।

२ अर्थात् मागी प्रचारिणी-त्रिका भाग ३ सन् १८९९ ई० पृ० २७ लिखते हैं।

३ उक्त गोविंदर जी लख सिंगले हैं कि माता पिता तुलसीदास को जन्म  
 देकर तब समय में ही गर्भावस्था ही गये थे।

हों ! यह हो सकता है कि अत्यावस्था में मातृ-पितृ-विहीन होने के कारण उर्वरपोषण के लिए इन्हें इधर उधर भटकना पड़ा हो। एवम् वही अवस्था में ये सोरों (शुकरखेत वा बाराहखेत) जा पहुँचे हों और वहाँ पर रामचरित्र ध्वंस का आनन्द उठाये हों।

अथवा वं० महादेवप्रसाद के खेबाजुसार अब इन के पिता माता इन को साथ लेते भासना जाते समय सोरों गये थे वही अवसर में वही उन लोगों का सम्मुख स्वर्गवास हो गया हो और जैसा कि वंशित भी ने लिखा है इन्हें निस्तहाय देख कर साधुओं ने इन पर दया की हो। अदायित इसी से इन्होंने कहा भी है कि—

“द्वार २ दीनता कही फाड़ि रद परि पाहूँ।

हैं दयाक्ष दुनी दसों दिसा दुख दोष दखन छामि कियो न समापन फाहूँ ॥

तनु तजे कुटिल कीट ज्यों, तज्यों मातु पिता हूँ।

काहे को रोस दोस काहि बौं मेरे ही अभाग मोसों सकुषत सय छुई छाहूँ ॥

दुखित दखि संतन कहेव सोचे अनि मन माहूँ।

तोसे पसु पांवर पातकि परिहरे न सरन गये रघुवर मोर नियाहूँ ॥”

अर्थात् अब इनके पिता माता ने उन त्याग किया उसे एक इच्छित [छु (छु) ह] कीट (अनायास) उन त्याग देता है तब इन्हें इच्छिता के कारण शीनतापूर्वक शीत निकाले द्वारद्वार भटकना पड़ा और ऐसी अवस्था में इन्हें पृथक् ही शीन ! क्योंकि —

“किस्ती का कप कोईं रोजे सियह में माय देता है।

कि तारीकी मं साया मी जुदा हर शय से रहता है ॥”

हों ! सन्तों की बात न्यायी है। वे भला क्यों न दया दिखायें ! वे तो परोपकार के निमित्त शरीर ही धारण करते हैं। इसी से सन्तों ने इन पर दयावधि की।

और यह पद —

“पूह्यो ज्योंहि कछो मं हूँ चेतो हँहों राघरेजू

मेरे कोठ कहुँ नाहिं धरन गहत हों।

मीज्यों गुद पीठ अपनाई गहि बाह घोलि

सेवक सुखद सदा विरद पहत हों ॥

जोग कहे पोच सो न सोच न संकोच

मेरे ध्याह न धरेली भाति पाति ना भहत हों।

दुलसी अकाम काम रामहि के रीम लीम

प्रीति की प्रवीति मन मुदित रहत हों ॥” —

यदि इन के सन्तों से प्रथम भेंट स सम्भव रहता है और उनी भटना का इन्होंने ने सद् में उल्लेख किया है तो इस से इन के होश सम्हालने ही पर इन का अपन पिता माता से विभोग

होना इतना प्रभावित होता है और उन लोगों का इन्हें स्वागता नहीं करत अपना ही तम स्वागता प्रतिपादित होता है। क्योंकि यदि वे शय्याशय्या में परिवर्तित होते तो इन्हें सन्तो से बात भीत करने की कहाँ से सामर्थ्य (धर्म) होती।

और इस पद में 'प्याह न बरेखी' से लोगों का यह अनुमान करना कि इन का विवाह नहीं हुआ या अन्वय मूल है। इस का कटाक्ष उन लोगों पर है जो इनके काशीवास के समय इनसे प्रेम भाव रखते थे। उन्हीं के सम्बन्ध में ये कहते हैं कि 'सोग हम को पोब कहते हैं तो उस का हमें सोन और संश्लेष नहीं क्योंकि हम को किसी के यहाँ प्याह बरेखी नहीं करनी है" (1) इसी आशय को इन्होंने इस कविता में और भी स्पष्ट रूप से बर्णन किया है —

“धूत कहो अथधूत कहो रजपूत कहो जो क्षत्रा कहो कोऊ।

काहु की धनी सों धैरा न ब्याहव काहु की आति विगार न सोऊ ॥”

(क० रा० उत्तर कांड क० न० २४८)

और बाल्यन में राम के सम्मुख होना और फिर संसार में पहुँचना यह बात भी इन्हीं की कविता से ज्ञात होती है।

“यासपने सूख मन राम सनमुख भयों राम नाम जेत

मांगि खात दूफ टाक हों।

पर्यां लोकरीति मं पुनीत प्रीति राम राय मोह बस

बैठ्यों तोरि सरकि वराक हों ॥

पोटे ० आपरन आपरत अपनायो अजनीकुमार

सोप्यो राम पानिपाक हों।

तुलसी गोमाई भयों मोह दिन भूक्ति गर्यो ताको

फल पावत निदान परिपाक हों ॥”

(बाहुक क० म० ४०)

राम राय की पुनीत प्रीति मोहबत कर तोड़ कर छोड़ रीति में पुँने का वरद विषय विवाह के और किसी बात की ओर नहीं हो सकता क्योंकि मानु-पितृ-हीन होने पर तो बाल्यन में वे राम के सम्मुख हुए थे जैसा कि इन की स्वरचित कविता से प्रसङ्गित होता है, वह रही सो को का लागे सम्मर पा। विवाह द्वारा जो प्रदत्त कर उस के संम लोकरीति में रहे। और वं महादशमगाह श्री ने भक्ति विज्ञाप संप में लिखा है कि —

“इहि विधि कहुक फाल मुम्ब पाये।

मातु पिता परशोक सिपाय ॥

तिनक कम कीम्ह यहु मानी।

मन में सोप करत दिन राती ॥

छहँ गुरु कहि पुनि कया पुरानी ।  
 नरहरि दास मनोहर घानी ॥  
 मुन तुलसी भय सोच यहारै ।  
 सय के मातु पिवा रपुराइ ॥  
 सो तुम मानहु विप्र घर, राजापुर को जाहु ।  
 भेतहु मरे यवन भव, करहु आपनो व्या (व्या) हु ॥  
 यह मुन तुरत चले ननियावर ।  
 पहुँच गृही मरे सय पाँवर ॥  
 पुनि सुन्दर कुल दख घरावा ।  
 मातुल ने तिहि ब्याह करावा ॥  
 करहि रमन गुरद्वान सुखाना ।  
 पत्नी सहित परम सुख माना ॥<sup>१</sup>

और भी प्रियादास जी ने भी 'मह मास' की टीका में लिखा है कि —

"तिया साँ सनेह धिनु पूछ पिता गेह गई,  
 भूली मुधि देह मजे वाही ठौर भाये हैं ।  
 वधु भाति छाज मई रिस सौ निकसि गई,  
 प्रीति राम नइ सन हाइ भाम छाये हैं ॥  
 सुनी अप वास मानो ह्वै गयो प्रमान् (व)  
 यह पाछ पछिसात तजि कामीपुरी भाये हैं ।  
 कियो तहाँ वाम प्रसु सेवा लै प्रकास  
 कीन्हों लीन्हा दृढ़ माय नेम रूप के तिसाय हैं ॥"<sup>१</sup>

लोगों का यह कहना कि 'गोसाईं जी के ही रूप पीछे प्रियादास जी ने 'मह मास' की टीका में विवाह भी किया लिखी है और तभी से गोसाईं जी के चरित्र लेखकों ने इस बात की बर्णना की है' हमारी समझ में टीका नहीं। यदि यह कथा उनके पूर्व से प्रचलित नहीं होती तो प्रियादास जी को क्या पड़ा या कि यह एक मनस्फुरित कहानी अपनी पुस्तक में पुना देते। अब तक कोई स्पष्ट भी प्रियादास जी के पूर्ववर्ती किसी लेखक के प्रामाणिक लेख से

१ मातृ-पितृ-विहीन होने पर मामा का इन का विवाह कर देना कोई धार्मिक की बात नहीं है, परन्तु यह सविस्तर वर्णन कदाचित् टीका है सा नहीं कह सकते।

यह न सिद्ध कर दे कि उसके परिसे विवाह की क्या नहीं मानी जाती थी तब तक हम लोगों को भी विवादास की के लेख का प्रमाण ही मानना पड़ेगा चाहे और किसी के लेख को माने या नहीं।

सम्भव है कि बैरीभाबन की हज़ 'गोसाईं चरित' तथा कोई अन्य गोसाईं चरित प्राप्त होने पर इन की जीवन कथा तथा परिचय ही नाम।

काशी नाबरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस में भी विवादास को के लेख पर विवश नही करते हुए भी सम्पादकों ने पाहू टिप्पणी पृ० १४ में लिखा है कि "यदि बानरन से उल्टाचलना का आरम्भ करें तो संभव है कि विवाह इत्यादि हुआ हो। एक शास्त्र को पार कर जब बहुत दूसरे शास्त्र का आरम्भ करता है तब कहता है कि मैं इस शास्त्र में बालक हूँ। संस्कृत के ग्रंथों में प्रायः बहुत स्थानों में ऐसे प्रवाच मिलते हैं। हौं बहुत से कवियों ने अपने को अपेक्ष बाहक लिखा है।

श्री अक्षयविवासी भी सीताराम शरण भयवानप्रसाद की सुप्रसिद्ध विरक्त वैष्णव महात्मा के भी 'भक्त माल' की टीका में लिखा है कि 'आष का ब्राह्मणकुल में संवत् १२८६ में

१ यह तुलक तो अभी तक प्राप्त नहीं हुई। शिबु हसी का सार स्वस्तर और हर्दी की सिली 'मूल गोसाईं चरित' नाम की एक दूसरी तुलक की उपलब्धि हुई है। बाहू स्वाममुन्दर दाम ने 'काशी नाबरी प्रचारिणी पत्रिका' माग ७ अंक ४ में उसे सुनवाया है उसपर एक मोर लिखा है और उसपर काशी की सामगति मंगी है।

उसके प्रामाणिक दाम में बहुतों का सम्यक् है। उस में लिखा है कि "गोसाईं की बर्तानों काण्ड तिनके जन्मे, जन्म लेते ही रामनाम बोल उठे और रोये नहीं। नार काटते समय घाव को शंश-रक्ति सुनने में आह। इन्हें राधम समय इन के पिता तथा अन्य लोगों के मन में महारतिताप हुआ। इन के जन्म के पांचव दिन इन की माता मर गई शिबु उस के कुछ रात हुए उनके जनमप विषय स उनकी दाईं बुनिया सिद्ध को खेकर उनके पामन पोचन के लिये अपने अनुसार चली गयी थी। १२ महीना बाद मार करके म बर दार् मर गई। इन के पिता के पाम सम्बाद् जान से उठती व कहा कि गया बाउक त्रिप का मरे मुझे लोच नहीं। बुक हो बरो तक कादगी का रूप धारण कर शिबु गोसाईं जी को भी सीरी माना गिरता जाया करती थी। पीछे यह बात इन्द्र हा जाने पर भी लिखती व आदंग और उपलैठ से बरहरि दाम ने इन्हें झंडा इनका संरकागादि किया रामचरित मानस कथा सुनाई और इन्हें कासी में दिव्यचरन के निय रगम्बर व स्वचम्ब विरहुर चले गये इत्यादि। इसमें अनुपमूल की बात नहीं है। इसने इनके विषय में 'मनीरामा' बर १ माग २ सं० ३ पृ० २११ में एक लेख किया है। गोसाईं जी के एक दूसरे कैले और मंगी की रघुवरनामकी हज़ 'जुजुमी चरित' एक बहुत संघ भी प्राप्त हुआ है—जिसका कुछ हास हम जीवनी के प्रथम अंक पर लिखते ७ मोर २ में किया गया है। शिबु की बेनीदाम प्रवर्तन 'मूल गोसाईं चरित' और श्री रघुवरनाम विरचित 'जुजुमी चरित' के वर्णनों में बात बात में प्रयेर देना जाना है।

जन्म हुआ महोदय होने पर विद्याध्ययन किया, विवाह गीता भी हुआ और स्त्री का वाक्य सुनकर संसार से विरक्त होने पर (इन्होंने) नरहरिदास से राममंजादि ग्रहण किया और रामचरित सुना ।”

इससे भी बालपन से उपदेशावरण का आरंभ स्पष्ट होता है । निस्तरेह बिना कोई प्रबल प्रमाण के श्री प्रियादास जी के स्पष्ट लेख के खण्डन करने का भी तो किसी को साहस नहीं होता । और ऐसा करमा उचित भी नहीं है ।

इन के विवाह की कथा पर नहीं विरवाच करनेवालों को यह भी विचार करना चाहिए कि इन्होंने अपने ग्रंथों में विवाहादि एवम् धन्यान्व एहस्थाधम श्री बातों का कैसा सथा और सुन्दर बयान किया है । क्या कभी सम्भव है कि जिस म्यक्ति ने एहस्थाधम के सुख दुख का स्वयम् अनुभव न किया हो वह उस का ऐसा सच्चा विद्वान् खीन सके ? क्या वह म्यक्ति को बालपन ही से केवल साधुओं के संग काल व्यतीत करता रहे और उन्हीं श्री मंडली के साथ बेशादम करता हरिमंत्रन में मग्न रहे एहस्थ के घरों की रीति रसम, रहन सहन तथा एहस्थाधम के कार्यों से कभी पूरा परिचित हो सकता है ? पूरा परिचित होना तो दूर रहे उसे उन बातों की साधारण जानकारी होने की भी सम्भावना नहीं । और लोगों से पूछ कर उन विषयों का बयान करनेवाला अपनी रचना ऐसा सुन्दर और मनोहारिणी नहीं बना सकता ।

यहीं पर पाठकों से यह निवेदन कर देना अनुपसुक्त नहीं होगा कि यदि गोस्वामी श्री श्री या किसी अन्य कवि की प्रत्येक कविता का भाव और आशय सन्हीं पर धरा कर उनका इतिहास लिखने का उद्योग किया जाय या उनकी कवितावलि सच घटनाओं का सम्बन्ध उन्हीं के साथ जोड़ने की चेष्टा की जाय तो यह परिश्रम सर्वथा व्यर्थ ही होगा । क्योंकि कवि कभी अपनी कथा दूसरों को लक्ष्य बना कर वर्णन करता है और कभी अपने ही को लक्ष्य बनाकर दूसरों के विरुद्ध श्री बीनी बालें लिख देता है । और यह भी स्मरण रहे कि जैसे एक वो ईंट से कोई गढ़ निर्माण नहीं कर सकता । जैसे ही किसी कवि श्री एक दो कविता के आधार पर उस का जीवन वृत्तान्त नहीं लिखा जा सकता ।

गोसाईं जी के विवाह की कथा श्री मनोहर है, बरन गोसाईं जी की गोसाईं जी बनानेवाली श्री कथा है । अतएव अब हम आगे श्री कथा वर्णन करते हैं ।

## चतुर्थ परिच्छेद

### विवाह

मिथी के विवाह की कथा सुनने में श्रेय पहिले उसके उत्तरार एवम् सुनार भादि का नाम जानने को उत्सुक रहते हैं। परन्तु जिसके जन्म स्थान ही में विवाह है उसके समुत्तरार का नाम क्या पूछना ? क्या वह कभी निर्दिष्ट हो सकता है ? 'रामपुर माहात्म्य' में रामपुर के राज ही इन का समुत्तरार भी बताया गया है "रामपुर बसुना कपार पर अगार खो उत्तर के पार सोई रही समुत्तरार है"। रामपुर के सामने समुत्तरार मानना उन लोगों के सिम्बल ही जयमोयी है जिनलोको ने बसुना' तैराकर अन्वरी रात में गोसाइ जी को समुत्तरार पहुँचाना है (जिस की समालोचना इसी परिच्छेद में अन्वय की पर है)। हम को पूरा स्मरण है कि हमने अपने एक मित्र अमहरा, बिना परमा निवासी बालू कासीकरण सिंह विरचित 'अमहरा' नामक ग्रंथ में देखा है कि रामायण तथा महाभारत की अनेक कथाओं का स्थान 'अमहरा' ही के पास पास बतलाया गया है। जैसे ही 'रामपुर माहात्म्य' के लेखक ने भी कदाचित् पर और समुत्तरार सामने सामने बना विवाह है। रामपुर के निष्कट निवासी होने पर और रामपुर के सामने ही गोसाइजी का समुत्तरार रहना कह कर भी आप ने उस ग्राम का नाम लिखने की कृपा नहीं की है। यद्यपि आप ने एक कविता में रामपुर के मंत्रहास्य एवं गौरी का नाम कह बाजा है। इससे निरन्तर है कि रामपुर के निष्कटवर्ती लोगों को भी इन के समुत्तरार का नाम नहीं ज्ञात है।

मिथी २ का मत है कि 'सारी' और 'सोरो' के बीच में कहीं पर गोसाइजी का समुत्तरार था। परन्तु योंब का नाम ने श्रेय भी नहीं बतलाते।

बाबूक इन्द ! आप लोग समुत्तरार के सम्बन्ध में कहीं ? पकड़ेंगे। गौरी का नाम न सही रहगु का नाम तो लोगों ने हीनबन्तु पाठक' लिख रखा है। काहे वह अशक्यानी हो जाने यथार्थ। यह क्या बोली कृपा है।

१ सारी कमल कु अरि ने इन्हें गंगा पार उतारा है। इस से इन के अनुसार इन का समुत्तरार गङ्गा पार होता है।

२ अब देखते हैं कि उन्क गौरी शंकर जी अपने 'मापुरी' बाड़े क्षेत्र में सोरो के ही एक उपनगर बहरिया नामक ग्राम में गोसाइजी का विवाह होना बताते हैं। यह देखकर हम ने सोरो निवासी मोचिन्तु अन्वय जी से पूछा था कि सोरो तथा बहरिया के बीच कोई नदी प्रवाहित है या नहीं। उन के उत्तर में आपने २१ अक्टूबर १९२६ ई०

कहते हैं कि श्रीमन्नमुरी दीनबाबु श्री सीताराम के परम गुरु थे, सबका पूजा पाठ में लगे रहते थे। इसी से गोस्वामी जी श्री श्री को भी प्रभु के पाठ पाठ में बचपन ही से प्रीति हो गई थी और उन्हें सन्त सेवा में अनुराग जन्मा था। ऐसा क्यों न हो! यह ही प्रत्यक्ष ही देखने में आता है कि जिस घर में जिस बात की विशेष शक्ति रहती है उस घर के छोटे-बालकों और शक्तिधरों को भी उसी का अनुराग उत्पन्न हो जाता है। इसी से यह परमाचर्यक है कि जो लोग अपनी सन्तति को सदावारी और सद्गुण सम्पन्न बनाने की इच्छा रखते हैं वे स्वयम् भी अपना आचरण स्वयं और अनुपणीय रखा करें जिस में उन की सन्तान उन का अनुकरण कर के सुखपूर्वक जीवन यात्रा निर्वाह करने में समर्थ हो सकें।

दीनबाबु अपने ब्राह्मण थे क्या करते थे और उन की क्या अवस्था थी ये बातें भी कहीं किसी ने नहीं लिखी हैं। कबल उन की कन्या रत्नावती से गोसाईं जी का विवाह बताया गया है। गोसाईं जी का अनन्त प्रेम अनन्त ही थी और जानेबाला था किन्तु वह मायामी आरब्ध था। घातक हत्या वह मरणात्मक को भविष्यत् में मारतर्क्य को भक्तिप्रवाह से प्रभावित करने वाला हुआ इन के मुवाकाल में मित्र रूप धारण कर प्रगट हुआ। वह प्रेमलोक स्त्री ही को परिवर्धित कर प्रवाहित होने लगा। अर्थात् विवाह होने पर जब इन की स्त्री इन के घर आई तब य उस के प्रेम में उसे आसक्त हुए कि छण-मात्र भी उस से विसर्ग होना नहीं चाहते थे। अहां अंग वहां उसी का गुण गान और अहां रहे वहां उसी का ध्यान। सब है - 'जिस ने कभी उत्पन्न का मन्त्र पाया है। कुछ म आत्मन में उस भाया है।' इसी से स्त्री की आँसों की छोट होने ही से ये उन्मत्त के समान व्यस हो जाते थे। इस से यह भी निरन्तर होता है कि इन की स्त्री परम सुन्दरी थी और कदाचित् सुन्दरता ही के कारण वे रत्नावती के नाम से भी प्रसिद्ध थी चाहे यह उन का वास्तविक नाम हो या न हा, क्योंकि सुन्दरता से बढ़कर चित्तार्कर्षण की शक्ति धार किसी वस्तु में नहीं देखी जाती यह बात सभी स्वीकार करत हैं। और गोस्वामीजी सौंदर्योपासक थे इस में भी सन्देह नहीं। तभी तो शैलपती श्री कर्णधर्म के समान सहज सौंदर्यमयी प्रकृतिरूपी पुस्तक के पाठ के सहारे वे अपनी रचनाओं को इस भौति मनोहारिणी बनाने को समर्थ हुये। एक

के कार्य में कृपा पूर्वक लिखा है कि "सारे और बदरिया के बीच बूढ़ गंगा (पूर्वी गंगा) का एक सदा प्रवाही नाला है जो कि बदरिया को मोरों में मिल कर एक रूप हुआ है। पहल कभी मार्गरेषी गंगा जी की एक धारा बूढ़ गंगा के माझ में मिल कर सदा प्रवाहित रहती थी। पण्डित मन्त्र कोम पर धारा चली गई। पहले नामान में बदरिया जान में नौका म काम लिपा जाना था परन्तु अब हो पुस बन गये। बदरिया में जिन स्थान पर गोस्वामी जी की सपुरार थी वहाँ पर एक पीपर का बूच अवस्थित है। आत्मानम अब सुमलमानों की आवादी हो गई है।"

जो ही हमने गोसाईं जी के समुरार का एक नाम ता ज्ञान हुआ।

१. श्री माधवदास जी तथा श्युपरदास जी की पुस्तकों में ५ नाम नहीं पाये जाने।



मंत्र से धरती पुस्तक में समावेशित किया है और संत के अमुक २ बिपयों में आप सम्मत् नहीं हैं। इस की सूचना तो आप ने उस में कही नहीं दी है।

श्री रानी कमल कुँवरि ने योसार्ई जी को मुरदे पर बड़ाकर भगा<sup>१</sup> पार बतार कर लटकते हुये सों के सहारे धन पर खे जाकर रानी के निरुद्ध पहुँचाना है। पूर्वीक पंडित जी ही ने रानी साहबा के मंत्र को मी रोगा है। यह बात आप ने स्पष्ट ही हमसोंगों को जमाई है। परन्तु क्या रोगा सो जाना नहीं जाता। योसार्ई जी का गंगा पैरमा वा यमुना पैरमा कौन ठीक है ?

गोस्वामी जी किसी रीति से ससुरार पहुँचे हों किन्तु इनका वहाँ पहुँचाना बेक कर इन की रानी को स्वभाव<sup>२</sup> बरी ही लम्बा हुए। अष्टम अँट होने पर उन्होंने कथापित् इन दोहों को कहा —

“लाज न लागत आप को, दोड़े<sup>३</sup> ध्यायहु साय।  
 थिक ० एसे प्रेम को, कहा कइहैं में नाय ॥  
 अस्थि-बन-मय वह मम, ता में जैसी प्रीति।  
 तेनी जो श्री राम मई<sup>४</sup> होति न तो मवमीति ॥”<sup>३</sup>

बन डची अण सर्पमइकूल बरी पहुँच गयी। आप का पूरा संवित मुसंस्वर फसीमूत हुआ उसी रात को आप के पवित्र जीवन का मानो प्रमात हुआ। उसी क्षण आप का किताकाट में सान मारतक का उदय हुआ और आप का सीमायकमल विरचित हो गया। रानी न बोली, बरत अष्टि आनन्द-दायक मुन्वर प्रातागमनमुचक पकी का कठरव हुआ। रानी बापू ने जगामी<sup>४</sup> का पूरा काम दिया। आप की मोहनिद्रा मइ हो गई। आप उसी शुभमुहुत में बैराम्याय का मुसंगामी पवित्र हान को कटिबद्ध हो गये। विचारा, कि आप इस संसार में मेरा कौन हैं? मन की देखी धरस्या होने ही से बैराम्य उदय हावा दे बराम्य होने ही से

१ न जाने किसी छत्रक न रानी से अँट करने के विषय हुईं नर्यरा और टारटी पार बपों नहीं जगारा ?

२ कदाचिप इमी न श्री पागत्रमाटनवत्त ने लिखा है कि रानी का पित्राक्षय जाना मुनकर य दीक्षा दी हुई रात में सोली के पास पहुँच और दाली का दरवाजा गोल कर कम में रना का हुन कम के बालामार का कमिलापा न दाली के साथ दीकने लग। इस पर अत्रिन और अघिन हान पर भी इन की रानी न सापथी रानी के न्याय इन्हें उपदेश किया। इत्यादि 'प्रगमा भाग १३ गइ २ पृष्ठ १२३।

३ श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद के 'मक मान की टीका में कम न्याय पर एक और दादा लिखा है :—“नाम नाम की प्रीति जग, निर निर हात पुरान। राम प्रीति निर ही नई दिइ बुगन प्रमाक। म म० टीका प्रथम संस्करण पृ० १०६४। यह निरुचय है कि बाप बाल मोहों में नहीं हुई थी। पीछे लागो न उसे दादाबद कर दिया है।

सावररूप की और मन जाता है और तभी मनुष्य सामक होने के योग्य होता है। आनन्दाम्बर्य स्रोत में प्रागाङ्ग प्रेमप्रवाह की गति स्त्री वाक्य द्वारा अकस्मात् अपरोक्षित होने से, प्रेमभारा परकट गई और प्रमु-पद् अनन्त-सागर की ओर सदैव प्रधावित हुई। उपासना नहीं सौन्दर्य ही की रही परन्तु प्रतिमा बदल गई। आपने निज हृदयमन्दिर से इक्षिमयी स्त्रीविग्रह को बहिष्कृत कर उसे विस्तृति तटभाग में मसा दिया और उसके स्थान में रोमानिधान भी मगधान की परम मोहिनी मूर्ति स्थापित की और अब उसी की अक्षय्य आराधना में आप मग्न हुए। धन्य आप की स्त्री ! और धन्य आप ! दोनों ही एक समान प्रशंसनीय और पूजनीय हैं इस में संदेह नहीं।

सारांश यह कि स्त्री वाक्य से आप को उसी क्षण वैराग्य उत्पन्न हो गया। आप उसी क्षण वहीं से उठ खड़े हुए। यह देख स्त्री को बड़ा ही परबाधाप हुआ कि “हा ! हम ने यह क्या किया ! क्यों ऐसी बात करने गई जिस से हमारे प्रेम में विद्वल हमारे परम पूजनीय पतिदेव हमें त्यागने पर उद्यत हो गये !” वे पैरों पर गिर कर बिलगी करने लगीं, अपराध क्षमा करने लगीं; मोक्षानन्तर क्षमा आने की प्रार्थना करने लगीं। पर आप ने एक भी न सुनी। मुझे तो कैसे ! हृदय के अन्तरतम प्रवेश में प्रवेश कर स्त्री वाक्य ने सोते हुए वैराग्य को जगा दिया था, हृदय की ज्ञानतंत्री को हिला दिया था। उस से ‘हरि प्रेम प्रमु प्रेम’ इत्यादि स्वर निकल रहे थे। अब झुड़ी ज्वलि ज्यों ! स्त्री भी अनुनय विनय कर द्वार मान चुप बैठ गई। विरोध आपस करना कदाचित् उन्हें स्पर्श जान पड़ा। उन्होंने कदाचित् सोचा होगा कि आप रुक कर पर चढ़े जायेंगे और यदि इन के सम्मुख विरक्त होने की इच्छा उनपर प्रकट भी हो गई हो, तो उन्होंने अब इस क्षम में बाधा बाधना अनुचित समझ होगा क्योंकि जिस के मुख से सहज ही ऐसे वाक्य स्फुरित हों उस का हृदय भी निश्चय वैराग्यमय होगा, वह हरि प्रेम से कदापि शून्य नहीं होगा और कोई सच्चा हरिप्रेमी किसी हरिमूढ़ के प्रेम भजन में कदापि बाधक भी नहीं हो सक्ता।

अबते हैं कि आप के घर छोड़ने पर आप की स्त्री ने एकबार आप के पास यह दोहा लिख भेजा था —

“कटि की खीनी कनक सी, रहत सखिन सँग सोइ।

मोह फटे की डर नहीं, अन्त कटस जनि होइ ॥”

कदाचित् वह दोहा उन्हें ने उस समय भेजा था जब उन्हें इस बात की निश्चय सबर नहीं थी कि आप पहरयागी होने पर किस रङ्ग में रंगे थे। अतएव स्वामी की ने भी अपनी यथार्थावस्था इस दोहा में उन्हें जना दी :—

“कट एक रघुनाथ सों, वाधि जटा मिर केस।

हम तो पाखा प्रेम रम, पत्नी के उपदम ॥”

यह उतर पाकर ली बड़ी प्रसन्न हुई होगी। ईश्वर से इन के भक्तिपथ में अविचल रहन की प्रार्थना भी की होगी। एवम् यह बात निश्चय जान होने पर कि उन के स्वामी प्रमु प्रेम में

मल हो शुद्ध बिल से हैरबाराबना में रत है ये भी अचिह्नवर बाब से सन्तसेवाप्रप्त बाबसम्बन्ध कर दिन बिताने लगी होंगी ।

कथित है कि एक दिन विजयपुर का राजापुर से सौटत समय ईश्वरप्रदान में निमग्न होसाई भी अनजानते अपने समुरार पहुँच गये थे । उस समय आप भी वृद्धावस्था हो गई थी । आप भी भी भी निरबन्ध बूढ़ी हो गई थी । उन्होंने ने अपने कृतानुसार भीषण बादि का प्रभाव कर दिया । आप पाकधर्म में प्रवृत्त हुये और ये वही बैठकर कुछ बातें करने लगी । दो बार बातों से ही उन्हें ज्ञात हो गया कि ये अचरय उनके परमपूजनीय ईश्वरस्वरूप स्वामी ही थे । कहा उस समय उन को कैसा अनिर्बन्धनीय आनन्द प्राप्त हुआ होगा ! जिस मुष्ट की उन्हें स्वप्न में भी कभी आशा नहीं की थी उन्हे वह मुष्ट आप ही आप अचरमात प्राप्त हुआ । पतिव्रत—इस के समान आर्ष महिलाओं को संसार में क्या कोई अन्ध सुख हो सकता है ! पति आम्बुदाता पति सुपदाता, पति प्राणदाता पति वेवता पति परमेश्वर—महा उसके अर्चनमुक्त भी सीमा नहीं । उस में भी अब वह दर्शन विरिषिदोह के अनन्तर हो आशासीता-बन्धा में हो पति के ईश्वर की अनन्य भक्ति प्राप्त होने पर हो । क्योंकि एक पति सुन्दरे हरिमल्ल सन्त—सोना में मुगम्प । पति को पहचानकर उन के बिल की कधी बसा हुई होगी उन के मन में कैये २ भावों की तरफ उठने लगी होगी यह तो छादय पाठक सहज ही में अनुभव कर सकते हैं । पूर्व घटनाएँ स्मृतिपथ में एक २ करके जाने लगी । वह दिन अब ये उन के मुष्ट से ज्ञानोत्पादक विरागजनक, यद्यपि मर्मवेपक, बाक्य मुलभर निरुक्त लहे हुये थे, उन के अनुभवविनय पर तनिक भी प्यान नहीं दिया था उनकी प्रार्थना कुछ भी काम नहीं की थी, मोक्षन तक भी नहीं ग्रहण किया था । आत्र वह विश उन के नवनों के सामने पडा होकर उन के बिल को व्यपित और सुदि को प्रमित करन गया । अपने ही को पनि विदोह का अरण्य (मान) उन्हेने खाने को आत्र भी किना बिहार दिवा होया । जिस सजीव प्रतिमा की सेवा से उन्हे होनी लोको में स्वर्ग मुक्त प्राप्त होना हा उत को उन्होंने ने और बाक्य कहकर स्वयम् ही विलग कर दिया था । इन सब सोच उन के हृदय में कभी २ उर्रें उठावी होगी । प्रेम ने बाहा कि बट दाह कर प्राणापार के बरको में क्षिप्रकर समाप्रार्थना करें । परन्तु पूर्व अरराय मे गाहन नहीं दिनाया । किन्तु स्वामी के बरको को छोकर बरगोदक पान करने का तो एक बिहार हुआ और उन्हे ने बरण पोना बाहा । दुर्भाग्यवशा स्वामी न उन्हे इस सुख से बयिन रण्य । मन में मजोर गाकर ये बड पड । ये जानती थी कि स्वामी को गताई मिरबाई की बडी रति थी कनएर उन्हे ने पूजा कि मिरबाई चाहिये । मोक्षार्थ भी ने उतर दिया कि 'मरी म्मानी मे है ।' फिर अब गताई एषम् पूजा के निमत कुरादि सान के स्त्रिय उन्हे ने पूजा तत्र गाशामी की न उन वस्तुओं को भी म्मानी (मरिबा) में रहना कहा । निदान गताईकी भीडापुर का ७ भाग लया भाजन के अन्तर निशारेकी भी गाह ये जा रहे । परन्तु इन की रती जाना म'न के गच्छर विद्वान् का विडीना बन प्राणय करनी रही । कभी रण्य जाने की मनगा करती थी कभी सावनी कि स्वामी विरक्त हा निरुद्ध माह ये ईश्वर मन्त्रन में रत हैं अब हम भाग्यवन्त होकर उन के संग रहकर उन्हे क्यों कष्ट दें । फिर बिचार करती कि अब म्मोनी में गताई मिरबाई का'न कोत स्वामी का कष्ट नहीं होना तो हमारे साथ रहने से क्यों

मार होगा ! इसी प्रकार सोचते बिचारते आगा पीछा करते मोर हुआ । प्रातः काल उन्होंने नै गोसाईं जी को कुछ दिन वहीं ठहराने और पूजापाठ करने के लिये विनीत भाव से प्रार्थना की । गोसाईं जी ठहराने पर सम्मत नहीं हुये । तब इन के बरणों में गिरकर अति नम्र भाव से अपना परिचय दे इन की स्त्री ने परम पूजनीय स्वामी की बरख सेवा के लिये एवम् पति के साथ २ श्री रामचन्द्र के भजन करने के लिये साथ चलने की इच्छा प्रकट की और प्रार्थना की । परन्तु स्वामीजी इसपर भी सम्मत न हुए । तब उन्होंने कहा कि

स्त्रिया स्त्री कपूर लो, उचित न पिय तिय त्याग ।

कै स्त्रिया मोहि मलिके, अचल करो अनुराग ॥

अर्थात् जब स्त्री से कपूर तक मोटी में टंगे फिरते हैं तब स्त्री को परित्याग करना उचित नहीं । मातो मुझे भी साथ लीभिये या मोठी को भी परित्याग कीभिये ।

यह सुनते ही स्वामी जी ने सब बस्तुओं के समस्त अपना मञ्जरी नहीं पटक दी । स्त्री का यह दूसरा उपदेश हुआ और आप ने इसे भी मान लिया । यह देख कर स्त्री को अति आनन्द हुआ और निम्न कल्याणार्थ पति से आशीर्वाद की प्रार्थना हुई । स्त्री के सम्बन्ध में ये ही सब कथार्षे प्रकलित हैं । इन की सत्यता का कोई प्रबल प्रमाण नहीं होने पर भी हम इतना अन्वय कहेंगे कि धर्मवती पत्नी होने से पति का बहुत कुछ सुख और उपकार होता है, और हो सकता है, इस में तनिक भी सन्देह नहीं । इस का बहुतेरों को अनुभव होया मद्यपि वे इस बिचार से कि स्त्री से उपदेश पाने तथा उसके उपदेशानुसार काम करने की बात जानने में लज्जातरप होना है इस बात को किसी पर प्रगट नहीं करते हों । परन्तु बहुदेरीय प्रसिद्ध कपम्यास लेखक स्वर्गीय बाबू बकिमचन्द्र अयोपाम्याय ने अपनी स्त्री के विषय में स्पष्ट लिखा है कि ' हमारे जीवन पर सब से अधिक प्रभाव हमारी बरनी का पडा है । हमारी जीवनी सिखने के लिये बच्चे पर उसकी भी जीवनी लिखनी पड़ेगी । यदि हमारी पत्नी नहीं रहती तो आज हम क्या हो जाते घो नहीं कहा जा सकता । नीति-मुक्त, धर्ममुक्त हमारे लिये सब नहीं है ।' उन्ही के लिये क्यों ? कितनों के लिये स्त्री मुक्त होती है चाहे कोई स्वीकार करे या न करे ।

परन्तु यह बात तमी संभव है जब स्त्री धर्म शिष्टा प्राप्त और लिखी पूरी हो । बहनुबायी और बाइक्यायी की उतनी आबरवकता मही । स्वामी जी की स्त्री कपवती, गुणवती, विद्यावती बुद्धिमती धर्मरती सभी थी । इस का प्रमाण क्या पाठकों को ऊपर नहीं मिला है !

## पंचम परिच्छेद

### गुरु

यह बात कही गयी है कि मोस्वामीजी को अपनी प्रेममयी पत्नी का उपदेशमय वाक्य सुनकर वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसी क्षण संसार से मुँह मोड़ कर एकम् ऐसी भिन्न व्यवस्थिणी को, जिस के नियम विच्छेद से इन का कित्त भ्रमिष्ठ होने लगता था परित्याग कर ये शहिम्पामी हो गये ।

किमी २ के सेवानुसार चाप समुरार से लौटकर घर गये और तब काशी आये । हमारी समग्र में यह टीक नहीं जपता । रानी की बोलबी बानी से इन का अर्मस्पर्श विद्व मया था । उद्य समय इन्हें क्या घर घर ही की सुधि रही होगी ! इन का भीजनजन तो केवल रानी की जप कली को त्याग क्ये तब घर में था ही क्या जिसके किये वहाँ जाते ! प्रियादास जी ने भी लिखा है 'सुनी जब बात मानो हूँ' यगो जमात यह पाके पक्षितात तकि काशीपुरी भाये हैं ।

इससे भी समुरार से काशीपुरी जाना सिद्ध होता है । पर जाना और तब वहाँ से काशी जाना यह बात नहीं पाई जाती ।

प्रवाद है कि समुरार से निकल कछने पर राह में एक छिक्ने बंगालक पानकर से सोने हुये से स्वप्न में शिव जी ने इन्हें राम जी के बजाकर (पञ्चर) भग्नराम का उपदेश कर आयेत किवा कि "यही मंत्र तथा भीरामनाम तुम जपा करो, इसी से भीरामचन्द्र दर्शन होंगे ।" चाप नाम उडे एकम् उसी क्षण से भीराम नाम अपने में उत्साहपूर्वक प्रवृत्त हुये । इसी से इन्हों ने भी शिवजी को मुकदेश करके माना है जैसा कि 'इन्द्रमान बाहुक' में देखा जाता है— 'सीतापति साहब सहाय इन्द्रमान निज हित उपदेश को मदेश मानो गुरु हैं ।"

स्वप्न की बात टीक हो या नहीं परन्तु 'दितोपदेश' में से मदेश को गुरु के स्वरय स्वरय जानते थे । गुरु ही क्यों ! इन्हों ने तो ऐसा भी लिखा है 'गुरु पितु मानु मदेश भवामी ।'

किमी ने रानी के उपदेश के अनन्तर शूकर क्षेत्र' में गुरु का रामायण का उपदेश देना लिखा है और किमी ने काशी में जाना और फिर शूकर क्षेत्र में जाकर गुरु से रामायण

१ मूक क्षेत्र कई हैं । एक तो जिला इरा काका सारों जिसके विषय में ३१ अगस्त १८१७ के लीडर में एक मद्रासक ने लिखा था कि गोमार्ह जी के वहाँ आवासित होने का कई विन्दु का निरास नहीं पता है और न उमक बारे में यही कोई वलक्या ही प्रचलित है ।

विष्णु घब देगत है कि यही सारों (मूक क्षेत्र) गोमार्ह जी का सर्वथा अपनाने के बान का विचार कर रहा है ।

सुनेनां सिद्धा है। महात्मा श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद जी मे मऊ माल की टीका में लिखा है "कि तप(न)न्तर (स्त्री के उपदेश के पीछे) बाराह क्षेत्र में आकर श्री रामानन्दीय महात्मा नरहरिदास जी से श्रीराममंत्रादिक पंच संस्कार ग्रहण कर श्रीरामायण श्री सुगा, फिर आहा लेकर वहाँ से श्री काशी आये।"<sup>१</sup>

उन के लेख से प्रतीत होता है कि समुदर से आते समय इन की राह ही में बाराह क्षेत्र पडा था। परन्तु वह राह ही में मिला हो या वे काशी आकर वहाँ गये हों यह बात इतनी विवेचनीय नहीं है। बात विचारने की यह है कि मोसार्ह जी मे क्या है "मै पुनि निव गुण सन सुनी, क्या सो सुकर जेत। समुम्मी नहि तस बासपन, तब अति रहेत अचेत।"<sup>२</sup>

इस से इन का शूकर क्षेत्र में जाना तथा वहाँ रामायण ध्वज करना सिद्ध होता है। यह तो निर्विवाद है चाहे वे कमी और कहीं से गये हों। परन्तु साथ ही साथ इन की अति अचेतव्यता में रामायण ध्वज करना पावा जाता है। छोट कइते हैं और यह हो भी सकता है कि उस विपन में उस समय अज्ञोपावस्था के कारण इन्होंने ऐसा सिद्धा है। किन्तु आप की अन्य कविताओं से भी जो अन्यत्र उद्धृत हुई हैं आप का वास्तविकता में सन्तों का साथ होना प्रकटित होता है। सब ठौर वही अज्ञोपावस्था कह कर हमारी जान का छुटकारा नहीं होगा।

श्री भगवान प्रसाद जी ने यह भी लिखा है कि 'यज्ञोपवीत होने पर विद्याभ्ययन किया विवाह गौमा भी हुआ।'<sup>३</sup> इस से स्पष्ट निहित होता है कि विवाह गौमा के पूर्व ही सिद्धा हुई थीर विवाह गौमा या श्री में देखी आसक्ति एकम् विरक्त होना कब सम्भव है। 'आचार्यत' कम से कम २ वर्ष की अवस्था के ऊपर होने पर। तब तपकपन में ही विद्याभ्ययन आरम्भ करने पर उस अवस्था में तो कमी से ऐसे निर्भीक नहीं हो सकते वे कि रामचरित सम्बन्धी बातें समझने में 'अतिअचेत' हों तथा गुरु के बार्बरार करने पर भी कुछ नहीं समझे हों।

हमारी समझ में यह बात आती है कि बासपन ही में सन्तों के संग रह कर इन्होंने शूकर क्षेत्र में अपने गुरु—विद्या गुरु—से रामायण भी सुनी हो, फिर गृहस्थापी होने के अ(न)न्तर वहाँ पुन जा कर उन्हीं महात्मा से इन्होंने राममंत्रादिक संस्कार ग्रहण किया हो एकम् उस छव बातों की सिद्धा पाई हो जो गृहस्थापी होने पर विरक्त साधुओं को करना आवश्यक है। क्योंकि भारतवर्ष में शिष्य तो सभी होठ हैं, परन्तु गृहस्थ जेला तथा विरक्त जेला में बहुत अन्तर होता है। गृहस्थ शिष्य की अवेद्या विरक्त शिष्य को गुरु से आचार्यव्यवहार सम्बन्धी अधिक सिद्धा खेमी पकती है। अतएव इन क गृहस्थापन के समय के गुरु, या विद्यागुरु स्रोतों में वे जिन से इन्होंने बासपन ही में रामायण भी सुनी (पढ़ी) थी। जब गृहस्थापी हो विरक्त होने लगे

इस के सिवाय तर्ज और बाराह क्षेत्र हैं जिन में गोंडा जिला में सरपू तथा धाबरा का संगमरूप स्थान सबों से अधिक प्रसिद्ध है। यह अज्ञोप्या के समीप एक पुराना स्थान है और वहाँ आज भी बहुत साजु रहते हैं।

१ श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद लिखित 'मऊ माल की टीका' प्रथम संस्करण, पृ० १०६२ रेगिण।

२ यही प्रथम पृ० १०६४।

तो अन्व गुह क्यों, और क्यों खोजन मान, अन्व वही पूर्व गुह की सेवा में उपरिगत हो उन्हीं से आबरवहीन मंत्राधिक प्रहस कर कष्टी पवारे। यही अनुमान अवलम्बन करने से गोस्वामीजी तथा अन्यान्य क्षेत्रज्ञों के परस्पर विरोध का निवृत्ता हो सकता है, अन्वबा नहीं। भीमगवान प्रसाद जी ने भी हमारे इस अनुमान को असंगत नहीं समझ कर लिख भेजा है कि 'यह कहा बहुत ठीक है यथार्थ ही सकता है।' अस्तु।

अब देखना होगा कि गोस्वामी जी के गुह कौन थे? गुह का नाम तो प्रत्यक्ष नहीं मिलता, परन्तु इन्होंने 'रामचरित मानस' बासकाण्ड में गुह की बंधना में लिखा है—

“यन्दौ गुरु पद कर्ज, कृपा सिंधु नररूप हरि।”

महा मोह तम पुज, जासु यथन रयिकर निकर ॥”

इसी बन्धना से लोग अनुमान करते हैं कि इन के गुह भी नरहरिदासजी थे और गुह का नाम रत्न नहीं बंधना चाहिये इसी कारण से इन्होंने 'नर' तथा 'हरि' इन शब्दों के मध्य में रूप शब्द रख दिया है।

कष्टी नागरी प्रचारिणी समा द्वारा प्रकाशित रामानन्द में लिखा है कि इसी नर रूप हरि से लोगों ने निकाला है कि "नरहरिदास इन के गुह थे। नरहरिदास भी रामानन्द जी के बारह शिष्यों में से थे।" यह लिख कर प्रियछन साहबवासी गोस्वामी जी की गुह परम्परा की सूची को 'इतिहास एनीटुमेरी' में प्रकाशित हुए दैज्यों की त्यों इस टिप्पणी के साथ कि 'यह ठीक नहीं है उस में उद्धृत कर दी गई है। परन्तु सूचीपत्र ठीक हो ना नहीं, सम्पादक महाराजों ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि धी १०० रामानन्द स्वामी जी के शिष्य नरहरिदास गोसाईं जी के गुह नहीं थे। ऐसा नहीं करने से उन के साथ से यह अनुमान किया जा सकता है कि उन लोगों ने भी उन्हीं को गोसाईं जी का गुह माना है।

निरुद्धेश्वर जी रामानन्द स्वामी के मुख्य १२ शिष्यों में<sup>१</sup> से एक नरहरिदासपद थे। उन्हीं को किरी ने नरहरिदास किसी न नरहरि आचारी एवम् किसी ने नरहरि स्वामी लिखा है। इन्धु धी १ = रामानन्द जी के चत्ते भी नरहरि दास गोसाईं जी के गुह नहीं हो सकते

१ 'नररूप हरि' गुह का विशेषण भी हो सकता है। जैसे गुह है कि नर के रूप तो है पर ताबान ईपर ही है। गुह में एसी बुद्धि रखनी ही चाहिये। या पूर्वज ही जैसे मुख्य धामी शिष्यरहित स जगत का अन्वकार नष्ट कर देता है धीम ही गुह शिष्य के इन्द्र के अज्ञानान्तर का अपने उपदेशरहित स नष्टकर उसे मुक्त पहुँचाते हैं। कदा भी है :— गु शब्दअन्वकाररूप न शब्दविरोधकः। अन्वकार निरोधक गुह — शिष्यभिधीयत।

२ भी चक्रानन्द, धी सुरेखानन्द (सुरामुरानन्द), धी कर्वाणजी धी सुगानन्द धी पद्मारी धी नरहरिदास (नरहरिदास) धी पीताजी, धी भवानन्द धी रामदास (रहराम शिष्य) धी अडा धी मन तथा धी मुराजी (सुरेश्वरी जी) यही आगे मुख्य बचे हैं। धीर भी अनेक ऐसे मुने ज्ञाने हैं।

क्योंकि श्री रामानन्द जी का जन्म ११२६ संवत्<sup>१</sup> में बताया है। अभिषेकशा इतिहास-वेत्ताओं ने भी इस का समय १४वीं शताब्दि माना है और कोई २ चौबहरी का अन्त माग वा १२ वीं शताब्दि का आरम्भ मानते हैं। यदि हम श्री रामानन्द जी का समय १२वीं शताब्दि का आदि ही मान लें और गोसाईं जी का जन्म अर्थात् ही के अनुसार १२२४ संवत् स्वीकार कर लें तो भी दोनों महापुरुषों की सुसमाप्ति के समय में सबा सी देड़ सी वर्षों का अन्तर हो जाता है। इतने समय में केवल एक ही पीढ़ी कदापि नहीं हो सकती।

अतएव गोस्वामी जी के गुण से भरहरिदास हो सकते हैं (यदि इनके गुण का सबसुख यही नाम हो।) जो श्री १०८ रामानन्द जी के अष्टे श्री अन्नन्तामन्द क मंत्र शिष्य तथा वन्हीं के दूसरे अष्टे सुरसुरानन्द जी के साधक अज्ञेये अर्थात् जो श्री १८ रामानन्द स्वामी के पोत चेले, श्री अन्नन्तामन्द के वेस्त एवम् श्री सुरसुरानन्दजी के मत्तीसे तथा साद(ष)क चेले थे।

किसी २ ने भरहरिदास जी को भी अन्नन्तामन्द जी का पौत्र श्री रंग जी का शिष्य लिखा है। यह बात हमारे पक्ष में हानिकारिणी नहीं बरन् इस से उस को साम ही पहुँचता है कि एक या दो पीढ़ियाँ और बढ़ जाती हैं।

किसी ३ के मत से बाराह जेठ-निवासी गोपालदास जी के चेले भरहरि दास गोसाईं जी के गुण थे; और 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में जो अक्षरसंभ साहजवादी सूची समावेशित की गई है उस में भी गोपालदास जी को भरहरिदास जी का गुण लिखा है। परन्तु यह बात ठीक नहीं प्रतीत होती, क्योंकि श्री नामा जी गोसाईं जी के समसामयिक थे और दोनों में अंतर श्री भी बात कही जाती है। वे श्री १८ रामानन्द जी से ५वीं पीढ़ी में हैं और पूर्वीक सूची के अनुसार गोसाईं जी श्री रामानन्द जी से ८वीं पीढ़ी में होते हैं। इस से इन दोनों महापुरुषों में ४ पीढ़ियों का अन्तर होता है। तब श्री नामाजी कितने दिन बीतित रहें होंगे कि गोसाईं जी ४२<sup>२</sup> वर्ष की अवस्था क बाद दिवंगत दरबार से लौटने पर जबप्रदेश में आकर उन से छायास्कार का आनन्द उठाया।

१ बिसुमन साहय ने इन का जन्म ११वीं (क) अन्त में और इन की सुसमाप्ति का समय १२वीं शताब्दि का प्रथम अर्द्धांश माना है। परन्तु श्री रामानन्द जी का समय ११वीं शताब्दि माना जाता है तब श्री रामानन्द जी का समय भी ११वीं शताब्दि ही हो सकता क्योंकि श्री १०८ रामानन्द जी श्री १०८ रामानन्द स्वामी से पाँच पीढ़ी अर्थात् हैं। यदि हमें सुसमाप्ति के समय से प्रयाजन नहीं क्योंकि सुसमाप्ति के बहुत दिन पूर्व आर किसी के शिष्य हुए होंगे।

२ बाराह जी का जन्म १५८१ संवत् में माना जाता है और इन का दिवंगत दरबार में जहांगीर बादशाह के मरण करने कदा करने क अतएव इन का दिवंगत आका १६०५ ई० (सं० १९६२) के अन्तर ही हुआ होगा। इयम परिच्छद देगिय।



क	ख <sup>१</sup>
१ श्री १ = रामानन्द स्वामी ।	१ श्री १०० = रामानन्द स्वामी ।
२. श्री अनन्तानन्द जी ।	२ श्री सुरसुरानन्द जी ।
३ वीहारी श्री कृष्ण दासजी ।	३ श्री माधवानन्द श्री ।
४ श्री भ्रमदास जी ।	४ श्री मरीचानन्द श्री ।
५. श्री नाभा श्री ।	५. श्री लक्ष्मी दास श्री ।
—	६ श्री यौपाय दास जी ।
—	७ श्री नरहरि दासजी ।
—	८ गोसाईं तुलसीदास श्री ।

श्री स्वामी नामा श्री कृष्ण मूल मङ्गल माला में दोनों नरहरिदास का वराम आना है ।

अतएव यदि नरहरिदास नामक महात्मा गोस्वामी जी के गुरु थे तो वे श्री रामानन्द स्वामी के पोते शिष्य नरहरि दास जी थे । अन्य कोई नरहरिदास नहीं थे ।<sup>२</sup>

हां ! इतना और भी कह देना है कि कोई २ महाशय श्री रामदासजी को इनका गुरु मानते हैं; परन्तु वे रामदास जी की जैन थे तो नहीं बताते । वे तो रामदास सभी छात्र महात्मा हैं ।

१ विचर्मन सातबबानी सूची का अर्थ अज्ञात है ।

२ अन्त गौरी संकर जी कोई नरहरिदास साधु श्री बाल नहीं कहते । वह लिखते हैं कि 'गोसाइ जी के माता जिता के स्वयंदास वर उन श्री चनापारखा में (सोरो) नगर के श्रीचरी मन्दास कुमरल मन्दासजी श्री बं० नरसिंह जी ने इन का पासा-गोसा पदापा-शिखावा श्रीर सुरस्य बनाया था ।'

## पष्ठ परिच्छेद

### राजापुर वास

स्त्री के वाक्य से निरस्त होकर गुठ से राममनादि ग्रहण कर गोस्वामी की कारी में आ बसे । किसी के मत से अयोध्या होते कारी भाये । यह बात असम्भव नहीं । अपने प्रभु के बन्धन स्थान में कुछ काल निवास कर यदि कारी भाये तो इस में सन्देह ही क्या है ? और प्रियादास की जो समुरार से इन्हें कारी काये हैं वह भी ठीक ही है । वहाँ से बल कर यथायोग्य अन्य स्थानों में ठहरते कारी भाये । प्रियादास जी ने यह कहा ही नहीं है कि राह में कहीं नहीं टहरे । उनके कथन का आशय यही है कि समुरार से तुरत कारी की ओर चल निकले ।

गोस्वामी की प्रायः कारी में रहते थे । परन्तु अयोध्या की भी विरोधतः जाते और रहते थे एवम् विभ्रष्ट मपुरा इन्द्रावन, ऊदरुम, पुण्योत्तमपुरी प्रयाग आदि स्थानों में भी पठुंन जाते थे और तीर्थयात्रा के समय मार्गस्थ छोटे बड़े अन्य गाँवों के निवाशियों को भी अपने द्वारा से हठार्थ किया करते थे । निरस्त होने पर ही कुछ काल राजापुर में भी टहरे थे और वहाँ पीछे भी आया करते थे ।

कारी तथा अयोध्या एवम् गंगा तथा सरयू के तट, जो बिहान ये राजापुर में जाकर कर्म मन्त्र करने लगे थे यह प्रश्न बहुतेरों के मन में उठ सकता है । महात्माओं का तो कथन यह है कि किसी कारण से इन के लिये वहीं कुछ काल मन्त्र करना उपयुक्त विचार कर प्रभु न हनुमान की तथा शिव जी क द्वारा इन के मन में प्रेरणा कारी थी । यह गुप्त रहस्य है । हमारी समझ में साधुओं को मंत्र । आर मन्त्र करने में यह कुछ नियम नहीं कि कसुफ स्थान ही में रह कर मन्त्र किया जाय । आप रमता साधु थे । भारतवर्ष क भिन्न १ प्रांतों में विचरता किया करते थे । जहाँ मन की मीन हुई वहाँ कुछ दिन टहर गये, जहाँ बिल नहीं सया किसी क अनुभव विनय पर भी वहाँ नहीं टहरे—यह बात तो साधुओं में प्रायः देखी जाती है । वेना सोच क्यों करते हैं इस का हाल वे ही जानें । परन्तु यहाँ पर हम पाण्डों को एक अपनी जामी हुए क्या सुनाते हैं ।

आज से ४० वर्ष हुए कि वैद्यदेशीय उदासी साधु बाबा परीण दास की प्रायः हमारी बस्ती<sup>१</sup> में आकर एक पाकड़ के वृक्ष के तले ठाकुरवारी क समीप महावीर स्थान में टहरा

१ अग्रविहारपुर आता नगर से लगभग डेढ़ कोस लीचे परिसर है ।

करते थे। आप की दशा विचित्र थी। कभी महीनों तक पूनी की राय पोल खान कर शर्भत की माई पीवा करते, कभी दिनों तक कल्प आम की खट्टे खाना करत कभी कोई को कुछ प्रदापूर्वक भोजन क लिये से जाता उसे सहर्ष खा लेत कभी किसी का हाया भोज्य पार्थ देखकर उसे गाली देने लगते और जब जर से भोजन ले जाने का किसी को चाहस नहीं होता एवम् कुछ दिन गांव से भोजन जाना बन्द हो जाता तब भी गाली देना ब्यारंम करते। एक दिन हमारे नगर मिवासी एक मख पुरप सु० मोनास साल को खबरा संतधमति में रहा करते थे उन्हें गाली देते मुनकर विनीत माव स दोनो हाव बोकर बोले कि 'महाराज ! जब लोग आप की सेवा में भोजन सात हैं तब आप पुत्राप्य करते हैं और जब नहीं साते तब भी गाली मुगते हैं आप के लिये तो संसार ही पर है; तब यहाँ विराजमान होकर अपने पर कबो कन्ड उग्रते हैं ?' यह मुनकर महारामा जी बहुत ईसने लगे और बोले 'मोनास ! तुम्हा समझैया ! का काम हमारा अन्वयन बप दिन में हागा यह नहीं ब महीन में होमा। यहाँ मुन हन से एक बड़े महारामा विराजमान हैं। यह बात धवण करने से सभी लोग बकित तथा स्तम्भित हो गये। क्योंकि इतने दिनों तक नगर-निवासियों को कभी उनका दर्शन नहीं हुआ था। दर्शन करते हा ! जब उस रीति की आलें बनाई जायँ वैसा नित बनाना जाव तब तो। और यदि किसी का सामान्यवश हुआ भी तो उसने दूसरों पर यह बात कभी प्रगठ भी नहीं की थी।

छारेंस यह कि हमारा गांव कोई तीर्थस्वस्त नहीं, यहाँ कोई पवित्र मदी नहीं बन पवत नहीं परन्तु बाबा गरीब दास जी ने ईश्वर की प्रेरणा से यहीं टहर कर कुछ काल भजन करना उपपुत्र समझा था। और रामपुर के निकट तो कृष्णप्रिया, कृष्णसहिता कृष्णकृष्णादिनी परमानन्द प्रदायिनी रविजा लालों मनुष्यों का पाप प्रहार कर उन्हें गोलेख में पहुँचाने वाली प्रवाहित है। यहाँ कुछ दिन रह कर भजन करन में क्या सम्बह हो सक्ता है।

परन्तु कारी से मोक्षामी जी का मारी सम्बन्ध है। कारी ही में आप को रघुनाथकृपायक इनुमान का दर्शन हुआ है। वहीं मवजीव-भुक्तिनायक मोक्षामाय क दर्शन का मुक्त प्रसन्न हुआ है और वहीं सङ्ग अचनाराक अलभसुखदायक धी रघुनाथक क दर्शन का सृजनात्त हुआ है। कारी में आप के कई एक कमण्डार देने गये हैं। कारी में अस्ती पर आप के नाम का एक घाट है एक कोठरी में आप की बरशापानुस गद्दी, बैर, इत्यादि तथा आप की संस्थापित इनुमान जी की मूर्तिमा विराजमान हैं।

## सप्तम परिच्छेद

### श्री रामदर्शन

“आशिकों रा सूप जानां इरु रह्यर कामितस्त ।

आशिक धर मादिक यवद मंसिल य मंसिल मीरसद ॥”

प्रेमियों का प्रेम ही उसे प्रेमपात्र के निष्कट पुरुबाने के लिये पथप्रदर्शक होता है यदि प्रेमी सच्चा हो तो अन्तः वह अपने असीम स्थान को पुरुब ही जाता है । यह बात मोस्वामी जी में प्रत्यक्ष देखी जाती है । विरक्त हो काशी में वास करने के अनन्तर इन क निष्कट प्रेम क कारण इन्हें प्रभु क पादपद्म के दर्शन का भी सुभवसर मिला ।

कहते हैं कि काशी में मोस्वामी जी गंगा<sup>१</sup> पार शीव के निमित्त जावा करते थे और रास्ते में शीव का शेष जल एक आम के पेड़ की जड़ में डाल दिया करते थे । उस पेड़ पर एक प्रेत<sup>२</sup> रहता था । इस के बहा गिर्य जल डालने से सन्तुष्ट हो और एक दिन प्रगट हो उसने

१ श्री मीतारामशरण भगवान प्रसाद ने अस्सी पर शीव के लिये जामा णवम् बहुर वृष क नीच जल गिराना सिखा है । किमी १ मे बहुर का पेड़ कहा है ।

२ यह पुस्तक छपने के समय हमें अपने एक मित्र मिता मुकेशचरपुर मन्दिबारा ग्राम बिकामी पारु नरेन्द्र नारायण सिंह जी से ज्ञात हुआ है कि मोस्वामी जी क जीवनकाल ही में उनके एक भेस क उन के निषेध करने पर भी उनकी पद्यवद् बृहद् जीवनी छोड़ें पक लाग होवे बीपाइसों में तैवार की थी । गोसाइ जी क इस का हाल जागकर खेलक को यह कहकर पैसा करने से निषेध किया कि ईश्वर का गुणानुवाद छोड़कर मनुष्य का चरित्र खिलना ठीक नहीं, पर उन्होंने ने उन की बात न मानी । इस पर क्रुति हाकर गोसाइ जी ने शान दे दिया कि उस पुस्तक का प्रचार नहीं होगा । यह भेसा अमस्ताप से अत्यन्त पीड़ित हो भी नामा जी या किमी अल्प महापुरुष के शरणारण हुआ और उन के आग्रह तथा प्राणना स गोस्वामी जी ने संबन् १६६७ क अन्त में शान भोषन का बचन दिया । और यह प्रसन्न उठने पर कि इतने दिनों तक उस हस्तलिखित पुस्तक की रक्षा कीव करगा यह काम हमी प्रेत को सीपा गया । यह बात शायद उमी पुस्तक में सिली है । यह पुस्तक मुद्रान राग में किमी बाइलन के घर में पढ़ी रही । यत्तरामपुर (गौडा) के एक मुनशी जी इस पात्राजी के घर उस के चालकों का सिपा देन पर निपुत्र हुए । उन्हीं बातकों क यह पुस्तक दिगाने पर उन्होंने क धीरे धीरे बेची में उस की मरम उत्तार जाती । यह बात प्रकट होने पर यह यह आशय महा आशय है । उनका प्राण खेने पर उठन हुआ तब य बहुत म अत्यन्त हुए ।

इन से कहा कि "मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हुआ तुम क्यों क्या चाहते हो ?" आप ने उत्तर दिया कि "तुम्हें भी रामचन्द्र के वरान के अतिरिक्त इस जीवन तथा इस संसार में कोई बुरी इच्छा और लालसा नहीं है तुम मुझे उन्हीं का वरान करा इच्छा करो।" वह प्रेत हँस पड़ा और उस ने बहुत ही यथार्थ बात कही कि "यदि पुनः में यही सामर्थ्य होती तो क्या मैं प्रेतयोनि का दुःख मोचन करता। यह बात मेरी शक्ति के बाहर है; भगवत्पुनः की सहायता बिना भयवान का वरान दुष्कर है। तौ भी मैं आप को एक उपाय बताता हूँ यदि भाग में वरान बदा होगा तो हो ही जायगा। कर्णवध रथान पर रामायण की कथा होती है, धीहनुमान जी एक कहीं का भेद बनाये मैसा-जुनैसा बरन पहले निरवप्रति वहाँ सभसे पहले आते हैं पुनः कथा विसरण होने पर सब से पीछे वहाँ से जाते हैं। आप उन्हीं को धेरिये उन्हीं का वरण पकड़िये। यदि वन को जगायि हो गई तो भी राम का वरान कुछ दुर्लभ नहीं है।"

गोसाईं जी निवृत्त समय पर प्रेत के बताये हुये स्थान पर उपस्थित हुये। कोही के भेद बनाये हनुमान जी भी वहाँ पहुँचे। उस कोही को देख इन के आनन्द की सीमा नहीं रही। कथा समाप्त होन पर अब वह व्यक्ति वहाँ से बसा तो आप भी उसके पीछे-पीछे चले और एक

उन से वह पुनः बजरामपुर के किसी राजकन्यावारी को मिली। उन से वह अक्षर राज के गुरु स्वामी हंसस्वरूप जी को मिली और अब वह पुनः केसरिका (अम्पारन) निवामी बान् इन्द्रदेव नारायण के घर है।

किन्तु प्रेत ने कैसे उस जीवनी की रक्षा की और उस माया के घर वह पुनः कैसे पहुँची, यह किसी को भास्य नहीं। मुनरी जी के घर में कोई नहीं और उस माया का नाम तथा दिग्गता लोगों को ज्ञात नहीं। उस दीर्घकाल पुनः के प्रकट होने पर लोग हेतु सङ्गों कि उस के उद्धार में क्या क्या बलपुं भरी हैं। परन्तु तब तक हम मुनरी जी की बहादुरी की अकरन प्रशंसा करेंगे कि आप ने सारी पुस्तक बरन कर ली। तब तक बाबा जी की लखर नहीं हुई, और पुनः भवभर में जब उनकी जान की बारी का गई थी वे अपने मात अस्तबाव के साथ पुनः का बोधा भी धेकर भाग निकले और उस माया ने उनके बरनने का करारिन् वन में नहीं किया और उन्हें वह पकड़ में नहीं सका। किन्तु अब इस बात का है कि गोसाईं जी का परमोपकारी वह प्रेत उस समय तक प्रेत ही बना रहा। गोसाईं जी ने भीमवारण के एक प्रेत को तथा केवल राम को (श्रीमा कि आगे विदित होगा) प्रेतयोनि से मुक्त किया, और इस प्रेत के साथ क्रिम की बरीतन उन्हें सब कुछ हुआ कुछ भी अयुपकार नहीं निबा बरन् इस के साथे १०० बर तक निवृत्त जीवन प्रेव की रक्षा का भार बस दिया। निवाच शान मोहन बान् के किसी अक्षर को भी उस के उद्धार का ध्यान नहीं आया है।

'मर्षादा' में 'नवरत्न' की समालोचना में इसी जीवनी से दिग्गताया गया था कि गोस्वामी जी की नीमरी शारी में १००० तिलक पड़ा था। लोग अब भी कहते हैं कि तब प्रथम विवाह में हम द्वार से तो कम नहीं मिखा होगा ? परन्तु हमें तो उस पुनः का वरण ही नहीं हुआ, हम क्या करें ?

निर्जन स्वान पाकर, आप ने बड़े प्रेम तथा दृढ़ता से उस पुरुष के पैरों को पकड़ लिया । कोची मेघवारी हनुमान जी १ ने अपना पैर छोड़ा कर इन से जान बचाने का बहुत उद्योग किया परन्तु ये कच झोझनेवाले थे । इन का हृत् तथा प्रेम देख कर अन्त में हनुमान जी ने अपना रूप प्रगट किया और रामदर्शन के लिये इन के बहुत विनय करने पर कहा कि "जाओ, बिनकूट में दर्शन मिलेगा । कोई-कोई कहते हैं कि शिव जी का मंत्र देकर बिनकूट जाने का आदेश किया ।

सोम करते हैं कि गोस्वामी जी के शीघ्र का शेष जल पाने से वह प्रेत इसलिये संतुष्ट हुआ कि प्रेतगण अपवित्र ही जल पान क अधिकारी होते हैं । परन्तु शानेश मोहन दास ने लिखा है कि "गोस्वामी जी अशुचि जल से एक बंदी हुए के लक्षे पैर धोया करते थे । साधु के चरख धोये हुए जल स्पर्श से पवित्रता प्राप्त कर वह प्रेत स्वर्ग जान क लिय उपयुक्त हुआ । उस समय उस ने गोसाईं जी से बालें की एकम् इहे हनुमान जी का पता बताया ।" इस आख्यायिका की यह व्याख्या उपयुक्त तथा उचित प्रतीत होती है और इससे सन्त माहारम्य प्रतिपादित होता है ।

हम तो उस प्रेत को भी प्रेत नहीं कहेंगे । उसे एक महात्मा ही कहेंगे । ईश्वरप्राप्ति का पदप्रदर्शक कैसा ही निकृष्ट भी बर्षो म हो, वह हमारे लिये महात्मा ही है । यदि वह अपवित्र प्रेत माना जाय तो महात्मा कौन कहा जायगा ! केवल लम्बा-लम्बा तिलकपाटी संहसुसंड बाबा जी ।

इस में बिनकूट को बिहार हो परन्तु गोस्वामी जी ने हनुमान जी की आज्ञा पाकर बिनकूट चलने की तैयारी की ।<sup>२</sup>

१ श्रीहनुमान जी का कथायम्बरक इरान कहाँ हुआ इस विषय में 'मापुरी' बर्ष २, खड २, पृष्ठ ३८४ में रामबहादुर जी पक्ष बामी सासा सीताराम का एक छोटा खेल हुआ है । उस से जाना जाता है कि यह घटना जर्नीमपुर-बीर के जिले में खीरी से १३ कोस पूर घोरहरा के पाम जो अबात बटी के नाम से प्रसिद्ध है पद घटना हुई थी । इस समय घोरहरा कयुयशा राण के अधीन है । उस स्थान पर हनुमान जी की एक विरास मूर्ति अभी तक स्थापित है । वही श्री राम जानकी का एक मन्दिर और एक पक्षी कोठी का मगमाशेष है ।

साजा माहब को ये बालें एक मद्र जन माधव प्रसाद जी ने मान्य हुई हैं ।

परन्तु पंजाब की घोर इनके पर्यटन की बात किर्वा पुस्तक में नहीं कही गई और उबर बैजुषों का प्रदान स्वान ही मुता बाबा जिय कारण म इन के उपर जाने की सम्भावना होती । यों साधुओं का मंत्र । जो दो बट कबा कहाँ तक साथ है नहीं बट सकते ।

२ विरपत्नय के समय विनय गुबगन समल्लङ्घन । साष्ट्र पुरान अधीन भीति अनुगच इदनुच ॥ श्री भागवत पुरान सरल भाषा में भाष्यो ॥ पद पदावली परम सरस रमिङ्गन रस चालो ॥ नारायण पद पंक्त अमर पूर्ब पुर पद्धति गय । रसुरात्रे सिद्ध रीची मृपती कृत्य कृपा भाजन भय ॥ —महामहामात ।

धीमान् महाराज रावराज सिंह जी<sup>१</sup> ने 'मत्तभाळा रामरसिकवली' में लिखा है कि चित्रकूट चलते समय गोस्वामी जी धी बिरबेस्वर भाष क मन्दिर में गये; किन्तु शिव जी ने वरान नहीं दिया। काशी के बाहर जाने पर एक ब्राह्मण के भेष में शिवजी ने इन से कहा कि 'काशी छोड़ कर अनन्त मत आओ, यहाँ से जाने में तुम्हारा निर्वाह नहीं है। और गोसाईं जी के यह कहने पर कि इतने दिन सेवा करने पर भोलाभाय प्राप्त नहीं हुये यह ब्राह्मणवेवता बोले कि मैं ही शिव हूँ और फिर त्रिभू रूप में गोसाईं जी को वरान देकर उन्होंने कहा कि 'चित्रकूट पल्लो बहाँ रामबद्र का दर्शन पाओगे।'<sup>२</sup> यह क्या! कभी शिवजी यह रहे थे कि काशी से अनन्त जान में तुम्हारा निर्वाह नहीं और तुरत ही आप ने चित्रकूट चलने की सम्मति दी। शिव के मुख में अशोक बन्नों की मारें चरा में कुछ और चरा में कुछ बालें कहानी उत्तम प्रतीत नहीं होता। तब रजुवरा राम्या का कथन सुकिसुक पाबा जाता है कि धी शिवजी का वरान पान पर गोस्वामी जी ने स्वयम् कहा कि अब आप का दर्शन प्राप्त हुआ तब धी रामजी के वरान का मुख भी अबस्य प्राप्त होया' और यह कह कर गोसाईं जी चित्रकूट सिपारे एवम् बहाँ पहुच कर श्री राम भजन में प्रवृत्त हुए।

कुछ काल के अनन्तर आप एक दिन क्या देखते हैं कि दो सुन्वर मुचक—एक भेष विभिन्नुक रयाम तथा दूसरा विभुत-धुति विमर्क वीर—धोमस करों में धनुष बाण स्थि एक मृग के पीछे पीछा चँकते चले जा रहे हैं। सन्तापनता देत गोस्वामी जी किमोहित हो गये। पर यह नहीं जान सक कि शिव के वरान के स्थि आप उत्कथित थे वे मुञ्जयाम शोभाभिराम धी राम भ्राता सदित पै ही दोनों छार वे बरत उठे कोई मृग्याशील पुरय जान कर इन्हों ने अर्धों पीषा करली। बोरी बर के बाह पी हनुमान जी ने प्रकट होकर पूछा कि 'धी रामबद्र का दर्शन हुआ बा नहीं? इन्हों ने कहा कि उन का दर्शन तो नहीं हुआ परन्तु धमी का मुखर पुरक अरवारोही इमी राह से गये हैं।'<sup>३</sup> यह झूठ होने पर कि वे ही धी रामबद्र तथा लखन काठ ध आप उहाँ गुणियों को इत्य में स्थापित कर उन्हीं के ध्यान में मन हो गये एवम् यह वर रबकर प्रेमदर्शनदय पै इन का गान करने लगे—

“लोपन रई घेरी होय । जान यूके अकाज कीन्हों गये भू में गोय ॥  
अपगति ओ तरी गति न जान्यों रहाँ जागत मोय । सपे छवि की अपधि मं हौ

१ पाप होगा है कि गोसाईं जी का जो पदपत्र जीवनपरिक्रम इस पुस्तक में दिया हुआ है उमी को मुगाशपाशुनिवासी पबिद्धवर जगताप्रमाद् जी ने आपनी बड़ी शोभापन में अपिबल उर्धन कर दिया है।

२ रानी कमलधुधेरी शिखरी हैं कि बहुत दिन पारती में रहन पर धी रामदर्शन की छातमा स गास्वामी जी ध्यान करमे लगत तब इनका पिरवास देल हनुमान जी ने वरान देकर चित्रकूट में प्रमु दर्शन का वरदान दिया और काशी से आते समय धी शिवजी ने मंग्यामी क रूप में दर्शन दिया।' और उन से पैमी ही बालें हुई जैसी कि महाताज साहब ने लिखी है।

निकमि मे त्रिग होय ॥ करमहीन में पाय हीरा दियो पल में खोय । दास सुखसी राम यिहूरे कहो कैसे होय ॥”

महा कण्ठमुम<sup>१</sup> महम्माल हरिमहि प्रकशिष्ट<sup>२</sup> तथा मु० दुस्खीरामकृत उद्-महम्माल में घोरामदर्शन की केशव यही कथा लिखी हुई है और भी प्रियादास भी ने भी यही कथा इन दोनों कबितों में बराम की है ।

“सौचजस्त सेप पाय भूत हुं यिरोप फोक थोख्यो मुखमान हनुमान नू यताण हैं । रामायण कथा सो रमायन है कानन को आयत प्रथम पाछ जात घूना छाप हैं ॥ जाइ पहचान संग चले ठर भ्रानि भ्राण वन भधि जान घाइ पाय छपटाए हैं । करे सीत कार कहीं सकोगे न टारि मैं तो जान्यो रमसार रूप घरयो जैसे गाए हैं ॥”

“मांग लीमै घर कही दीमै राममूपरूप भ्रति ही भ्रनूप नित नैन भ्रमिलापिण । कियो लै संकेत पाही दिन हीं सो ज्ञाय्यो हत धाई सोइ ममय भत कयि छयि भ्रापिण ॥ भ्राण रघुनाथ साय लक्ष्मन यदैं घोड़े पट रंगयार हरे कैम मन रापिण । पाछे हनुमान भ्राए थोले टपे प्रान प्यारे, नेकु न निहारे मैं तो, मले कर मापिण ॥”

परन्तु बहुत से लोग कहते हैं कि केर भाषिण से प्रियादास भी का अभिप्राय पुन दर्शन से है । अपूर्ण गोसाईं भी ने छविमय हनुमान भी से प्रायना की कि इस दर्शन से तुमि नहीं हुई कृपया एक बार फिर दर्शन कराइए एवम् पवननन्दन न इन का गूढ़प्रम दख इन का मनोरथ सकल करने की प्रतिज्ञा की और विप्रकृत ही में उन की प्रतिज्ञा पूरी हुई ।

‘मस्तमाका रामरसिकावली’ तथा प० जगन्नाथसाह सम्पादित बही रामायण में दर्शन की कृती कथा यो लिखी है कि स्वामी की एक बार स्नान कर विप्रकृत के रामबाट पर बड़े पूजा क लिय बन्दन रपद रहे थे इतने में स्वाम गौर वा ब्राह्मण बालक बहो पुरुष और उगहो न तिलक करने क लिय गोसाईं की स बन्दन मांगत । उहो न स्वयम् लगा देने का कहा । अन्तत पन्दन लक दानो बाटक रत गये । पीछे हनुमान की क जाने तथा दर्शन का हास पूने पर गोस्वामी भी न कहा विप्रकृत के घाट पर भइ छापुन की भीर । तुम्हसिदास बादन किसे तिलक इत रपुदीर । धार पंडितकी न अपनी पुत्रका (दोटी) रामायण<sup>३</sup> में लिखा है कि ‘बन्दन शिखत समय ८६ वर्ष क पाठकश्य में भगवान मास्वामी की क समीप आवे और उहो ने कहा कि “बाबाजी हम अन्न दाप स घाप को बन्दन लगा वें एवम् जब वे बन्दन लगाने लगे, तब हनुमान की एक तोता बन कर एक पेड़ पर बठ पूर्वोक्त दोहा पढ़न लगे ।

१ जनार्दी निवासी हरिपरिपद्य रामानुजदास उरनाम ‘हरिहर’ कापस्य मापुर् माणिक्य मंडार कृत पद पुस्तक प० जगन्नाथसाह द्वारा संशोधित होकर भीर्वेस्टेरर पन्नालय में सन् १९५६ में छपी है । बही हमारे हृदय में छाप है ।

२ पद रामायण सपन् १९६३ में भी वेस्टेररर पन्नालय में छपी है ।



कदाचित् इस लोकप्रसिद्ध रोहा को सार्वक करने ही के लिये इस आख्यायिका की कल्पना हुई है। परन्तु पंडित जी की एक पुस्तक का लेख सूत्र के लेख से सर्वथा भिन्न है। आप की पुस्तकों की आख्यायिकाओं में से कौन सी प्रामाणिक है यह बात मैं ही जानते हैं।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अनुसार गोस्वामी जी को विष्णुदत्त में भी राम लक्ष्मण का तीस बार दर्शन हुआ है। एक बार अहेरी के मेघ में, दूसरी बार बन्दन रगड़ते समय एवम् तीसरी बार कामठा में। इन दोनों महाग्रन्थों में वहाँ पर भी रामचन्द्र को सब माइनों तथा हनुमानादि के सहित पक्षि हाथियों क साथ बुलाया है और गोसाईं जी ने आरती की है एवम् रामचन्द्र में इन के माये पर करकमल रज कर इन्हें हस्ताय किया है।<sup>१</sup>

शिवरत्न साहब ने एक और ही कथा लिखी है। यह यह है कि एक दिन गोस्वामी जी ने विष्णुदत्त में जनपद ही दूर प्योटे समय रामलीला होते देखा कि लक्ष्मण के अनन्तर विनीयय को राजतिलक देकर भी राम, लक्ष्मण हनुमान अग्यान्त भास बानरों के संग भी बचप लौटे जा रहे हैं। सीता बेच कर इन का मन महानन्दित हुआ। वहाँ से लौटते समय ब्राह्मणमेप्यारी भी हनुमान जी से भेंट हुए। उन से आप उस रामलीला की बड़ी प्रशंसा करने लगे। ब्राह्मणदेवता ने कहा कि 'महाराज आप सगळ सो नहीं मय हैं ? मता आब कल कहीं रामलीला होती है। रामलीला होने का समय कुमार कातिक है।'

इस पर गोसाईं जी बोले कि 'बसो मैं अभी बिया देता हूँ।' परन्तु फिर रामलीला रवाना पर जाने पर कहीं रामलीला और कहीं लीलायुक्तियों। लीला होने का अहिमान भी वहाँ नहीं हीन पडा। वहाँ के लोगों से पूछने पर सभी ने कहा "एक कही बाबा जी आबकल रामलीला। तब गोस्वामी जी का ज्ञानरूप लुना और आप ने सोचा कि 'हो न हो मैं ही राम लक्ष्मण अग्नी अग्नीम हूना से मुझे दर्शन दिये हैं। हा' बिहार। कि उन के कारणअमो में गिरकर ब्रह्मराम भी मैं न नहीं किया।' विमना हो कर अपने रवाना पर आ परबाछाव और रादन करते २ आप निशामिभूत हुये। स्वप्न में हनुमान जी ने कहा कि "पक्षाने की कोई बात नहीं, कलि में क्लिनी को प्रभु का प्रवच दर्शन नहीं होता। तुम बड़े भागवान हो कि मुझे इन प्रकार से दर्शन हो गया। अब मशन में लग रहो।" वहाँ से आती लौट कर आप अचिन्तन प्रेमावुराग से प्रभु की अर्चना सेवा में समय बितान लगे।

१० रामेश्वर मठ ने अग्नी रामायण में लिखा है कि गोसाईं जी कृत प्रायुक्तपद को प्रवच कर और अनि प्रमत्त हो हनुमान जी में पुनः दर्शन कराने का वचन दिया था और रामलीला के बहान दर्शन कराया।

१ बैरवाप राम तथा रात्री कमल कुञ्जरी ने भी रामचन्द्र को स्वप्न हनुमानादि समेत विमानरिपण देखाओं से अग्नि सिंहासन पर बैठाकर उन्हें गोसाईं जी से तिलक कराया है। और उन लोगों ने यह दोहा लिखा है :—

रामचार मन्दाकिनी गई विमानन भीर।  
तुलसीदास चन्दन पिसी तिलक देन रघुबीर ॥

सोचने से प्रतीत होता है कि कामना स्थान-वाला दर्शन एवम् रामलीला द्वारा दर्शन दोनों एक ही हैं। भिन्न २ लेखकों ने भिन्न २ रीति से एक ही कथा को डेर फेर कर दर्शन किया है। ऐसा अनुमान करने से प्रथम बार दर्शन पाकर श्री रामचन्द्र को नहीं पहचानने के कारण गोस्वामी जी का पुनः दर्शन के लिये प्रार्थी होना एवम् दर्शन प्राप्त करना संयत बोध होता है, तो भी तोता पकाने की बात बिलम्ब ही रह जाती है। परन्तु इस के लिये आपत्ति उठाने से क्या लाभ? जिस की जैसी इच्छा हुई है कागज पर रगड़ बाँटा है। सारांश इतना ही है कि परम वयालु मन्तवस्तुल्य भगवान ने अपनी असीम कृपा से किसी बहाने दर्शन देकर गोस्वामीजी को कृतार्थ किया जो बात असम्भव नहीं।

महाशय्यों से यह भी सुना है कि गोसाईं जी की विनम्रभक्ति का यह पद "हे हरि कवन होस ताहि दीसै" (पद नम्बर ११७) रचने पर भी इन्हें धीराम लक्ष्मण तथा हनुमान का साक्षात् दर्शन हुआ था।

एकबार, दोबार, तीनबार चारबार, पाँचबार कति-कतुप-निकम्पन श्री लुनन्दन का साक्षात् दर्शन होने में आश्चर्य ही क्या! हम तो समझते हैं कि भक्ति, प्रेम तथा भजन के प्रभाव से गोसाईं जी को प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन प्रकियण हुआ करता था। प्रकृति की विचित्रविचित्र विप्रकारियों में से सदा विप्रकार ही को देखा करते थे आम्बुजिक (आम्बुजिक) दृष्टि से भी वे प्रत्येक पदार्थ को उसी का प्रत्यक्ष-कारक-स्वरूप वा प्रतिरूप देखते थे।<sup>१</sup> इन की पवित्र भक्ति ही ऐसी थी, इन का स्वच्छ प्रेम ही ऐसा था। श्री गुरु जानक जी का बचन है कि "सँसार में बहुत-से लोग उस का अग्नेयण करते हैं किन्तु कदाचित् काँ २ उस को पाते हैं क्योंकि तीव्र वैराग्य और एकाग्र अनुराग बिना मनुष्य भगवत्कृपा का भाजन नहीं हो सकता।" गोसाईं जी आपभिरुद्ध हो उसी तीव्र वैराग्य तथा एकाग्र अनुराग के साथ ईश्वराराधना में प्रवृत्त हुये थे। यह इसी सच्चे प्रेम का प्रभाव था कि वे ईश्वर को इस प्रकार सर्वत्र साक्षात् देखने लगे थे। उसी में यह शक्ति है कि अनहोनी का होमी कर दिखावे। कवि ने सब कहा है "जिसे देखना हो मुहास था न था जिसका नामो भिरां कहीं। सो हरेक बरें में हरक ने मुझे बिलषा बस का दिया दिया।"

गोसाईं जी को स्त्री, गुरु प्रेत, हनुमानजी तथा शिवजी सभी लोग इन के अनुराग तथा मुक्ति के प्रभाव ही से यथा समय उस नित्यधाम की ओर इन्हें अपसर करते गये एवम् बस प्रगाढ़ अनुराग हो के कारण हनुमान जी की इन पर सदा अनन्त कृपा बनी रही।

१ 'कि बचरमाने दिस मो की मुह दोस। हरेँ बीनी चिरां कि सजहते कल्प ॥' आरकी यही अवस्था थी।

## अष्टम परिच्छेद

### श्रीहनुमानजी विषयक दो-एक अन्य बातें

कहते हैं कि रामायण बालकाण्ड में गोसाईं जी ने जो लिखा है 'हरतं कथा हरि पद परि सीसा' उस में हनुमानजी की बन्दना की गई है क्योंकि हरि शब्द का अर्थ बाजर भी है। इस में आश्चर्य ही क्या है? मोस्वामी जी कुतूहल बोधे ही थे कि जिस के अन्वेषित असीम तथा अपूर्व अलुप्त ही आप को प्रमुखात्पद्मों के अन्वेषण इष्टान का अलम्ब मुखानन्द प्राप्त हुआ उसकी बन्दना भी नहीं करें। यही क्यों आप ने अनेक स्थानों में भी हनुमान की बन्दना की है, आप निरन्तर उन की बन्दना स्तुति किया करते थे। उनकी बन्दना में आप ने 'हनुमान बाहुक पुस्तक ही रच बाखी है।

ऐसा भी कबल है कि रामायण में 'बड़े सकल समाज' लिखकर गोसाईं जी अक्षयका गये कि इस समाज में तो भी राम, लक्ष्मण तथा सज्जनगण भी हैं ऐसा लिखना बड़ा अनर्थ हुआ। उस समय भी हनुमान जी की आकाशवाणी हुई कि "हको मत आगे लिख दो 'बड़े प्रथम जो सोइ बस।" कोइ १ ऐसा भी कहते हैं कि हनुमान जी गोसाईं जी का रूप धारण कर यह स्वयम् ही लिख गये थे।<sup>१</sup>

१ पत्नी ही क्या भी जगद्देव की कृत गीतगोविन्द के विषय में जी प्रसिद्ध है। प्रवाद है कि 'मिथेबाएलीखे इस अष्ट पदी में स्मरगरल अष्टपदं ममशिरसिमचडनं' के आगे जगद्देवजी ने 'इदि पदपञ्चकमुद्गारं लिखना बादा परन्तु प्रभु के विषय में पत्नी पद देने का उद्देश्य ग्राहस नहीं हुआ और आप लिखना छोड़ कर न्याय करने चले गए। अक्षयगतस अक्षयनोरथ पूरक भगवान स्वान स सीट हुये जगद्देव के भेष में आकर पहिले भोजन कर तब पुस्तक में इदि पदपञ्चकमुद्गारं लिखकर शयन करने लगे और जगद्देव जी की स्त्री भी भोजन करन लगी। इतन में जगद्देवजी स्वान कर के घर सीट आये। स्त्री को भोजन करते देखे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि यह इम का भोजन कराये पिता स्वयम् जस भी नहीं बीनी थी। अक्षय उन्हीं में इसका कारण पूछा। स्त्री ने सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब जगद्देव जी जाकर देखे ता पुस्तक में कहा पद लिखा हुआ है। तब आप ने सब सीताओं की कुतूहल मन समझ कर परमावन्द का प्राप्त हुये बरह आपनी पत्नी बन्धनी की धाडी का अष्ट भोजन कर आप न अयम को कृतार्थ माना।

धी जगद्देवजी का जीवनवृत्तान्त जानने के लिये भी भारतीयमुहुरण करितावली, धी भगवावप्रवार्हण अक्षयगत की डोक, धी इमशयगद्देव कृत अक्षरकर श्रीक बंगाल

रामायण में अनुपमंग प्रकरय देखने से सहाज ही ज्ञात होता है कि जिन्हें दुबोना या उगड़े गोसाईं की पहले ही बंधनहाम पर बिठा चुके थे। फिर रामादि के हूबने के मय से इन्हें लेखनी रोकने की क्या आवश्यकता थी! वे सोप तो बहाज पर बहाये नहीं गये थे। और खुपर का बाहुबल ही तो सागर था। सागर बहाज के संग में कैसे और क्यों हूबता!

यह क्या भी प्रसिद्ध है कि हनुमान की ओर अपना अनन्य श्रेष्ठ जान कर भी रामचन्द्र की ने उन से एक बार कहा था कि 'मैं बास्मीकीय रामायण का अनुसार कार्य कर रहा हूँ।' इस पर हनुमान की पत्थरों पर आपन मन्त्रों से रामायण लिख कर उसे रामचन्द्र के पास सही कराने को गये। भी रामचन्द्र ने कहा कि "हम बास्मीकीय रामायण पर सही कर चुके हैं, तुम उन्ही से सही करा ला।" बास्मीकीय ने हनुमान की निरन्त्रि संय देखकर विचारा कि उस के प्रचार से उनकी रामायण का गौरव नष्ट हो जायगा, अतएव वे हनुमान की की स्तुति करने लगे और बर माँगने की आज्ञा होने पर उन्होंने यही बर माँगा कि "आप अपनी रामायण को समुद्र में फेंक दीजिये।" हनुमान की ने कहा 'इस को तो मैं सागर में डुबो रता हूँ परन्तु कसिपुग में तुलसी नामक एक ब्राह्मण की विद्वान पर बैठ कर माया रामायण कहूँगा जिसके प्रचार से तुम्हारी रामायण नष्टप्राप्त हो जायगी।'

यह क्यापि सम्भव नहीं कि बास्मीकी की के समान महान कवि और प्रमुमुगायक एवम् हनुमान की के समान प्रमुमङ्क एक बहुरी की कीर्ति को जिस में रामचन्द्र की कीर्ति का कीर्तन किया गया हो सोप और नष्ट करने को यत्नवान हो। और परम स्वामी-मङ्क भी हनुमान की एही पुस्तक को जिस पर उन के स्वामी की सही हो चुकी हो नष्टप्राय कराने की मनसा करें।

फिर कलि में गोसाईं की तो कोई बहुरे ब्राह्मण नहीं हुये। स्वम् बास्मीकी की ही ने गोस्वामी की का शरीर धारण कर माया में श्रीरामचन्द्र की लीलाएँ बणन की और उन का गुणगान किया। उन्ही के द्वारा संस्कृत जाननेवाले तथा केवल माया जाननेवाले दोनों ही का उपकार हुआ। बास्मीकीय संस्कृत रामायण नष्ट भी नहीं हुई। संस्कृत का भी उस का आवर करत है, सर्वसाधारण भी परिश्रमों के मुख से उस को क्या सुना ही करते हैं, वह रामायण सोप क्यों हो और कैसे हो! जिस में रामयश बणन हुआ हो और जिस पर रामचन्द्र का हस्ताक्षर हुआ हो मला वह बस्तु भी कभी सोर हो सक्ती है।

पुनः हम प्रबन्ध के खेराक की सिराी हुई 'हरिचन्द्र' नामक पुस्तक पृष्ठ १५४ पाठ कीजिये।

जैसा भी कहते हैं कि भी सुरदास की ने सवा काक पद रचने का संकल्प किया था, किन्तु पञ्चदश हजार ही पदों की रचना करने पर उन का गोसोकदास हो गया। तब भीहृष्यकण्ड म आप पत्रों की रचना कर आपन मङ्क का संकल्प पूरा किया।

गोस्वामी जी का वास्मीकि जी का व्यवहार होना तो सभी के मुख से सुना जाता है । इस का प्रयोग भी प्रमाण पाया जाता है । श्री नामा जी ने भी स्वरचित मङ्गलाष्टक<sup>१</sup> में लिखा है ।

महिम्न पुराण<sup>२</sup> भी इस बात को सिद्ध करता है और स्वयम् गोस्वामी जी भी यह बात एक रीति से कह रहे हैं "अन्म अन्म जानक्रीनाथ के गुणमम तुलसी दास गानो ।"

हो यह संका हो सक्ती है कि वास्मीकि जी मुहम्मदीय होकर फिर क्यों शरीर भारी हुये । श्री सीताराम शरण मगवानप्रसाद जी इसके उत्तर में लिखते हैं कि "ईश्वर को तथा साकार मुहम्मदी को ऐसी सामर्थ्य होती है कि पूर्वज से ज्यों के त्यों बने भी रहे और अपने सत संकल्प से क्रान्तर तथा व्यवहार भी धारण कर सें ।" तुलसी जगत के हितसाधन की इच्छा उन्हें फिर इस संसार में आने को और अपने ऊपर कष्ट उठाने को बाधित करती है । सृष्टि की स्थिति के रद्द रखने वाले निबन्धों में विष्णु तथा इत्यन्त अपस्थित होने से जगत को दुखी देख कभी कल्याणमिमान मगवान स्वयम् मित्र १ रूप धारण कर एवं स्वधर्म्य द्वारा बर्मानुष्ठानाचार की शिखा से सांघारी स्त्रीयों का कल्याण करते तथा धर्म संस्थापन करते हैं एकम् कभी अपने परम प्रिय मङ्गल ही को भेजकर यह कार्य साधन करते हैं । क्योंकि सत्त्व आदरा बुद्धि देने शक्ति-सम्पन्न होते हैं कि यत्प्रधान व्यक्ति और जाति में भी पुनः जीवन प्रदान कर उसे सत्त्व स्वाम पर प्रतिष्ठित कर देते हैं ।

और हनुमान जी गोसाइ जी के भिक्षाग्र पर बैठे हो ना नहीं, अपना आकाशवाणी द्वारा मङ्गल बधाये गये हो या नहीं कदा स्वयम् आकर लिखते गये हो या नहीं परन्तु बन की हवा से ही समायस्य की रचना हुई इस में सन्देह किंच को हो सक्ता है । बिना वैदिकता के कोई कार्य भी नहीं होता यह हिन्दुत्व ही धारणा है । अग्निजी कवि शोष भी मिश्र (Mishra) की मर्मा (करा) ही से कविता करने में समर्थ होते हैं ।

परन्तु हम हनुमान जी सम्बन्धी पूर्वकथित बातों को धारहीन मनोव्यक्त ही समझते हैं । अन्य लोगों का ऐसा विचार हो बैसा समझ करें ।

१ कसिपुत्रित जीव निस्तार हित वासुधैकि तुलसी भयो । प्रेता काव्य विवन्ध करी सन कादि समापन । इक अक्षर ऊद्धरै मरु हृषादि परावन । अथ मन्थन मुल क्षेत्र बहुरि लीला बिलारी । रामचरन रम मन्त्र रदन निसि दिन मत्पारी ॥ संसार अवार के वार को सुगम बन बडका कबी । कसिपुत्रित जीव निस्तार हित वासुधैकि तुलसी भयो ॥"

२ वास्मीकिमुसामी नामः कहीदेवी । मणिकर्त ।

रामचन्द्रका साध्वी भाषास्वैय कतिवृत्ति ॥"

## नवम परिच्छेद

### काशी वास वृत्तान्त

यह बात उपर कही जा चुकी है कि बैराम्य जन्मने पर गोसाइ जी काशी में रहने लगे थे। किसी र के मत से पहिले भी अक्षय जाकर तब से काशी आये और किसी के मत से काशी आकर तब भी अक्षय गये और वहाँ इन्होंने रामायण लिखना आरम्भ किया किन्तु वहाँ की कुछ असह्य अनरीतियों देख कर आप काशी आकर रहने लगे। दूरत्यागी होने पर ये पहिले कहीं गये हों परन्तु काशी में इन का विशेष रहना पाया जाता है। और वही से इन्होंने साकेत की भी यात्रा की है।

यद्यपि ये मनोप्या से काशी चले आये थे तथापि काशी में भी ये निरिचन्त नहीं रहने पाते थे। इसी से काशी में भी कई बार एक स्थान को परित्याग कर दूसरे स्थान में श्रुं रहना पडा था। काशी में पंडितों ने भी इन्हें नीचा दिखलाना चाहा, गोसाइकों न भी इन से विरोध किया और थोर, बाएदास भी इन क पीछे पड़े। परन्तु विज क रक्षकार भी रामरूप परमरूप हों उन का किसी के बिपाके क्या हो सकता है! 'बाल न बध करि सदै जो जग बेटी होय' अस्मानित करना या क्षति पहुँचाना तो स्र रहे अंग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ के कवनानुसार "जो आप उपाहास करन हिन नमन लगे पद सोऊ।" काशी में भी विरनेस्वरनाथ की ह्वा से इन की मुभीर्जितना दिनदिन लहलहाती चली और सुगरसुगय चतुर्दिक फैलती ही रही।

कैत्रिये एक बार एक हत्यारा प्रमण करता, राम राम मुख स कहता भीख माँगता स्वामी जी के स्थान पर आ पहुँचा आर बोला— 'राम! राम! हत्यारे को भीख हाल दीजिये।' गोसाइ जी उस क मुख से भी राम का नाम सुनकर प्रसन्न बित्त हुटी स निकल आये और इन्होंने उस से उस का इतन्त पूछा। उसने अपना सब हाल कह सुनाया। इन्होंने कहा कि— 'जब तुम इस प्रकार स्थानिदुष दौनतापूबक हमारे प्राणप्रिय भी राम का नाम उच्चारण करत हा तो तुम शुद्ध हो गये।' और इन्होंने उने अपनी हुटी में से जाकर और अपने साथ बैठाकर ठापुर जी का भोग लगाया, प्रसाद मोत्रन करवा। हत्यारे को साथ थिलाने की वर्षा सब म चैत गई। यह बात वहाँ के ब्राह्मणों को जो ईर्ष्याइ इन से उद्धारण

१ "Those who came to scoff remained to pray"  
—Goldsmith.

२ 'मन्मथाहा रामरसिकावली' तथा पं० 'वासाप्रसाद' जी क अनुसार निज इन्द्रबिषों से बात बाहर किये जाने पर एक हत्यारे ने गोस्वामी जी के पाय धरना कुछ

गोस्वामी श्री का वास्मीकि जी का अक्षरतार होना तो सभी के मुख से झुना जाता है । इस का अर्थों में भी प्रमाण पाया जाता है । श्री नामा श्री मे श्री स्वरचित मङ्गलाष्ट<sup>१</sup> में लिखा है ।

मविष्य पुराण<sup>२</sup> भी इस बात को सिद्ध करता है और स्वयम् गोस्वामी जी भी यह बात एक रीति से कह रहे हैं "जन्म जन्म आपकीभाष के गुणयन तुलसी दास पायो ।

हैं यह शक्य हो सकती है कि वास्मीकि जी मुङ्गलीन होकर फिर क्यों शरीर भारी हुये ? श्री छीताराम शरण मगवानप्रघाट भी इसके उत्तर में लिखते हैं कि "ईश्वर को तथा धाकर मुङ्गलीनी को ऐसी सावर्ण्य होती है कि पूर्वकृप से क्यों के त्यों बने भी रहें और अपने सत संकल्प से ह्यानंतर तथा अक्षरतार भी बारण कर लें ।" दुखी अक्षर के हितसाधन श्री हनुमा उन्हें फिर इस सघार में आने को और अपने ऊपर कष्ट उठाने को बाधित करती है । यहि श्री स्थिति के एक एकने बाधे नियमों में विभ्न तथा हलचल उपस्थित होने से अगत को दुखी बैक कमी कवद्यानिधान मगवान् स्वयम् निश्च २ रूप बारण कर एवं स्वकर्म्य द्वारा बर्माजुहताचार की शिक्षा दे सांघारी जीवों का कल्याण करते तथा जन्म संस्थापन करते हैं एवम् कमी अपने परम प्रिय मङ्गल ही को मेवकर यह कार्य साधन करते हैं । क्योंकि अपने आशु पुत्र्य ऐसे शक्ति-सम्पन्न होते हैं कि सृष्टमान व्यक्ति और जाति में भी पुनः जीवन प्रदान कर उसे उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित कर देते हैं ।

और हनुमान जी गोघाट जी के विज्ञान पर बैठे हों वा नहीं अथवा आकाशवाणी द्वारा भक्तमूल बताते गये हों वा नहीं, अथवा स्वयम् आकर लिखते गये हों वा नहीं परन्तु उन की कृपा से ही रामायण की रचना हुई इस में सन्देह किस को हो सकता है ! बिना ईश्वर के कोई कार्य भी नहीं होता यह हिन्दुमान श्री पारथा है । अग्निवीर कवि लोग भी मियुब (Miss) की मर्ती (कृपा) ही से कविता करने में समर्थ होते हैं ।

परन्तु हम हनुमान श्री सम्बन्धी पूर्वकथित बातों को साखीन, मनोकविष्ठ ही समझते हैं । अन्य लोगों का बेसा निचार हो बैसा समझ करें ।

१ "कतिबुटिक जीव विस्तार हित वाक्वर्मीकि तुलसी भयो । प्रेता काव्य निबन्ध-  
की अत कवि रसायन । इक अक्षर कहरै अष्ट ह्यादि परायन । अत्र भक्त्य मुख देव  
बहुरि बीसा विस्तारी । रामचरन रस मत्तरत निधि दिन मत्तधारी । संसार अपार के  
धार को सुयम क्य नदका लबी । कति बुटिक जीव विस्तार हित वाक्वर्मीकि तुलसी भयो ।"

२ वास्मीकिस्तुलसी दासः कर्तृदेवी । महिष्यति ।

रामचन्द्रकृपा साखीं मापाक्येच करिष्यति ॥"

## नवम परिच्छेद काशी वास वृत्तान्त

यह बात छपर खरी का बुझी है कि बैराम् बन्मने पर पोसाई की काशी में रहने लगे थे। किसी २ के मत से पहिले भी कब्रण जाकर तब ये काशी आये और किसी के मत से काशी आकर तब भी कब्रण गये और वहाँ इन्होंने रामायण लिखना आरम्भ किया किन्तु वहाँ की कुछ असह्य जनतीतियों देख फिर प्राय काशी आकर रहने लगे। छहत्यागी होने पर ये पहिले खरी मये हों परन्तु काशी में इन का विरोध रहना पाया जाता है। और वहाँ से इन्होंने साफ़ेठ की भी यात्रा की है।

यद्यपि ये अनोप्या से काशी चले आये थे तथापि काशी में भी ये निश्चिन्त नहीं रहने पाते थे। इसी से काशी में भी कई बार एक स्थान को परिव्रजण कर दूसरे स्थान में इन्हें रहना पड़ा था। काशी में वदितों ने भी इन्हें नीचा दिखलाना चाहा, गोसाईंजी ने भी इन से विरोध किया और बोर, बाण्डाल भी इन के पीछे पड़े। परन्तु जिन के रक्षकारे भी रामदत्त पवनपूज हों उन का किसी के बिगाड़े क्या हो सकता है। 'बाल न बंध करि सके जो जग बैरी होय।' अस्मानित करना या क्षति पहुँचाना तो हर रूढ़े मंत्रजी यदि योग्यदिनय के कथनानुसार 'जो आए उपहास करन हित नमन लग पद सोऊ।'<sup>१</sup> काशी में भी विस्फेदरनाथ की हवा से इन की सुधीरिक्तता दिनदिन लहलहाती जाती और सुयशसुगण अतुर्दिक फैलती ही रही।

देखिये एक बार एक हत्यारा प्रमथ करता, राम राम मुख से कहता मीख मंगला स्वामी जी के स्थान पर आ पहुँचा और बोला—'राम! राम! हत्यारे को भीख हाल दीजिये।' गोसाईंजी इस के मुख से भी राम का नाम सुनकर प्रथम पित्त जुटी से निकल आये और इन्होंने इस से उस का वृत्तान्त पूछा। उसने अपना सब हाल कह सुनाया। इन्होंने कहा कि—'जब तुम इस प्रकार भ्रान्तिभुत हीनतापूर्वक हमारे प्राणप्रिय भी राम का नाम उच्चारण करते हो तो तुम शुद्ध हो गये।' और इन्होंने उसे अपनी जुटी में से जाकर और अपने साथ बैठाकर ठापुर जी का भोग सगाया, प्रसाद भोजन कराया। हत्यारे को साथ पिढाने की बर्बा सर्वत्र फैल गई। यह बात वहाँ के ज्ञानियों<sup>२</sup> को जो ईर्ष्यावश इन से अक्षर

१ "Those who came to scoffier remained to pray"  
—Goldsmith.

२ 'मन्त्रमात्रा रामभिकावर्ती' तथा पं० ज्वालाप्रसाद जी के अनुसार निज बुद्धिमियों से जान बाहर बिबे जाने पर एक हत्यारे ने गोस्वामी जी के पास अपना दुख



देव रखते थे बहुत बुरी लगी। इसे महा कर्म समझकर उन लोगों ने समा की घोसाई जी को वहाँ बुलवा मेवा और इन से प्रश्न किया कि 'आप न ऐसा ब्रह्मिष्ठ और कर्म का कर्म क्यों किया?' इन्होंने उत्तर दिया कि "महाराज! शारदा होकर भी आप लोगों न शारदा का नवार्थ मर्म नहीं जाना। आप लोग उस की मर्णा बटाने लगे हैं; क्या कर अपनी पोषिका पधार कर बैकिये तो उन में 'राम नाम का क्या माहात्म्य लिखा हुआ है। इस हत्यारे का हत्यापाप यदि रामनामोच्चारण से भी नहीं छूटा तो रामनाम की महिमा क्या? इस पर भी किस प्रकार आप लोगों को इसका पापक्षय होने का विश्वास हो वह करते आये, मैं करने को प्रस्तुत हूँ।' उन लोगों ने कहा कि "रामनाम की महिमा पोषिकों में लिखी है लकी परन्तु इस में प्रावरित्त नहीं किया। कष्टका अब यदि इस के ह्राप का हुआ हुआ पाक भी विश्वास की के लन्दी मोक्षम करें तो हमलोगों को इस के हत्यापाप से मुक्त होन का विश्वास हो।" निदान ऐसा ही हुआ। प्रसाद तैयार कराकर हत्यारे का ह्राप से नन्दी के सामने रखवाया गया और गोसाई जी ने नन्दी के प्रति कहा कि "रामनाम के प्रताप से मर्ति को छरस कर इस हत्यारे का प्रसाद पाइये क्योंकि श्री रामनाम का माहात्म्य आप के समान में नहीं जानता हूँ।" यह सुनते ही नन्दी प्रसाद का मये और ब्राह्मणवर्ग लम्बित हो अपने ९ कर सिवारे। यहाँ श्री विश्वनाथ की के पत्नर के बैस ने उन पंडितों को "लिन छोड़ा पद पत्नर" सिद्ध कर दिया। सब है 'न मोहकिक बबद न हानिभमन्। पारपाये बरो कित्तये बन्।' अनुवाद— होय न बन्दुर न पंडित लानी। वह पशु, पुस्तक पीठ लवामी। अब शारदा पद कर उस के नवार्थ मर्म का ज्ञान नहीं हुआ तो उस से नहीं पकना ही छत्त है।

हाँ! हाँ! किस समय जब आप एक मंषी रामनीमी के अवसर पर या किसी अन्य समय कहीं मैं आया था एवम् अवलम्बि जान कर इन्होंने मे उसे स्नेहपूर्वक कापी से लपाया था उस समय फिर लोगों ने समा करने का चाहस किया था या नहीं, यह बात हमें कोई प्राचीन लेखक स्पष्ट नहीं बताते। हत्यारे का ह्राप से मर्ति तो कम अपवित्र नहीं था। जो हो इस हत्यारे की कथा से यह स्पष्ट फलित होता है कि अपने दुर्मों पर स्वच्छन्द से परवात्तप करने तथा म्हाति मानने से प्रसु अवस्त दनादि कर अपराध समा करते हैं। गोसाई जी ने इस उदाहरण से नहीं सिद्ध कर दिया।

पंडितों ने गोस्वामी जी हृत रामचरित मानस (रामायण) के प्रचार में बाधा बाधने की भी चेष्टा की थी परन्तु वे उस में भी हृतकार्य नहीं हुये। इस का अनिस्तार बसुन अन्वय किया जायगा।

फिर बहुत से अवलम्बि पुण्यों में इन की निन्दा कर इन से सर्वसाधारण का मन

विभेदन किया कि इन्होंने मे उस के अनुभवों की बुलवा कर कहा कि रामनाम करने से इसका पाप छूट गया किस प्रकार से तुम लोगों को इस का विश्वास हो लो लकी!" तब उन लोगों के करने से नन्दी को पदा दिया गया और वे लसे जा गये।

किसी के करने से नन्दी को पदा या कोई अन्य पदार्थ दिया गया हो, परन्तु इस परिपा में गोस्वामी जी पाप तो हा गये न।

करने का उपयोग किया था। किन्तु उस में भी सफलता प्राप्त नहीं हुई। रानी कमल कुँवरों के सेवानुसार एक पंक्ति में इन के निधन का भी प्रयोग किया था और इन्होंने 'बाहुक' के द्वारा उस का निवारण किया।

हुलसी राम जी ने सर्व मङ्गल में लिखा है कि एक तांत्रिक ने इनकी मृत्यु के निमित्त बप किया था और भी शंकर की स्तुति में इन के एक मन्त्र बनाने से तांत्रिक का उपयोग विफल हुआ। किसी ने मारणमंत्र का प्रयोग किया हो और बाहुक या मन्त्र किसी से उलका निवारण हुआ हो गोसाईं जी की जान तो बची। पही बड़े आनन्द की बात है। नहीं तो रामायणका अमृत्यम रत्न हिन्दी-साहित्य-अपहार में कहाँ से इतिगोचर होता।

यह भी कहा जाता है कि एक बार क्रूर प्रकृति के कई एक मनुष्य इन के प्राणघात की मनसा से एक बगह इन के आने-जाने की राह में क्षिप कर देते थे और इन को घाते देख लगे लोगों ने इन पर आक्रमण करना बाहा था। परन्तु इसी क्षण इतुमान जी की विद्याल मूर्ति देख सबों का हृत्पिंड कम्पासमान हो गया और सब के सब मममीत हो बहाँ से भाग गये। कहाँकि इसी घटना को प्रियसम साहब ने रात को गोसाईं पर चोरों का आक्रमण लिखा है। उसका वर्णन आगे मिलेगा।

ऐसे ही लोगों से दुखित तथा पीड़ित होकर इन्होंने कई एक कवितों की भी रचना की थी। तो भी वे लोग अपने कुर्म से बात्र नहीं आये। और इन्हें सताने पर कठिण ही रहे। सब है— 'हासिप को एक दम न छेहट दे अहान में। रंको हमर है जान है सब तक कि जान में।'<sup>१</sup>

परन्तु सब लोचों का सब सत्त विफल होता गया तब अन्त में द्वार मानकर लोगों ने किसी प्रकार इन्हें कसरी से बाहर करना बाहा और इसी विचार से कई एक कुत्रिचारियों ने इन के पास आकर यह प्रार्थना की कि "आप कसरी सोच कर कहीं अन्त नसे आये।" गोसाईं जी इस पर सम्मत हो गये और भीचे लिखा हुआ पद बना कर एवम् उसे भी विरचनाप जी के मन्दिर द्वार पर छाट कर आप प्रातःकाल बहाँ से बस बस —

"मुरसरि सेइ त्रिपुरारि हूँ तिहारै भ्राम गमाईं को नाम लै लै उदर भरत हूँ।  
हुलसी न बचे योगलैत ना काहु सों कहु लिम्बी न मलाइ भास सोचो मा करत हूँ ॥  
पठहुँ पे जुरि के जोरामर ओ जोर करै ताफ जोर धेय दग्गार गुदरत हूँ।  
पाइ के उराहनो उराहनो न दीजे मोहि कालि कदा कामीनाय कईं नियरत हूँ ॥

१ गोसाईं विरचित एक पुस्तक है। पुस्तकों की समाप्तिपदना एगिय।

२ बैरवनाथदास ने मन्दिर में रग कर जाना लिखा है। परन्तु यदि मन्दिर सुसा रहने पर रघुने हा जसी समय वा मन्दिर बन्द होने के पूर्व पुजारी आदि ठम अचरम देख लेते और मन्दिर बन्द होने पर तो उस में रगना ही असम्भव था। घतएव द्वार पर वा दिवार पर छाट ही देना ठीक जान पड़ता है। हाँ यदि टिबाइ की कोई मगिय वा किसी तिरककी से जमे भीतर गिरा दिचे हों तो यह बात न्यारी है पर बन्द रगना नहीं कदमावता।

रानी कमल कुँवरी ने विरचनाप को पदकर मुतना लिखा है।

प्रातःकाल जब वे पंडितगण श्रीविरवनाथ जी के दर्शन के लिये गये तो अक्षरमात्र झटक बन्द हो गया और ऐसी सकोप बाधी हुई कि 'तुम लोग एक हरिजन को कष्ट देने और अपमानित करने पर कटिबद्ध हुये हो इस का फल तुम लोगों को अमरत्व मोगना पड़ेगा। यदि तुलसीदास फिर आये तभी तो कुछ है सम्भवता नहीं।' यह बाणी सुनते ही लोगों ने दीवकर गोसाईं जी को राह में भेरा और वे बहुत अनुग्रह विनय करके उन्हें कारी में केर लाये। कर्मफल तो विरूप्य मोगना होता है। यदि आकाशवाणी न भी हुई होती और न भी हुई हो, तो मात्र तीन सौ वर्ष पीछे गोसाईं जी के बरिष खेडखों ने जो उन महापुरुषों के पुण्यबहार का वर्णन किया या कर रहे हैं वह क्या कर्मफल मोगना नहीं करलायैगा।

कारी के पंडित ही लोग गोसाईं जी को कष्ट नहीं देते थे। परन्तु पूर्ववर्ती खेडखों के अनुसार कारी के अंतबास कासमैरव भी गोसाईं जी के कमी समझी बंधना नहीं करने से अप्रित होकर एक बार इन्हे मम दिखलाने और कर्म पहुँचाने के लिये सक्त हुये थे और उस समय भी श्री हनुमान जी ने वहाँ उपस्थित होकर उन का हक्का-बक्का बन्द कर दिया था; और पीछे श्री शिव जी ने श्री मैरव जी से कह दिया कि 'तुलसीदास जी एक सम्पन्न हरिजनत हैं, तुम उन्हें कदापि दुख मत दो।' रानी कमला कुँवरी के अनुसार हनुमान जी और कासमैरव में वार्तालाप भी हुआ एवम् हनुमानजी ने श्री शिव जी को भी उस का समाचार बताया था।

'भक्तमाला रामरसिकानली' में श्री महाराज खुराज सिंह कह रहे हैं कि 'मैरव जी ने गोस्वामी जी की बाँह में पीडा दी थी और गोसाईं जी ने (पूर्वोक्त) 'बाहुक' से उस का निवारण किया। और शिवजी ने भी मैरव को इन्हीं पीडा देने से निषेध किया एवम् स्वप्न में गोसाईं जी को भी मैरव की स्तुति करने का आदेश किया।'

शिव जी ने दोनों को समझ बुझकर अच्छी पंचायती थी। परन्तु हम कहते हैं कि पशुपति के एक मुख एक एवम् सिद्धीठ विरवनाथपुरी (कारी) के अंतबास मैरव जी को सम्झन और असम्झन पहचानन की भी बोझता न हो इतनी भी खबर न हो कि गोसाईं जी अपने हरिजनत थे ना नहीं वह बड़े आरवर्ण की बात है, एवम् स्तुतिकी पूछ (रिखत) नहीं पाने से सांसारिक किसी २ अंतबास के समान एक सम्झन तथा निरपराधी छात्र को पीडित करने पर सक्त हो पावे नह भी जन के विषय में करने का साहस हम को नहीं होता। हमारी समझ में मैरव को हनुमान जी से पीडा दिखलाने ही के निमित्त किसी ने इस कथा की सृष्टि की है।

फिर रानी साहवा 'बाहुक' से एक पंडितव्रत गोसाईं जी के निवन का प्रयोग निवारण करता है और महाराज साहब मैरव अंत-बन्धित बहू की पीडा। यह विरोध कथन भी सन्देशजनक ही है।

महिम्न तथा देवदत्त उपातों की कथा तो हो चुकी अब चोरों का इत्तम सुनिने।

गोसाईं जी की यह बान दी कि अपनी बीज वस्तु अपने निवासस्थान में वहाँ का वहाँ कोककर सी रहते थे। गोसाईं जी की सेवा में बहुत पूजा करते बान कर एक रात बान कई

भोर १ भोरी करने की इच्छा से इन की कुटी पर पहुँचे तो क्या देखते हैं कि एक स्वाम सुन्दर वृद्धे गौर सलोने बालक हाथ में धनुषबाण लिये पहरा धर रहे हैं। रात्रि में वे सब जब २ और कुटी की जिस घोर पये उन मनोहर बालकों को पहरा देते देखा। पूर्व संस्कार के उदय होने से एवम् बारम्बार युगलकिशोर का दर्शन पाने से उन सबों के मन की मसीनता बूढ़ हो गयी। प्रातःकाल उन भोरों ने गोस्वामी जी के पास रात की घटना क्यों की त्यों बर्णन की और पूछा कि 'महाराम ! ने दोनों मनोहर किशोर जो आपके बहाँ रात को पहरा देते हैं कौन हैं ?' यह सुनते ही गोसाईं जी यह जान कर कि उनके लिये धी प्रभु नित्यप्रति ऐसा कष्ट उठाते हैं विह्वल भित (भित्त) हो गये। नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगा एवम् अतुतापपूर्वक यह सोचकर कि न कोई पदार्थ रहेगा और न उसके लिये प्रभु को कष्ट उठाना पड़ेगा। इन्होंने अपने पास का पदार्थ ज्ञानार्थों को दे दिया। रात को वे मनोहारिणी मूर्तिमौ एवम् भोर की यह लीला देख कर भोरों का भी ज्ञानपटल उभर गया। वे सब भी अपने कन्यापार्षा गोसाईं जी के पैरों पर गिर कर इन के शरणागत हुए। गोसाईं जी न बूझा कि "तुम्हीं लोग धन्य हो जिन्होंने बिना परिश्रम प्रभु का साक्षात् दर्शन हुआ।" ली जी ने सब इन के शिष्य हो यौम्यकर्म परित्याग कर राममनन में लग गये। ईश्वरकृपा ने ज्ञान ही में भोरों को साधु बना दिया। धन्य ईश्वर को कृपा तथा महान्तस्सखा ! शिव पाठकचन्द्र ! यदि इन लोग भी स्वच्छ हृदय से प्रेमपूर्वक ऐसी प्रार्थना करते रहें—

“अति सुन्दर रूप अनूप महा छवि कोटि मनोज क्षमावनहारे ।

उपमा न कई सुखमा के सुमन्दिर मन्दिर हूँ के यथावनहारे !!

दिननायक हूँ निसिनायक हूँ मदनायक के मदतावनहारे ।

सायरे राजकिसोर यसो भित भोरन हूँ के भोरानवहारे ।।”

तो क्या वह कन्यानिधान भयवान हमलोगों पर ह्याहृष्टि नहीं करेंगे ? और यों तो सर्वदा हमारी रक्षा करते ही हैं बाहों यों ही करें चाहे कोई विशेष रूप धारण कर क करें ।

अपने साथ लोगों का ऐसा २ कुम्भबहार होने पर भी गोसाईं जी काशी में टहरे रहे । वहाँ पर आपने जो कई एक बमस्कार देखाया था अब उन का दर्शन किया जाता है ।

१ प्रियमन साहब न यह कथा भी लिखी है कि एक बार अम्भरा रात में घर आते समय भोरों ने इन्हें रास्ते में रोका था । परन्तु गोस्वामी जी न अचल तथा निर्भीक भाव से हनुमान जी का स्मरण कर यह दोहा पढ़ा :—

‘बापर रामवि के बडा रजनी चहुँ किसि भोर ।

बलत इचानिधि देगिये, करि कैयरी किसोर ।।

बस गोसाईं जी के तुदरान पर हनुमान जी प्रकट हो चारों को मार भगावे ।

उपयुक्त दोहे के विषय में एसा भी कहा जाता है कि हनुमान काठक पर रहने के समय घसईपुर के तुनाहों से जाइँ इस आकर इन्होंने इस की रचना की थी । परन्तु यदि तुनाहों के कारण यह दाहा बनाया जाता तो रजनी तथा भोर की बात इस में कैम आती ? हाँ, यदि वे तुलाह इन के बहाँ भोरी भी करते ही तो हो सकता है ।

एक दिन शीतकाल में गोसाईं जी गया स्नान कर के काठी भर पानी में खड़ा हो प्रभु का ध्यान कर रहे थे। उसी समय कोई बेरया परमीने के बस्त्रों से ढकी हुई मित्र समाधी के साथ आई जा रही थी। इन की दृष्टा देख भक्ति हो बड़ी ठठक गई और ममही मन करने लगी कि 'वह विविध बीज है जो इस जग में स्नान कर फिर पानी ही में नेत्र बन्द किये खड़ा है। क्यों मेरा वह कुछ आमन्य ? और क्यों इसकी वह दृष्टा ?' इतने में ध्यान से निरत होकर बाबा अठ हाथ में लिये गोसाईं जी बाहर किनारे पर आये और उस जल को उम्होंने अपने पहनने के बस्त्र पर छिटा। कहते हैं कि जल की कई एक बौद्धि उस बेरया के शरीर पर भी जा पनी तिस से उस की दिम्बरदृष्टि हो गई और उसे नर्क स्वर्ग का कुछ कुछ प्रादुर्भूत दृष्टियांकर होने लगा और उसी दम वह अपनी सब बीज बस्तुएँ समाधी को लेकर आप बिरल हो गयी। परन्तु वह समाधी भी बिरल होकर अन्तर्दृष्टि बन गया। सारांश यह कि गोसाईं जी के दर्शन से एक बेरया और उस का समाधी भगवन्मूर्ति के रंग में रप गये।

सदसंगति और संतदर्शन की महिमा अगार है। जहाँ अपने महात्मा रहते हैं निस्सन्देह वहाँ के अष्टपायु में प्रमुन्नीम-उपमानवासी कुछ विविध शक्ति का जाती है फिर संतजनो का पूजना ही क्या है।

एक बार एक नाममात्र का अस्तुधिया पत्नीर 'अस्तुध बगाता हुआ' अर्थात् 'अस्तुध २ करता हुआ गोसाईं जी के पास पहुँचा। उससे गोसाईं जी ने कहा:—

“इस लाल, हमें, हमार, लाल, हम हमार के बीच।

तुलसी अस्तुधिया का लाल, रामनाम कहु नीच ॥”

वह सुनकर उस को भी रामनाम का अनुयाय हो गया। अर्थात् इन्हों ने अपने सपत्नी से एक अस्तुधिया को शीघ्र ही वैष्णव बना दिया।

कहते हैं कि एक तांत्रिक दृष्टी ( या अष्टकी) बेशादन को बना था। उसके परोप में कोई बैरागी उस की स्त्री को भगा ले गया। दृष्टी को दृष्टिही सिद्ध थी। उस के द्वारा उस ने सम्राट को पकड़वा मंगला और उन से सब वैष्णवों की माया-कंठी उतारने और तिलक मिटाने की आज्ञा करा थी। जब राज्यधर्मवादी-मण्य वह दृष्टीय कर्म करते गोसाईं जी के स्नान के निष्ठत पहुँच तब वहाँ एक भारी भक्त्य मूर्ति देख और मयभीत हो सब के सब भाग गये और गोसाईं जी के प्रताप से डरती हुई कंठीमाया आप से आप खोगों के पास पहुँच गयी।<sup>१</sup>

१. पं. रत्ननाथ शर्मा की रामायण में बैरागियों तथा योगियों में अंगड़ा होना और योगियों के गुह्य का भोगवत्त से सम्राट को बुलाना लिखा है।

'अस्तुधमाया रामरसिध्वरती' तथा पवित्रत स्वाहामसाद की की बड़ी रामायण में बादाहाही सेना का उचकर गहरा भी में दूर जाना अष्टकी का लखिर भगत करते किसी प्रकार किनारे पहुँच कर अमाप्रार्थी होना, गोसाईं जी के आज्ञानुसार वर्ष भर साधुओं की अष्ट लालकर उस का एक रामदास बन जाना एवम् उसके सङ्ग पश्चिमी का भी— पवित्राचारिणी हो जाना लिखा है।

आज भी तेजस्वी और प्रतापी महत्तमाओं के सामने बड़े उत्पन्न उत्पाती भ्रम्याचारियों को कोई अनुचित काय करने का साहस नहीं होता। उन के समीप बड़े २ भयानक हिंसक अन्दु भी अपना खू स्वभाव परित्याग कर देते हैं।

इस क सिवान हम यह समझते हैं कि इस आकाशयिका को उस कास से अक्षय कुछ सम्पन्न है जब कि जहंगीर बाघराह की आज्ञा से बनारस में गन्दरो के तोड़े जाने का उत्पन्न हुआ था। वह अत्याचार आरम्भ होने का आदि कारण कोई दंडी हुआ हो तो सन्देह नहीं।

उसी उत्पात के समय उत्पाती राजकर्मचारी नदि वैष्णवों की कंट्रीमाला भी उतारने लग गये हों और कोई दंडी या योगी पन की सासक या किसी बैरामी के सप्त बर ही के कारण कुछ भूट सब बातें सम्राट के कानों तक पहुँचा कर ऐसा कार्य करने का कारण हुआ हो आगे २ बल कर वैष्णवों का स्वान वतछाता बला हो और गोसाईं जी के सामने जाने पर उन के तेज प्रकाश से उन सबों को भाग बनने का वा कोई अनुचित कार्य करने का साहस न हुआ हो बल् गोसाईं जी के उपदेशमयित बातों को सुन कर भ्रम्याचारी सब भी अपने पृथिन काम से रुक गये हों तो इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसा होना एषम् ज्ञानेन्द्र बाबू के सेवानुसार कारी के सुबेदार से सहायता लेनी सम्भाविक और स्वामाविक है। उसी पोर उत्पात निवारण के लिये कदाचित गोसाईं जी ने भी विरवनाथ से भी बड़ी प्रार्थना की थी।

भी गङ्गा जी की स्तुति करके एक जीविकाहीन दुखी पंडित को कारी के उस पार कुछ भूमि छोड़ना देने (अर्थात् दिवाराभूमि उसे दिसवा देने) की भी बात सुनी जाती है। गङ्गा जी की आज्ञा और गोसाईं जी की स्तुति के प्रभाव में तो सन्देह नहीं परन्तु क्या उस समय भूमि के बन्दोबस्त का कोई नियम नहीं था। जो कहा चाहता था वहाँ की भूमि अपने अधिकार में कर लेता था। हम तो यही कहेंगे कि गोसाईं जी ने उस विचार दुखी माझण पर दबा कर किसी यत्न से गङ्गा पार को फिर नहीं बनी हुई भूमि उसे दिसवा दी। तिन क सेवक तथा मित्र दिखली के बड़े २ राजकर्मचारी हों उन को ऐसा काम कर बन में कठिनाई ही क्या हो सकती थी और व एक दखि दुखीपित माझण का कुछ दूर करन में यत्नवान ही क्यों नहीं होत।

राजी कम्मल कुँवरी के ग्रंथ में सम्राट का ससन आकर गोसाईं जी का नाम स्थान धरना और बड़ी दनुमान जी को देखते ही प्राण छोड़ भागना एषम् फिर सम्राट का इन के पास आकर अपराध समा कराना कहा गया है।

बाबू शानेग्रमोहन दत्त ने बदायूँ तथा वैष्णवों में विवाद होने एषम् बदायूँतियों का कारी के सुपदार से सहायता सन की बातें कही हैं।

बात जो कुछ हो परन्तु खेपकों ने मित्र २ रीतियों से सम्राट की दुगति करान में बुद्धि नहीं की है।

१ देखिय कवितावली, उत्तर कांडव।

बैजनाथ दास और रानी कमल कुँवरी की पुरतकों में एक और दरिद्र ब्राह्मण को, इन के शरणाग्र हो भी राम भवन में प्रवृत्त होने पर, श्री हनुमान भी श्री कृपा से बहुत सा द्रव्य प्राप्त होने की बात देखी जाती है।

बिनकुट में भी आप ने एक मनहीन ब्राह्मण के दुःख विचारण का यत्न किया था। कामनावा से भी एक ब्राह्मण की सहायता कराई थी। इन लोगों का हाल आगे प्रकट होगा।

गोसाईं की ब्राह्मणों के शुभचिन्तक ने यह बात हम लोगों को रामायण से भी विदित होती है। परन्तु 'केशवदास' के समाप्त ने किसी विरौप श्रेणी के ब्राह्मण के 'पक्षपाती नहीं थे।

कहते हैं कि एक भाद्र के कारी आकर इन श्री सेवा में एक कविता प्रस्तुत करने पर इन्होंने उसे भी राम भवन के कारीबास के सिने अपने साथ रहने की आज्ञा दी थी। वह कविता यह है —

स०—“पन दो इक मोग विपय विपया अय जो रही सो न खसाइये जू।

अयसों सय इन्दिन लोग हस्यो अय सो जनि माय ईसाइये जू ॥

मदमोद मझा जस काम अनी मन मानस ते निकमाइये जू।

रघुनन्दन के पद के सवके तुलसी मोहि कासि कसाइये जू ॥”

बैजनाथ दास तथा रानी कमल कुँवरी ने यह भी लिखा है कि एक निन्दक भाद्र पोसाईं की के दर्शनार्थ कारी आया। इन का दर्शन नहीं पाने से सच ने इन की निन्दा में एक कविता की। वह कविता रामनाथ पुत्र होने से इन की प्रशंसात्मक हो गई। फिर पोसाईं की का दर्शन पा कर वह निन्दा इति त्याग कर हरिबन्ध नाम में प्रवृत्त हो गया।

यह बात हम ऊपर ही कह चुके हैं कि विद्यावती कवि मोक्षरिमप के कथनानुसार, जो इन की निन्दा भी करने आठे थे, उन्हें भी इन का आचार-व्यवहार देख इन की स्तुति ही करनी पड़ती थी। इन्होंने वह कविता देखने में नहीं आई। वह निन्दा के मिस स्तुति की कविता होगी।

एक बार मोक्षामी की के पास एक सिद्ध मण्डली के आने की तथा अपनी सिद्धता सिद्ध करने के सिने अपने योगबल से आगरा से चार साहूकारों को कारी में बुला देने की बात भी कही जाती है। जब विचारै सम्राट ही को सेवकवश सिद्धासन सहित कसीद २ कर कारी जाने हैं तब साहूकारों की क्या मिनती है।

पूर्वोक्त दोनों खेककों ने यह भी बताया है कि नैमिषारण्य का एक प्रेत भैरवोनि से मुक्ति पाने के सिने कारी के बगलंडी नामक एक ब्राह्मण को सिने कारी पंथा। बगलंडी ब्राह्मण में

१ इन्होंने 'रामचरित्रिका' में समाप्त आइकों ही के दानमाल का बड़ा अर्थ कहा है।— 'सनाथान की मचित जाओब आगे। महादेव को श्रुतता को न छाती ॥ समाज्य इति को हरि। सदा समूह सो करै ॥ अकार्य मरुपु सो मरै। अनेक बर्ष सो परै ॥ अनाथ जाति सर्वदा। गया पुनीत बर्षदा ॥ भजे सबी से संपदा। विन्द ते अर्चपदा ॥

(उसी प्रेत के किये पर सवार) इति गोबर हुआ, किन्तु वह प्रेत वीर्य नहीं पड़ता था। श्रीकांत में एक मनुष्य को मिराबलम्ब रिपत देस सब काशी-निवासी भयभीत हो श्रीके २ गोस्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुये और उन्हें विनय पूर्वक उसी स्थान पर—जहाँ वह अपूर्व हरम दीखता था ले गये। गोसाईं जी को देखते ही प्रेत ने उन्हें सहर्ष रूढ़-प्रणाम किया और इन के मुख से हरिनाम उच्चारण सुन कर इन की कृपा से प्रेतयोनि से मुक्त हो उस ने स्वर्ग की राह ली। तब बनखड़ी मुस्लिमत हो गोसाईं जी के संग इन के स्थान पर गया। कुछ काल बहाँ रह कर गोसाईं जी के सत्र वह नैमिपारख्य पशुधा और उस जन से जो उस प्रेत ने उठे स्वामी जी के सम्मुख कर देने के पुरस्कार में पहले ही बता दिया था बनखड़ी ने गोसाईं जी की सहायता से बहाँ के तीर्थारणों का जीर्णोद्धार किया।

कोई प्रेतदुष्य पापप्रस्त व्यक्ति किसी सज्जन के द्वारा गोस्वामी जी का हरण या कृत्याप हो अपने दुर्कर्मों तथा पापों से मुक्त हो गया तो इस में सन्देह की बात कुछ नहीं है। 'सन्त-सरनि जो जन परै सो जन उपरमहार' ऐसा भी ग्रन्थ मानक का कथन है। और इस से यह सार बत भी ध्वनित होती है कि गोस्वामी जी की सहायता से एक शिव बनखड़ी ने नैमिपारख्य के प्राचीन स्तूप तीर्थों का जीर्णोद्धार किया।

कवि गङ्ग<sup>१</sup> अकबर बादशाह के प्रसिद्ध कविताओं में थे। कहते हैं कि एक बार वे गोसाईं जी से मिलने काशी आये और गोसाईं जी को माहा जपते देख उन्होंने एक मिराबरमुखक कवित्त में कहा कि हाथी तुलसी की माता कम बटखटाता है। इस पर गोसाईं जी ने कहा कि भैया तो नहीं बीबनाधार है, तुम जानो और तुम्हारा हाथी जाने। इसके अनन्तर उन के हिस्ती छोट जाने पर उन की एक कविता<sup>२</sup> में कोई अयोध्या कथन या अकबर बादशाह ने बेयम की सम्मति से उन्हें हाथी के पैरों से कुचलवा दिया और इसके प्रमाण में

१ कवि गङ्ग (गङ्गा प्रसाद प्रसाद) और गाँव जिहा इटावा के रहनेवाले थे। इन का जन्म संवत् १५१५ में हुआ था। बीरबल ने उन्हें एक क्षुण्ड पर एक क्षाय पारितोषिक दिया था (शिबसिंहसरोज पृष्ठ ३१५ ३३६)। रहीम खानखाना के भी वे सम्मानपात्र थे। अकबर के हिस्सा से भी सूरदास जी के समय इन की अवस्था २४ २५ वर्ष की होगी। परन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सम्पादित 'साहित्य-सदरी सटीक के अन्त में बाबू रघुनाथ सिंह ताहुकेदार मदनर जिहा काहाबाद से प्राप्त, जो भी सूरदास जी के समसामयिक कवियों की दोहावद्ध तासिकर क्षुपी है, उस में कवि गङ्ग का नाम नहीं दिया जाता। सम्भव है कि वह नामावली अपूर्ण थी।

२ कविता यह है :—'सब अन्न प्रदुस्त सुगन्ध सगदर के मार सो बित्त ददत महबबो। करि सौरहो सिंगार अटा पै बदि एक सासन को जियरा छहरयो ॥ कर कर्मन हाथ से छूटि गयो सिदियन २ जो किययो बदनयो। कवि गङ्ग कई एक कथास मयू कनकन कनकन कनकन बदनयो ॥' यह सबैया हम को रानी कमल कुँवरी के ग्रंथ में ऐतने में पायी। परन्तु यह छन्द नहीं प्रतीत होती। इस के चारों चरण चार चरण के हैं अतएव निचम भी ठीक नहीं। लोगों ने निरचय हम बिगाड़ दिया है।



सोच 'यद्यपि ऐसे गुनी को गबन्द सो बिराजो है यह कह सुनाते हैं, और कोई मूरखहा के माई बैनबा के यत्र को हाथी से भरवा बालने की बात कह कर उच के प्रमाण में 'बैनबा' सुनारवार मारुको एक तीर सो यह पद सुनाते हैं। परन्तु इतिहास पढ़नेवाले यह बात मखी भांति जानते हैं कि बैनबा अकबर का चाबमाई था और उम से ४ वर्ष पूर्व ही संवत् १६३८ में परशोक्यामी हुआ। तब मूरखहा के माई बैनबा की बात गप्य ही निकली। इस के सिवाय सोबपुर निवासी सु० देवीप्रसाद मिम्नोदुत क्षुपे का उल्लेख करके गत्र कवि का श्रीरञ्जय के समय तक रहना बताते हैं और कहते हैं कि अकबर की मृत्यु के २१ वर्ष पीछे श्रीरञ्जय बाबराह हुये। कवि अकबर की मृत्यु के समय कवि यत्र की अक्षरधा ३३३ वर्ष की हो तो ७३-८० वर्ष बीतित रहना कुछ अकारण की बात नहीं और श्रीरञ्जय ने इतने महायस ही देखकर इन्से अज्ञात से बैसी हकिमी ही थी जिस के बरसे इन्होंने जी उष के उपहास में यह कविता कही १—

रूपै — विमिरजंगसाह मोक्ष पत्नी बन्धर के हसके ।  
साह हुमायूँ साथ गई फिर सहर वसतके २ ॥  
अकबर करी अजाप मात अहंगीर खिलाये ।  
शाहजहां सुखवान पीठ के मार छोकाये ॥  
श्रीरञ्जय वससिस किये, अथ आई कथिगत्र पर ।  
उन छाड़ गई बघान बन, अमृत फिरति है स्यार कर ॥

परन्तु मिश्रकृत 'मर्जाता भाग १, संख्या १ पृ १ ११ में इस क्षुपे का पाठान्तर है कर इसे कवि गणकृत होना और श्रीरञ्जय के उपहास में इस का रवा जाना स्वीकार करन में सममत नहीं हैं तथा श्रीरञ्जय के समय तक गत्र के बीतित रहने के विषय में कहते हैं कि 'अब कोई नवयुवक कवि जानबुझा ऐसे गुनी और सत्कवि को कविता द्वारा ऐसा प्रसन्न तो कर ही नहीं सकता कि उम से अथवा सम्मान पाठा तो इस जैसे बरजे पर पहुँचने के बिना गत्र एक ऐसे साधारण भेषी के मनुष्य को बहुत आस लगा होगा। इस से निश्चय होता है कि यह अवस्था में रहीम से बके नहीं तो बराबर अक्षरन ही होनी और रहीम का जन्म संवत् १६१० में हुआ और मृत्यु-संवत् १६८२ में हुई। इस से छठ सम्मन यत्र की अवस्था लगभग ७३ वर्ष की होगी। तब संवत् १७१४ तक इन का बीतित रहना असम्भव जाब पड़ता है।'

इसका संभव या अक्षरमय होना मखी बात मान लेने पर ना न मान लेने पर निर्भर है कि कोई नवयुवक कवि जानबुझा ऐसे पुरुष को कविता द्वारा प्रसन्न कर सम्मानित हो सकता था या नहीं।

यहां पर हमें इस विषय में विशेष विचार की आवश्यकता नहीं क्योंकि हम यत्र की जीवनी लिखने नहीं बैठे हैं।

१ सरस्वती भाग ८ संख्या १९ पृष्ठ ५०१ देखिये।

२ वज्र।

परन्तु वह ऐसे प्रविष्ट कवि और सदा सज्जनों के सहवासी, भावें तो दर्शन करने और आते ही, स्वयम् एक ब्राह्मण सन्तान होने पर भी, गोस्वामी जी के समान महात्मा की कटी-मासा की निन्दा करने लगे, यह बात मानने योग्य प्रतीत नहीं होती। ऐसा तो कोई महामूर्ख भी नहीं कर सकता। और यदि उन्होंने सचमुच ऐसा किया तो उन की ऐसी ही दशा होनी उचित था। क्योंकि 'सन्त के रूपि आरजा प्ये' अर्थात् सन्तों की निन्दा से आवुर्बल का हास होता है।

कथित है कि एक बार निज पति के मर जाने पर एक ब्राह्मणी<sup>१</sup> सर्व मृगारो से मूर्च्छित हो पति की सहायिनी होने का रही थी। रास्ते में गोसाईं जी का दशन पा उस ने हाथ जोड़ आप को प्रेमपूर्वक प्रणाम किया। गोसाईं जी ने उसे सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया। इसपर उस के साथियों ने गोसाईं जी से उसक पति को जीवन विसर्जन की बात कही और साथ ही साथ यह भी कहा कि 'आप का आशीर्वाद भी तो व्यर्थ नहीं आ सकता। गोसाईं जी ने आपन कष्टसाग्य स्वामी को स्मरण कर कहा कि "जब तक मैं सौंकर न आऊँ इस के स्वामी की दशकिया न की जाय।" यह कह कर आप गंगास्नान करने चल गये और वहाँ भगवान की स्तुति में मग्न हो रहे। तीन घंटा के अनन्तर वह मृतक ब्राह्मण जैसे कोई सोकर उठा हो उठ बैठा, और लोगों से आपन वहाँ आने का कारण पूछने लगा। सब वृत्तान्त ब्रह्मगत होने पर प्रभु का और गोसाईं जी का उपरिचार मङ्ग हो वह रामभजन में लग गया। इस कथा का उल्लेख करते हुए बहुत से रामभक्तियों ने यह भी लिखा है कि "परिहो गोसाईं जी ने उस की से और उस के साथियों से रामभजन की प्रतिज्ञा करा ही थी तब उसके पुनर्जीवन के हेतु ईश्वर से प्रार्थना की थी।" परन्तु हमारी समझ में गोसाईं जी ने ऐसी प्रतिज्ञा नहीं कही होगी क्योंकि वे इतना अवरय समझ सकते थे कि वह प्राणी निरन्धय अपम और महा आभावा होगा जो ईश्वर और ईश्वरमङ्ग की ऐसी अद्भुत दृग और महिमा देखकर भी आप ही आप ईश्वर भजन और प्रभु गुणगान में प्रवृत्त न हो। और यदि वह इसी प्रकृति का थीक होता तो उस प्रतिज्ञा भग करने ही में कितनी देर लगती।

१ पंडित रघुबंस शर्मा ने इस एक रामनिन्दक साहुकार की स्त्री होना और गोसाईं जी का मुरदे के फान में 'राम कदो' कहकर उस जिहाना सिला है।

रानी कमल कुँवरि ने गंगा जल मंगवाकर शव के मुँह पर हाथ फेरना सिला है।

'भक्तमासा रामसिकावली और पंडित अलापमाद जी की बड़ी रामायण में लिखा है कि 'उस स्त्री के गोसाईं जी से निज बचन सार करने के लिये कहने पर गोसाईं जी उस शव के समीप गव और उठों ने उस स्त्री से थोड़े मुँह कर बाँट पसा कर पति से मिलने और रामनाम उच्चारण करन का आदेश दिया। उस स्त्री के और सब लोगों के जब राम' कहने पर वह मृतक भी हाथें उठाकर 'जब राम जब राम कास उठा। तब गोसाईं जी ने यह कह कर कि हे ईश्वर, तुम जाना, उस शव पर हाथ रखा और वह तुरत जी उठा। पंडित जी की छोटी रामायण में भी प्रायः परी पाठय प्रगट किया गया है।

अतएव राममन्त्र की प्रतिष्ठा कराने की बात हम को उपयुक्त प्रतीत नहीं होती। हाँ, श्री ज्ञानेश्वर मोहन दत्त ने जिस प्रकार से इस उपोपनिषद् का वर्णन किया है वह बहुत ही स्वाभाविक और उन्मादिक है। उसमें गोसाईं जी का श्री को ज्ञान और भक्ति का उपदेश करना और ईश्वर कृपा से उस मूढक ब्राह्मण को पुनर्जीवित होना पाया जाता है। उन्होंने ने लिखा है कि उस का आशय यह है कि 'गोसाईं जी के सौमन्मवती होने का आशीर्वाद देने पर वह हमशी बोधी कि जब हमारे स्वामी ही हेरा गये तब मैं सौमन्मवती कैसे हूँगी मैं तो आप की प्रवृत्ति लेकर सहमरण के सिन्धे जाती हूँ। गोस्वामी जी ने प्रश्न किया कि सहमरण के सिन्धे क्यों जायगी? उस ने उत्तर दिया कि स्वामी के सत्र स्वर्ग का उच्छ्रयी। गोस्वामी जी ने कहा कि स्वर्ग का कर क्या होगा उस का मी तो शेष होता है? हमशी ने उत्तर दिया कि 'जब शेष होगा तब होगा इस समय तो स्वामी के सत्र उच्छ्रयी। तब गोसाईं जी ने कहा कि 'हे हमशी यदि तू राम का मन्त्र कर तो उस से रामचन्द्र को भी पाकेगी और अपने स्वामी को भी पाकेगी। अर्थात् इन्होंने ने राम भक्ति विषयक माना तत्त्वज्ञान का उसे उपदेश दिया जिस से वह श्री राममन्त्रानामिकाविद्यी हो सहमरण का संकल्प परिवर्तन कर रामनाम उच्चारण करती करने स्वामी के हेतु उच्छ्रय के सिन्धे राव के पास पहुँची और वहाँ अपने पति को उस ने जीवित पाया। तब अचिरकर बरसाह से रामनाम करने लगी और उस का पति भी रामनाम उच्चारण करते उठ बैठा। और दोनों व्यक्ति गोसाईं जी के शिष्य हो राममन्त्र में प्रवृत्त हुए।

इस में केवल गोसाईं जी का साधु योग उपदेश करना और ईश्वर श्री उस पतिव्रता स्त्री पर कृपा प्रदर्शन ही पाया जाता है जो दोनों बात आश्चर्यजनक नहीं हैं। सावित्री आदि श्री कथाओं में हम स्त्रिय पतिव्रता के प्रभुत्व को जान चुके हैं।

हम अनुमान करते हैं कि कदाचित् उसी समय से राव के सत्र 'रामनाम सत्य है, रामनाम सत्य है' कहते जाने श्री रीति प्रचलित हुई है।

ऐसा भी कहते हैं कि मूढक ब्राह्मण को पुनर्जीवित करने पर इन के यहाँ दर्राओं की बड़ी भीड़ होने लगी जिस कारण से वे गुफा में रहने लगे। दिन में एक बार निकल कर लोगों को दर्शन दिया करते थे। ऐसे दर्राओं में तीन बालक थे जिन में एक मन्त्रिर्षिका का बाल, दूसरा देवी (वा अन्नपूर्णा) मन्त्र और तीसरा विरनेश्वरनाथ के पास रहता था। वे तीनों स्वामी जी से बहुत प्रेम रखते थे। एक दिन उन लोगों के नहीं जाने से गोसाईं जी ने गुफे से निकले और न उन्होंने में किसी को दर्शन दिया, जिस से जो शोष भाये वे अपना अपमान समझकर बहुत रुध हुए पर उन्हें तो क्या? दूसरे दिन फिर वे बालक भी भाये और अन्य शोष भी एवञ्चित होते गये। परन्तु स्वामी जी ने लोगों को यह शिक्षाने के सिन्धे कि उन बालकों का देवा निरङ्ग श्रेय वा उस दिन भी गुफा से नहीं निकले और सब दर्शनानिकावियों को अपने-अपने घर जाट जाना पड़ा। लीट जाने पर और शोष तो अपने २ कम बन्धे में लग गये परन्तु वे तीनों बालक दर्शन नहीं पाने के परिताप से तब २ कर मर गये। फिर उन लोगों के

इच्छे होने पर उन बालकों का हाथ मुन<sup>१</sup> गोसाईं जी न प्रभु का परस्मानृत मंत्रा शिष के प्रथाप से ने बालक फिर उठ कर आप के दरान को आये। उन के मुद्र प्रेम की सब लोगों ने बड़ी प्रशंसा की। अथब में भी एक लृक माहाय बालक के पुनर्जीवित करने की बात कही जाती है, जिसका विवरण अथब के प्रसंग में दिया जायगा।

काशी जी में गोसाईं जी भी रामलीला आर कृष्ण लीला भी कराते थे। परन्तु गोसाईं की के पूष से भी काशी में रामलीला होना कहा जाता है। कहत है कि काशी में एक जन मेघामगत<sup>२</sup> के भी रामचन्द्र के इश्वरार्थ बनराम-नग करने पर उनको स्वप्न में आशा हुई कि साक्षात् दरान कुलभ है तुम मेरी लीला का अनुकरण करो। तभी से रामलीला आरम्भ हुई और कदाचित् मरतमिलाप के दिन श्री रामचन्द्र की वृद्ध मन्त्रक अथ भी का जाती है। मेघामगत ही से भारतवर्ष में पहिले पहिल रामलीला का सूत्रपात हुआ। मेघामगत के सनय की लीला अथ काशी में विश्वरूप के नाम से प्रसिद्ध है और बड़ी लीला प्राचीन है। परन्तु वर्तमान रंग से गोसाईं जी की रामायण गा गा कर उसके अनुसार रामलीला करने की प्रथा गोसाईं जी की के समय से प्रचलित हुई है। उन के समय को लीला कमी तक अस्वी पर होती है और गोसाईं जी की रामलीला कहलानी है। इन की रामलीला में खरदुषण की सेना के राक्षसगण मेंसे, पाँच आदि पर सवार हो कर निकलते हैं और दूसरी रामलीलाओं में विमान पर निकलते हैं। गोसाईं जी की रामलीलाबानी लडा कमी तक सदा कहलाती है।

गोसाईं जी कथत रामलीला ही नहीं कराते थे बरन् श्री रामचन्द्र के उपासक होकर आप कृष्णलीला के भी अनुरागी थे। हो क्यों नहीं ? राम और कृष्ण में भेद ही क्या है ? छप्पे हरबरातुरागी प्रेमियों के सामने तो नेत्र कुछ नहीं है। हाँ छोरे आइम्बर-कलेबर बक्यादियों के क्षिप तो अवरय ही दो हैं। काशी में तुलसी पाठ पर कार्तिक-हृण्यभमी की 'आलीपदमन' लीला कमी तक बड़ी मनोहारिणी हुआ करनी है।

कहते हैं कि नीमपार से लौटती समय मिसरिस से पूर्व जयराम गाँव में आकर गोसाईं जी ने एक सूखी कड़ी गाड़ की भी बह एक पूरा पेड़ हा गया। आन्ने उस पेड़ का नाम 'बीबीबट' रखा क्योंकि पार थी इत्यावन से बह बट की कड़ी लाये थे और जहाँ न उस स्थान के निवासियों को बहाँ रामलीला करान का आग्रह किया। तब से बराबर थी रामविवाहोत्सव क दिन अगहन सुरी पंचमी को बहाँ पर रामलीला हुआ करती है।

१ रानी कमल कुमारी ने तीन दिन द्यान नहीं पाने से बालकों का प्राय रवाग करना आर गोसाईं जी के पूजने पर किसी का उनके मरने का हाथ नहीं कहने से पार का अरने शिष्य को भ्रमकर यह समाचार जानना और तब इसक द्वारा श्रीरामचन्द्र का परागान्त भेज कर उन बालों का पुनर्जीवित करना सिखा द।

२ 'मेघामगत भक्त श्री गोसाईं जी के प्रेमीर मानम के मेरी क्या मुन मन लाव है। जती सुन कया सेनी कंन कर तथा मनपूटी मय स्वया यथा रक धन पाय है। दरम शिवाय बरकामृत प्रसाद नेम मैन समय तेज नगन द्विप लाय है। आशा जब पावे पत्र पत्रि पर भावे नहीं बँदि है कजाल मानमी में रद पाय है ॥'

बहुत से लोग कहते हैं कि कवितानवी का निम्नलिखित कवित तब घस के ऊपर बाधे हो कवित गोसाईं जी ने कविकाव के प्रति तब स्मन कहा था जब पूर्वोक्त मेघामगत श्री स्त्री इन श्री परीक्षा लेने गयी थी।

“भागीरथी जल पान करौं धरु नाम द्वै राम के लेत निरै हौं ।  
मो सो न लेनो न वेनो कछु कसि भूखि न रायरी धोर पितै हौं ॥  
जानि कै जोर करो परिनाम तुम्हीं पछितेहौं पै मै न भितै हौं ।  
ब्राह्मन भ्यों उगल्यो बरगारि<sup>१</sup> हौ त्यों ही निहारे हिय नहिं तै हौं ॥”

मेघामरु श्री जी का गोसाईं जी की परीक्षा लेने की कथा 'रघिक प्रकाश महमास श्री टीका के १२२—१२२ कवितों में जो लिखी है कि मरु मेघाराम गोसाईं जी के बड़े प्रेमी और मानस की कथा सुनने के बड़े अभिलाषी थे। जो कथा सुने उसे कष्टग्र्य कर लेते थे, घबरा घोसाईं जी की सेवा में लगे रहते थे और उन से आझा पा कर जब घर जाते तब एकांत में बैठ कर ध्यानावस्थित हो जाते। मरुपि उनका घर बन धान्य से पूर्ण था और शीतलपत्नी, सुकनती रूपवती भाववती और स्नेहवती श्री मी भी जो सेवा उन से सुखदम श्री साहसा रक्षती थी तथापि वे सर्वत्र संसार से विरक्त रहते और पत्नी को मङ्गिमैद का उपदेश किया करते थे। एक बार गोसाईं जी कर में माया सिने और मुख से रामनाम उच्चारण करते पगा तब पर दरवों का कन्डोल बेक रहे थे कि तभी समय मेघामरु श्री जी वंगालान करने पयी और 'बाही समे मरुनपू सुन्दरी मिहार उर बाई छवि रंपति को भये अ अयेत हूँ' और 'म्हार के मिहारि हूँ बुझि हयि बोली तिया नीके हम जाने सब संत घर हेत हूँ। उची दिन घर आकर धार्यभात में पति श्री आझा से एक दासी के सङ्ग बह श्री अगम्युद स्वामी जी की परीक्षा के हेतु मसीमाति सज बन कर मनोमोहिनी रूप बनाकर उन की बुटी पर गयी। उच को देखते ही गोसाईं जी ने उठकर उसे संबल किया और 'गड़े पांज जान दासी बीमी है बनाय भाई दरसन हेतु नीके नाहिन पकामे हूँ।' तब "बोले मुद ज्ञानी हम इष्ट मित्र बागी को पै मरुत्राव तिया तब माग अतिकाने हूँ।" यह सुनकर बह श्री सन्निव हो माया अवनत किये घर लौट गयी। मेघामरु को दासी से परीक्षा का सब वृत्तान्त ज्ञात हुआ। अन्त में बह श्री मी ईश्वर मरु हो पनी और इम्पति हरिदिमानन्द में कुछ काल मग्न रह कर परमपाम सिधारे।

१ कथा ऐसी है कि जब अमृत हरने की गणक कहे तो अपने उचित होने का हाथ अपने पिता से कहा और उनकी आज्ञा से उत्तर उठवर्षी पापी निपायी को उन्होंने ने मन्थ किया। उन निपायी में एक अष्ट माण्ड्य भी था। गणक के घेद में जाने पर वह माण्ड्य उन के हृदय में अरुध और भीतर ही अजाने जगा। अगत्या गणक की निपायी के सङ्ग उस माण्ड्य को उगाह देना पड़ा। अरुध के करने का माह बह कि बीसे अष्ट माण्ड्य को भी गणक नहीं पचा सके बीसे है कवि। व. सुये (नाममात्र के रामभक्त को) भी नहीं पचा सकेगा।

मह सम्भव है कि मेघामगत की भी इन की परीक्षा करने गई हो और इन का बर्तव्य देख हरिपरायणा हो गई हो। परन्तु इस आत्मामित्र का यह वाक्य "बाही समै मन्तव्यम् सुन्दरी निहार उर छाई क्वि दपति श्री मये य् अन्धे ह्ये गोसाईं जी की प्रतिष्ठा में कहा गया है या क्या, यह अक्षरत्र विवेचनीय है। कदाचित इस के रत्नमिता क्वि स्वयम् अन्धे हो गये हैं और उन्हो ने उर्मग में मह लिख मारा है। इस के हागिकारक फल का विचार नहीं किया है। गोसाईं जी अन्धे नहीं हुये।

### काशीजी में गोसाईं जी का वास स्थान

'काशी मामयी प्रचारिणी समा' द्वारा प्रकाशित रामायण के अनुसार अरुणी श्री में पोस्वामी जी के वास स्थान ख्यात है, अर्थात्—

(१) अस्ती पर तुलसी वासत्री का घाट प्रसिद्ध है। इस स्थान पर गोसाईं जी के स्थापित हनुमान जी<sup>१</sup> हैं और उन के मन्दिर के बाहर भीषायन सिखा हुआ है जो पढ़ा नहीं जाता है। यहाँ गोसाईं जी की मुखा है। यहाँ पर विरोध करके गोसाईं जी रहते थे और अन्त समय में भी यहीं थे।

(२) गोपाल मन्दिर—यहाँ भी मुकुन्द राम जी के बाग के परिषम दक्षिण के कोने में एक कोठी है, यह तुलसीवासी की बैठक है, यह सदा बन्द रहती है अन्धे में से लोग दर्शन करते हैं। केवल धारण सु ७ को खुलती है और लोग आकर पूजा आदि करते हैं। यहाँ बैठकर यदि सब 'विनयपत्रिका' नहीं तो उस का कुछ अंश इन्हो ने अक्षरम लिखा है क्योंकि यह स्थान विन्नुमापन जी के निष्ठ है और संवर्णमा विन्नुमापन का बर्णन गोसाईं जी ने पूरा पूरा किया है। विन्नुमापन जी क भी अत्र के विन्हो का जो बर्णन गोसाईं जी ने किया है वह पुराने विन्नुमापन जी से जो अब एक ग्रन्थ के यहाँ हैं, अधिकृत मिलता है।

(३) प्रह्लाद घाट पर।

(४) 'संछट मोहन हनुमान — यह हनुमान जी लग्ना क पास अस्ती के माले पर गोसाईं जी के स्थापित हैं। कहत हैं कि प्रह्लाद घाट के ज्योतिषी यमाराज ने जो राजा के यहाँ से श्रम्य पाया था उसमें से उन्हो ने १२ हजार गोसाईं जी का श्रावण मंत्र किया। गोसाईं जी ने उस से भी हनुमानजी की पारह मूर्तियों स्थापित की थी जिन में से एक यह भी है।<sup>२</sup>

१ राजानुर में भी चार के स्थापित संख्यमात्म मदार्वार जी का मन्दिर है। 'नीच के एक तरे प्रथमै तुमर्मा हनुमंत की मूर्ति थी। प्रात प्रतिष्ठा करी नित पूजा हट से प्र ति प्रतिनि प्रतारी। राति को स्वन मये निगको बसदप प्रमान गप तहें धारी। दृष्टिनी श्री दमकी हुनि श्री दग देगन ही प्रतिभा चिच ख्यारी ॥ —बलदेवरासहन 'राजानुरमाहात्म्य'।

२ 'रामायण' पुस्तक की समाप्तोचना दक्षिण।

पहले आप इशुमान फाटक पर रहते थे। मुस्मानों के सपत्न से वहाँ से उठ कर मोपाकमन्दिर में आये। वहाँ से भी बकलमकुड़<sup>१</sup> के गोस्वामियों से विरोध के कारण अस्ती पर कड़े आये और मरवा पर्यन्त वहाँ रहे। किन्तु भियर्सन साहेब ने आसोष्वा से हाकर आप को पहले ही अस्ती पर बैठाया है।

---

१ ११ बरी बैंगल सं० १५३५ में श्री बकलमाचार्य का धानुमान हुआ था। आर के रिता का नाम अन्नमल सह था। आप ज्ञानिद ज्ञान्य के संदराज दाते के आर विद्व विद्या के कांकरबहली गाँव में आप का घर था। आर महान पंडित तथा बक्य थे। आप ने सारे भारतवर्ष की तीन बार परिक्रमा तथा दिगबिजय किया था। आप ही बकलमीय सम्प्रदाय के संस्थापक तथा शुद्धा ह्यैत मत के प्रचारक हुये। आप के पनाये २७ ग्रंथ ऐसे जाते हैं जिन में वो सूत्रों का माप्य एवम् भागवत की टीका बहुत बड़े ग्रंथ हैं। आपाद २ सं० १५८० में काठी में आप गोसोकवासी हुये। आर के पुत्र श्री विद्वजनाथ जी के ७ पुत्रों में से सबसे बड़े श्री गिरधरदास जी एवम् छोटे पुत्र बबुनाथ जी के बंगल आमी एक वर्तमान हैं। बकलमीय सम्प्रदाय में श्री कृष्ण जी की उपासना की जाती है। आचार्य लोग गृहास्वाभमी होते हैं। ईश्वर भजन के लिये गृहस्वागी होने की विशेष आवश्यकता भी नहीं यदि घर में इस आज्ञ में कोई बाधा न हो।

## दशम परिच्छेद

### दिल्ली-गमन

कहते हैं कि गोस्वामी जी के मुर्दा किलाने जी बाठ चैजते १ जब दिल्लीरवर (बहामीर) के खनों तक पहुंची तो सम्राट न इन्हें अपने दरबार में बुला भेजा। इन के बड़े १ प्रेमी तथा सहायक इन के दिल्ली जाने में सहमत नहीं थे बरन् इन के लिये मुसलमानों में अवतीर्ण होने को उचित थे। परन्तु मुविस्सात खम्म शिष्यक तथा नीतिक गोसाईं जी यह कहकर कि रामाज्ञा अर्पण करना उचित नहीं नाह पर वह दिल्ली पहुंच। यहां दिल्लीरवर ने इन का सादर स्वागत उत्सव कर इन्हें एक उच्च आसन पर बैठा इन स कुछ करामात दिखाने की प्रथना की। 'गु बास्यो ख्याल तिलिस्मे जहां कहा। खीखों में शिष के जतना हक है बसा हुआ ॥' इन्होंने लक्ष्य कह दिया कि 'हम तो केवल श्री सीताराम को जानते हैं। मला करामात से हमें क्या काम।' सम्राट ने इन का यह मयाय्य उत्तर करामात नहीं दिखलाने का बहाना समझकर इन्हें कारागार में स्थान प्रदान किया और कहा कि 'बिना करामात दिखलाये जान का हुटकारा नहीं होगा।' गोसाईं जी को कारावास क बदले कारागार का बास मिला। सम्राट क इस अयोम्य व्यवहार से गोसाईं जी का चित बहुत उदास और दुःखित हुआ। इन्होंने बन्दीपद में अपने कुछ मुख के एक मात्र सहायक श्री रघुनाथक पायक पबनउमार की स्तुति की।<sup>१</sup> कहते हैं कि उन की पानरी सेना दिल्ली क कोट में प्रवेश कर उत्थाव मकान और उधे उध महुस करने लगी। मरुतों का एसा उत्थाव देख सम्राट की आर्ये खुली और एक महान् महात्मा को क्लेश देना ही इसका कारण समझ कर वे कषणाय हुए भी गोसाईं जी के परों पर गिर कर रखा तथा अरराय एमा क प्रार्थी हुए।<sup>२</sup> गोसाईं जी ने कदाचित कहा कि आप भी रामचन्द्र को देखना चाहत थे। उन्होंने परल अरनी सेना भेजी ही पीछ आन आठ होगे, उन्हें भी तो देख लीशिय।' परन्तु सम्राट को अब उन के दानन का साहस और उरगाह नहीं रहा। उन्होंने बानरो के असाय

१ इन मरुतों में पानकी गुरुद्वय प्रीयम न मिया ह कि 'अप्य ७ गोसाईं जी। आन ने अण्णा कहा। पानगाद अरन घम वा अरमान पर के और चिकनी कुण्डी बामें बना कर गोसाईं जी की प्रशसा करते हैं और गोसाईं जी ठन को मृत्यु बनात हैं कि मनुष्य को फूटी प्रशसा मत कर, पक ही परमेवर को पहिचान।

२ रात्री कमल कुर्सी के अनुसार 'दनुमान आर्षाया' की रचना इमी समय हुई।

३ सं० रघुपरा शर्मा तथा रात्री कमल कुर्सी के अनुसार सम्राट बगमों के साथ गोस्वामी जी के पैरों पर गिरे थे। यह भी कर्मभव ही प्रतीत होता है।



सत्यात से रक्षा ही चाही। तिसान बनाहुबित श्री गोसाईं जी के पुत्रः बन्दना करने पर श्री हनुमान जी ने बानरी सेना का निवारण किया। कथित है कि प्रायः का प्राय होने पर सम्राट ने गोसाईं जी से प्रेमपूर्वक अपने सोम सेवा के निमित्त सविनय प्रार्थना की। गोसाईं जी ने कहा कि 'अब यह दुर्ग श्री हनुमान जी का हो गया तुम इसे छोड़ दो नना क्येद बनबाओ।' और सम्राट ने ऐसा ही किया।

परन्तु इस कृपा को सत्य मानने में इतिहास हमारी सहायता नहीं करता और हमें छाहस नहीं दिखाता। प्रथम तो मुसलमानी औस्मिया (सिद्धमहारमा) अरुमि बिरती क आसीर्वाह से उन्हीं के स्थान पर फ़िरोज़पुर सिकरी में बहाम्पीर का नाम हुआ था जिस के आरम्भ में अकबर ने वहाँ एक दुर्ग निर्माय किया। अकबर के शरीर त्यागने पर ३ आगरा (अकबरनाब) में वहाँ अकबर ने अपनी नई राजधानी बनाई थी जिहासनाकह हुए। विस्ती में उनका आना कम होता था। यात्रा को निकलते थे तो कमी राह चलते वहाँ से एक दिन उदर जाते थे। आगरा में रहने पर पोस्वामी जी को वहाँ न बुलायें और वहाँ से आगे अकबर में दिस्ती जाने पर वहाँ बुलायें इस का कोई कारण नहीं दीखता।

दुसरे तुलुफ बहाम्पीरी (बाबहाम्पीरनामा) में उनके शासनकाल के साल-साल का हाल लिखा हुआ है। उस में लगभग १३ वर्ष का इतान्त बहाम्पीर बाहरशाह ने स्वयम् लिखा है। येप समय का विवरण उन्हीं आह्ला तथा कवन के अनुसार मोस्मिद का द्वारा लेखबद हुआ है। उस प्रथ में हिन्दू धाहु महात्माओं से भेटादि की बहुत ही बार्ते देखी जाती हैं। बहाम्पीर में अपने प्रथम अरन (राज्य के प्रथम वर्ष) के विवरण में अपने एवम् अपने हिन्दू तथा मुसलमान कर्मचारियों के उन्होने में रक्षाबन्धन का हाल लिखा है और उस स्थान पर उन्होने बराहुरा दिवाही तथा होसी का विवरण दिया है। म्यारहवें अरन में यात्रा के वर्णन में लिखा है कि 'इसी मखिल (सिफन) में 'शिवरात' हुई' बहुत-से योगियों का संकटन हुआ। इस सम्प्रदाय के महातुमाओं से बर्तालाप रहा।<sup>१</sup> सोत्तरवें अरन के सम्बन्ध में लिखा है कि 'कोट कंगडा की सेर के बाह दुर्ग के वर्णन को गये। मूर्तिपूजकों के सिवान बिन का दुर्ग-पूजन बर्म है, सुद के सुद सुसमान बुर बुर से नहरें लाकर पूजा किया करते हैं'<sup>२</sup> फिर उन्होने में अरुस (बिदरुस) उन्यासी से भेट का विवरण विस्तारपूर्वक म्यारहवें अरन के वर्णन में देखा जाता है।<sup>३</sup> पीछे वह महात्मा मबुरा बल आये थे। वहाँ भी अपने शासन के औरहवें वर्ष में बहाम्पीर ने उन से भेट की थी। इस का वर्णन सविस्तर लिखा गया है।<sup>४</sup>

उस में ये उस बार्ते लिखी हैं। सिन्यों के बीचे शुब भी अरु न भी का हाल एवम् अपने राज से सेरकों के निष्कल देने की आह्ला क प्रचार का हाल भी लिखा है, किन्तु पोस्वामी

१ सन १८६३ ई का प्रथीगवनाले सफ्यद अहमद द्वारा सम्पादित 'तुलुफ बहाम्पीरी का पृष्ठ १०८ देखिये।

२ उसी प्रथ का पृष्ठ ३३ देखिये।

३ उसी प्रथ का पृष्ठ १७५-७६ देखिये।

४ उसी प्रथ का पृष्ठ २०३-२०० देखिये।

की से भेंट की बात कुछ नहीं। यह बड़े भारवम की बात है। इससे इस घटना में प्रवल धनैह होता है। और जब भेंट ही प्रमाथित नहीं होती तो यह किता बतान की भाओचना म्बर्ब हो होनी। यह तो इसे भार भी कमशोर कर डनी है तथापि उसका हाल भी कुछ लिख दिया जाता है।

नेत्रनाथ दास एवम् रानी कमल कुर्ची कहती हैं कि ग्हागीर बादशाह न अपने पुत्र शाहजहाँ के नाम से (शाहजहाँबाद) नगर बसाया और वहाँ (अने प्रतिज्ञानुसार) नवीन दुर्ग निर्माण कराया। परन्तु यह बात भी इतिहास के विरुद्ध पाई जाती है। ८ वीं अमावसिस्तामी दिवसी ११४ (= १६०३ ई = १६६२ सवत) में महस्फितबार का ग्हागीर सिहासमारुह हुए और लगभग २१ वर्ष तक राजदरबार उन के हाथ में रहा। और शाहजहाँबाद के नये किम की नींव दिवसी सन् १०४८ में डाली गई। शाहजहाँ का विरचित 'माधिर जमरा' नामक चारसी के एक प्राचीन एतिहासिक पुस्तक में यह बात लिखी देखी जाती है। इस प्रकार का कुछ और उस ग्रंथ से यहाँ पर उद्धृत कर दिया जाता है—

“कार आगाहान इमारत बाद पञ्चोदश बियार किता डमीनी (कि दर बाहिर दास्तमुस्क देहली म्यों नात्र पड़ न आगात्र मों मामूह बाका हू) बिस पजुम अित दिग्गा पाठ इमरदुम सन (१०८८) ह्जार पेइल न हस्त इजारी मुनाबिक तरह (कि दर पेगमाह जिनाफ्त मुकरे र गस्तह) बसरकारी गैरलखान बिरादर बादा अमुस्ताह मों पीरोत्र अंग (कि नगम धुवा बेहली बन्दे मडाबत्र दर) रंग रैकनह बहसरे बनों मों परदास्तह न बहुम मुहरंम छात मद्रुह असास मों बिनाय मअश शों निहावन्द।

मेरीही क्शी लारीक इज्जताम् ई बिनाय आली बुनी यानह—नियरह—

शुद्ध शाह जहाँ आबाद अत्र शाहजहाँ आबाद १०३८ दिवसी १”

१०. शिवनन्दन मिश्र ने 'बंग बिहार' एक विभागा पत्र' में शाहजहाँ बादशाह ही का गोघाई को दिल्ली में बुला नेत्रना लिखा है। आप ने इतिहास तथा गणित की ओर कुछ मो प्यान नहीं दिया है। १६ जनवरी १६२० ई० (संवत् १६८३) का घाहजहाँ तक पर बैठे और सं० १६-० क भावन मास के सुकृत पक्ष की सप्तमी तिथि का गोघाई की का परत्रपाम अिपारमा वंशित की न स्वदम् ही लिखा है।<sup>१</sup> तप इन क स्वभास क अनन्तर शाहजहाँ ने क्या इन्हें स्वर्ग से बुला नेत्रा था ?

प्रोफेसर बिक्सन ने भी 'दी रैलिजियस सेक्टस आफ हिन्दूज (The Religious Sects of Hindus)' नामक प्रबंध में किसी मन्त्रालय क आचार पर दही बात लिखी है। उस को गोस्वामी की हल मानस उभापण' के अंगरेजी अनुवादक प्रथम गारुष न भी स्वनिहित अनुवाद के अग्रक्रम में उल्लिखित किया है।<sup>२</sup> उस की पुनराओचना की आवश्यकता नहीं।

१ 'बंगबिहार प्रथम भाग, सं० १९११ पृ० ७३ खण्ड।

२ 'बंगबिहार भाग ३, प १९२८, पृ० ८९।

३ Vide F. S. Grows's Introduction to his Translation of Ramayan, P. 1 of the 6th Edition published by Ram Narayan Lal of Allahabad.

चूक जपलवा मेरुं तू यइो यइारै ।  
 हौं तो आदरे डीठ हौं भति नीच निभारै ॥  
 घन्दिछोर खिरदायसी निगमागम गारै ।  
 नीको तुलसीदास को तेरिये निकारै ॥

प्रवाद है कि दिल्ली से आते समय राह में एक बग के पास रुक्या हो गई । वहाँ गंध का कोई पिक्र भी नहीं था । वहाँ एक आराधना पशु बरा रखा था । उस ने वृष प्रस्तुत कर योसार्ई की का सार सन्कार किया । योसार्ई की ने वह वृष भी रामचन्द्र को भोग क्यार कर स्वयम् पान किया और उस आराधना को भी घोडा सा प्रसाद से उसको प्रेमपूर्वक ऐसा उपदेश दिया कि वह प्रभु के अनुराम में भग हाकर उन्हीं के प्यान में लवलीन हो गया । अर्थात् वह स्वान अर्थात् भर्तमान है । परन्तु इस प्रसङ्ग के लेखकों ने उस का नाम नहीं बताया है ।

फिर वहाँ से रास्ता तम करते वे काशी लौट आये और श्री प्रिनादास के खेबातुसार काशी से श्री नामा की से मिलने के लिये बुधवारन गये जिस का पूरा वर्णन आगे किया गया है ।

कोई २ लेखक इन्हें दिल्ली से सीधे बुधवारन ले गये हैं ।

## एकादश परिच्छेद

### व्रज-गमन

हिन्दी मन्माल' के मुद्रकित्त रचयिता श्री नामा स्वामी से भेंट करने के लिये गोसाईं जी एक बार व्रज देश में पवारे थे।

कथा ऐसी है कि श्री नामा जी इन से मिलने काशी आये थे। उस समय उन के प्यानाबस्थित रहने से किसी न श्रीनामाजी के गुमागमन का समाचार उन्हें नहीं बनाया और वे

१ श्री नामाजी, श्री गोस्वामी तुलसी दाम तथा श्री गोस्वामी बिहस नाथ जी के पुत्र श्री गिरिधरदास जी से समसामयिक महापुरुष थे। इन्हीं से श्री नामा जी ने इन लोगों के सम्बन्ध में वक्तमान कृपा का प्रयाग किया है। श्री गोस्वामी गिरिधरदास जी को निज पिता के गोहाकशाप के अनन्तर सं० १६४२ में श्री नाथ जी की गद्दी की टिकैती मिली थी और गोसाईं जी का मारुणवास सं० १६८० में हुआ। इन्हीं से सागों का अनुमान है कि 'मन्माल' की रचना संवत् १६४६ के अनन्तर और सं० १६८० के पहले हुई थी। प्रबल साहच ने लिखा है कि यह महा कठिन प्रय है।

श्री प्रियादास जी ने सं० १७१६ में कवित्त में इस का भाष्य किया। उन्होंने इस कवित्त में यह बात स्वयम् ही लिखी है। नामाजी का प्रमिसार पूरा ही किया है तो ठाकी साग्री प्रथम मुनाई कीके गाह के। मन्दि विषयाम आरु नाहि का प्रमास कीत्र मीत्रै रग दिपो कीत्रै तमहु लडाह के ॥ मन्मन प्रमिद दम मान मं उनत्तर मों फल्लगुन नाम बदी ससमि बिताह के। नारायन दाम मुग्गरामि मन्ममाल नै के प्रियादास दाम उर बस्या रहा पार के ॥

सैविष्य पंडित चन्द्रदत्त ने मन्माल का संस्कृत में अनुवाद किया है। कंसला त्रिशा मुद्रकालनगर के रहनेवाले सातवीं कापरय न १७५१ ई० में 'मन्म उबरी नामक मन्माल की टीका लिखी है। १८५४ ई० में मिरजारातिवासी तुलसीराम अग्रवाला ने इस का उर्दू अनुवाद किया है। मु० तपस्वी राम जी कापरय न १८७६-८० में इसकी उर्दू टीका लिखी है। पार उन के पुत्र मुनिमल्ल महाराजा भी मलारामशरण भगवानप्रसाद ने दिव्यी भारा में इस का विशद किया है जिनमें पहले नामा जी का उर्दू फिर प्रियादास जी का कवित्त और तब बार्तिक लिखक है। बयपरिया स्थान में आपकोस एवं निमनारा गौह के रहनेवाले भगवानदास वा भगवतीनाम सैविक कापरय के पुत्र श्री कृष्णराम ने इस का बंगभारा में अनुवाद किया है और गुरुमुनी तथा गुजरानी भारा में श्री इस का उर्दू भाषा मुना जाता है।

अब धर प्रतीक्षा कर इन के स्वान से बड़े पड़े। प्यान से निवृत्त होने के अनन्तर भी नामाजी के भाने और लौट जाने का हाल सुन कर इन को असमन्त खेद और परबाताप हुआ। वे उसी चण्ड बन की ओर बत करे हुये। जिस समय आप नामा जी के स्वान पर पहुँचे वे वहाँ छन्दों का मंडारा था। कहते हैं कि बिना निर्मलक वहाँ जाने से (वा बरहा बुकाने के लिये) नामाजी ने जानबूझ कर पड़िये इन का आर सत्कार नहीं किया। भोगन के समय जब तस्मई (बीर) बटने के लिये बर्तन खोजने लगा तो मोसाई जी ने कर एक साधू का बूता खेकर कहा कि इस से बड़ कर और बना पात्र होया और स्वन्मू भी पंक्ति के एक किनारे और खेने के लिये फिरी बैरायी का बूता खेकर बैठ मने। इन का ऐसा चरत स्वभाव देख कर भी नामा जी ने इन्हें इतन से लयाना और कहा कि "आम मुझे मङ्गलात्त का सुमेर मिल गया।"

इस प्रसङ्ग में पं० क्वाला प्रसाद जी से शिखा है कि 'निर्मलक' क्या था, परन्तु मोसाई जी यह विचार कर कि कथा अब तक के सङ्ग बैठ कर कैसे खानेगे वहाँ जाने से हिचकते थे। परन्तु इधुमान जी के स्वप्न में यह कहने से कि 'नामाजी परम भङ्ग हैं तुम जान' मोसाई जी उन के स्वान पर नम और इन्होंने ने पल्ल नीचा हो जाये से बस के नीचे बूता रखा कर बसे बरतार कर सिखा। जब मोसाई को तक के सङ्ग कथा अब खाने के मन से नामाजी के स्वान पर जाने से हिचकत ने तक छन्दों ने पल्ल के नीचे बूता कैसे रखा। क्या बूता पवित्र पदार्थ है। इस की व्यवस्था पंक्ति ही लोग करें। सुझा कीन कर सजता है।

बीर 'काठी कापरी प्रचारिणी' समा द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि 'येका न हो कि मे मुझे कमिगानी समझें और मेरी कथा मङ्गलात्त में विचार कर लिलें इयी लिये तुलसीदास मङ्गरे में बैरायियों की पंक्ति क कन्ध में बैठे और कड़ी भा बीर खेने के लिये एक बैरायी की एक बूती खेकर बैठे। बहुत से लोग आज तक कहते हैं कि नामा जी का बनावना 'कलि कुटिल बीर तुलसी अये वास्नीकि धरतार बरि' यह पाठ है। इस पाठ से वास्नीकि के साथ तुलसी की पुरोष्मा हो जाती है' क्योंकि वास्नीकि भी पहले कुटिल ने और तुलसी ने भी पहले नामा से कुटिलता थी।"

बन्व है। ऐसे कहनेवालों की बुद्धि की बलिहारी है। पुराणवर्धित कथा के अनुसार तो भी वास्नीकि की लोचों का गला बोट कर तक का इन्व अपहरण करते थे, इस से आदि में यह कुटिल कहवाने के भोगन से पर मोसाई जी ने भी नामा जी के साथ क्या कुटिलता थी। नामा जी के जान पर सब बोट थी? वा उन का कर्त और कब बलभोजन किया। कुटिलता तो रह रहे, केवल नामा जी के आपमन और बिना गेट लौट जाने का हाल सुनकर आप उन से पिचने के लिये काठी से लीके प्रत्येक पहुँचे। ती भी कुटिल। और नामा जी ऐसे विचार शून्य हुए, कि जिसे 'मङ्गलात्त का सुमेर' कहें और जानबूझकर काठी से खाने लयी को कुटिल लिलें। कुटिल न मोसाई जी और न भी नामाजी। कुटिल क्या महाकुटिल, इस आख्यायिका के गढ़ने वाले लोग हैं जिन्होंने एक ही वाक्य में दो दो परम पूजनीय महापुरुषों की निन्दा कर जाती है। मोसाई जी ने ऐसे ही लोचों को रामायण में बारम्बार नमस्कार किया है और ऐसे लोग रह से ही नमस्कार के भोगन हैं भी।

फिर गोसाईं जी के मन में यह भय उत्पन्न होना कि कहीं महाशाल में इन जी निम्नान लिखी जाय इन के जैसे महात्मा के विषय में कहुना सर्वथा अनुचित है । क्या ये प्रयास के भूषे थे ? यदि सम्भव यही बात थी तो इन में और सर्वसाधारण में प्रमेद ही क्या था ? भाई ! ये तो 'उस्तुति निन्दा उभय सम' जाननेवाले और "उस्तुति निन्दा दोऊ त्यागो खोजो पद निर्बाण" इस भेषी के महात्मा थे । इन्हें क्या बिन्ता भी चाहे कोई निन्दा ही लिखता चाहे स्तुति ही ? इन्हें भय हो ना न हो, और जी नामाजी की मनसा ऐसा करने की हो या न हो परन्तु कुटिलों ने तो ज्ञाप्य का पाठ बढ़ा कर नामा जी के मुख से निन्दा करा अपनी प्रकृति का सचा परिकल्प दे दिया ।

जता भी बात भी ठीक नहीं है । इस आख्यायिका का सार केवल इतना ही मालूम होता है कि नामाजी के बनारस से बिना भेंट किये जाने जाने पर गोसाईं जी स्वयम् हुन्दावन आकर बड़े नम्रमात्र से उन से मिले जिस से सज्जन शिरोमणि नामा जी ने स्नेहपूर्वक इन्हें कंठ से समाया, आदर-सत्कार किया और आनन्द माना ।

कदाचित् उसी समय नामाजी को गोसाईं जी हुए 'रामचरित मानस' देखने का सुधनसर मिला था और उन्होंने गोसाईं जी के सम्बन्ध में उस ज्ञाप्य की रचना की थी जो इसी पुस्तक के पृष्ठ ४४ में छप चुका है ।

यहाँ पर कुछ नामा जी का चरित्र लिख देना भी अनुचित नहीं होगा । आप भी रामानन्दीय सम्प्रदाय के ही अनुयायी जी के शिष्य थे । २ वर्ष की अवस्था में इन्हें किसी साधुमंडली ने कहीं रास्ते में पक़ा देकर इनसे नाम पूछा । इन्होंने प्रश्न किया कि "इस गरवर शरीर का नाम पूछते हैं या अविनाशी आत्मा का ?" इस प्रश्न से महा भक्ति और हर्षित होकर सन्तों ने इन्हें अपने साथ ले लिया और उसी समय से ये संतसेवा में लग गये । एक दिन गुहरी के प्यान के समय उन्हें पंढरा भस्तते हुए उनकी आकृति से उनका चित्त-बाँधक्य नाम इन्होंने दो बार बार बेग से पंढरा हिलाकर कहा कि 'आप निश्चिन्त ध्यान कीजिये, वह काम हो गया ।' बात यह थी कि इन के गुह का एक शिष्य कहीं नौका पर जा रहा था । नाव अटक गई थी, यह जानकर महात्मा जी संबल हो रहे थे और इन के जोर से पंढरा हिला देने से वह नाव बल निकली । यह दृशा देख इन के गुह ने आज्ञा की कि सन्तों की क्या बर्णन करो जिस ईश्वर ने तुम्हें ऐसा ज्ञानबहु दिया है वही यह बार्थ सिद्ध करेगा ।" इसी पर इन्होंने महाशाल की रचना की । इन की यही कथा प्राचीन ग्रंथों में पाई जाती है ।

यह सभी जानत हैं कि ब्रह्मेश भी नन्दनन्दन रसिकशिरोमणि की स्तिसाम्मि है । वहाँ बात इस घर हो भी कल्या के रंग में रंगे रहते हैं । अतएव भी रामचन्द्र का नाम कदाचित् कोई बिरसा ही स्मरण करता था । यह रंग देख कर गोसाईं जी ने शायद ऐसा कहा था —

“शया कृप्या सपै कहीं, आक हाक अक गीर ।

हुसती या प्रज भों कहा मियाराम सों पैर ॥”

परन्तु योसाई भी क्या यह नहीं जानते थे कि भी कृष्ण और रामभी में कोई भेद नहीं ! तब ऐसा क्यों कहने लगे ! ऐसा भी प्रसिद्ध है कि जब भी नामा की तथा कन्याग्रज वैष्णवों के संग योसाई भी भी गोपाशमन्दिर में गये तो वहाँ भी महानगोपाल की मूर्ति देखकर इन्होंने ये कहा था —

“कहा कहों छवि भ्राम की, मये यने हौ नाथ ।

तुलसी मस्तक अब नवै, वनुप बान हो हाथ ॥”

जब लड़की गुरखी हाथों से लच्छक पड़ी और सबों ने देखा कि लच्छमुच भी गोपाल की के हाथों में वनुप बाण बिराज रहे हैं और योसाई भी ने तब यह बोला था —

“क्रीट मुकुट, माथे धरयो, वनुप बान धिये हाथ ।

तुलसी निम जन कारने नाथ मय रघुनाथ ॥”<sup>१</sup>

भयवान सबका मङ्गल-विचारक हैं और योसाई भी भी रामचन्द्र के अनन्य मङ्ग थे । इस से ऐसी सीता होगी असम्मम बात नहीं । परन्तु हम लोग देखते हैं कि भी रामकी के अनन्वोपासक होने पर भी योसाई भी ने जब बबतों की बन्दना की है जिस के अनेक प्रमाण इन के ग्रन्थों में वर्तमान हैं । तब भी महान गोपाल की के मन्दिर में जाकर और उन की मूर्ति का दर्शन पा कर सविनय बंभवत कर के ये ऐसे बूढ़ और बर्बर भी बात क्यों बोलेगे कि “तुलसी मस्तक अब नवै, वनुप बान हो हाथ !” और भी कृष्ण भगवान ही को क्या पत्नी की कि इन के ऐसा कहते ही कट गुरखी परिस्वाग कर वनुप बाण बारण कर छेते ! इन के बंभवत नहीं करने ही से उन का क्या बियबा जाता था ! क्या भी योसाई भी ने अपनी सिद्धता सिद्धता के निमित्त ऐसा वाक्य कहा था ! स्वामी की सरल स्वभाव के ये जिस का पूरा परिचय इन की रचनाओं से मिलता है । हम का ऐसा अभिमानप्रदर्शक कार्य भी कृष्ण की के सम्मान में असम्मम प्रतीत होता है । ये भी रामचन्द्र और भी कृष्ण में निरस्तन्देह क्वापि भेदबुद्धि नहीं रखते थे । इस का साक्षी इन की रचनाएँ ही रही हैं । ‘विनय पत्रिका’ उलट कर देखिये । एक नहीं अनेक पत्रों में इन्होंने ने भी रामचन्द्र और भी कृष्ण को एक माना है और भी कृष्ण महाराज की बन्दना की है —

१ औं अप जाग जोग ब्रह्म वरचित केवल प्रेम न कहते ।

सौ कस मुर मुनियर दिहाई ब्रज गोप गेह वसि रहत ॥ (वि० ६६)

२ किन्ह वांछे मुर असुर नाग मर प्रवस करम की छोरी ।

सोइ अथखिन ब्रह्म असुमसि वांछ्यो हठी सकत ना छोरी ॥

भाकी माया पस विरंचि सिम नापत पार न पायो ।

करतस सास वमाइ ग्वास जुवतिन सोइ माथ नचायो ॥ (वि० ६७)

१ “गुरभी लच्छक गुराई है, बरयो वनुप सर हाथ । तुलसी लखि छवि दास की, बाप मये रघुनाथ ॥” कहीं २ ऐसा भी ऐसा पाठ है ।

३ “हरिदु और अक्षतार आपने रापी वेद पढ़ाई।

लौ संकुल निधि दई सुदामहि यद्यपि याज्ञ मिताई ॥” (वि० १६३)

४ “कृपद सुता को लाग्यो दुसानन नगन करन।

हा हरि पाहि कहत पूरे पट विविध धरन ॥

इहै जान सुर नर मुनि कोविद सेवत धरन।

सुलसिदास प्रमु को न अमय कियो नृगवद्धरन ॥” (वि० २१३)

और भी स्पष्ट दखियेगा ! अन्धा यह पद अरुणोक्त श्रीशिवे :—

“एसी कथन प्रमु की रीति । विरद हेतु पुनीत परिहर पाँवरन पर प्रीती ॥ गई मारन पुतना छुष फालफूट लगार्ई । मातु की गति देख ताहि ह्याप्त जादय राई । काम गोहित गोपिकन्दि पर ह्या अतुलित कीन्ह । जगत पिता विरंचि जिन्ह के धरन की रज लीन्ह ॥ नेम व सिधुपाल दिन प्रति वत गनि गनि गारि । कियो लोन सुध्याप में हरि राजसमा मँकारि । ध्याय चित दै धरन मारयो मूढमति मृग जानि । सो सवह सुलोक पत्र्यो प्रगट करि निज धानि ॥ कौन तिन्ह की कई जिन्ह के सुहृद अरु अय दोउ । प्रगट पातकरुम हुलसी सरन राख्यो सोब ॥” (वि० २१४)

क्या अय भी कहियेगा कि गोसाईं जी भी रामहृन्ध में मेरुबुदि रखते थे ? और क्या इससे भी अधिक प्रमाण श्री आचरयकता होगी ? तब स्वयं इन के प्रयोग के पढ़ने का परिधम उदाहरण है । हाँ ! इतना हम स और श्री मुन लौकिये कि इन्होंने ‘हृन्ध गीतावली’ नामक एक स्वतंत्र ग्रंथ का भी प्रणयन किया है और ये हृन्धहीता भी कराते थे जैसा कि पहले कहा जा चुका है ।

यदि कहिये कि मन्मथन के अनन्तर और भी मदनमोगल जी के रामरूप में वर्णन के पीछे इन सभी की रचना हुई है तो प्रथम तो यह अनुमान ही अनुमान है इस कथन का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं और यदि यह अनुमान सत्य ही हो तो रामायण श्री रचना तो निरस्य और निर्बिबाद इन के मन्मथन के पूर्व हुई थी । ता क्या ‘नानापुराण निगमामय’ के जाननवासे भी मन्मथन और धीमन्मथनवद्गीता के भावों और आशयों को ही रामायण में समावशित करनेवाले, ‘गिदाराममय’ सब जगत को समझनेवाले, और अतएव सारे भगवत् को एवम् पुष्ट रखों को भी बार-बार, बिना किसी के अनुरोध के, मनरकार करनेवासे गोसाईं जी इतना भी नहीं जानत थे कि श्री हृन्धचन्द्र कौन थे, उन में और भी रामचन्द्र में किना अन्तर था, वह भी मदनमोगल जी की मूर्ति जगत के भीतर थी वा बाहर ! तब वे क्यों एसा कार्य करते लगे हों ।

‘महू अरुण’ में लिखा है कि ‘शिशारामय सब जय जानी । कते प्रनाम जोर सुग पानी ॥’ वह गोसाईं शिव की करी है मन्मथ लो कब भगवत् के धामने देखी वाली कब



सज्जा है ! इस बात क देखने की यह बात है कि क्यासक किस देवता के मन्दिर में बाठा है अपने इष्ट का ध्यान करता है, वह रीति शास्त्र के सम्मत के अनुकूल है सो गोसाईं की दर्शन को मने, परम मनोहर मूर्ति को देखा तो श्री रघुनन्दन प्रनुपधारी का ध्यान कर क दंडवत किया, सो गोसाईं की मऊ छांवे और छिद्र वे । इस हेतु मदनगोपाल की ने भी उन के ध्यान के अनुकूल रूप देखा दिया । सो कोई उस समय दर्शन करनेवाले से उन को श्री प्रनुपधारी इष्टि में माने । इस हेतु यह बात जैसी और छित्री ने एक बोहा भी बना किया । वही बात "मङ्गलात् हरिमक्ति प्रघाशिका" में केटीमिवासी हरिपरिण रामानुजदास हरिपर कायस्थ मासुर न भी लिखी है ।

तुलसी राम की ने ठहूँ मङ्गलात् में लिखा है कि गोसाईं की का हठपूर्वक सेवा करना कदापि सम्भव प्रतीत नहीं होता जब कि जन्तों ने विनयपरिका में छोटे १ देवता की भी बन्दना की है । हां इस की अधिक सम्भावना है कि मङ्गलात् से अपने इष्टदेव की मायमा से ही श्री मदनमोहन की के चरणों में दंडवत किये हों और मङ्गलात्स ही कृष्णचन्द्र ने उन के इष्टदेव ही के रूप में उड़ी चख उन्हें दर्शन दिये हों और यह प्रथा और लोगों ने भी अपनोकरनी हो ।

ये बातें हो सज्जी हैं । परन्तु हमारी समझ में गोसाईं की जैसे मक्ति के पाते रख में रंगे हुये और ईश्वर को निरन्तर सर्वत्र जगत्मान देखनेवाले महात्मा का किस आनन्दचन्द की कृष्णचन्द्र की सुहावनी कलित मूर्ति निरखते ही छद्म हो विह्वल हो गया होगा नेत्र प्रेमाभ्यूर्ण हो गये होंगे और श्री मदनमोहन की मोहन मूर्ति चबसोकरनाथ से ही इन का मस्तक छन के चरणभ्रमलों में चबलत हो गया होगा और उन्हें दंडवत करने में गोसाईं की को कुछ भी संकोच नहीं हुआ होगा । श्री सीतारामचरण मन्वानप्रवास की भी लिखते हैं कि गोसाईं की श्री मदनमोहन की मनोहर मूर्ति मिहारते ही दंडवत करने की जयत वे कि इतने में एक श्री कृष्णोपासक ने श्री प्रदुरामकृत यह बोहा कहा 'अपने १ इष्ट को लपन करे सम कोइ । प्रदुराम विनु इष्ट के लने सो मूरख होइ ॥' कबक कन्द । जब यह बात थी कि वे महारामा इन्हें स्वर्ण मूर्त्त बनाने जले से तब तो उन का प्रमोदबन्ध करता इन्हें बहुत ही आबरवक वा । क्योंकि गोसाईं की का कित होयामि से अजरित नहीं था, इन की कपोलकारिणी इति भी और उस महारामा का इसी में कबवाच वा कि वे जान बार्न कि श्री राम और श्री कृष्ण सर्वथा अमिद हैं । इसी से इन्होंने अपने प्रभु को इतने में सम्भार कर यह दिखलाना बाहा कि यह श्री कृष्णमूर्ति को सम्मने विगात्रमाण है श्री राम से मिद नहीं है । इसी अभिप्राय से इन्होंने वे सेवा वाक्य उच्चारण किया और श्री कृष्णचन्द्र ने भी रामरूप बाराए कर अपने तथा रामचन्द्र में अभिहवा धिद कर लोगों का अस्तम नाश कर दिया और अपने अमन्त्र मऊ की प्रतिष्ठा रख ली ।

यह बात भी जाम खेपे के नाम है कि श्री प्रिवादास की क खेव स यह बात कि "तुलसी मस्तक जब नवे प्रनुप धाम लो हाप" कदापि अमित नहीं होती । उस से यही बात प्रकटित होती है कि श्री मदनगोपाल सू का दर्शन कर बाहे छित्री कारख से हो, वे अपने इष्टदेव के रूप के दर्शन के अभिलाषी हुये । तब कृष्ण भगवान से कृपापूर्वक उस रूप का भी इन्हें वही दर्शन दिया । श्री प्रिवादास की का अकित यह है :—

"मदनगोपाल सू को दरसन करि कही, मही, राम इष्ट मेरे दग माय पागी है ।

बैसह सरूप कियो दिया है ललाय रूप मन अनरूप छवि दक्षि मन मारी है ॥"

इसमें हठ तथा मद की गन्ध भी नहीं है। अन्य लोगों के श्रेष्ठों से अभिमान की धुनि निकलती है। इसी से इतना कहा गया।

अब मैं जाने पर गोस्वामी जी ने नौरासी कोस ब्रह्मभूमि की यात्रा तथा परिष्कारा की थी। व धार्यो पर स्नान तथा सब मन्दिरो का दर्शन किया था। फिर ज्ञानगूदरी में आसन लगा कर सस्त्रय का आनन्द सञ्जया था।

खेद है कि इस प्रकार से श्री कृष्णबन्धु तथा श्री रामबन्धु में अभिन्नता सिद्ध होने पर एवम् भी कृष्ण भयवान के ऐसा स्पष्ट उपदेश करने पर भी कि 'ओ मुझे जिस भाव से भक्तता है वैसे उसी ही भाव से अपनाता हूँ' कतिपय भी कृष्णोपासक तथा रामोपासक अब भी ऐसा परस्पर द्वेषभाव रखते हैं जिस से एक प्रकार की कृपा उत्पन्न होती है और जिस से उन लोगों की भक्ति तथा उपासना भी कलंकित होती है। किसी एक का अन्योपासक होना तो भक्ति उत्तम तथा सहायनीय बात है, परन्तु दूसरे से द्वेष का क्या काम? यह कार्य किसी की भक्ति उपासना में सहायता नहीं कर सकता और न किसी का मानवदम ही कर सकता है। यदि द्वेषभाव रखने ही से कार्य सिद्धि की सम्भावना होती तो सुप्रसिद्ध कृष्णोपासक भी सुरदास की एवम् सुखिबाल रामोपासक गोस्वामी तुलसीदास जी भी राम और कृष्ण दोनों ही की स्तुति बन्दना नहीं किया करते।

आप लोग गोस्वामी जी हठ भी कृष्णस्तुति तो ऊपर ही बस चुके हैं। अब सुरदास की हठ भजन देखिये जिस से श्री राम और कृष्ण की अभेदता स्पष्ट सिद्ध होती है।

“मनु मन नन्द नन्दन धरन।

परम पंकज भक्ति मनोहर सकल सुख व करन ॥

मनक संकर ध्यान ध्याक्त निगम धरन धरन।

सेप सारद रिपिसुनारद संत पितव धरन ॥

जासु पदरज परसि गौलमनारि गति उदरन।

जासु मशिमा प्रग्न केयट धोय पग मिर धरन ॥

सोद पद मकरंद पामन अरु नहीं सरधरन।

सूर मनु धरनारपिन्दन मिने जीमनमग्न ॥”

यही नहीं भी सुरदास जी ने सुर सागर में १४२ पदों में समुच्चय रामायण की कथा कही है।<sup>१</sup>

खेद द्वेषभाव दिग्ग कर महात्मा बदलान की अशा करे परन्तु इपरहित तुलसीदास तथा सुरदास जी के आगत का पानेवाला वह बदलापि नहीं हो सकता।

१ 'श्री वैद्यरत्न' पाराशराने से प्रकाशित बाबू श्यामसुन्दर सञ्चित 'सुरसागर'

इसी अक्षर में इन्दावन में भी रामदास पर धी औरश्यामन्दन की मूर्ति संस्थापित हुई थी। प्रवाद है कि यह राममूर्ति दक्षिण देश में किसी सीमास्थान राममठ के यहाँ विराजमान थी। उसे एक रात को स्वप्न हुआ कि 'मुझे अब भी अक्षर में पहुँचवा दो मेरा बचार्थ स्थान बही है। वह हरिमठ प्रभु की आज्ञा पालने के अभिप्राय से उस मूर्ति को बड़े आदर के साथ पालकी पर बन्धकर ब्राह्मणों के हाथ अक्षर की ओर प्रस्थान कराया। मार्ग में मैं लोग मन्देश में खूब गये। यहाँ एक प्रेमी हरिब्र ब्राह्मण की यह इच्छा हुई कि वह मूर्ति यहीं विराजमान हो। मठ-प्रेम-वशील मन्वान ने अपने निष्कण्ठ मठ की अत्यन्त मायना से प्रसन्न होकर जो लोग साथ आये वे उन्हें स्वप्न में आदेश किया कि कल में यहाँ रहूँगा सुने बही रहने दो।' श्री रामचन्द्र के उही विमल की यहाँ स्थापना हुई और घोसाई जी की अनुमति से उस देवमूर्ति का नाम औरश्यामन्दन रखा गया। यह स्थान अष्टावनि ब्रज में विराजमान है। परन्तु यह प्रेमी हरिब्र ब्राह्मण कीम था। हमारे हरिब्रनायक की ही तो नहीं वे। जो कुछ हो यहाँ पर उस राममूर्ति के संस्थापन से हमारे हरिब्रनायक को अक्षर सम्बन्ध है। और यदि उसे इन का सम्मान का स्मारक करें तोही अनुचित नहीं होगा।

'मङ्गलिका' तथा किसी-किसी अन्य क्षेत्रों के अनुष्ठान ब्रज में प्रवृत्तिवारी गुरुजीवारी मन्वानरवारी भी मन्वानर गुरुणाथक नामी सुरदास, एवम् भी अक्षरविवारी अनुपवाक्यवारी अक्षरविवारी भी अनुन्वन गुरुणाथक गोसाई तुलसीदासकी से परस्पर सम्मिलन का आनन्द हुआ था। और 'अष्टमाहा रामचन्द्रकावली के क्षेत्रक तथा उन के अनुगामी क्षेत्रकों ने इन दोनों महापुरुषों में दिल्ली दरबार में भेज कराई है अर्थात् जब दिल्लीदर में गोसाई जी की करामत देखने के लिये इन्हें दिल्ली में बुलाया जा और इन के इच्छेय की करामतें देख कर जब वे बलिष्ठ और खिन्न हुए थे, उही समय भी सुरदास जी भी यहाँ मुलायमे गये थे। सुरदासकी का यहाँ आकर यह कहना कि 'अमुक शाहजादी पूर्वजन्म में प्रयापिका थी, उस ने श्रीकृष्ण के भाग से यवनगृहि में जन्म लिया है' और सब के सामने उस के विरोध २ अन्यों में विरोध २ बिन्दु विद्यमाना वह सब यहाँ तक ठीक है इस नहीं कह सकते।

परन्तु मा में वा दिल्ली में भी घोसाई जी और धी सुरदास जी का परस्पर सम्मिलन इस को अत्यन्त शीघ्रता है। कारण यह है कि श्री हरिचन्द्र एवम् मिश्रन्नु शब्दादि के क्षेत्रानुष्ठान धी सुरदास जी का समय १२४ — १६९० वि० खल् है और बोधपुर किवाही सु० देवीप्रसाद जी ने सं १२६ — १६४२ माना है। अब जाहे सुरदास जी का समय १२४ — १६० संवत् मानिये, जाहे १२६ १६४२ संवत् स्वीकार कीजिये उन की गोसाई जी से दिल्ली में उस समय बैठ की कहानी संभावना नहीं जबकि गोसाई जी को सम्राट ने करामतें दिखलाने के लिये बुला मेका था ( जो कला स्वयम् प्रमाणित नहीं हुई है )। क्योंकि सुरदास जी का अक्षर के पास जाना कहा जाता है और घोसाई जी मुर्दा खिलाने के बाद यहाँगीर के समय गये हैं और यहाँगीर न १६२ ई ( सं १६९२ ) में राजदण्ड महल किया था जब सुरदास जी का योग्येकवास हो उभा था।

और जब गोसाईं जी नानाजी से भेंट करने गये थे उस समय भी सुरदास जी से भेंट की आशा नहीं। क्योंकि श्री प्रियादास जी क अविर्गो से स्पष्ट विदित होता है कि गोसाईं जी दिल्ली से लौट आने पर ब्रज सिपारे थे।

‘महामाता रामरसिकावती तथा कई एक अन्य प्रबो में यह भी लिखा है कि “एक दिन श्री सुरदास जी आर गोसाईं जी दिल्ली क बाजार में बैठ थे। बादशाह का एक मतवाला हाथी आया। तब सुरदासजी यह कह कर कि हमारे नन्दलात्त बहुत बालक हैं वे हरेगे, आगेके इच्छेव प्रभुपकारी हैं आप पादों, उदरों वहाँ से चम्पल हुये और गोसाईं जी वहाँ टहरे रहे। हाथी सामने आया उस के माये में एक बाण लगा और वह विहार करता हुआ भूतल में गिरकर मर गया।”

उस समय सुरदास जी को निश्चय यह बात भूल गयी होगी कि उन के बाल-नन्दलात्त ही ‘अविशिवावीर’ हाथी के दान्त उखाड़न बाल आर उसे यमालय विठानेवाले थे। यदि यह बात स्मरण होती तो वहाँ से वे कदापि नहीं मागत। हम नहीं समझते कि इस आश्चर्यादि का से खेदकों ने कौन-सी बात सिद्ध करने की मनसा की है। श्री कृष्णचन्द्र की अपेक्षा श्री रामचन्द्र की भेष्टता या श्री सुरदास जी की अपेक्षा भी गोसाईं जी का निज इच्छेव में अल्ल विरहात् ! इसमें से कोई बात विद्व करने की चप्ता करनी बची ही भूल करी जायगी। हमारे जानते तो इस आश्चर्यादि का द्वारा एक परम पूजनीय महात्मा व्यर्ष ही नीचा दिखसाने गये हैं।

सुरेन्द्रजीवाजी पं० रघुवंश शर्मा ने लिखा है कि ‘जब जहांगीर बादशाह कारी में गोसाईं जी से मिले थे तो उन्होंने कारी का इलाक़ गोसाईं जी की सेवा पूजा के निमित्त भेंट करना चाहा था और इन के अस्वीकार करने पर कहा था कि सुरदासजी उन के पिता के नवरत्नों में से थे और जब जब दिल्ली जाते थे तब तब जो कुछ मिलता था वह ले लेते थे।”

इस आश्चर्यादि से पंडित जी ने क्या दिखलान की चप्ता की है हमारे निज पाठक समझ ही गए होंगे। हम नहीं जानते कि एक महात्मा की प्रतिष्ठा करत हुए लोग दूसरे के सम्बन्ध में क्यों बेवक़ बीर की अमानमूबक बातें निज मारते हैं। न जाने ऐस महात्मा लोग किम-किम महात्मा की बुगति नहीं करेंगे।

‘औरसी बार्ता’ के अनुसार सुरदास जी का एक ही बार सम्राट (अकबर) क पाप जाना गिद है जब कि सम्राट ने उन की कविता और मानकीशय की प्रशंसा सुन कर उन्हें पुष्पा भेजा था और प्रिय समय उन्होंने पहिले स्वरचित यह पद गाया था— मन रे कब माबो खो मीति।’ और बादशाह क निज प्रशंसा में कुछ कहे जाने की इच्छा प्रगट करने पर उन्होंने नीचे लिखा हुआ पद गान किया था।

“नाहिन रहयो मन में ठौर

नन्द नन्दन अल्ल उर में आनिय कस और ॥

बल्लत चिन्तयन दियम आगल मुग्धन सोपत राति ।

हृदय तें यह मदनमूरनि जिन न इन इन जान ॥

कहत क्या अनेक ऊयो सास लोम दिखाय ।  
 कहा करों चित प्रेम पूरन घट न बिन्दु समात ॥  
 म्याम गात सरोम अनन ससित गतिं स्यु हांस ।  
 सूर पेसे दरस कारन मरत लोभन सास ॥”

इस पद के शब्द और शब्दों से पाठक अनुभव कर सकते हैं कि दरबार में बार-बार आना-बना साकर वहाँ से कुछ हाथ लगानेवालों में से सुरदास भी हो सकते हैं या नहीं ।

और मुझी बेबीप्रसाद साहब को बोजपुर के कविगण मुरारी दास भी से सम्राट से भेंट के सम्बन्ध में यह भी ज्ञात हुआ है कि सुरदासजी अकबर बादशाह के कुत्ताने पर शोनों के बहुत करने सुनने से अहमदपुर सिक्की में उबाट से मिले से और उस समय उन्होंने ने यह पद गान किया था ।

“सिक्की कहा मगत फो काम ।  
 ब्यामत जात पन्दीया फानी भूक्ति गयो हरिनाम ॥  
 आको मुस्त दंले हौ पावक चाहि करयो परनाम ।  
 फेर क्यों ऐमो मन करियो सुरदास के त्याम ॥”

यह पद सुन कर अदाविन्दु सम्राट ने उन की ककोरी की बनी प्रार्थना की और उन के आसीन करने पर भी उन्हें एक सही का मनसब दिया कि उन की आसनामी से औरात दिया करें और उन्हें उठे आसीन ही करना पड़ा ।<sup>१</sup>

यदि यह कला ठीक मानी जाय तो यहाँ सुरदास की ने बनी बुद्धि मानी दिखलाई । क्योंकि बार-बार आसीन करने से उन्हें निरन्तर तत्काल ही आपति भेकनी पड़ती । आसीन कर देने से उस समय तो प्राण का परित्राय हो गया ।

परन्तु जो पुरुष प्रभु से यह प्रार्थना करता था कि फिर सम्राट के भिष्ट जाने जाने की बाटी नहीं आवे वह क्या बार-बार दरबार में आकर वहाँ को ही कुछ हाथ लगाने अथवा अपना घर मरा करता होगा ? और आईम अकबरी में अकबरस्य ने जो सुरदास का नाम फोर्बा (पर्वत) की सूची में लिखा है वह भी सम्मिलित ही है । यदि सम्भव वह सुरदास नहीं हों तो उन का नाम सूची में सम्मिलित किये जान का कारण उन का उस समय मनसब का आसीन कर लेना ही कहा जायगा क्योंकि शाही दरबार में उन का निवसानुसार नौकरी करना नहीं पाया जाता और आईम अकबरी से यह पता नहीं लगता कि वे कब से अकबर की दरबार रहे । पता लगे कस ई वे सम्भव नौकर हों तब तो । इसी से तो 'बीरासी बार्ता' और 'महमास' में अकबर इन के सम्राट के पास जाने की कथा लिखी हुई है, नौकरी की कोई बात नहीं । अतः मनसब का आसीन ही करना लिखा है ।

१ सु० देवीप्रसाद कृत सुरदास जी का जीवन चरित्र पृ० १०—२० इतिषे ।

मुन्शी देवीप्रसाद ने अपने ग्रंथ में 'मुमयिवात अनुसुक्तजल से एक पत्र उद्धृत किया है। उस के आरम्भ में लिखा है कि 'वह पत्र सूरदास के नाम से है जो बमारस में था। वह ब्रह्माट की भाँजा से लिखा गया था। उस में सूरदास के सम्बन्ध में महान् साधु महारमाओं योग्य शब्द प्रयोग किये गये हैं और सम्राट से मिलने को वे इलाहाबाद बुलाये गये हैं।

पत्र से विदित होता है कि उस के लिखे जाने के समय तक अनुसुक्तजल को सूरदास से भी भेंट नहीं हुई थी। उस में लिखा है कि 'मैं आप की विद्या और बुद्धि का वृत्तान्त इसके से सज्जनों और निष्कण्ठ पुरुषों से सुना करता था और परोक्ष ही आप को मित्र मानता था इत्यादि।

यदि उस समय तक भेंट नहीं हुई थी तो जन्म भर भेंट नहीं हुई इस में भी सन्देह नहीं क्योंकि उस पत्र के लिखे जाने की तारीख उस में नहीं रहन से मुन्शी जी उस का लिखा गाना १९४० के पीछे और १९४० के पूर्व अनुमान करते हैं और कहते हैं कि उस के लिखे जाने के अनन्तर पादशाह और सूरदासजी में भेंट नहीं हुई क्योंकि अकबरनामा के अनुसार पादशाह शीघ्र ही गुजरात चले गये। फिर फतहपुर आये और पंजाब आकर वहाँ से १३ वर्ष बाद १९३३ में आगत आये।

अब यदि सूरदास अकबर के दरबारी नाँकर होते और वहाँ बराबर आया आया करते तो क्या अनुसुक्तजल को उन से जन्म भर कभी भेंट नहीं होती? हम समझते हैं कि भेंट नहीं होने और यथार्थ वृत्तान्त अबगत नहीं होने के कारण ही आईन अकबरी के लेख में गड़बड़-सा हो गया है। परन्तु हम यहाँ पर सूरदास जी की बीवनी की समालोचना करने नहीं बैठे हैं। इनसिये अधिकांश लिखना अपयुक्त नहीं।

महम्मद' में सूर मदन मोहन के अकबर के दरबार में नौकरी का वृत्तान्त अक्षरय लिखा हुआ है कि वह संदीप्ता के अमीन थे और एक बार सन्सूचों में फयॉर भरकर इस वृत्त के साथ "केट सास संदीप्ता उपरै सब समतन मिल गटक। सूरजनाय मदनमोहन लिंग आधि रात ही गटकै ॥ दिल्ली में अकबर आप प्रसन्नोश की खोर बस बसे। इखर टोडरमल्ल ने उन क पकड़ मेषान की भाँजा की थी, परन्तु सम्राट न उस का अपराध क्षमा किया।"

सूर मदनमोहन जी भी बड़े इच्छामग्न गानपुशाल और कवि थे। ब्रजगमन के अनन्तर वे भी फिर दरबार में बुलाय गये थे और गये भी थे। क्या आश्चर्य है यदि गानपुशला क कारण ही उन का पहले दरबार में प्रवेश हुआ हो और फिर मनसब पान पर बर्गदीप्ता रत्न गये हो? इस में भी क्या आश्चर्य है यदि पृथ्वी संग्रहों न राजों महासुभाषों की कथाओं की लिखी बना दी हो?

यह भी प्रसाह है कि महम्मद-अल में मोगार् जी म छोड़ना पाँव में कबिबर अकबरदास को प्रयोजन से मुक्त किया था। इस की क्या सीखी जाती है कि छोड़ने क

राजा इन्द्रजीत' सिंह ने कब्रिस्तान निरत कर के कवि केशवदास को उस की उमापति बनाया था और इस समिप्राय से कि वह कविर्महली बिरतबाहिनी हो, उस ने केशव दास के आवेदानुसार प्रेतपत्र किया था। उसी से मरने पर वे श्लोच छन्द के छन्द हो गये थे। उस समय केशवदास कुछ 'रामचन्द्रिका' समाप्त नहीं हुई थी। प्रेत होने पर वे वेद पर से बिसलाया करते थे कि 'कोई घोड़ा भी से चन्द्रिका खोजवा से।' वह समाचार सुन कर मोहार्द्र भी उस इन्द्र के समीप गये। केशवदास ने प्रेतयोनि ही में रहकर इन्हें रामचन्द्रिका सुनाई। उस की समाप्ति होने पर केशवदास प्रेतयोनि से मुक्त होकर परमपाम सेवारे।

ऐसा भी प्रसिद्ध है कि कोइने में एक कुमां से अठ मरने के समय प्रेत केशवदास ने घोड़ा भी का श्लेष नाम लिया और कहा कि अरुतक मेरा इस योनि से उबार नहीं कीकियेना अरु तब मैं श्लेष कदापि नहीं छोड़ूंगा। घोड़ा भी ने 'रामचन्द्रिका' २१ बार पाठ करने से कहा। उन्हें उसका प्रथम ही कन्ध स्मरण नहीं होता था। परन्तु घोड़ा भी के नाम बिलाने से वे उस ग्रन्थ का २१ बार पाठ कर के प्रेतयोनि से मुक्त हो गये।

सब पृष्ठिने तो वे दोनों आश्चर्याधिकार सजया मनोऋक्षित प्रतीत होती है और एक घोड़ा भी की श्लेषता और बुद्धी 'रामचन्द्रिका' का माहात्म्य प्रतिपादन के निमित्त रही है।

वह जो कुछ हो परन्तु केशवदास का कुछ वास्तविक इतान्त सुन लीकिये। भाग सनाइय बाइराह और विषय। उन का जन्म लगभग १६ व संवत् में और मृत्यु १६७२ में मानी जाती है। उनका घर देही कुन्दलखंड में था। वे कोइना के मजदूर राह से बहुत सम्मानित हुये थे। पीछे उन के जीये पुत्र इन्द्रजीत कुन्देले में उन्हें २१ पाँच दिने थे। उन से वे उपरिचार कोइने ही में रहने लगे थे। उन्होंने प्रथम से 'रसिकविद्या' कोइना दरबार की गतिकर 'प्रथमराज बाहुरी' के प्रसन्नार्थ, 'कविविद्या' इन्द्रजीत के मनोरञ्जनार्थ एकम् 'रामचन्द्रिका' और 'विज्ञान योता' की रचना की थी।

कश्मीरसेत श्रीमत् ईश्वरीप्रसाद सिंहजी के दरबार के प्रसिद्ध दरबार कवि उन के शिष्य नारायण कवि श्वाशिर के कश्मिरा राज तथा हरि कवि ने 'कविविद्या' का माध्य किया है। कश्मीरवासी पं० बालकृष्णदास और पनीराम ने 'रामचन्द्रिका' की टीका की है। हरत मिश्र, बालूब का मुद्रक, पूर्णेश्वर दरबार कवि तथा ललितपुर के हरिबाल कवि ने 'रसिक विद्या' का माध्य किया है। कश्मीर हिन्दुविश्वविद्यालय के प्रोफेसर लाला मगनाम दीव अचरम भोवास्तन हुरी ने 'रामचन्द्रिका' तथा 'कविविद्या' की टीकार्द्र लिखी हैं।

१ वे श्रीरामचन्द्र पंजाब गहरवार कश्मिर थे। इन्हीं के एक पूर्वज कुन्देले के कश्मिर गहरवार लोग कुन्देला कहलाये गये और उन लोगों से बसा हुआ देह कुन्देलाखंड के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन्हीं वंश के भारतीयकम्प ने कश्मिरा कुर्ग पर भावा करते समय योराहा का पप किया था जिसे मेगाथीन में भाग जगये से मर जाना कहा जाता है, कोइना अभी तक ( गहरवार का ) कुन्देला कश्मिर ही के कश्मिरा में है।

## द्वादश परिच्छेद

### चित्रकूट तथा अवधवास

गोस्वामी जी के चित्रकूट तथा अवध में बास की बात अन्यान्य कही गई है एवम् चित्रकूट में भी रामचन्द्र के साक्षात् दर्शन का हाल भी सविस्तर बखान हो चुका है। अब उन स्थानों की कुछ अन्य कथाओं का उल्लेख किया जाता है।

जब आप भी हनुमानजी के आदेश से रामदर्शन के निमित्त चित्रकूट जाकर एक गुफा में बास करते थे उसी समय स्वामी हरियानन्द जी इन स मितने गये थे। वह गुफा के पास बैठे २ इन की प्रतीक्षा कर रहे थे। इतने में ये पेशाब करने बाहर निकल आए फिर गुफा में घुस गये। तब हरियानन्द जी ने कहा—“बाहू गोसाईं जी! लज्जतका क मिये तो बाहर निकले एक हरियेमी पाषु क्या उसने भी गया गुजरा है कि दर्शन देने को बाहर नहीं आते।” यह सुनते ही ये ग्राहि २ बहुत गुफा के बाहर आ उन स सादर प्रेमपूर्वक मिले और उस दिन से इन्होंने गुफा में रहना भी छोड़ दिया।

प्रवाद है कि हरियानन्द जी कहीं मंदारों में नेवता गये थे। वहां आचमन क लिये आपने जल मांगा तो महन्व जी ने कहा कि हरियानन्द जाकर हमसे थोड़ा जल मांगत हैं। यह सुनकर आप तो मीन हो रहे परन्तु वहाँ एक घारा हम बग से प्रवाहित हुई कि मंदिर आदि बहम लगे और महन्व क विनीत भाव स चिनय करन पर उसका भोग निवारण हुआ।

चित्रकूट में एक दरिद्र ब्राह्मण का दुःख दूर करने के लिये गोसाईं जी की स्तुति से मन्दाकिनी से दरिद्रमोचन शिला निकल आई थी। वह रत्नान सभी तब दरिद्रमोचन क नाम स रयात है। कहत हैं कि एक दरिद्र ब्राह्मण दरिद्रता के कारण घाट पर प्राणत्याग करन को उद्यत था। गोसाईं जी ने पहले पन का बहुत कुछ खुराक दिखला कर उस आत्महत्या से रो करने का यत्न किया। किन्तु बिना पन पाये उसकी प्राणरक्षा की आशा न देग हर आप ने उस के बन्ध्याचार्य यही उपाय उलम समझा। निस्सन्देह उस आत्महत्या क पाप स बचाकर और उस का दुःखमोचन कर आप न सन्तोषित काम किया। और यह भी आदर्श स्पष्ट ही का काम किया कि उस का दुःखमोचन क लिये ईश्वर ही की स्तुति प्रार्थना की। 'दृक क द्रोत गैर स कसो आरुनार्थी कीजिये। छोड़ बर दर किम के दर पर सुखहामार्थी कीजिये।'

संहीतानिकाधी स्वामी मन्दलाल भी कथोपथा हात चित्रकूट जाकर गोसाईं जी स मिले थे। परस्पर मिलन स हाथो महात्माओं को महानन्द प्राप्त हुआ था। गोसाईं जी ने अपने हाथ स रामचन्द्र त्रिगुणर उन्दे भेंट की थी।



कहते हैं कि संजीवने से आये समय मलीहाबाद में एक पद्मन के पुत्रवाने पर उस के समीप नहीं जाने से उस ने मन्दलास भी उसे पकनवाना पाहा था कि इतने में उसके मुह से उभिर बमन जाने लगा और तब मयप्रसिप्त हो वह पद्मन उन से प्रायच्छा का प्रार्थी हुआ । महारामा जी ने उस पर दयारसि की और वह मन्त्रा बंधा हो गया । आगे कबने पर एक स्थान में आरसी के समय पद्मन के बालहों ने उस्तात मन्थाना आरम्भ किया था वरन्तु उतर का नामक एक पद्मन बालक ब्रह्म रूपत कर उन्हें उस दुर्गम से रोक्ने के लिये मन्दलास भी के आशीर्वाद का मायी हो सातह कासाधन करने लगा ।

### अवधवास

अवध में सब से उत्तम कार्य वह हुआ कि वही पर गोसाईं जी ने 'रामचरित मानस' की रचना आरम्भ की । इस का उचितत ज्ञान्त अन्वय मिलेमा ।

अवध में एक महाराय मुहम्मदगि दास रहते थे । ये ईस्वर के मन्त्र और कवितामयी थे । उन्हें संजीवनासक पूर्वोक्त मन्दलास भी तथा गोसाईं जी से बहुत प्रेम था । एक दिन वसन्तऋतु में अपन कन्तु आर सुखाओं के संग भी रामचन्द्र आनन्द प्रमोद में ये रात अधिक श्रुतीत हो गई थी, अतएव कौशलया भी ने उन्हें शयन करने के निमित्त कहता मेजा था । जसी सम्बन्ध में मुक्तामणि ने एक कविता की थी । वह कविता सुनकर गोसाईं जी बहुत प्रमद हुये थे । कविता यह है —

“सैन करहु रघुवीर पिन्धारे । हौं आईं पठई कौशल्या बड़े भूप उठि सदन सिन्धारे ॥ जुगल आम आमिनी पीसी है नयनन नीद मरे रतनारे । प्रफुलित सरद कोकनद मानो संद समीर मलयकर धारे ॥ रतनजङ्गित मनियय मन्दिर सैक रवि सुधि सोधिल जनक सुनारे । मग जोवति सहजरी सिया की सैन उभित सब सौं मसधारे ॥ अति आनसयुत मये है मरत सुत लपन कास रिपुहन कमियारे । सुनत सकल दे पान विदा कर बटे दाम मुहुनामलि धारे ॥”

भी महाराज रघुराज सिंह जी न लिखा है कि अवध ही में एक बहिक ने उल्कास ईस्वर के दरशन पाने के लिये गोसाईं जी से विनय किया । इन्हों ने बहुत कुछ समझया कि यह बात महा कठिन है । पर उसने एक भी नहीं सुनी । तब इन्हों ने कहा कि 'धन में आकर बर्हा गाइ कर और उध के नीचे आग मन्त्राकर वेद से उस बर्हा पर कुरो; तो भी रामचन्द्र का दर्शन हो जायगा । वह बहिक बर्हा गाइ कर और आग मन्त्रा कर हथ पर बड़ा तो सही वरन्तु प्रायश्चर से कृपने में जाया पीडा करता रहा । इसी समय में एक अनिय बर्हा का पदुचा और तब ज्ञान्त अवगत होन पर उस ने कल्पि का ता कुछ इन्क बकर विदा कर दिना और आप वेद पर बह कर पबोही कृदा कि भयवान ने अपने मरत का बचन प्रामाणिक करने के लिये उठ पीच ही से रोक किया और भी म्पु का अक्षय दर्शन पाकर वह परम इत्यार्थ हुआ ।

बेजनामशास के अनुसार यह छत्रिन नहीं बरन् मनसूर नामक मुसाफिर था। सूखी पर बदन का प्रसन्न आन ही स उन्हें मनसूर याद आ गया जिसे अमरहलक ( अर्थात् म ही खरा है ) कहने से सूखी दी गई थी।

इसे इस कृपा की सत्यता में सक्का सन्देह है। ईश्वर का दर्शन कुछ हैमी कृत नहीं कि कोई राह जगत उन्हें देख लिया करे। गोसाईं जी भी इस प्रकार मनु का तमारा दिखाना उचिन नहीं समझते होंगे। इस प्रकार में मनसूर का नाम खाना इस और भी अप्रामाणिक कर देता है।

कहते हैं कि अकबर में भी एक भूतक प्राण्य बालक का गोस्वामी जी न हनुमान जी की प्रार्थना कर समलोक स लौटा मंगाया था। हनुमान जी के परम भक्त होकर बिचारे गोस्वामी जी तो उन्हें बारम्बार कष्ट दना नहीं चाहते होंगे पर करे क्या ! किसी पर कुछ आन से परोरकार क निमित्त इन्हें हनुमान जी से सहायता की प्रायना करनी ही पवती थी।

यह आत्मबिम्ब प्रार्थना की शक्ति प्रदर्शित करती है और पूर्वोक्त कर्म कोरा बागीगर का तमारा प्रतीत होता है।

## त्रयोदश परिच्छेद

### मित्र और सम्मान

द्विप्रिय टोडर—भरौनी<sup>१</sup>, नरेश्वर, शिवपुर, कतिपुर और लहरतारा इन पाँच गावों के, जो करी के एक ब्लोक से चूरे होर तक फैले हैं, जमीन्दार थे। उन क कर क कुछ अचिन्त माय हालत करी की कबीरी यही में वर्तमान था। और उन के बंश में का एक कर अभी तक भरौनी के अन्तर्गत अस्सी पर है। वहाँ के लोग अब भी कभी २ आ जाते हैं। वे बड़े रामरुठ थे। किसी कारण बरा गोसाइँ ने उन्हें लहरतारा से अलग कराया था। उन से गोसाइँ की बहुत प्रेम था। उनके मरने पर गोसाइँ भी ने नीचे लिखे हुये क्वी बोहे बनाये थे।

“चार गाँव के ठाकुरो, मन को महा महीप।  
 तुलसी या कलिकाल में, अथए टोडर दीप ॥  
 तुलसी राम स्नेह को, सिर पर भारी मार।  
 टोडर कांपा ना दियो, सब कहि रहे अतार ॥  
 तुलसी कर मासा यिम्स्त, टोडर शुनगन वाग।  
 ये दोऊ मयना सीधिहों, समुक्ति ० अतुराग ॥  
 रामधाम टोडर गये, तुलसी मये असोच।  
 मिय यो मीत पुनीत यिनु, पही जानि संकोच ॥”

गोसाइँ की के स्वयंसाय अलग से आकृत उन की निचनलिपि पर टोडर के बंशक बराबर एक सीमा दिया करते हैं।

१ भरौनी ही के अन्तर्गत गोसाइँ की का निवास स्थान अस्सीबाद है। और यह भरौनी की काशीराज के अधिकार में है, बहरार में अदास्त कचहरी है, शिवपुर पंच कोस में है। वहाँ पाँचों पावड़ों का मन्दिर और शीरपी कुड है जिसका अकबर के प्रसिद राजस्वमंत्रो राजा खेहरमस्त ने जाखोँद्वार किया था। कतिपुर भरौनी से परिचम है और लहरतारा करी के केन्टोन्मेन्ट खेरान के पास है और अब मुमसिद राजा परनी मस्त के परपोठे राय शिव प्रसाद के अधिनार में है। लहरतारा ही की खीज में नीमा ने कबीर की को बहता हुआ बाया या और कबीर जी की एक मन्दिना भी बनी हुई है।

शहर करवागवाश पर उन क बड आनन्द राम और पोते कन्हारै क बीच मगहा मिथाने क शिमे आप पंच निवत हुए थे और १३ मुदी आदिबन स १६६८ में आप ने जो पंचायती पैसला बिना या बह ठपसहार (क) में अनुवाद के साथ कबिबल उदूत किया गया है। वह पैसला ११ पीरी तक उन के बंशपरों क पास था और पूष्पीपाल सिंह ने उसे कपरी नरेश को दे दिया। वह ठन्ही के पास है। उस का फोटो 'सहबिजास' सम्पादन द्वारा प्रकाशित रामायण में दिया हुआ है।

शहर को प्रियर्सन साहब न राजा शहरमल ककर का सुविख्यात अमात्य माना है दिन का देहान्त स० १६४९-१८ में हुआ एम्बु सहरतारा को उन का अन्य स्थान लाहपुर (अब) अनुमान किया है। परन्तु यह बात असम्भव प्रतीत होती है क्योंकि राजा शहरमल को गोसावरी न तो 'बार पौष को डकुरो' या 'महतो ही चरते और न उन को 'मन को महा महीप ही कहते। शहरमल मन ही क महीप नहीं कहला सकते थे, वे सधमुच महीप थे। और ककर के ऐसा प्रसिद्ध बीर अमात्य का केवल बार ही पौष का मासिक होना भी सम्भव नहीं। आप क साधारण जमीन्दार इस-बीच गावों क मासिक पाने बात है। बार-पौष पाने वाले जमीन्दारों की तो गिनती ही नहीं हो सकती। और उस समय राजा लोग कबियों को १०-२० गावों का मासिक बना दिया करते थे। फिर क्या एक साधारण कामी को साहस होता कि शहरमल के आत्मज तथा शहरमल ही क नाम का बिना कोई सम्मान सूचक शब्द के उल्लेख करता। राजा तक का विशेष भी शहरमल के नाम के साथ नहीं लगता। जैसा कि 'आनन्द राम दिन शहर दिन देव राम इत्यादि में देखा जाता है।

कपरी में राजा शहरमल का अन्य कोई अवशिष्ट बिन्दु नहीं है। मारतौड हरिचन्द्र प्रकाशित कुंड के शिलालेख से केवल वही विदित होता है कि उन्होंने स० १६४६ में उस का जीर्णोद्धार किया था। वह कुंड शिवपुर में कपरी की पंचकोशी में एक तीर्थस्वाम है। वहाँ पादकों का मन्दिर था। वह शिलालेख उपसंहार (ख) में प्रकाशित कर दिया जाता है।

महाराजा मानसिंह—आमेर क महाराजा मानसिंह ककर के एक बड़े मामी सरदार और उन की दाहिनी मुखा थे। आप बड़े शूर-वीर थे और आप ने जब पर जय लाम किया था। सोरान से ककर समुद्र पयन्त का देश दिल्ली सम्राट क अधीन कर दिया था। उनका अन्तः सारे भारतवर्ष में प्रसन्न था। तारीख चिरिस्ता में लिखा है कि उन्होंने आसाम विजय कर के १२० हाथी पादशाह क पास भेजा था। उनको वे बहाल, बिहार, दक्षिण और कानुन की सुवेदायी बनी सोदता से की थी। उनका प्रणय देवा बड़ गया था कि ककर और जहाँगीर भी उन से मय खाते थे। कबि कबियों का वे बड़ा उत्साह करते थे। बिहार भी उम्दाबन्ध इस विरचित 'बह विजयता' उपन्यास से ज्ञात होता है कि बहला रामायण कुनकर उन्हीं में उन के रचयिता भी हनुमान जी का बड़ा सम्मान दिया था। कबिर हरिदास के पुत्र हरिदास कबि उन की समा के महान कबियों में से थे। 'मानसिंह' 'कार्तिक ककर' तथा 'प्राकृतिक' उक्त के कइरेवी अनुवाद पृ ११६ में उनका उक्त उचित

वर्णित हुआ है।<sup>१</sup> श्रीमान् मानसिंह को और उन के बचा जयत सिंह को गोसाईं की से बर्षा स्नेह या और के शोभ इनके बरान को प्राय आया करते थे।<sup>२</sup>

खानखाना—अबदुलरहीम खां<sup>३</sup> खानखाना बैरम खां के पुत्र थे जिस बैरम खां की सहायता से हुमायूँ को भारतवर्ष में विजय-शाम हुआ था। खानखाना अकबर के एक सुप्रसिद्ध सरदार और भाँवों की पुठली थे। भरबी फारसी तुर्की, संस्कृत एवम् हिन्दी के अच्छे ज्ञाता और कवि थे। इन्होंने बकाय बावरी को तुर्की भाषा से फारसी में अनुवाद किया है। इन्होंने रहीम छतर्छई, बरबे नाविका-मेव, रासर्षाभाष्यामी मवमाय्य और एक फारसी बीबाल की भी रचना की है। इन के संस्कृत के श्लोक बहुत कठिन पाने जाते हैं। इन के नीति आदि के दोहे बड़े बड़े, मधुर और मनोहर बड़े जाते हैं। इन के बहुत से शेरों पर फारसी-निवासी स्वर्गीय मिश्रर बाबू राधा कृष्ण दास ने बुद्धिचिन्ता भी बनाई हैं जो 'सरस्वती' के कई एक संस्करणों में प्रकाशित हुई हैं। इन के दोहे 'अज्ञविद्यास' प्रेस द्वारा प्रकाशित 'माया घार' ग्रंथ में भी संयोजित हुए हैं।<sup>४</sup> वे पंडित कवि ज्योतिषी शावर सब प्रकार के गुणियों का बचासोब सत्कार करते थे। कवि गद्य पर इन की विशेष कृपा रहती थी। मिचिष्ठा प्रदेरा के लक्ष्मीनारायण कवि भी इन की सगा में रहते थे। एक बार इन्होंने रीबां क नरेख के पास यह बोहा "विनकूट में रमि रहै, रहिमन अबबनरेस। जापर विपदा परति है सो आवत नइ डेस ॥"

१ मुसलमान खेकक गय दि० १०२४ (१९१५ ई०) में बहाल में इन का देहान्त होना बताया है। परन्तु घामेर के कागज़ों से दो वर्ष पीछे खिलज़ी की प्याई में इनका और गति को माह होना पाया जाता है। इसी से प्रिंसटन साइन्स ने 'बी माडर्न वर्नेकुलर लिटरेचर' (The Modern Vernacular Literature) ग्रंथ के पृ १३ में १९१८ ई० में इन का स्वगतस होना लिखा है। शिखसिंह ने सं १५८० (१५२३ ई.) में लिखा है। यह सर्वथा मूख है। अकबर १५५६ ई० में शख सिंहासन पर बैठे और उन के नामी विजयी सरदार का परबोक हो १५२३ में १ क्वा खू।

२ सरस्वती' भाग ५ सं १२ पृ ४२३ में लिखा है कि मानसिंह भगवान सिंह के भाई जगत सिंह के पुत्र थे। उन्हें भगवान सिंह ने गोत्र दिया था। और कन्नकटा के खलित माहन अरबे द्वारा सम्पादित 'दादराजखान' पृ० २३३ के नोट में लिखा है कि भगवान सिंह के तीन भाई थे—सूरत सिंह जगत सिंह और माचो सिंह और मानसिंह सबसे अश्वितम भाई के पुत्र थे। परन्तु न जाने आगे अकबर उसी भाग के पृष्ठ २३४ में जगत सिंह को मानसिंह का भाई कैसे लिख दिया है Jay Sinha the grandson of Jagat Sinha ( brother of Man ) was raised to throne कथावित् इसी से प्रिंसटन साइन्स ने भी मानसिंह को जगत सिंह का भाई लिखा है।

- ३ इन का जन्म लगभग १९१३ और देहान्त लगभग १९८३ में हुआ।
- ४ हम की वहाँ पर पाठकों के अचबोकपार्थ कई एक दोहे उद्धृत कर रहे हैं :—  
'मा रहीम जोसुं बड़े बहत फरै अयाव।  
प्याय से करबी मचो तिरछी २ जात ॥

लिखकर एक बापक को बहुत-सा पन दिलवाना था। कहते हैं कि इन्हें धीमे-धीमे मगधान में प्रेम का और अन्त में हार्ने से पास पारण कर मित्राहति प्रदह्य की थी। उसी अक्षर पर इन्होंने एक बार कहा था 'ए रहीम वर दर किरै मांगि मनुकरी खाहि। मारो मारी जोकिये, ने रहीम अक्ष पाहि।।

इस का वृत्तान्त 'भारिन अक्षरि' और उस के अनुवाद के पृष्ठ ३३८ में सविस्तर लिखा है। मोक्षपुर-निवासी सुप्रसिद्ध मु. देशीप्रसाद ने भी इन की बीबनी उद्. में लिखी है। यह हिन्दी में भी छप गई है।

विद्यानुरागी तथा ईश्वरपत्नी होने के कारण इन की गोस्वामी जी में बड़ी धर्या थी और दोनों पुरुषों में पत्र-व्यवहार भी रहता था। जब-जब वे काशी में आते थे गोसाईं की का अक्षरम दर्शन करते थे। प्रवाद है कि एक दरिद्र ब्राह्मण ने गोसाईं के पास अपनी कन्या के विवाह के लिए सहायता की प्रार्थना की। मोस्वामी जी ने एक पुर्जे पर यह पत्रार्थ दोहा लिख कर उसी ब्राह्मण के हाथ खानखाना के पास भेजा —

“सुग तिय, नर तिय, नाग तिय, सह येदन सय कोई।”

ज्ञानयामा ने इसके उत्तर में यह उत्तराद्य दोहा लिखा और उस ब्राह्मण को बहुत कुछ दम्प भी दिया —

“गर्म शिये हुलसी पितै, तुलसी से सुत होइ”<sup>१</sup>

जा गरीब को आदरे, ते रहीम बड़ लोग।  
 कहीं सुनयामा बापुरी, कृष्ण मिताई लोग ॥  
 तुमा बदन को बाहिय, छोटम को उरगत।  
 का रहीम हरि को बटपो, जी भृगु मारी साव ॥  
 राद अस्त सिर घु रगत कहु रहीम किहि काव।  
 जो रज रिविपतनी तरी, सोइ लोअठ गभराव ॥  
 ते रहीम मन धारना, बीनो बाव अकोर।  
 विमुबामर सामथो रहै, कृष्णअन्न की गोर ॥  
 प्रीम को सुप्र कादि कै मसिपत खान खगान।  
 रहिमन कहुण मुखन को, अहिये यही सत्राय ॥”

१ इस दादा के सम्बन्ध में श्री ज्ञानमद साहन दत्त ने लिखा है — “बादशाह के एक मंत्री का पुत्र तुलसीदास की यही भक्ति करता था। एक दिन कथा प्रसंग में तुलसी दास ने उस से कहा कि ऐला शिवा किनकी गर्भपत्रशा भोगा करती है तो भी पुत्र की कामना करती है। मंत्री पुत्र ने उत्तर दिया कि 'तुलसीदास के समान भगवत्पुत्र पुत्र पाने में गम सार्थक होगा यही आशा करके नारीगण यह कथ स्वीकार करती हैं।

राजगारा के साथ इस दाद का पत्रोद प्रयग जाइल की अपरा मंत्री पुत्र ने इस का सम्बन्ध उरपुन प्रतीत दाता है।

अर्थात् यद्यपि सब स्त्रियों को प्रसव पीड़ा समान होती है तथापि ये सब गम्भीर होने पर हर्ष मानती हैं कि कदाचित् तुलसीदास के सारा उन्हें पुत्र उत्पन्न हो। उत्पन्न होने के लिये प्याजखाना ने गोसाईं की की पूजा रूप से प्रार्थना की। किन्तु इस दोहे को उस ब्राह्मण के कार्य से क्या सम्बन्ध था वह बात हमारी समझ में नहीं आती। इतिहास तथा देवता को कुछ प्रसन्न हो गया तो कोई सम्येह नहीं।

भर्मपरायण बड़े १ नामी पुत्रय साधु महात्मा कबिकोविद राजमन्त्री आदि तो आप के वर्णनार्थ आया ही करते थे परन्तु जहाँगीर पादशाह का भी इन के पास कमी १ आना कड़ा जाता है आर करते हैं कि एक बार गोसाईं की का दर्शन कर जहाँगीर के बड़े बाने पर लोगों ने आप से कहा कि "घमाट क पिठा अकबर बादशाह १६ नामी, सुजन और बुद्धिमत्त थे और इन का दरबार युष्मिं, पंडितों और विद्वानों से भरा रहता था जिन में बीरबल बड़े ही कुशल्युक्त और युष्मिंयान थे।" इस पर कदाचित् गोसाईं ने कहा था कि "ये सब बातें झूठे तो क्या जब ईरवर में प्रेम नहीं हुआ" और साथ ही साथ उन्होंने ये यह कविता भी पढ़ी थी:—

“काम से रूम प्रयाप विनेस से सोम से सील गनेरा से माने ।  
 इरिचन्द से सांय बड़े विधि से मधवा से महीप विपै सुख माने ॥  
 मुकु से मुनि सारद से यकता फिर जीवन लोमस्य त अचिकाने ।  
 औसे मये तौ कहा तुलसी जो ये राजिबलोपन राम न जाने ॥”

प्रथम तो अकबर के विषय में गोसाईं की स्वयम् बहुत कुछ जानते ही होंगे, क्योंकि उन की मृत्यु के समय इन की अवस्था ७१ वर्ष की होगी। इन से ये सब बातें कहने की कोई आशंका नहीं थी। दूसरे इस कविता से यह स्पष्ट झल नहीं होता कि यह कविता पादशाह के सम्बन्ध में की गई अथवा बीरबल के सम्बन्ध में अथवा सर्व साधारण के सम्बन्ध में। पादशाह के सम्बन्ध में तो यह नहीं हो सकती क्योंकि वे 'राजिबलोपन धी राम' से कहे श्रुति लगा सकते थे। वे सुसज्जमान थे, उन्हें अपने ही धर्म के अनुसार ईरवर में श्रुति करना प्रिय था। और वे ईरवर को भूखे भी नहीं थे बल्कि उन्होंने स्वयम् इलाही मजहब का यह बात नहीं कही या सकती थी। क्योंकि वे भी ईरवर से अपने नहीं थे बल्कि उन की कविता से प्रतीत होता है।

१ गर्भ चढ़े पुनि रूम चढ़े पसना ये चढ़े चढ़े गोद बना के ।  
 हाथी चढ़े पुनि घोड़ा चढ़े सुखपाज चढ़े चढ़े जोम बना के ॥

१ इस पंख का सविस्तर पृथग्व्युत्पत्ति मिर्जा मुहम्मिद शाही इन 'इबिलामुल मजहब' के अन्त में लिखे थे।

वैरी धौ मित्र के विस्त चढ़ै कवि ब्रह्म मने दिन धीते पना क ।

इस कृपाक्ष को जान्यो नहीं भय कधि चढ़ै चले धार जना क ॥<sup>१</sup>

२. यद्यपि सोय करै अथ द्रव्य को गर्भ मं कौन की गठ को खायो ।

जा दिन जन्म लियो जग मा सब कविक कोटि लिये सँग आयो ॥

वा को मरोस क्या छोड़ै भर मन । जा सौं अहार अक्षम मं पायो ।

ब्रह्म मने जनि सोय करै यहि सोचिहैं जो पिरया बलहायो ॥

इस कूट सङ्केत हैं कि गोसाईं जी की पूर्वाक्ष कविता से ये कुछ कम उपवेश्यजनक नहीं हैं । और उपयुक्त भाव्यायिका करे मध्य ही गल्प है इधमें सन्देह नहीं । अथवा जो हो, भाव लोग वीरबन का भी कुछ हाल सुन लीजिये ।

वे अक्षर पादशाह क एक मुविख्यात सरदार वीर हासप्रिय मित्र थे ।<sup>२</sup> कविता भी अच्छी करते थे और कविता में अपना नाम 'ब्रह्म' रखत थे क्योंकि भाव साक्षर थे । इसी से पहिल इन्हें कविराम की उपाधि मिली थी फिर रामा थी । इनका पद तीन हजारों का था और नगरकोट में विजय प्राप्त करने के अनन्तर इन्हें 'गोसाइब दानिकर' की पदवी मिली थी । अक्षुभामिस्तान क विद्वत् पर्वत कन्दरा में मुमुक्षुसाइयो क हाथ से इन क वीर्यवि को प्राप्त होने पर पादशाह का असह्य शोक हुआ था और उन्होंने दो दिन तक भ्रम जल भी ग्रहण नहीं किया था । इनकी १२ १३ सबयाएँ इसको सुन्दरी तिसक' में 'शिबसिंह तसोत्र' पृष्ठ २०० तथा २४ 'मनोगमा' कर्प ३ खंड २ पृष्ठ १ में इधमें में धार हैं ।

इस प्रसंग में जहाँगीर पादशाह का पुत्र नाम आन से इस यहाँ पर यह कदना चाहते हैं कि गोसाईं जी के दिल्ली में बुलाये जान उपर्युक्त वहाँ वाली सना कुछ उपश्रम का हाल तो जहाँगीर ने कुछ जहाँगीरी में सम्मिलन इस कारण से भी न लिला हो कि उस में उन की मानवामि थी, परन्तु बनारस में इन से भेंट का हाल तथा गोसाईं जी का विजय विजयान' की बात लिखान में क्या आपाति थी यदि ये सब घटनाएँ सत्य थीं ? श्री कृष्ण

१ इन्हीं आशय की एक कविता केंद्रवदासहृत् रामचन्द्रिका में भी देखी जाती है और वह शक्य के प्रति ध्याय का वाक्य है—

'पद चर्या पलना पसिका यदि वासकिहूँ यदि माह मर्या रे ।

बीक चर्या चित्रसारी चर्यो गजवाजि चर्यो गङ्गाबै चर्या रे ॥

स्वोम विमान चर्याई रयो यदि केचय सो कचहूँ न पश्या रे ।

चेनत नाहीं रयो यदि बिल सौं बादय मूड बिना हूँ चर्यो रे ॥'

२ इनके सम्प्रत्यय का विवरण नहीं है । योगपुराण इन का जन्म मकरज में अथपुरवाये अक्षमेर के निकट बड़ गांव में काई दिल्ली काई मुन्देसगड क घन्तगत दिहा में कोई काठी में और काई काउरी न आगे मकरपुर में बलने हैं ।

३ सुनते हैं कि जहाँगीर पादशाह ने गोसाईं जी का कोई विजय विजयान था और वह मद्रनाथ' में गंगाराम जीनिधी जी के बराबर एगरोव नाम स्वाम के पास है । रामायण को समानोचना देगिये ।



प्रेमानुरागिनी सुखिण्यात मीराबाई का भी गोसाईं की से पत्र-स्ववहार करना लोग मानत हैं और कहते हैं कि जब स्वपरिवार तथा कुटुम्बियों की ताड़ना से उन का नाकोरम भा गया तब उन्होंने ने निम्नादृत पत्र भेजकर गोस्वामी जी से सम्मति मांगी की कि ऐसे अवसर में उन्हें क्या करना उचित था।<sup>१</sup> उन का मेला हुआ पत्र यह है —

“स्वस्ती भी तुलसी गुन दूषन हरन गोसाईं ।  
 वारहिवार प्रनाम करउँ अब हरहु सोक समुदाई ॥  
 घर के स्वजन हमारे जेत सवन उपाधि पदाई ।  
 साधु संग अब भजन करत मुहि देत क्लेश महाई ॥  
 वासपने त मोरा कीर्त्ता गिरघर प्राप्त मिताई ।  
 सो तो अब छूटत नहिं क्यो हूँ जगी भगन परिध्याई ॥  
 मेरे मातु पिता के सम हौ हरिमछन मुखदाई ।  
 हमको कृपा बचिब करियो हे सो क्षित्तिये समुदाई ॥”

उसके उत्तर में गोसाईं जी ने कदाचित् यह पत्र लिख भेजा था —

“जिनके प्रिय न राम बेवही ।  
 तमिए ताहि कोटि वैरी सम यद्यपि परम स्नही ॥  
 तात मात भ्राता सुत पति हित इन समान कोउ नाहीं ।  
 रुपति विमुख जानि क्षुभु एन इव समत न सुख्य बराहीं ॥  
 तज्यो पिता प्रहाइ विभीषण्य वन्दु भरत महतारी ।  
 गुरु वसि तज्यो कन्त प्रग वनितन भं सब मंगलकारी ॥  
 भातो नेइ राम को मानिए सुहृदय सुसेष्य जहाँ सौं ॥  
 अंगन कौन ब्यालि जौं कृते कहुते कहाँ कहाँ सौं ॥  
 तुलसी सोइ मय मांति व्यापनो पूज्य प्रान तें प्यारो ।  
 मातें होय स्नेह राम सौं सोइ मतो हमारो ॥”<sup>२</sup>

कहत हैं कि वही पत्र पाकर मीराजी स्वस्वामिनी होकर तीर्थाटन को निकल गईं ।

१ पवित्रत रघुबंध चर्मा ने मीराबाई की का गोसाईं की की सेवा में स्वयम् उपस्थित होना लिखा है। मत्तमात बन्धुम’ ‘मत्तमात राम शक्तिवाक्यी’ तथा ‘मत्तमात हरिमति प्रकामिदा में भी मीराबाई और तुलसीदास में बाल्यकाल लिखी है।

२ काशी विश्वामि बाबू कर्पूरक प्रसाद के संज्ञानुसार मीरा जी के पत्र के उत्तर में गोस्वामी जी ने जो अपनी सा पिता साईं भ्राता (क० रा० उत्तरकावच अन्तर ३५) काशी कविता भी लिख भेजी थी।

टाड साहब के लेखानुसार माणवार इत के मैक्ता क राठौर दुप्रिय सरदार बोदा के जगुर्ब पुत्र दाद की मीराबाई कन्या की <sup>१</sup> और मेराद क स्वध्या के पोते तथा मोहनदेव के पुत्र कुम्भूराबा <sup>२</sup> से जो अपने पिता के पीछे सं १४७२ (१४१८ ई०) में राजसिंहासन पर विराजमान हुये से उन का विवाह हुआ था। प्रियसन साहब विवाह का समय १४०० सं० (१४१३ ईसवी) लिखते हैं। टाड साहब का यह भी कथन है कि मीराबाई अपने समय की बड़ी प्रसिद्ध रानी थीं—सुन्दरता के कारण भी एषम् भर्मपराचर्यता के लिये भी। उनके रूप बद् और भजन अमीतक बतमान हैं और उन की प्रशंसा होती है। समुना से क्षेत्र हारिका प बन्त अधिक तीर्षटन करने से लोग उन का बहुत नाम भी घरा करते थे। वह नहीं कहा जा सकता कि मीराबाई क कारण कुम्भू को पदरचना का बसाह हुआ या उन के कविताश्रेणी होने के कारण मीराबाई की पदरचना में उचि हुई परन्तु इस का चल गीत गोविन्द का मान्य हुआ इत्यादि।

Koombhoo married a daughter of Rahtore of Marwa, the first of the clans of Marwar Meeras Bai was the most celebrated princess of her time for her beauty and romantic piety

Her compositions were numerous, though better known to the worshippers of the Hindu Apollo than to the reliable bards. Some of her odes and hymns to the deity are preserved and admired. Whether she imbibed her poetic piety from her husband, or whether from her he caught the sympathy which produced the sequel to the songs of Govind we cannot determine. Her history is a romance, and her excess of devotion at every shrine of the favourite deity with the fair of Hindu from the Jamna to the world's end, gave rise to many tales of scandals.<sup>3</sup>

साहब बहादुर क विचार में जो आका है, उग्हों न बड़ी सिख मारा है, परन्तु यह बात आगे रक्त विदित होमी कि उनका सरा ठीक नहीं है।

मारचन्दु हरिश्चन्द्र संयुक्तीन सुरदास कृत 'साहित्य लहरी' सङ्क के पृष्ठ २१० में जो विस्तीर्ण का प्राचीन प्रथम दिना हुआ है वह भी राजस्थान रंज क ही आधार पर लिखा हुआ प्रतीय होता है। दानो का बचन प्रायः एक सा क्या जाता है।

१ सल्लिमोहन आर्य द्वारा सम्पादित 'टाड राजस्थान म० २ पृ० १०-१८ इतिव। प्रियसन साहब ने शनिवारगंगा लिपिकर टिपणी में टाड साहब वास्त भी नाम दिया है।

—The modern Vernacular Literature P 12.

२ यही 'टाड राजस्थान', हरिश्चन्द्र • पृ० २२२—२६।

३ यही 'टाड राजस्थान', पृ० २२६। आर्या हरिश्चन्द्र के पृ० २२० म ही बात कीजिये।

बाबू कातिक प्रसाद जी ने 'मीराबाई का जीवन चरित्र' नामक ग्रंथ में लिखा है कि "माधवार-मैरठा-निवासी राठौर साबदार जैमल की परम रूपवती कन्या मीराबाई ने १४५५ संवत् में जन्म ग्रहण किया था" (पृष्ठ १) एवम् "उदयपुर के राजा कुम्मा की से लगका विवाह हुआ था" (पृष्ठ २)। आप ने कच्छर बादशाह का भेज बदलकर ताजसेन के साथ मीराबाई को दरान के सिने आना भी लिखा है (पृष्ठ १२)।

'तारीख मुहफए राबरनाम' में मौलवी महम्मद अब्दुस्साह पधती ने लिखा है कि 'संया को इस सिफरत का बेहाबत रंग हुआ वह इसी सास के कच्छर मेवाड़ के पहाड़ी इलाके में मीठ से बा किछी के कच्छर देने से इन्तकाश कर गये। इन महाराजा का वो भेटे इन के सामने पुकर चुक से जिन में से बड़े मोहराज के साथ मंत्रिणा राठौर जममल की रिररोधार बहन मीराबाई जिस के कुजीराना भजन कबाम में मशहूर हैं प्वाही गई थी।"

मीराबाई सम्बन्धी संखों में ऐसा वक्वच पाये से हम ने सुविध्यात इतिहासनेता मोघपुरनिवासी सु० डेबीप्रसाद मुगिचक के पास इस विषय का एक पत्र भेजा। आप ने ज्वा-पूर्वक जो उत्तर भेजा है उसका सारंश नीचे लिख दिया जाता है —

मीराबाई और राजा कुम्मा की शादी का हाल भी निम्नलिखित बहुत-सी मसखीहान टाड साहब के हैं। उन्हों ने कितीक में राजा कुम्मा और मीराबाई का बनाने हुवे मन्दिर पास पास में देवदर पेसा पकट पनाक कर लिया। सहीह तारीखी कजर यह है कि मीराबाई मैरठा के राजू की राठौर के भेटे रतन सेन की सक्की की और जमकी शादी राजा संया के दूसरे भेटे मोहराज से हुई थी जो अपने भाप की जिन्दगी में मर गया था। मीरा बाई का इन्तकाश सं० १६०४ में हो गया था। — मीरा बाई को राजा विक्रमादित्य के बीकान कीम महाबल की ब्राह्मणी ने बहर दिया था। मीराबाई का आप बीकानकी कीम को कब तक खता हुआ है और ने मानते हैं कि उस भाप से हमारी बीकान और दासत में लकड़ी नहीं होती है। भिने मीराबाई का हाल कहां तक सुखये मानूम हुआ है उनकी स्वानेह जमरी 'महिता मनुषानी' में ब्राप दिया है।"

'महिता मनुषानी' देखने से यह भी फात हुआ कि सं० १४७२ में इन का विवाह हुआ था परन्तु ये तीछ ही बिबवा होकर भगवद्भजन करते लगी थी। उन के देवर महाराज्या रतन सिंह विक्रमादित्य सिंह तथा उपज सिंह तीनों दम से अपने पिता की घरी पर भेटे गये। इनमें से रतन सिंह तथा विक्रमादित्य इन की लक्ष्मी पर साछु सारों का ब्राम-बाना देवदर चिपटे से और जम लानों के निषेप करने पर भी नहीं मानते थे विक्रमादित्य ने अपने बीकान की सम्पत्ति से बरसामृत के नाम से इन के पास बिय भेजा था। ये भाये बदाकर उठ को पी गई। परन्तु बिय उन को नहीं बदा और राजा भी का मुह कतर गया। फिर ये तीर्य बाना को गई और कुछ काल के बाद भी हारका में कोलोकाठिनी हुई।

मु ली भी का पत्र और ज्ञेय मासकी साहब के लेख से मिलता है। भेद इतना ही है कि मौलवी साहब ने मोहराज को राजा सांगा का पकेठ पुत्र और मीराबाई को जममल की बहन लिखा है। अन्य लोगो ने ज्ञेय इन दोनों महाशयो के हुरों से उदया भिय पाये जाते हैं। कातिक प्रसाद ने मीराबाई को उदयपुर की कन्या और मौलवी साहब ने उदयपुर

कहा है। ठाढ़ क अतुंगार व अयनरुत की पृष्ठा तथा दूग की कन्या थी। सुखी देवप्रियाद  
इन्हें मङ्गलिया रात्रीर रतन सिंह की पेटो राय दूरा जी की पेटो एमम् अयोपुर क बसानबन्ध  
राय मोषा की परपोती बतात हैं।

बाहय किसी की कन्या या बहन हो इस से हमलोगों को इतना प्रयोजन नहीं है।  
प्रयोजन है इस बात स कि गोसाईं जी क साथ उन का पत्र-व्यवहार करना या मिलना  
सम्भव है या नहीं!

अब यदि इन का कुम्भ राणा की पत्नी होना प्रतीत कीजिय तब तो ये बातें सबका  
असम्भव हैं। क्योंकि कुम्भ राणा सं० १४७३ में राजसिंहासन पर विराजमान हुए थे और  
उन का मीराबाई से संवत् १४७७ में विवाह हुआ था। यदि मीराबाई का विवाह  
१२ वर्ष की अवस्था में माना जाय तब गोस्वामी जी क अमकाळ ही के समय ( किसी दिवाक  
से क्यों न हो ) उन की अवस्था न्यूनाधिक १० वर्ष की हो जाती है। फिर गोसाईं जी के  
संग पत्र-व्यवहार करान क लिय उन्हें कितने दिन तक अहित रहना पड़ा!

यदि राणा राणा के पुत्र भोजराज स विवाह मानिय तो सम्भव और असम्भव दोनों  
ही बीछना है। क्योंकि राणा राणा न १२३ ई ( १२०७ स ) में उरीर त्याग किया कार  
गोसाईं जी का अम लोग सं १२०६ में मातत हैं। अब यदि भोजराज का अम  
राणा जी की मृत्यु क २०-३० वर्ष पहले भी हुआ हो तो उन की उम्र का गोसाईं जी का  
समकालीन होना और इन से पत्र व्यवहार करना कोई आशय की बात नहीं। परन्तु सुखी  
जी मीराबाई का भी मृत्यु में लीन होना सं० १६०६ में बताते हैं, जबकि गोसाईं जी की  
अवस्था १२१६ वर्ष की होगी। उधी समय क्या इन की मृत्युति ऐसी कैल गई थी कि  
मीराबाई इन से अर्थात् सम्बन्धी सम्मति मांगती! तब समय तो य विरक्त भी नहीं हुए होंगे  
करावित् इन का विवाह भी नहीं हुआ हाया। अतएव यदि सुखी जी त्रिगित मीराबाई का  
मृत्यु काल ठीक माना जाय तो दोनों के समकालिक होने पर भी दोनों में पत्र-व्यवहार की  
सम्भावना नहीं। और सुखी जी का कल्प ठीक नहीं मानन का? इस कोड़े कारण नहीं  
बचत। यदि ही ता नहीं कि बहुत से लोग इन दोनों 'पूरनोष' व्यक्तियों में पत्र-व्यवहार होना  
मानते बात हैं। परन्तु लोगों न तो मारा जी के मुख स उन क पूर्य पति क प्रति भी बहुत ही  
देखी बातें कहते हैं जो मीराबाई जैधी उनी तथा पतिव्रता रत्नी क मुख स निकलना  
संभव नहीं।

हो यदि 'मानव-मर्क' क अतुंगार गोसाईं जी का अम १२२४ सं० में माना  
जाय तो मीरा जी के उरीरराय क समय काय की अवस्था २० वर्ष की होगी तो सही परन्तु  
उस समय भी काय की मृत्युति के सम्बन्ध में हम का अर्थ ही है। हमारी यह धारणा है कि  
काय की मृत्युति त्रिस स लोग अम सम्बन्धी बातों में काय म अतुंगार इन सगे हो रामायण  
रचना के पीछे ही हुए हाये। और मरक क अतुंगार काय न उस संवत् की रचना ७७-७८ वर्ष की  
१ सुखी जी का अत अवरय मामागिक (मानव वाण्य) ह, क्योंकि एक तो काय  
सुखयान इतिहासकाल अमर मीराबाई क कल्पना।

अवस्था में ( अर्थात् सं० १६१२ में ) आरम्भ की जब कि मीरा को स्वर्गपान्न दिने २७ वर्ष हो गये होंगे ।

हम को जो कुछ जहाँ तक अवगत हुआ है पाठकों के सामने हमने उसे उपस्थित कर दिया है । विह्वल वाक्य बृन्द निम्न विवेचना से जो उक्ति समझें उसे स्वीकार करें ।

हां ! हम इतना और कहेंगे कि "जिनके प्रिय न राम बरही"—इस विरोध पर मैं कोई भी ऐसा शब्द नहीं है जिससे वह निरन्तरपूर्वक कहा जान कि यह पर मीराबाई के पत्र के उत्तर ही में लिखा गया था, सम्भया नहीं । हमारी समझ में तो इस की रचना सर्वसाधारण के उपदेश हेतु भी कही जा सकती है ।

निरन्तर मीराबाई का पत्र स्पष्ट है । परन्तु जैसे वं ब्याख्या प्रसाद जी ने अपनी बनी रामायण में अनेक ही का वृत्तरथ जी के पास भेजा हुआ पत्र रच दिया है जैसे किसी को वह पत्र ही बना देने और रच देने में क्या विषय हुआ होगा ?

श्री सीता रामचरण भगवान प्रसाद जी क विता सु - तपस्वी रामजी ने लिखा है कि सन्तों की सम्मति से मीरा जी श्रद्धागिणी होकर विरक्त हो गई । उन्होंने मे गोसाईं जी का नाम स्पष्ट नहीं लिखा है ।

मीराजी की मृत्यु संवत् १६४४ में मानने से अफसर का टानसेन के छद्म छनसे मिलने की बात भी प्रमाणित नहीं होती क्योंकि अफसर सं० १६१२ ( १६२६ ई० ) में रामकिशासन पर विराजमान हुये न ।

ये सब का कुछ हों परन्तु मीरा जी एक महत्शिरोमणि थी । उन की गणना प्रथम श्रेणी के महात्मे में है । उन के उपासन वेद धीकृत्य रणकोट थी ये । वाक्यावस्था ही से वे उन के रंग में रंगी हुई थी और उनकी कंधान तथा गुणवान में मग्न रखा करती थी । मीरा जी विरक्ति 'भरसी जी का मायरा' । 'मीठ गोविन्द की टीका' तथा 'राग गोविन्द' अनी तक बतमान हैं । उन के रथे सरस भजन और पर मन्दिरों में श्रद्धों के बरों में एवम् सन्त-महत्सिनों में बड़े प्रेम से गाये जाते हैं । उन की कविता सुश्रेष्ठ मधुर मन्त्रितरुपपूर्ण ईश्वरप्रेमवर्द्धिनी एवम् शैलान्त उत्पत्तिनी पाई जाती हैं । नामा की कृत महत्मास तुलसीदास काव्य कृत महत्मास भी सीताराम चरण भगवान प्रसाद काव्य कृत महत्मास की टीका आदि ग्रंथों में उनकी कथा अधिकतर लिखी हुई है । काशी निवासी स्वर्गीय बाबू कार्तिक प्रसाद शर्मा ने उन की एक पृथक जीवनी लिखी है । सोनपुर निवासी सु देवी प्रसाद ने भी 'महिला मृदुवाणी' में उनके जीवन वृत्तान्त का बखान किया है ।

बनारसी विश्वास<sup>१</sup> से विदित होता है कि बनारसी दास तथा मोक्षामी जी से आगरा में कई बार सम्मिलन हुआ था और दोनों में निम्न भाव भी था । बनारसीदास एक ब्रह्म महात्मा पंडित तथा ब्रह्मवि थे । मोक्षामी जी के स्वर्गवास क समय उन की अवस्था २७ वर्ष की थी । संजनों से मिलना उन का एक स्वभाव था ।

१ देवरी (मध्य प्रदेश) निवासी नाथराम संपादित ग्रंथ पृ० १०२—४ और २४२ दिये ।

कहते हैं कि एक बार क सम्मेलन में गोसाईं जी ने उन्हें अपनी रामायण की एक प्रति दी थी और बनारसी दास की भेंट की हुई पारबनाथ स्वामी की स्तुतिमय कई एक कविताएँ से अपने साथ लूठ गये थे। कई वर्ष बाद फिर दोनों पुछों में भेंट होने पर प्रसंगवश स्वामी जी ने रामायण के विषय में उनसे प्रश्न किया। उस क उत्तर में बनारसी दास ने अपनी समस्त शीघ्र सिन्धी हुई कविता रखकर उन्हें सुनाई।

“विराजै रामायण घट माहि । मरमी होय मरम सो जाने मूरख माने नाहि ॥  
 आत्मराम ज्ञान गुण लक्ष्मण सीता सुमित समत । शुभ प्रयोग धानरदक्ष मंडितथरविदक  
 रन खेत ॥ ध्यान धनुष्कार सोर मुनि गइ विषयदिति १ भाग । मइ मस्म  
 मिथ्या मत लंका ठठी धारना प्राग ॥ अर भ्रमज्ञानभाय राक्षस कुत लरै निकान्ति  
 सूर । जूक रागद्वेष सेनापति संसे गइ चक पूर ॥ यिलखत कुम्भ फरन भयविभ्रम,  
 पुलफित मन दरियाय । यकित उदार धोर महिगयन, सेतुबंध मम भाय ॥ मूर्खित  
 मंदोदरी हुरामा, मजग धरन २ हनुमान । घटी चतुर्गति परगति सेना छुटै छपक  
 गुन यान ॥ निरधि सकनि गुन धरु मुदशन उदय विमीपन दीन । किरै कर्षध मही-  
 रायन की प्राण भाव सिर हीन ॥ इह विधि सकल साधु घट अन्तर, होय माइज  
 सैमाम । यह विद्यहार दृष्टि रामायण, क्यल निरचय राम ॥”

गोस्वामी जी उन क इस अप्पारम आनुष्य को बेग बहुत प्रसन्न हुये और आप ने कहा कि “मैं इस सुन्दर कविता के बदल एक पारबनाथ स्तोत्र को आप की पारबनाथ स्तुति पढ़कर भिने बनाया है आप को भेंट करता हूँ। उस का नाम ‘महं विरदावली’ था। उग के दो छन्द बनारसी विनाय के सम्बन्ध में स्वसम्पादित प्रथ में उद्धृत किया है :—

“पद अज्ञान भी भगवान बू क, यमन हैं उर माहि ।  
 धरु गति विरुडन तरनतारन, दान विषय विज्ञाहि ॥  
 यकि धरनिपति नहि पाग पायन, नर मो धपुरा कौन ?  
 मिहि क्षसन करुना जन पयोधर, मजहि मविजन तीन ॥  
 दुति उदित प्रियुवन मध्य भूयन, जलधि ज्ञान गंभीर ।  
 मिहि माल ऊपर छत्र सोहत दहत दोष अपीर ॥  
 मिहि नाथ पारम युगल पंकज पिध धरनन मास ।  
 रिधि मिदि कमला अजर रागिन, मजत तुलसी दाम ॥”

१ मूरनपा ।

२ मग्नरु चरित्र ।

और सम्पादक महाशय ने लिखा है कि 'उक्त विरदावली में तुलसी दास नाम के अतिरिक्त और कोई बात ऐसी नहीं है जिससे यह निश्चय हो सके कि ये 'तुलसी गोसाईं जी ही वे आशुदा कोई अन्य । परन्तु गोसाईं जी का होना सर्वथा अशुभम्भ नहीं । क्योंकि उक्त समय के विद्वानों में आशुदा की नाईं वर्मभ्रम नहीं था । वे ( अर्थात् गोस्वामी जी ) बड़े सरस हृदय के महा थे ।

कमठी के भी मधुसूदन स्वामी से भी गोसाईं जी की मित्रता कही जाती है । मधुसूदन जी का वर्णन अम्बत्र रामायण के प्रकरण में हुआ है ।

## चतुर्दश परिच्छेद

### वन्धु और वशज

श्री नन्ददास जी को कोई गोसाईं जी का सगा भाई और कोई गुरु भाई बताया है और कहते हैं कि जब गोसाईं जी श्री श्री शम्भानन्दन प्यारे से तब श्री नन्ददास जी वहाँ इन स मिलने आये थे। गोसाईं जी ने उन्हें धर्म आर्तिगन कर कुशलवेम पूजने के अनन्तर विहंसि कर उन्हें रामपरित गान करने को कहा। उस पर उन्होंने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि 'यदि मेरा नाम आप लोग दशरथ दास रखव तो मैं रामगुण कथन करता। जब नन्द दास हो गया तब नन्दमन्दन को छोड़ दूमे का गुण कैस गान करूं। गोसाईं जी समझी अनन्मता रख बहुत प्रसन्न हुये थे। यह कथा भी कुछ हो परन्तु यह बात विपारसीय है कि नन्ददास जी इन के भाई थे या नहीं और यदि थे, तो कैस भाई थे।

भारतनु बाबू हरिराम ने 'उत्तरार्ध' महामाल क एक खण्ड में कहा है—  
श्री तुलसीदास प्रताप से नीच छैन यह हरि भवै ॥ नन्ददास अपन द्विज कुल मति गुनमेवित ॥  
रामायण रचि राम भक्ति जग पिर करि राखी इत्यादि। और दूमे में कहा है—'श्री नन्ददास रसरासरत प्राण तज्यो सुधि सी करत ॥ तुलसीदास के अनुज सदा बिरुल पञ्चारी' इत्यादि।

उन दोनों छन्दों को स्वसम्पादित रामायण में उद्धृत करके स कु० रामदीन सिंह जी ने लिखा है कि यहाँ एक बात और भी शंका की हुई कि भारतेन्दु हरिराम ने श्री नन्ददास को तुलसीदासजी के अनुज कहते हैं और ऊपर क लेख को देखन से मालूम हुआ कि य दोनों को रमान के और दो भाग्य हैं, फिर अनुज कैसे हो सकते हैं। यदि गुम्माई ही को छोटे बच्चे क सेया के नाम से लिखा हो तब तो एक रीति स ठीक है कथना अनुज का अर्थ 'पीछे किया हो तब भी ठीक हो सकता है। जैसे 'मस्तमाल' के मगजापरग में लिखा है — मस्तमाल अनुजै भये भक्त जगत विख्यात। तिन सब नव नव परित नव भक्तमाल सुष्पात ॥

इस से निश्चय का पदाचित्त यह आशय है कि परस गागाईं जी का नाम हुआ और तब नन्ददास जी का चाहे थे सगे भाई हो या न हो। परन्तु उसे तो कमेंक मह गागाईं जी के अनुज कहा सक्त है नन्द दास जी ही की क्या बात है।



बात यह है कि नन्ददास जी रामपुर के रहनेवाले एक ब्राह्मण थे और इन के बड़े भाई का नाम बन्धुदास<sup>१</sup> था। और इनके कबीर के पास के रहने वाले कानकभूषण ब्राह्मण कहते हैं। दो ही ब्राह्मण वैष्णवों की बातों में नन्ददास को तुलसीदासजी का क्या भाई लिखा है। इसी से मारतैन्दु ने भ्रमबद्ध इन्हें रामदास के रचयिता तुलसीदास का भाई बना दिया है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि ये अपने तुलसीदास समाह्वय ब्राह्मण थे जो कि नन्ददास के जीवन चरित्र से स्पष्ट है। बल्लभ सम्प्रदाय में नन्ददास का जीवन चरित्र प्रसिद्ध है।<sup>२</sup>

इन सब बातों से तो क्या भाई होने की कथा मिथ्या होती है। अब रही गुम्भाई की बात। तो नन्ददास की अष्ट छातों में अर्थात् उन मुख्य कुम्भमन्त्रों में से हैं जिन्होंने कुम्भारक्षिता सम्प्रदायी प्रयोग तथा पदों की रचना की है एकम् ब्रह्मप्रदेश में श्री कृष्ण के मन्दिरों में बिलके पदों का नाम किना जाता है। श्री सुरदास श्री कुम्भदास श्रीपरमानन्द दास तथा श्री कुम्भदास श्री १ = बरतमाचार्य जी के शिष्य और श्री श्रीति स्वामी श्रीगोविन्द स्वामी, बभ्रुपदास तथा श्री नन्ददास श्री विठ्ठलनाथ जी के शिष्य—ये ही आठ महापुरुष अष्टछाप के मन्त्र कहलाते हैं।<sup>३</sup>

इस से स्पष्ट पता जाता है कि नन्ददास जी, श्री विठ्ठल महाराज के शिष्य तथा कुम्भारक्षिता विहारी बभ्रु-समुद्र-भाटी श्री कुम्भसुरारी के उपासक थे और गोसाईं जी श्री नरहरि दास (अथवा किसी अन्य महापुरुष) के शिष्य एवम् प्रमोद बल-विहारी बभ्रुप-बाणेश्वारी श्री रामचरारी के उपासक थे। तब दोनों गुम्भाई भी कैसे हो सकते थे ?

१ श्री सीताशाम शरदा भगवान प्रसाद ने 'भक्त माल की टीका' पृ. १०-११ में 'अमर अर्थात् बड़ा भाई लिखा है। और भक्तमाल कव्यद्रुम' में इन्हें नन्ददास जी का पिता लिखा है। कदाचिन् उस के रचयिता ने अमर को अंग्रेज पढ़कर ऐसा लिखा है। रागी कर्मल कुंभरी वैजनाथ दाम तथा पंडित रघुनाथ शर्मा ने बरौली के समीप हबेली ग्राम के रहनेवाले नन्ददास जी को गोसाईं जी का भाई बना दिया है। क्योंकि रागी साहब एवम् वैजनाथ दाम ने नन्ददास के कुम्भियों के द्वारा एक सुतक गऊ उन के द्वार पर और पंडित जी ने एक मरी बहिया उन के खेत में फेंका कर उन पर हत्या लगाये की बात कही है जिस कथा को रामपुर वाले नन्ददास से कुछ सम्बन्ध नहीं। उनपुक्त 'भक्तमाल की टीका' पृ. ११० और १-११ देखिये।

२ उस रामायण में जीवन चरित्र का पृ. ३३ देखिये।  
 ३. मारतैन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित 'चरितावली' पृ. ५५ में तथा 'शिर्षसिंह सरोज' में यही सब भगवत्कथन नाम दिये हुये हैं। परन्तु 'भक्तमाल कव्यद्रुम' तथा 'भक्तमाल हरिमति प्रकाशिका' में कुम्भदास तथा श्री गौडिन् स्वामी का नाम नहीं देकर श्री राम और श्री हरिदास के नाम लिखे हुए हैं। और श्री सीताशामशरदा भगवान प्रसाद ने भक्तमाल की टीका' पृ. १०-११ में श्री कुम्भदास दाम के स्थान में बिहदास तथा श्री द्वितिरामों के स्थान में योग स्वामी लिखा है। सम्भवतः सिद्ध और 'योग' कुम्भदास तथा द्विति का अपभ्रंश का नामान्तर है।

लोगों का यह अनुमान कि मन्ददास जी भी पहले मरहरि दास जी के बल से पीछे धीरुष्णानुरक्ति के कारण श्री गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी के शिष्य हो गये हों उन के आचरण तथा धर्मनिष्ठा पर आश्रय करता है और सिद्ध करता है कि उन का मन एक नहीं था, एक पक्ष को परित्याग कर दूसरे का अग्रगण्यन किया करत था; परन्तु एक महात्मा के सम्बन्ध में हम ऐसा कहने का साहस नहीं कर सकते ।

यदि इन दोनों महापुरुषों ने एक ही गुण के पास विद्यपार्जन किया हो और दोनों में अति धनिक मित्रता हो तो हो सकता है कि वे दोनों मुझसे थोड़े और परस्पर अधिक प्रीति प्रीति के कारण किसी २ न इन लोगों को सगा भाई भी समझ लिया हो तो सम्बेह नहीं । हम दो बार एष मनुष्यों का जानत हैं कि जिन लोगों के विद्याभ्यसन अन्त में सदा संग तथा धनिक सम्बन्ध रहने एवम् परस्पर बिलक्षण प्रीति के कारण हमें विरहास तक नहीं विश्वास था कि वे लोग आपस में सगे भाई थे और यदि हमें विरवासी स्मृति से ज्ञात नहीं हुआ होता कि वे लोग मिल स्थानों के रहनवास मिल जातियों के लक्षके य तो हम आज भी समझते कि वे लोग सगे भाई थे और उन्हें देखकर अब भी कभी २ ऐसा प्रम हो ही जाता है ।

हमारी समझ में जैसे लोग रामपुर निवासी मन्ददास जी तथा वरसी निवृत्तवर्गी इकेली निवासी मन्ददास जी एक बना कर उपर लक्षक मन्नात हैं वस ही उपर रामायण के रचयिता गुजरीदास आर दो सा वैष्णवों की बातों बर्णित तुलसीदास जी भी एक बनाकर लोगों ने प्रमोदादन कर लिया है ।

पूर्वोक्त बातों से विदित होता है कि मन्ददास जी गोसाईं जी के भाई नहीं थे । अन्य कोई इन का भाई हो तो दो ।

जिस मन्ददास जी को लोग गोस्वामी जी का भाई बनात हैं वे भी अष्टमनीय बरि थ । आप की स्थापना में कवियों ने कहा है— और सब कविया मन्ददास कविया अर्थात् और लोग कविता करी आभूषणों के रहनवास ही और मन्ददास कविता भूषणों में नग बनवाने हैं । आप ने रास पदाप्यायी रचिमणी मंगल दशन रचन्ध, नाममाता, जनकार्य दानदीक्षा मानकीक्षा आदि प्रथो की रचना की है ।

कहा जाता है कि गोसाईं जी को तारक नामक एक पुत्र भी हुआ था और वह वासनास ही में स्वर्गवासी हो गया ।

तो हो अब तो इन की लेखनी से निगत प्रंद एम्ह ही इन के बंशपरों के समान हैं एवम् संशयो से बड़कर इन के नाम को विरवासी करनवास है । सप मनुष्यों के सुग से जो सदा इन की प्रशंसा हुआ करती है वही निर्य तर्क्यादि के दुष्क है । पूरा आदि स्थानों में आ इन की मृगु निधि पर उग्रय हुआ करता है वही वापिक धाड के सरथ है । एक सुप्रमान कवि ने सप कहा है —

“रहता मा मृगु म नाम क्यामत लक्षक है जौक ।

औसाद से तो यम यष्टि दो पुन, पार पुन ॥”

## पञ्चदश परिच्छद

### भ्रमण

गोस्वामी जी काशी और अथर्व से कभी २ टीचाटन तथा भ्रमण के सिधे अन्वय भी बने जाते थे। अब कहाँ गये थे यह बात तो नहीं बही का सच्ची, परन्तु जहाँ-जहाँ इन का जाना सुना गया है उस का संक्षिप्त इतान्त पूर्ववर्ती लेखकों के लेखानुसार यहाँ पर बखित होता है।

एक बार आप काशी से पुरुषोत्तम क्षेत्र जाते समय भृगु आश्रम ( बलिया ) पहुँचे। वहाँ भी भृगु जी का स्वागत बढात है और प्रति वर्ष कार्तिक की पूर्णमासी को बहा मारी मेला होता है। वहाँ से हुंनगर तथा परसिया<sup>१</sup> होवे गावपाट के हजहोर्बशीब रामा गम्भीर क्षेत्र के बहाँ छहर आप ने उन्हें महा इशार्थ किया। अब उन के बंश के लोग हन्दी में निवास करते हैं। जो सुहप्रदेश के बलिया जिला में शाहाबाद (घारे) जिला के सामने गंगा के बामतट पर वर्तमान है। इस समय परसिया और गावपाट गंगा के दोनों छोरों पर स्थित हैं। उनके उत्तर के बंश तथा परगना तथा जिला बलिया में है और दक्षिणस्थ भाग परगना भोजपुर जिला शाहाबाद में भोजपुर से बड़ कोस उत्तर गंगा के कूल पर है।

गावपाट के सामने गंगा पार उत्तर कर आप शाहाबाद जिला में भोजपुर<sup>२</sup> पहुँचे। वहाँ पर ब्रह्मेश्वरनाथ महादेव का मन्दिर है और प्रतिवर्ष अशुभ तथा बैशाख की तिथरानि को वहाँ भक्ता हुमा करता है। गाव बल, पोषा आदि भी अच्छी मिनी होती है। प्रबाप है कि स्वयम् भद्रा जी ने ब्रह्मेश्वरनाथ की स्थापना की है। महादेव जी का दर्शन कर आप वहाँ से निघट ही काँट (आम्स)<sup>३</sup> गाँव में घावे परन्तु वहाँ के अधिवासियों की राजसी प्रकृति देख आप जो वहाँ से आगे बढ़े तो बोधी ही बूट एक<sup>४</sup> बाहीर के पुत्र मंगक से भेंट हुई।

१ वहाँ परात्पर मुनि का स्थान बताते हैं।

२ ये दोनों गाँव शाहाबाद जिले के बगसर सबडिविजन परगना भोजपुर में हैं। रसुनापपर ईष्ट इतिहास देखने छेयान से लगभग एक कोस उत्तर गंगा के समीप बसे हैं। न जाने लोगों ने हन्दी बलिया जिला में कैसे लिखा है। भोजपुर से काँट बोधी ही बूट पूर्व दक्षिण है। निम्नवर्ती दाने के कारण लोग दोनों का नाम मिलाकर काँट भोजपुर कहा करते हैं।

३ इस नाम के दो नदीरों का बलुन कोरिकाशियों में सुना जाता है।

बद बना ही मन्तवैरी था आर बह आदर क साथ गोसाई जी को धारणी गोसाळा में उतार  
 पूरा लहर उदरेकन हुआ। गोसाई जी न उस का सोमा बना कर भोजन किया। आप क  
 ध्यानागुमार प्रयुक्तित तथा बराहृषि का बर मंगल पर गोस्वामी जी ने आशीर्वाद किया कि  
 यदि तेरे बंधपर सोरी नहीं करेगे और किसी को दुःख नहीं दोगे तो तेरी मनोछामना अवश्य  
 पूरी होगी। मुनसे हैं कि उसक बराह धामीनक प्रतिनिधि सेवा में तार रहते हैं और सोरी  
 नहीं करते।

मंगल की ११-१६वीं पीढ़ी में विद्वारी चहौर क पुत्र सायुषेकी मचीबद और आसी  
 इस समय बनमान हैं। वहाँ से बजन पर बेजापनात में गोस्वामी जी को शास्त्रीयक मान्य  
 गान्धिमिभ तथा रघुनाथसिंह छत्रिय से भेंट हुए। उन लोगों न आप की बही सवा शुभुषा की।  
 ये लोग विद्वान पमिन्त और मनमंगी थे। इस से गोसाई जी वहाँ प्राय एक मास  
 टहर गये। आप के सहवास से उन लोगों का और अपिठ मान तथा बैरमय उगम हुआ।  
 धारणी सवा स प्रसन्न कर उन लोगों न हरिहरणों में देवामक्ति का शुभाशीर्वाद पाया।  
 आप ने उस गाव का नाम बदल कर उस का नया नाम रघुनाथपुर रखा जिस में कि

रघुनाथ सिंह का यादगार भी रहे और इन बहान साथों मनुष्यों क मुखों स बराबर लेख कर आपा  
 नाम भी उच्चारण हुआ करे। रघुनाथपुर आरा से परिकन ईस्ट इण्डिया रेलय कर आपा  
 स्थान है। मूनन नाम रख जान क बाद स नर वरनी सत्र प्रचार से समृद्धिवाचिनी हो रही है।  
 वहाँ गोसाई जी उदरे थे वहाँ धामी तक उन क नाम का एक बभूतरा विधान है  
 उन क उत्तर एक पुराना सरोवर है जो मूननी वृद्ध के नाम स प्रसिद्ध है। प्रत्यक पत्र पर  
 मगरनिवासी आवि उस बभूतरा का पूजन करत और वहाँ उन्मक मनात हैं। मिन्य प्रति पूजा के  
 सिधे रघुनाथ सिंह क बंधमों की ही दुई कुत्र मिन की भूमि है आर बाजार तथा गोशों से  
 गोसाई जी क मान पर तुनी निवासी जानी है।  
 उस बभूतरा पर लोगों का इतना विराग्य है कि अनाहृषि क समय सब नगर निवासी

मिलकर वहाँ इजन तथा मान्मोजन करात हैं और इति भी शीघ्र ही हो जाती है आर उस  
 स्थान क शरणान्त होने से लोगों की सब मनसाएँ सफल होनी हैं। १६२६ ई० की फाम्पुनी  
 शिबरात्रि को एक पठाघान पीड़ित २२ वर्ष क बपय का साधु किसी प्रकार स वहाँ पहुँच  
 गया। बोलने बातने की पूरी शक्ति नहीं थी। आठ महीने क बाद वह प्राय भीरोग हो गया है  
 किगले लोगों को बभूतरा में ध्यामकित और भी बह गई है और लोग गोसाई जी की मूर्ति  
 संस्थापित करन के यत्न में हैं।  
 रघुनाथ सिंह क कुल में अब कोई नहीं है। छिन्नु उन का दूटा पूटा गद धामीउक  
 हरवमान है।

गान्धिमिभ के ज्येष्ठ पुत्र राममदनी क बध में हरिहर मिभ महेश्वर मिभ उगदम्ब  
 मिभ तथा शिवरर्षी मिभ निदमान है। गान्धिमिभ फान द्वितीय पुत्र निराय मिभ को साथ  
 सहर धर्मोदरा करत वारा जिजा के बी० एम टम्पू रेश्वर के मंग स्थान के गमीसय  
 मऊमा प्राय चले गये और वहाँ से बही वसत्या का निहन मन। किसी को कुछ पठा न गया।  
 छिन्नु उरग पुत्र के बंधपर शृंग कदम उन गाँव में बतमान है।

कराकिन् सम्बत् १९४१ ४४ में गोसाईं जी बहापत्नीत आये थे। क्योंकि पूर्वोक्त मिर्छों के ठकुर स्वल्प पुस्तक से जाना जाता है कि उन के आगमन के बोंदि ही दिन बाद १९४२ में गोविन्द मिश्र घर से निकल गये।

रघुनाथपुर के निष्कन्ध कपी पौब में भी वहाँ के माहिक जोरावर सिंह ने गोसाईं जी का सादर आतिथ्य किया था। उनके बंरा में इस समय गोविन्द सिंह भी हैं।<sup>१</sup>

भारा पुरातत्व में लिखा है कि 'रघुनाथपुर से पूरब त्रिहिदा स्टेशन के समीप फटेवां पांव में भी गोसाईं जी गये थे। वहाँ इनके उपवेश पर फिली ने ध्यान नहीं दिया। भयतप इनहों ने कहा कि यह गौब फटों से ही मरा हुआ है। तमी से यह पौब फटेवां फलाने लगा। पहले उस का कुछ और ही नाम था। जिसका चारन में मैरबा के हरिराम मझ बने प्रसिद्ध हैं। कनकराही बितेल के अस्थाभार से आप प्राण त्याग कर आप मझ हुये हैं। वहाँ प्रतिबप रामनबमी को पूज्य धाम से मेला लगा करता है। गोरखपुर चारन आदि आस पास के जिलों में यह बात प्रसिद्ध है कि हरिराम जी के बहोपनीत क समय गोस्वामी जी का वहाँ जाना हुआ था। मैरबा की एन० बम्पु० रोसने साइन का एक स्नात स्टेशन है और सगरा शहर से पश्चिम है।

एक समय गोसाईं जी बबर्शन और बैराजन के निमित्त मित्रिता पये थे। कहते हैं कि वहाँ के ब्राह्मणों को हात्तापुर आदि को १२ गांव की रामचन्द्र के विवाह के समय कर रहित दान देने पये थे उन्हें पटना के सूबेदार ने चीन किया था। गोसाईं जी ने अपने उद्योग से भी हनुमत जी की कृपा से उन सब गांवों को उन ब्राह्मणों को लौटा दिया। विवाह के समय भी राम की ओर से ब्राह्मणों को मित्रिताप्रदेशान्तर्गत गांव कसे दान में मिले यह बात हमारी समझ में नहीं आती। ये सब गांव तो निधन महाराज जनक के अधीन होंगे, उन पर भी दशरथ जी का स्वत्व तो कदापि नहीं होगा। हां भी जनक जी ने अपनी ओर से भीरामचन्द्र से दान कराया हो तो सम्भव हो सकता है। परन्तु सुमेरपुर निवासी पं रघुनाथ शर्मा बम्बई के गुबराती प्रेस की कपी हुई रामायण में लिखा है कि 'जो दानपत्र ब्राह्मणों ने लिखाया था उसपर भी हनुमान जी भी पवाही पौ।' यह बुरा ही कुछ लिखा। भीरामचन्द्र का भी हनुमान जी से बनबास के समय किष्किन्वा में परिचय हुआ और पंडित जी ने गवाही करने के स्थि उन्हें विवाह ही क समय हुआया। नवा लूव ! और प्राचीन दानपत्रों में हने पवाही की बातें कही नहीं सुनने में आईं।

रागी कमल कुंघरी के लेख से हनुमान जी की गवाही कुछ सम्भव भीखती है। वे विवाहघटत का दान नहीं कहती। उन का कथन है कि एक समय जब ब्राह्मणों ने रामचन्द्र को नषत में बुलाया था तब वे सब गांव दान दिए पये थे। सम्भव है कि वन से लौट आने पर समुरात गये हो और उस समय हनुमान जी भी गये हों पर इस का प्रमाणा कहीं नहीं पाया जाता। वाक्यीकि जी ने तो राम्याभियेक के अनन्तर हनुमान जी को विवा ही कर दिया है। गोसाईं जी ने उर्द कथन ही में रघुनाथ जी के समीप रखा है सही परन्तु प गोसाईं जी

१. इन बातों के ज्ञानमें मैं इमें गोकुण्ड मिश्र के कुटुम्बी कामेश्वर नामक एक पुस्तक से सहायता मिली है।

और न बाबमीकि जी रामचन्द्र के छिद्र जमकपुर जाने और गाँव बाण करने की बातें बहते हैं। और यदि गये भी हों तो उस प्रान्त में इस के गाँव दान करने का अधिकार छिद्र नहीं होता। तबपर इन का इत्ताका या ही नहीं। और न इन से जमक जी का गाँव दान कराना मुना गया। यदि इस की कहीं ममक भी मिलती तो गोसाईं जी इसे सिखे बिना नहीं रहते जबकि इन्होंने रामचन्द्र के विवाह का इत्तान्त तथा दान वहेज का हास खबिखर बर्णन किया है।

कथित है कि एक बार विष्णुष्ट यात्रा के समय सुभार या विन्ध्य के राजा ने आप को अपनी राजधानी में सादर लक्ष्मणकर विराजमान कराया। उसी समय सम्राट की आज्ञा से किसी कारखाने पर पकड़ा कर दिल्ली भेजा गया। मुसलमानी शासनकाल में ऐसी पर पकड़ प्राय हुआ करती थी। गोसाईं जी ने यह समाचार पाकर इतबर हुआ से उस राजा को सीधे ही आपसे मुकूल करवाया। सम्राट से आज्ञानित होने के बरख बहुत सम्मानित हो कर बह अपने देश में लौट आया और गोसाईं जी को कुछ काष्ठ साग्रह आपसे स्थान पर रख कर उत्सव का आर्वाण लता रहा। लोगों का कथन है कि उठी राजा के चर्म के सूक्ष्म तरब का उपदेश करने की प्रार्थना पर गोसाईं जी ने बह करिता कही थी —

“पंडित वेद पुरानन को आपनो आपनो मत भापत है।  
 बुधि के यज्ञ त छस खिद्र करै यहु अक्षर भद यखानत है॥

विष वृत्त की डोलस पासन मं इन वातन मं हरि मानत है॥  
 तुलसी मुख्य से किन क्षाम्य कइो मन की रघुनन्दन जानत है॥”

इस में चर्म के सूक्ष्म तरब का कोई विशेष उपदेश नहीं देसते। दस से बड़कर उक्त १ उपदेश इसके अन्य कथितों तथा पदों में भरा हुआ है।

कहते हैं कि विन्ध्य की तराई में दो और राजे रहत थे। उन लोगों में कहीं मित्रता थी। एक बार दोनों ने आपस में यह सम्मति तथा प्रतिज्ञा की कि यदि हमसोमों को पुत्र पुत्री हों तो दोनों का आपस में विवाह कर दें। दोनों को पुत्री ही पक्षा हुई। परन्तु एक ने कन्या को पुत्र प्रसिद्ध करके पुत्र के समान उसे रखा। वहाँ तक कि उस का विवाह भी कराई राजा को कन्या से कर दिया। गौना के परबाह बह बात प्रष्ट होने पर बह राजा को ठगा गया या महाभूत हुआ और कपटी राजा पर आक्रमण कर उस में लड़े जीत लिया। बह राजा पराजित हो माग निकला और गोसाईं जी का शरणार्थ हुआ। विजयी राजा भी समीन बर्दा का पमडा। भगवान की कृपा से तब तक बह कन्या स्वामी जी का बरवाण्यत पाम कर पुरपन्व को प्राप्त हो गई। इसके प्रमाण में लोग दोहावती के ये दोहे बतात हैं —

“कपटुक दरमन संत क पारम मनी अतीन।  
 नारि पत्तन मो नर भयो लत प्रमादी मीन॥

तुलसी रघुवर खेयतहि मि गो कालोकाल।  
 नारि पत्तन गो नर भयो प्यो दोनदयाल॥”

कोई २ इस घटना का सम्बन्ध काशीराज से जोड़ते हैं।<sup>१</sup> बाबू स्वामिन्दर दास ने हमारे एक पत्र के उत्तर में इस प्रश्न के ज़रूरी के समय लिखा है कि 'उस घटना से काशी के आधुनिक राजवंश का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। मेरी समझ में यह गल्प है। पुष्पीराज रावों में भी ऐसी ही एक गल्प का उल्लेख है तथा जहाँ तक मुझे स्मरण पकता है पुत्र के समय भी किसी ऐसी घटना का मति नहीं उल्लेख पड़ा है।'

हमें भी पहले इस अनैसर्गिक घटना का विवरण नहीं होना था और हम इसे कोरी गल्प ही समझे हुये थे। परन्तु पीछे के अंगरेजी लेख स ऐसी घटना सम्भव दीखती है। इस में लिखा है कि एक व्यक्ति के विवाह के २ वर्ष पीछे वह ज्ञात हुआ कि वह पुरुष है और इतने समय तक उस के संयुक्त सन बातें होती रहीं। एक ए वाडेल (L A Waddell) साहब द्वारा सम्पादित सिवन साहब का मंडिबल जुरिस्पूडेंस (Lyon's Medical jurisprudence) के तीसरे संस्करण के पृष्ठ २८ में यह लेख देखा जाता है और उस में यह घटना अन्व<sup>२</sup> पुस्तक से उल्लिखित हुई है।

'A person affected with hypospadias was married for 20 years, and during all that time was treated as a female Sexual intercourse was regularly effected by the canal of the wrethra, nor was it until the period just mentioned had elapsed that it was discovered that the individual was a man'

अब रही यह बात कि वह प्राचीन अरशाभूतयाम अथवा रामायण भ्रमण से या किसी रीति से पुरुषत्व को प्राप्त हुआ या नहीं। नवार्थ बात तो यह है कि उपर्युक्त समय घाने पर ईश्वर द्वारा से उत्पन्न अथवा परिवर्तित हो गई और अरशाभूत या रामायण तो निमित्त कारण हुआ होगा चाहे कोई इसे स्वीकार करे या नहीं।

अज्ञाता के 'हिन्दुधर्म' भाग २, सन १९२७ ई के किसी अङ्क में पाण्डिपुर जिला के किसी गाँव में एक नारी के पुरुष हो जाने का समाचार ज्ञात था। उस में उस प्राचीन का नाम प्राप्त नहीं दिया हुआ था। किन्तु टर्की की राजधानी इस्तुम्बुलिया में १२ जुलाई १९२२ ई को मेडिकल कमीशन द्वारा पूरी जाँच के बाद सेम इन्स नाम की एक २१ वर्षीया सुनती को मर्द करार दिये जाने का संवाद 'बाम्ने कमिश्न के संवाददाता ने उस पत्र को उही स्थान

१ बहुत से लोगों ने इस कथा को रामायण महात्म्य के प्रसंग में लिखा है और कहा है कि द्राविड वैशाखिपति तथा काशीराज ने परस्पर पंसी प्रतिज्ञा की थी। द्राविड का राजा आपनी स्त्री के मर्च से सुता ही को सुत जानकर विवाह करने करती आया। वहाँ पर बात प्रगट होने से उबर तो वह महाकथित हुआ और ईश्वर काशीराज उस का गला कटन पर बलन हुए। वह विचारा मयमीत हो गोसाईं जी की शरण आया। आपने काशीराज को मुखाकर समझाया हुआ था और द्राविड की राजकन्या को जब दिन रामायण का पारायण सुनाकर पुरुष बना दिया।

कुसुमुनिवा से दिया था और वह समाचार अन्य पत्रों में भी छपा था। उस संवाददाता ने लिखा था कि "पुराने कास में कमी २ ऐसे लोगों का भी पता लगा है जिनमें अरमारी दानों के बिह्वार लक्षण पाये जाते थे। उन्हें लोग 'मुञ्जस' (खोजवा) कहा करते थे। ऐसे लोगों में कुछ खोप समय पाकर साफ़ गर या नारी बन जाते थे। पर ऐसी बात अब तक मुझे साफ़ समझ में नहीं आई थी, परन्तु क्त श्री विविध (उपमुक्त) पटना से पुराने लोगों की खोज और बौध की सतवठा का प्रमाण भी मिलता है।"

ऐसी घटनाओं की क्यारों हमारे पुराणों में भी पाई जाती हैं। मागवत ऋषिये। धाम्परेण की कन्या ईसा बशिष्ठजी के उषोग से सुघुम्न नाम का पुत्र हो गई। पुनः श्री हो जाने पर उन्हीं की प्रार्थना से उसे एक मास श्री तथा एक मास पुष्य होकर रहने का वर संकर की से प्राप्त हुआ था।

दुपद की कन्या शिशुपिडनी किसी दानव के वर से शिशुपि पुष्य होकर भीष्मपितामह की मृत्यु का कारण हुई।

उरत नाम की एक मिथुनी महायमा पुद्देव की कन्या उ कुछ काल कल्प पुरपत्न को प्राप्त हो गई थी।

एकी पोषी पुराण-वर्णित घटनाओं में यज्ञ तपस्या शाप वर आसीर्वाण आदि बातों के कारण जाहे उन्हें कोई पाप बताने परन्तु इरवरीय सुष्टि में कोई अफमीया नहीं बड़ी या सखी और सब घटनाओं में मुख्यतः उन्हीं की कृपा की प्रधानता रहती है। उन का निमित्त कारण जाहे कुछ और भले ही हो। किन्तु एकी फनाएँ मित्य प्रति नहीं हुआ करती।

इस में एक डाक्टर के एक नारी को नर बना देने की भी बात कही जाती है। तब हम बशिष्ठ जी तथा बरहायक दानव प्रमूनि का इस विषय में परम निपुण इसके आदि आशय और उक्त डाक्टर का दावा शुद्ध करें, एवम् यह करें कि पुरातन काल में भारत में इस विषय का भी व्यवहार हुआ करता था तो कुछ आपत्ति न होनी चाहिये। वे भारतीय धार्मिक महायमा थे। आने अदसुन काव्यों को इरवर की कृपा की श्रेष्ठ में कर दिखतात वे आर प्रमु के ही वर प्रसाद को प्रधानता दत थे।

जो हो प्रागुत कुरिस प्रहृन्त्य का बन्धन धीर २० की मदी का टर्की बाजा प्रप्यसु प्रमाण प्रमाणित कर रह है कि ऐसी घटना का घटित होना अयम्भव नहीं।

विष्णुवत में कुछ दिन रह कर शाप प्रमाण गये। ब्रह्माय दान के इत्यादुवार नही गोमाई जी को रवामानन्द<sup>१</sup> के पक्ष मुरारी देव (गणिक मुरारी) से भेंट हुई जो वहे पुद्-भक्त थे और एक बार भोजन करते समय दुद का पत्र या भोजन परित्याप कर बिना हाथ सु द धोये १२ कास बसे आये थे।

१ राणी कमल कुँचरी न रामानन्द लिखा है। य काल रामानन्द य मा ज्ञान नहीं। रामानन्दीय सग्वशाप के संभवापक भी रामानन्द जी तो रामानन्द जी के अदुत काल पदसे थे।



कोई २ इस घटना का सम्बन्ध काशीराज से जोड़ते हैं।<sup>१</sup> बाबू राममण्डनर दास ने हमारे एक पत्र के उत्तर में इस प्रश्न के ज़पने के समय लिखा है कि 'उस घटना से काशी के धार्मिक राजर्षय का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। मेरी समझ में यह गल्प है। पूष्पीराज रासों में भी ऐसी ही एक गल्प का उल्लेख है तथा जहाँ तक मुझे स्मरण पड़ता है पुस्तक के समय की भी किसी ऐसी घटना का मैंने कहीं उल्लेख पका है।

हमें भी पहले इस अनैसर्गिक घटना का विश्वास नहीं होता था और हम इसे कोई गल्प ही समझे हुये थे। परन्तु नीचे के अंगरेजी लेख से ऐसी घटना सम्भव दीखती है। इस में लिखा है कि एक व्यक्ति के विवाह के २ वर्ष पीछे वह ज्ञात हुआ कि वह पुरुष है और इतने समय तक उस के संयम क्रीमत् सब बातें होती रहीं। एल ए वाडेल (L A Waddell) साहब द्वारा सम्पादित सिडन साहब हल मेडिकल जुरिजुडेंस (Lyon's Medical jurisprudence) के तीसरे संस्करण के पृष्ठ २८ में यह लेख देखा जाता है और उस में यह घटना अन्वय पुस्तक से उद्धृत है।

'A person affected with hypospadias was married for 20 years, and during all that time was treated as a female. Sexual intercourse was regularly effected by the canal of the wrethra, nor was it until the period just mentioned had elapsed that it was discovered that the individual was a man.'

अब रही यह बात कि वह प्राचीन बरदायतपान अथवा रामायण भ्रमण से या किसी रीति से पुरुषत्व को प्राप्त हुआ या नहीं। यथार्थ बात तो यह है कि उपर्युक्त समय घाने पर ईश्वर कृपा से उसकी अशक्तता परिवर्तित हो गई और बरदायत वा रामायण तो निमित्त कारण हुआ होगा चाहे कोई इसे स्वीकार करे या नहीं।

कलकत्ता के 'हिन्दुपत्र' नाम २ अक्टूबर १९२७ ई के किसी अंक में गाजीपुर जिला के किसी गाँव में एक नारी के पुरुष हो जाने का समाचार दिया था। उस में उस प्राणी का नाम प्राम नहीं दिया हुआ था। किन्तु टर्की की राजधानी अस्तन्तुनिया में १३ अक्टूबर १९२२ ई को मेडिकल कमीशन द्वारा पूरी बॉय के बाद 'सेम इन्स' नाम की एक २१ वर्षिया कुबती को मर करार दिये जाने का संवाद बार्ने क्रॉनिकल के संपादकता ने उस पत्र को प्रसी रवाना

१ बहुत से लोगों ने इस कथा को रामायण महात्म्य के प्रसंग में लिखा है और कहा है कि ब्रह्मिष्ठ देवाधिपति तथा कशीराज ने परस्पर ऐसी प्रतिज्ञा की थी। ब्रह्मिष्ठ का राजा अपनी स्त्री के प्रयत्न से सुत ही को सुत जानकर विवाह करने काशी आया। वहाँ पर बात प्रगट होने से अथर तो वह महाकम्पित हुआ और अथर कशीराज उस का गला काटने पर उद्यत हुए। वह विचार भयभीत हो गोसाईं जी की शरण आया। आपने कशीराज को बुलाकर समझाया हुआ था और ब्रह्मिष्ठ की राजकन्या को मर दिव रामायण का पाठक सुभाकर पुरुष बना दिया।

कृष्ण-शुक्रिया से दिया था और वह समाचार अन्य पत्रों में भी दया था। उस संवाददाता ने लिखा था कि "पुराने काल में कभी २ ऐसे लोगों का भी पता लगा है जिनमें नरनारी दोनों के बिना और लक्षण पाये जाते थे। उन्हें लोग 'युग्मजस' (जोड़वा) कहा करते थे। ऐसे लोगों में कुछ लोग समय पाकर साकल्य या मारी बन जाते थे। पर ऐसी बात अब तक मुझे साकल्य में नहीं आई थी परन्तु कुछ ही दिनों (उपपुत्र) पटना से पुराने लोगों की श्रेण और जोब की सत्यता का प्रमाण भी मिलता है।"

ऐसी घटनाओं की कथाएँ हमारे पुराणों में भी पाई जाती हैं। भागवत परिचये। आश्वमेध की कथा ईसा बलिष्ठकी क ब्रह्मण से मुष्मन् नाम का पुत्र हो गई। पुत्र की हो जान पर वन्ही की प्रार्थना से उसे एक मास की तथा एक मास पुरुष होकर रहने का वर संकर की से प्राप्त हुआ था।

दुष्य की कन्या शिखरिणी की दामन के वर से शिखरी पुरुष होकर भीष्मपितामह की मृत्यु का कारण हुई।

उरुज नाम की एक निष्कुली महारत्ना कुन्देव की कथा व कुछ काल के लिए पुरुषत्व को प्राप्त हो गई थी।

एकी बोधी पुराण-बलिष्ठ पटनाओं में यह तपस्या शाय वर आशीर्वाद आदि बलों के कारण बाह्य उन्हें कोई मत्त बनाये परन्तु इश्वरीय सृष्टि में कोई अक्षणीया नहीं रही जो सक्षी और सब घटनाओं में सुपत वही की कथा की प्रमाणता रहती है। एक का निमित्त कारण बाह्य कुछ और मत्त ही है। किन्तु एकी कथाएँ नित्य प्रति नहीं हुआ करती।

काल में एक डाक्टर के एक भारी दो नर बना बन की सी बात कही जाती है। तप इस बलिष्ठ की तथा बरदायक दानव प्रभृति का दन विद्या में परम निपुण इसक आदि आशय और उरुज वास्तव का वादा गुरु कहे, एवम् यह कहे कि पुरातन काल में भारत में दस विद्या का भी स्वबहार हुआ करता था तो कुछ आपत्ति न होनी चाहिये। वे भारतीय धार्मिक महान्ता थे। आने अरुमुन का यों को इश्वर की कृपा की श्रेष्ठ में कर दिखलात व भार प्रभु के ही वर प्रगाथ को प्रदानता कृत थे।

को हा प्राणुत सुरिष्ठ प्रहृन्थ का बचन धीर २० की पदों का टर्की वाता प्रप्यस अन्ता प्रमाणित कर रहे हैं कि एकी कथा का पठित होना अस्मत्त नहीं।

विष्णुचरित में कुछ दिन रह कर आय प्रयाग गप। बज्रनाथ दाम के हमाशुमार वहाँ गोमाइ की को श्यामानन्द के श्रेष्ठ सुरागी देव (सखिक सुगरी) से मंत्रे हुए जो सब सु-मस्त थे और एक बार मोक्ष करत समय गुरु का पत्र पा आश्रम परित्राग का बिना हाथ सु द घोये १२ धाम बन आय थे।

१) रात्री कमल कुँवारी ने रामानन्द लिखा है। व हीन रामानन्द य था ज्ञान नहीं। रामानन्दीय सगप्रदाय के संस्थापक श्री रामानन्द जी तो गामार्द जी के बहुत काल पहले थे।

बादशाह ने ठग के गुद की कुछ मूंगि खीन रखी थी। गुद ने उसी के लिये आप को बुसा नेत्रा बा। जिस समय वे बादशाह के पास गये वे उसी काल में एक विगड़ैल हाथी के मारने के लिये बादशाह का लखड़ा नगर के बाहर एक छेदे मदान पर बैठा था। इधर से रत्निकमुरारी भी पहुँचे। रावबपुत्र के सख्ठ ठग का बातावताप आरम्भ ही हुआ था कि वह सम्मत मार्ग बड़ा था पहुँचा। उसे देख मुरारी जी ने कहा। 'ऐसा बीसवींशत बिना हरिममन के व्यर्थ है।' <sup>१</sup> करते हैं कि यह बात कान में पकत ही वह खान्त मास से बच गया उस के नेत्रों से बल बढ़ने लगा। आप ने कमल की माता उस के मुखे में बाता थी। उस समय से वह हाथी साधुमबली में रहने लगा। बादशाह पुत्र यह लीखा देख महा बन्धित हो गया और आप के गुद का खीना गया गर्ब सौटवा दिया।

वहीं गोसाईं जी को मल्लूदास <sup>२</sup> से भेंट का भी आनन्द हुआ था। वे भी मुरारी दास की कै लेले तथा मगाजी के बड़े भक्त थे। कमी गंगाजी में स्नान मही करत थे। मास यह था कि जिसे माता समझते हैं उसे पाँच से कसे स्पष्ट करें। मास उत्तम था परन्तु ठग के सहवासी साधुओं ने इसे गंगा जी का आमान समझ उन के गुद के पास इस की गिनता थी। गुदजी ने परीक्षाएँ एक बार गमारजान करत समय धन से गमाजा मांगा। कबित है कि उस समय बल तख पर कमल के पत्र निकल आये और उन्हीं पर बलकर वे गुदजी को गमाजा वे आये।

श्री बगबाव क्षेत्र में समुद्र के तट पर मल्लूदास के नाम का एक छुद्र मन्दिर है। वहाँ दर्शकों को मल्लूदास का टुकड़ा प्रसाद मिलता है।

बहुत दिन समय में बास करने के अनन्तर गोसाईं जी ने तीव्रतिन की मजसा से एक बार नैमिपारस्य की ओर यात्रा की। पहल दिन रनाई में ठहरे, फिर एक क्षेत्र का दर्शन करते कुछ दिन पसका में निराश्रमान रहे। इसी पसका के रहनेवाले कमीनापब दास जी ने 'धी गोसाईं चरित्र नामक इन का जीवन इतात्त लिखा है जो अभी तक अप्राप्त है और जिसके प्राप्त और पाठ के लिये गोसाईं जी के अनुरागी होय बड़े ही शालासित हैं। <sup>३</sup> वहाँ से भी सीता जी के स्थान पर विवाकर गर्ब में पहुँचे वहाँ सीता कुछ अमीतक बतमास है। फिर कुछ दिन लक्ष्मणपुर (लखनऊ) में रहे। वहाँ आप की कृपा से एक विद्याहीन बाट मच्छा कवि बनकर सुकपूर्वक अपनी जीविका प्राप्त करने लगा।

वहाँ से थोड़ी दूर पर मणिबाब गर्ब में एक भक्त मीप्प सिंह नामक काबरथ कानूनगोन रहत थे। उन्होंने भी रामचन्द्र जी के लक्ष्मिबर्चन में कविता की थी। उन से भेंट की शासका

<sup>१</sup> यह कथा कुछ मित्र रंग से भी सीताराम शरथ बगबाव प्रसाद कुछ 'मन्वत मातृ की टीका' पृष्ठ १११—१४ में बर्णित हुई है। परन्तु आशय दोनों के एक ही है।

<sup>२</sup> N. M. Mucabuff (पुम० मुकावित्र साहब) के अनुसार भी गुद वैग बदापुर जी की मल्लूदास से भेंट हुई थी। गुदसाहय २३ वर्ष की अवस्था में सं १७९१ में गुदगद्दी पर शिरासमान होने पर भ्रमण को निकल्ये और गोसाईं जी का सं० १९६० में शरीरत्याग हुआ। इस से प्रतीत होता है कि मल्लूदास भी दीर्घजीवी थे।

<sup>३</sup> यह ग्रंथ ता नहीं किन्तु उमी का सा 'मूढ गोसाईं चरित्र' प्राप्त हुआ है। इन का दास हम पुस्तक के शेष में लिखा जावगा।

से आप महिभाव की ओर खड़े । तीस कोश बलकर बनहट गाँव में जाने पर आपने एक वृद्धा पर बैठ उस का बलपान किया । वह पवित्र वृद्धा शोक सरास के पास अभी तक वर्तमान है । बनहट में आप को ज्ञात हुआ कि वहाँ श्री चौधराई ब्राह्मणों की है और उन लोगों से अद्भुतमोय की अनमनी बली आती है । इससे यह सोचकर कि कदाचित् भीष्म सिंह का पवित्र स्वभाव हो आप उन से मिलने नहीं मये । परन्तु उन का गर्वित स्वभाव होता नहीं पाया जाता है क्योंकि पीछे इस बटना का समाचार मिलने पर वे स्वयम् जाती में जाकर गोसाईं जी के दर्शन से स्वार्थ हुये हैं । स्वरचित श्री गंगा स्तुति गोसाईं जी को सुनाई है और उन का रथा 'नयसिन्धु' भी देखकर गोस्वामी जी बहुत प्रसन्न हुये हैं ।

गोस्वामी जी बनहट से मलीहाबाद गये । वहाँ इन्होंने एक मऊ माट को मित्र पैम सुबक प्रसादी स्वरूप एक प्रति अपनी रामायण दी थी । उस का अभी तक वहाँ के महंभ बनार्दन जी के पास रक्षना रखा जाता है ।

वहाँ से प्रसादी स्नान की इच्छा से वहाँ बास्नीकि जी का आश्रम है प्रबान कर आप रसुहाबाद के समीप खेटरा गाँव में गये एवम् अनन्य मायक से मिले जो कि बड़े मऊ तथा अण्ड कवि थे । माधवदासजी खेटरा गाँव अपने नविहाल आये । मामा ने उन्हें लखिहाल अयोधने को भेजा । अन्नदान महादान समस्त अपने लखिहाल का उप धान एन्तो तथा दरिद्रों को दे दिया और आप वहाँ जाकर विप रहे । जब और लोगों के लंग लोड्डे २ उन की माता उन के पास पहुँची तो उन्हें बड़ा संवार में कोई किसी का नहीं है, परम सुखदायक ही मगवान ही हैं और आप ने उस समय माता को यह पद सुनाया —

॥"मो सोय न करिय माता ।

दय लोकर-सुर वह घरी जिन जिन पाई कुसलाता ।  
 प्राकरमी मीपम मों को मा दानि करन सों दाता ।  
 जिन के पद पलत है अजहूँ परि नहिं भई पिताता ॥  
 मुख्य पावि रावन दस राखी भरो गरय डर माया ।  
 तऊ उहि २ भये काक्षयम ज्यों तस्मर ब पाता ॥  
 सुन अननी अय मायधान हूँ परम पुरावन पाता ॥  
 मनिमायय मायय ए सेयक कौन काहि सों नाता ॥"

भेट होने पर गोसाईं जी ने अन्त्य मायक को यह पद सुनाया था :—

॥'मि हरि पतित पावन मुने ।

हैं पतित तुम पतित पावन होऊ धानक बने ॥  
 व्याप गनिका गज अज्ञामिल साधिव निगमागम बने ॥  
 और पतित अनेक तारे ज्ञान सो का वै गने ॥

आनि नाम अजान लहियो नरक जमपुर मने ।  
दास तुलसी सरन आयो रास लिय अपन ॥”

इस के उत्तर में अनन्य माधवदास ने नीचे लिखे पद भी रचना की —

“तव त कहीं पवित नर रघो ।  
जव त गुरु उपदेरा बिन्यो नाम नौका गघो ॥  
लौह जैसे परसि पारस नाम कचन सगो ।  
कस न कसि कमि जेहु स्वामी धजन पाहन बघो ॥  
ठमरि आयो बिरह यानी मोल मङ्गो कघो ।  
हीर नीर तें भयो न्यारो नरक तें निर्वङ्गो ॥  
मूल माखन हाय आयो त्यागि सगवर मघो ।  
अनन्य माधव दास तुलसी मवजलनि निर्वङ्गो ॥”

वहाँ से विदा होकर मद्रास<sup>१</sup> में कुछ दिन गंगा तट पर छहरे और भी वात्समीकि जी के स्थान एवम् अन्यान्य पवित्र स्थलों का दशन कर वहाँ से संदीक्षा आने ।

संदीक्षा में एक प्राणश के द्वार पर जाकर आप में साष्टांग दबवत किना । प्राणश विचारे कर नहीं थे । उन की जी मारमार कर दीनी कि यहाँ छहरे का स्थान नहीं । आप

१ श्रीवनाय दास ने मद्रास<sup>१</sup> में वात्समीकि जी का स्थान लिखा है । गोसाईं जी की कविता नं० १३२ (कवितावली ड का ) से यह स्थान बरिपुर और दिगपुर के बीच प्रतीय होता है । काशी कमहपा स्थान विवासी भी बाबा टीकम दासजी ने बाबू रामदीन सिंह जी से कहा था कि मिरजापुर से गोपीयत्र जाकर वहाँ से दो कोस पच्छिम दक्षिण बर स्थान है । और काशी के सुपतित् बरोतिपी पं० रामाचार्य जी के अनुसार मिरजापुर स्थान से आगे गीजुरा स्थान है वहाँ से आगे बहबाई (?) स्थान से दो कोस उत्तर सीताबट तथा वात्समीकि जी का स्थान है । इसकी पुष्टि गोसाईं जी की कविता से होती है । सीताबट एक सतबरोह का पेड़ है । वहाँ सम्मान प्राप्ति तथा सम्मान जीवित रहने के लिये लोग मगता मानते हैं । श्रीमान् महाशय ईरबरी प्रसाद नारायण सिंह जी काशी नरेश ने वहाँ जानकी जी की मूर्ति स्थापित कर ३ दिग्गा भूमि पूजा के लिये पयलों को ही है । ‘पद्मविद्याम प्रस द्वारा प्रकाशित रामायण के गोसाईं चरित का पृष्ठ ६९ दृक्षिये ।

परन्तु बनगमन के समय ती लोग गंगा और यमुना पार होकर बिजबट में वात्समीकि आश्रम में पहुँचे थे (जो पूर्वोक्त स्थान और बिट्टर से भी बहुत दूर है) सीता निर्वासन के समय लज्जत जी केवल गंगा पार ही करता कर सीताजी को वात्समीकि आश्रम में पहुँचा आये हैं । क्या उस समय वात्समीकि जी बिजबट से उत्तर-पूर्व मिरजापुर त्रिके में चले आये थे ?

इससे हुये वहाँ से चले आये और रामबाग में जाकर अपने बेरा समाया। बादायक यकता पर आने पर यह सब समाचार सुनकर दौड़े हुये आप भी सेवा में पहुँच और आप के घरलों में गिर कर उन्होंने ने आपन घर बचने के लिये इन से बहुत आग्रह किया। इन्होंने ये कहा कि "मे आपसे बहुत सन्तुष्ट हैं मुझे केवल आप के घर की पवित्र भूमि के पशान भी लालसा थी क्योंकि आप के घर भी कृष्ण जी का सखा मनमुखा नाम लेकर आप का कुल पवित्र करेगा।"

कुल कास विगत होने पर बादायक देवता को एक पुत्र प्राप्त हुआ। उसका नाम बंशीधर रखा गया। वह बालक बड़ा ही कृष्णमङ्गल और कवि हुआ। कहते हैं कि स्वप्न में भी जगन्नाथ जी की आकांक्षा पाकर एक कोरी उस बालक का कृदा बतसा प्रसाद वा अपने रोग से मुक्त हुआ था। वे रासपारियों के संग रहकर सर्वदा लीलांगण में मग्न रहते थे। एक समय रासलीला में दृश्य करते २ यह पद प्रबल कर 'सुधि करत कमल-दल-नग थी। वै दिन विहरि मये मनमोहन बाँह उखीरे सैन थी।" आप आत्मविस्मृत है। भूतल में गिर पड़े और मोचोके सिचारे।

शिबसिंह सरोज में लिखा है कि बंशीधर संवत् १९७२ में हुये और आप शान्तरस के बोधे कवि थे। पाठक सुन्द ' आप लोग भी इन का एक कविता देख लीजिये।—

कवित्त—“जिन्हें नू मगन त न तरे तिन्हें ठाकि दम्ब,  
नगन लिक्कारि के चढ़ाउम को भीता है।  
मपने की संपदा सुलम माय सबहीं फ,  
मोह हित साग्यो हरिनाम अनहीना है।  
कहैं मिम धंशीधर ण्मी कयहूँ न आई,  
मलि जैसी अहुँ कहुँ टहराय गीता है।  
बनो नाहि परँगो या तारि ठाकि बसो आय,  
सीतागाम मझिले जनम जात भीता है॥”

संश्लेषे से यह गोमाई जी बले तो रास्त में एक गाँव में वहाँ का मानिक गण से पूर आपन समाज के शाप बँटा था। वह भी ठागुर जी की पवित्र मूर्ति एवं महात्माओं को बेगुजर सम्मानाज नठ लडा भी नहीं हुआ, जिस से उसे बसराप्रसित होना पडा। आगे बचने पर एक गाँव में जाकरयो ने इनका बहुत सवा-आम्मान किया और ये इस के अन्तम आशीर्वाद के भागी हुये।

आगे बढ़कर आपने एक गाँव में एक बादायक के द्वार पर उदरना बाधा। जिस में कहा कि "हम तो स्वयम् कष्ट में हैं आप वहाँ चले आत हैं।" जो कोई कष्ट नहीं होने पर भी ईश्वर का अक्षम उपकार मुताबक आपन को बधुमांगी बनाकरा उसे निरवय बधुमांगी होना ही पड़ेगा। यही दशा तब बिम महाराज की हुई।

ब्राह्मण की तो यह दया परन्तु वहाँ कोई मोलाहा 'पार्श्व' कर रहा था। यह स्वामी की की सेवा में उपस्थित हो अपने योग्य सेवा की प्रार्थना की। गोसाईं की ने इस से हर्ष मान उसे आशीर्वाद दे बिदा किया।

इसी प्रकार रास्ते में लोगों से मिलते-जुलते उन्हें आनन्द देते, नैमिषारण्य में पहुँच कर अपने तीर्थ दर्शन तथा चर्च-वार्ता का सुख प्राप्त किया। वहाँ पर उन्हें विहाली के एक सुकृत मङ्गल से भेंट का आनन्द प्राप्त हुआ।

वहाँ कुछ काल वास करने के अनन्तर आप मिथिला<sup>१</sup> होते खैराबाद आये। वहाँ एक हरिमङ्गल नामा हलवाई ने आप का बहुत आदर उत्कृष्ट किया और बहुत सी खाने पीने की वस्तुएँ आप को भेंट की। उन्हें दो गावों में रखवाकर और एक नठका पर अपने समान के साथ बढ़कर आप वहाँ से बिदा हुए।

जब वे गाँव रामपुर में बगँठिया ( महसूल ) के लिए रोखी गईं तब इन्होंने वहाँ पर अपने पास के सब फसलों को धीन दुकियों को छुटा दिया जिस का समाचार पाकर वहाँ का प्रधान रामलाल सुरत इन की सेवा में उपस्थित हो इन के चरणों में गिरा और इन्हें उसमान भर से बाकर इन का बहुत आदर उत्कृष्ट किया। इन्होंने उस जमींदार को एक प्रति रामायणारी। कोई २ कहते हैं कि गोसाईं की का चरणपादुका लेकर वह इन्द्रदेव के समान उन्हें पूजने लगा।

## पोष्य परिच्छेद

### स्वभाव

गोस्वामी की एक सचरित्र सन्तगुणसम्पन्न महान् महात्मा थे। आप का स्वभाव सरल तथा निष्कण्ट था। इसी सीने के कारण आप ने अपने बालपने की दुरावस्थाओं को नहीं तहाँ वर्णन किया है।

आप में सहज ममता बहुत थी। यह बात रामायण की बन्दना ही से स्पष्ट सिद्ध होती है। ऐसा उदाहरण कवि होने पर भी हमें नहीं मिलता दिखलाई है। यदि ऐसा न करके वे मुख्य विषय के लिखने में ही प्रवृत्त हो जाते तो इन का कोई हाथ नहीं रोचता और न यह ऐसे अमृत प्रपंच के प्रचार ही में बाधक होता।

परन्तु इन का ऐसा नमस्वभाव होने पर भी एकसू सज्जनों तथा असज्जनों की इतनी बन्दना करने पर भी जो लोग 'बिनुकाज बाहिने बाण' रहा करते हैं ईर्ष्या इन से अकारण द्वेष रखने, इन की प्रशंसा महज करने एकसू इन्हें कुचाने में पहले कसर नहीं करते थे। बात थीक ऐसी ही की 'न खाइम चाँ कि वे आचारम् अन्दरु कसे। इमुरा से कुमम् कम् सुव बरिज वरस्त' अर्थात् मरी तो इच्छा नहीं कि किसी के दिल को दुकाउं, परन्तु ईर्ष्या से अचरित लोगों को क्या कहे जो धार ही आप रंज रहा करते हैं। आप अरुणोक्त तथा अण्डहितकारी संत थे। आप का हित अनहित कौन था? आप भैरुजी में किये हुए मुगल के समान, जो बाहिनी वाली का विचार न करके दोनों लक्ष्मियों को सुगन्धित करता है हित अनहित दोनों के हित ही चाहनेवाले थे। इन्हीं से अपनी सदिष्पुटा के कारण किसी से बदला कुचाने पर उद्यत नहीं होत थे। हाँ! उन लोगों के कुम्पवहार से दुचित होकर कभी २ इस सम्बन्ध में कविता अवरव कर रत थे। यथा —

“मेरी जानि पानि न चहौं काहु की जानि पानि, मरे कोऊ काम को न हौं काहु के काम को। लोक परलोक रुपनाय ही यह हाथ मय, मारी है भरोमी तुलसी के एक नाम को ॥ अनिहीं अयान उपपानो नहिं यूँके लोग, साह्य को गौत गौत होत है गुलाम को। माधु के अमाधु के माले के पोष सोष कहा, काहु के द्वार पर्यो जो हौं मो हौं राम को ॥

“काऊ कहे करम कुलाम दगायाज यकौ, कोऊ कहे राम को गुलाम गरो पृथ है। माधु जानै महा माधु पल जौन महा पल, यानी मूठी माँपी कोटि बटल



इस्यु है ॥ अहत न काहु सो कहत ना काहु को कहु, सब की सहस्र दर अन्तर  
न ऊच है । तुलसी को मलो पोष हाय रुपनाथ ही के राम की मगति भूमि  
मेरी मति दूख है ॥”

धीर इसी से अब एक बार बनारस के कई एक कुन्वाली महारमों ने आप से कहा था कि  
आप नगर छोड़ कर कहीं दूसरे स्थान में चले जाइये तो ये विरवनाथ को अपना उरा-बंदा  
उठाने का हाथ निवेदन कर पुनः आपसी से बल बंधे हुये थे ।

उपसृक्त द्वितीय कविता से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि एक लोभ इन से श्रेय ही  
ही नहीं रखते थे । बहुत से लोग इन के गुणगानक भी थे । धीर पीछे अपने घरल स्वभाव  
तथा सचरित्र के कारण ये लोगों के बड़े स्नेहभाजन और आदर सत्कार के पात्र हो गये थे ।  
सर्वसाधारण को धीर कहे, बड़े २ प्रतिष्ठित धीर धीर—विजयी विद्वान् आप से स्नेह करते  
धीर आप के दर्शनार्थ आता करते थे ( जैसा कि १३वें परिच्छेद के विवरणपाठ से मान  
होता है ) धीर आप के सुन्दर अनुशेषों से संतुष्टि लाभ करते थे । इन के पास ऐसे महातुभावों  
को आते जाते देख एक बार किसी व्यक्ति ने आप से पूछा भी था कि ‘महाराज ! पहले तो  
आप के समान कोई नहीं आता था अब ऐसे बड़े आदमी लोभ कैसे आया करते हैं ? उस पर  
पोस्वामी जी ने दोहे कहे थे —

“लौरे न फूटि कौड़िहूँ, को पाहे केहि काज ।

सो तुलसी मईगे कियो, राम गरीबनेयाज ॥

पर पर मारो टूक पुनि, भूपति पूजे पाय ।

ते तुलसी तप राम बिनु, ते भव राम सहाय ॥”

सब है सब से मेह माता तोड़ अब केवल राम ही के हो गये एवम् निष्कण्ठ माय से  
उन्हीं की सेवा में रुच गये तब बड़े लोगों का आप के चरखों में नमित होना और आदरार्थ की  
बात है । एक सुखसमय सजजन ने कहा है :—

“ल्लाही कि हमा कस्त जे सो पैयन्द धो ल्लाहन्द ।

सू रिस्तये पैयन्द मस्तुस्त अम हमा वोस्तुस्त ॥”

अर्थात् यदि बाहता है कि एक-लोग तुलसी से मिलें और तुलसी पाहें तो व-पहले सम्भव के  
पाने का सब से ताड़ बात । जोसाई की से संसार से सम्मानित होने के अतिप्राय से तो सब  
से मेह माता ताड़ कर बराम्य नहीं किया था, पर उस अ-सहज गुण केसे जाय । सम्मान  
की इच्छा नहीं रखे पर भी लोग आप ही आप आप का आदर सम्मान करने लगे ।

इतने प्रतिष्ठित तथा सर्वमान्य पुरुषों से भेंट और मित्रता होने पर भी इन्होंने ने कभी  
किसी के सम्बन्ध वा प्रशंसा में कुछ कविता नहीं की । सर्वदा अपनी शिष्टा से रामचरणीर्त्तन  
करते तथा अपनी प्रवृत्त देखनी को उन्हीं के गुण बखान में प्रवर्तित करते रहे, और अपने  
इस कथन का “धीरे प्राहुन अब गुन गाता । धिर पुनि धिरा सापि पढ़ताता ॥ जीवनकर्मन्त

निर्वाह किया। पशुप्य के सम्बन्ध में जो छोई कविता हुई तो वही टोडर की मृत्यु पर कई एक दोहे बनाये गये। परन्तु टोडर राममछ थे। इस नाते उन के विषय में कविता की गई, नहीं तो वह भी कदापि नहीं होती।

पादवी पृथ्विन प्रीम्स ने लिखा है कि ' स्वामी तुलसी दास जो छालची होकर दोहे औपार्थ के भाषात्री नहीं हुये। बहुत कवि राजाओं की सेवा पर अपनी गरीबिदा के अपने प्रतिपासकों का भूटा गुणानुवाद मलमते हुन मुक्त आनन्द में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु तुलसी दास ऐसे नहीं थे। वे किसी राजा वा धनी के भक्तमयी न रहे पर अपनी भोपरी में बैठ के राजाराम की सेवा में जन्म बनाते हुये अपने दिनों को काटते रहे।

जो ईश्वर के रंग में रंग जाते हैं, उन का मन प्रकृत जनों के गुणानुवाद में बना कभी कल सक्त है। श्री योस्वामी श्री सुरदास तथा धीपति आदि कई जन इस के जसन्त उदाहरण हैं।

## सप्तदश परिच्छेद

### स्वर्गपद्यान

बहू बाट तो सर्वसम्मत है कि गोस्वामी जी का संवत् १९८ ( १९२३ ई० ) में स्वर्ग पयान हुआ । इस के प्रमाण में यह शोधा प्रकृत है—

“संवत् सोरह सै अमो असी गंग क तीर ।

सावन सुकृष्ठा सप्तमी सुस्तसो तउयो सररी ॥”<sup>१</sup>

परन्तु किछ प्रकार से आप का शरीर त्याग हुआ इह विषय में होमो का मतमेद है । पूर्ववर्ती लेखकों ने इन की मृत्यु पिरकी रोग से माना है ऐसा अनुमान करने का कारण ‘इतुमान बाहुक’ के ४१ वें कवित्त का शौधा बरख है—“ठाठ तन पोपिक्त जेर बरतोर मिशि फुटि फुटि निरुसत सोन राम राम को ।”

अब सन् १८६८ ई० में भारतवर्ष में डोग ( मिस्री बाही महामारी ) का प्रकोप हुआ एवम् जाहो मनुष्य विकराल काल के गाह में प्रविष्ट करने लग तब प्रिवर्सन साहब ने सन् १८६८ ई० के माघ महीने के ‘पंचांग एशियाटिक सोसायटी की प्रोसीडिङ्ग में कवित्त

१ प्रियसन साहब ने गलना करा के भावस सप्तमी शुक्ल १९८० संवत् को २४ जुलाई १९२३ ई० बृहस्पतिवार होना बताया है । ( Notes on Tulu Das, Indian Antiquary 1893 A D P 10. )

किन्तु वैरीभाषक दाम कृत ‘मूल गोसाईं चरित’ में जो दाख ही में प्राप्त हुआ है, हम दोहे का निरुक्ता अर्थात् इस प्रकार खिला हुआ है :—

भावस रवामा तीज शनि सुस्तसो तउयो सररी ॥

इस से इन की निघनतिथि भाषका कृष्णा तीज शनिवार होता है । बाबू स्वामसुन्दर पास ने उक्त घन में ही हुई बटना तिथियों की जांच कारई है और उन्हों ने ‘मधोरमा’ बर्ष ३ एंड २ के पू० २७५ में लिखा है कि ‘ज्योतिषिक’ गलना करने पर स० १९८ की भावस तीज की शनिवार नहीं बरन सोमवार बा । दाहा में छत्र पाठ ‘शनि’ रहा होगा केन्द्र के घन से ‘शनि’ का ‘शनि’ हो गया होगा ।

फिर उन्हों ने उनी पद्यना के पू० ६५३ में प्रकृतित ‘अम संशोधन शिर्षक टिप्पणी में लिखा है कि भावस कृष्णा तीज को ‘शनिवार नहीं, ‘शुक्रवार’ बा । शोदा में कदाचित् शुक्र पाठ ‘शुगु’ रहा होगा, ‘शनि न होगा ।

रामायण के प्रथमखण्ड के विषय में एक लेख प्रकृत कराया और उस के कई एक कवितों का सम्बन्ध प्रथम से दिखलाया।

जहाँगीर पादशाह के शासनकाल में भारतवर्ष में महामारी के प्रकोप का वर्णन उन के दृष्टिकृत 'तुलुक जहाँगीरी' में देखा जाता है। उन के ब्लूज के ग्यारहवाँ क्पा बरत, दसवें साल के मध्य (अर्थात् १६१२-१६) में पञ्जाब में महामारी का प्रकोप हो कर दिहसी तक पहुँच गया था। और ब्लूज के तेरहवें साल (१६१७ ई०) में आगरा में प्रथम का प्रकोप हुआ। परन्तु वह गिल्ट्री बाली महामारी नहीं थी। उस पुस्तक में लिखा हुआ है कि 'पहले दिन रोमी को उरर तथा धिर पोका होजी भी एक्कु माक से बहुत कथिर गिरता था और दूसरे दिन उस का प्राणशायु निकल जाता था।<sup>२</sup> हाँ! ब्लूज के तेरहवें वर्ष (= १६१७ ई०) में गिल्ट्रीबाली महामारी का प्रकोप हुआ था। क्योंकि उस पुस्तक में लिखा है कि 'कौख राम का गरदन में गिल्ट्री होने से प्रति दिन न्यूनाधिक एक सा मनुष्य मरते हैं। यह तीसरा वन है कि माक में वह रोग जोर पकड़ता है एक्कु युष्म के आरम्भ होने से यह नेस्त भाबूद हो जाता है।' इगको उन्नति के सम्बन्ध में पादशाह ने लिखा है कि 'आदिक् का की की से हात हुआ कि एक दिन आंगन में एक बूझा मतवाले की नाई गिरता पकटा क्षर उभर नगर आया। एक दाई ने पकड़ कर उसे एक बिल्टी के आग पेंक दिया। बिहली न उद्वल कर बूझे को पकड़ा तो यही परन्तु उसने मुरत ही उसे परिरामाग कर चूपा प्रगत की। फिर बीमार होकर वह बिल्टी दूसरे दिन मरने २ हो गई। तीन दिन तक उस की बुरी दया रही चौथे दिन यकी हुई। फिर उस घर की एक दाई को बीमारी हुई। उसे गिल्ट्री निकल आई। और उस घर के १७ प्राणो ८१ दिन में प्रोग के शिघर बन गन। कोई किसी के पास नहीं आता।<sup>३</sup> इत्यादि।

विषयसंगत साहज स्थित है कि कवितारामायण के उत्तर बाएह में १६१ से १६९ कवित प्रयन्त में गोरबामी की न शिब जी से काशीबायियों की ओर से उस मवानक रोगरुपी आपत्ति

आवरक के प्रमाद का अम से 'शशि का 'शदि' होना सम्भव है पर श्रुत का 'शदि' केने हा आपणा नद बात हमारी समझ में नहीं आती। सम्भवतः लक्षक पर शिबिवा का गाता रग जमा होगा।

पाद साहब यह भी कहते हैं कि कृष्णा तीव्र ही को प्रगुणः रीडर के कथपर गौसाई जी का नाम पर अभी तक रूपा दान करत हैं। या हो, अथ तक गौसाई जी की निषण तिथि का शोग निश्चिन समझ हुण थ। अथ अम तिथि की ताई यह भी सम्भ्रण्य हो गई।

२ अर्नीगइनिबामी सरयद अहमद सग्यादिन 'तुलुक जदखीरी' पृ० २१६ देविप १—

य ई लीमा कि रोग अण्वस द्दसर बण्ड बहम समद न् विमिधार अत्रबोनी मी चाबद राम दोपम जान य दक तम्नाम मीधुनद।

३ उदयुक्त पुष्पाक का पृ० २५६ देविप।

से रक्षा क निमित्त प्रार्थना की है जिस रोग से लोग विपत्तम किये हुये के समान मर रहे थे । १७११में कवित में उस पवित्र स्थान में भगवान् महामारी के प्रकोप का बखान है १७१२में कवित में महामारी से नगर की रक्षा के लिये हनुमान तथा रामचन्द्र की प्रार्थना है एवम् १७१६में कवित में इसी हेतु की राम से प्रार्थना की गई है ।

पूर्वोक्त कवितों में साहब बहादुर को प्लेग का आमास दण्डिगोचर हुआ हो । पर हमारी समझ में उन कवितों को प्लेग से कुछ सम्बन्ध नहीं हो सकता । यदि शुभ सम्बन्ध हो भी तो सर्वसाधारण को नहीं दीखता । हाँ ! आपने जो कवित नम्बर १६७ १६८ १६९ और १७० में महामारी के प्रकोप का बखान होना एवम् की राम से उस के शमन की प्रार्थना लिखी है तो प्रत्यक्ष ही है और यह सिद्ध करता है कि उन कवितों की रचना के समय काशी में भी प्लेग का कोप था । परन्तु इन कवितों से यह ज्ञात नहीं होता कि बमारस में महामारी का कब कोप हुआ था जब आगरा में इस का प्राबल्य था उन्ही समय या उसके पीछे ?

'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि 'कवित रामायण की रचना सं १६६६ १६७१ (१६१२ १७ ई०) निरवयव किया गया है' और आगरा के प्लेग की घटना १६१८ ई की है । "इसलिये बहुत से विद्वान् लोग सम्बेद करते हैं कि गोसाईं जी का आशय प्लेग से न था । परन्तु जो लक्ष्मण गोसाईं जी ने अपने दूसरे कवितों में लिखा है उस से यह महामारी प्लेग ही जान पकती है । इस से यह सम्भव है कि काशी में आगरा से आर वय पूर्व ही प्लेग का कोप हुआ हो ।

इस से १६१७ ई० से काशी में प्लेग का होना अनुमान किया जा सकता है । यदि यह अनुमान सत्य है तो उस प्लेग से गोसाईं जी का परलोक नहीं हुआ क्योंकि आप ने १६८ (१६९३ ई ) में शरीर त्याग किया । इस बात की पुष्टि विमर्शन साहब के इस कथन से भी होती है कि १७०७ क कवित में लिखा है कि किस प्रकार लोगों को कुर्भ का दुःख महामारी के द्वारा दिया गया और कसे भी रामचन्द्र न कवि की प्रार्थना पर रक्षा कर नगर की रक्षा की । कवित यह है —

"आभम वरन कक्षि यिवस विकल मये निज निज मरजाद मोटरी भी डार की ।

सङ्कर सरोप महामारी ही तें जानियत साहब सरोप हुनी दिन-दिन डार दी ॥

नारी नर भारत पुकारत न मुनै फोड काहू दयतनि मिसी मोट्री मूठि मार की ।

हुलसी समीत पास मुमिरे जयास राम समय सुकरना सराहि मनकार दी ॥"

किन्तु साहब ने मई मास के 'अथवा एतियादिक सोम' इत्यादि की प्रोसिद्धि में लिखा है कि हमने कवित रामायण के प्रकाशन स्थान के सम्बन्ध में मात्र महीने की प्रोसिद्धि में या तोर ज्ञाताया था उन की एक प्रति हमने महामहोपाध्याय श्री गुणाकर जी के पास मेरी की प्रिण्ट में लिखा है कि बहुत सम्भव है कि गोसाईं जी स्वयम् प्लेग ही से स्वर्ग गामी हुये हों और उन्हीं न योग प्रस्त होने पर ही हनुमान बाहुक की रचना की । पवित्र श्री न

१ उम समूचे ग्रंथ की रचना १६१३ १७ ई० में कदापि नहीं मानी जा सकती ।

कवित रामायण की समाप्तोचना इतिथ ।

यह भी लिखा था कि उन्हें भ्रान्तिता भी तथा प्रतिदिन रामामणी बन्दन पाठक भी से बात हुआ था कि गोसाईं जी न 'बाहुक की रचना बार दिनों में की थी। इस से विचक्षण साहब अनुमान करते हैं कि गोस्वामी जी न सटपटू होने पर आठ पर पके २ 'इतुमान बाहुक' क कवितों की रचना की है।

पंडित जी क पत्र से सत्रग होकर साहब बहादुर न लिखा है कि 'गोसाईं जी १६२३ ई० में परताक सिंधारे, प्लेग १६१६ ई० से मारतवर्ष में धारम्म होकर = वर्षों तक पैसा रहा, उसका गोस्वामी जी पर बोट करना असम्भव नहीं है। आप ने यह भी लिखा है कि 'बाहुक के २२वें कवित में कवि कहते हैं कि 'बाहुक मूल (अंश) में पीका है, २७वें में कहते हैं कि उठी हाथ में पीका है जिसे इतुमान जी न पकड़ा था, अर्थात् दाहिने हाथ में, २४वें के अन्त के अन्त में पीका पडने से इतुमान का अन्वयाद लते हैं, २६वें से अन्त तक अर्थात् ४४ वें कवित तक की भाषा गड़बड़ हो गई है; पीका बढ़ती जाती है; इतुमान ही से नहीं, अन्य देवताओं से भी भिद्येन करत है और २१वें में कवि ने कहा है कि सब न शरीर में पीका है।'

ये सब लिखकर आप करते हैं कि 'इस की हमरी व्याख्या नहीं दन्त क्या हो पानी है कि इन्हें फिरसे का रोग हुआ था। परन्तु गोसाईं जी के विल दिमाग का आदमी ऐसी बीमारी क सिने ऐसी कलित भाषा में इस बार शार से प्रार्थना करे यह बुद्धि संगत नहीं सीकता। अगर यदि फिरसे से भीरोगता काम करते तो त्रिष देवता की उहो न ऐसी बन्दना की वी उसे अन्वयाद अक्षरय बल। अन्वयाद न देने से तो और भी प्रतीत होता है कि वे भीरोग नहीं हुए और प्लेग से स्वर्ग निपारे और उस समय बनारस में प्लेग का प्रकोप था।'

बाह में पीका तो अक्षरय थी; परन्तु वह प्लेगप्रमित पीका थी वा कोई अन्यरोग कलित, यह बात विचारणीया है। विचक्षण साहब कहते हैं कि '२१वें से ४४वें कवित तक की भाषा गड़बड़ (Confused) हो गई है।' परन्तु हमारी समझ में इसकी ये सब कवितार्थ भी इन के अन्य कवितों क समान ही सुन्दर हैं। इस का निर्णय पाठकगण उन कवितों को पढ़कर स्वयम् कर सकते हैं। हां! उन में प्रायना अन्व इतुमान ही का नहीं है, बरन रामबन्ध सिधजी की भी प्रार्थना है। अगर साहब महोदय न स्वयम् भी कवितों की भाषा का कलित होना लिखा है।

मनुष्य चाहे साप्य वा अमाप्य रोग से व्यपित हो पीका शमन क हेतु जोर-जोर से प्रार्थना करेगा। अन्वयाद इन के विषय में हम यही कहते कि साहब ने कवित रामायण के अग्रगण्य में स्वयम् लिखा है कि 'संरक्षकतां मे, चाहे स्वयम् गोसाईं जी हों चाहे कोई अन्य व्यक्ति हो प्रकल्प पर बहुत ध्यान नहीं दिया है। ऐमझी बाह्य कवित प्लेग के प्रसंग में रख दिया गया है।' 'बदा यह बात बाहुक क कवितों क सम्बन्ध में नहीं बरी जा सकता। क्या यह सम्भव नहीं कि बाहुक के २२वें कवित की, जो पीका पडने पर इतुमान जी क अन्वयाद में रखा जाना बदा जाता है संरक्षकतां मे अन्वयाद रख दिया है। क्या उस को

घन्ट में रख देने से पीसा छुटने पर घन्टबाद बना नहीं क्या चायगा? वह कविता यह है—

“परि स्त्रियो रोगनी कुजोगिनी कुजोगिनी ज्यों घासर सजल घन घटा धुकि धाई है।  
बरपत वारि पीर जारिये जवासे ज्यों सरोप विनु दोष भूम मूल मक्तिनाई है ॥  
कह्लानिधान इनुमान महाबलवान हेरि हंसि हाकि पू कि फौमें से छड़ाई है।  
पाये हुते मुक्तसो कुजोग रांड राकसिनी केसरी किसोर राप वीर वरियाई है ॥”

इस कविता से बेवना की चिकित्सा निदर्शित गया, सबका निदर्शित पाई जाती है। कुल हो हमें एक बात के निवारने से सब के प्लेग रोम होने में क्या सन्देश होता है। प्लेग की बीमारी में कहाँ तक देखा जाता है और कहाँ तक हमें डॉक्टरों से कात हुआ है रोय के आक्रमण के साथ या बोरे ही कात पीछे हृदय तथा मस्तिष्क दुर्बल होने सम्पत्ता है। बुरे प्रकार का प्लेग होने से रोगी शीघ्र ही संज्ञा शून्य भी हो जाता है। साधारण प्रकार का प्लेग होने से मनुष्य का कोई कार्य करने का मन नहीं चाहता और कहाँ गोसाईं की प्लेग के बंगुल में बंटे बाट पर पके २ बार दिन तक ऐसी लक्षित मातृपूर्ण तथा उत्कृष्ट कविता करते रहे कहाँ तक कि एक घंटे ही बन जाय और इन का होश और हवाश ज्यों का त्यों बना रहे, यह बड़े आश्चर्य की बात है। मरने के समय भी एक बेमकरी को देखकर नीचे लिखी हुई कविता कही—

‘हुंम हुंम रंग सुधंग मिथो मुल पन्द सों पन्दन होइ परी है।  
बोस्तत बोस्त समृद्ध चवै अबलोकत सोष विपाद हरी है ॥  
गौरि कि गंग सिद्धगनि थप कि मंजुस मूरति मोद मरी है।  
पेपु सप्रेम पयान समय सय सोष किमोषन जेम करी है ॥”

कहिये पाठक हन् ! प्लेग के बंगुल में पके हुये रोगी के मुख से घन्ट कास में ऐसी कविता सुनित हो सकती है !

जदि गोसाईं की बार ही दिन रोगग्रस्त होकर प्लेग ही से परशोकामाी हुये तो यह अनुमान परसंगत नहीं होना कि उन पर बुरे प्रकार के प्लेग ने आक्रमण किया था जिस में रोमी होश हवास धरबा को बैठता है। हों विरकी का होना बहुत ही संभव है। ‘बाह तर मूल से धौल की चरेका पंशुरा से तात्पर्य होने की अभिकनर संभावना है और विरकी भी प्रायः पीठ पर होती है।

१ लखविकास द्वारा मुद्रित महात्मा हरिहर प्रसाद जी कृत कवित्त रामायण की टोका के पृ० २६० में स्पष्ट लिखा है कि संस्र में तीव्रता के कारण १५वीं कवित्त जो बाहुरीबा एरणे पर बना था घन्ट में न रखा गया बल्क हस्ता ही कवित्त धन में रखा गया। उस टीका वा पृ० २६० भी देखिये।

गोसाई जी को यह रोग होने का कारण भी बताया जाता है। पिरकी विरपत प्रमेह वालों को होती है। और प्रमेह उसी रोग के लोगों को अधिकतर होता है या मस्तिष्क को अधिक प्रभावित कर लिखने पढ़ने का काम किया करते हैं। गोसाई जी सर्वत्र मस्तिष्क से विरपेय काम लेते रहे इसमें यह सन्देह नहीं। यदि यह बात नहीं होती तो ऐसे २ अर्धशतक ही कैसे रचे जाते। परन्तु प्रमेहमस्त मनुष्य का मस्तिष्क शक्तिहीन नहीं हो जाता। यह रोग होने पर भी लोग लिखने-पढ़ने का काम मस्तिष्क से करते ही जाते हैं। और पिरकी में पीड़ा भी तो होती है परन्तु होरा इबास ऐसा बना रहता है कि मनुष्य मस्तिष्क से काम ले सके। इस इदतापूर्वक यह नहीं कह सकते कि गोस्वामी जी को प्रमेह रोग था, परन्तु बाहु में पीड़ा या पिरकी ही होने पर 'बाहुक' की रचना हुई और इन की मृत्यु की प्राचीन आख्यायिका ही अर्थात् पिरकी रोग से स्वर्गवास होना ही अधिकतर प्रामाणिक सीखता है बाहे यह पटना इसी बाहुक की रचना के समय हुई हो चाहे पीछे। स्वर्गवासी ५० वर रयामाचरण ज्योतिषी (नई बस्ती कस्बा) ने म जु० रामजीन सिंह जी से कहा था कि 'गोसाई जी' की बाहुक को पीड़ा से शाब सृज गया था, पर इनुमान बाहुक' क प्रताप से फिर ज्यों का त्यों हो गया। प्रज्ञा पाठ पर जो गोसाई जी का जिन है उसने एक वाह पतला है वह इसी रोग क प्रभाव से हुआ है और कदाचित बाहु ज्यों की त्यों होने के पूर्व यह जिन बना था। इससे जाना जाता है कि 'बाहुक' के समय को बाहुपीड़ा से इन का स्वर्गवास नहीं हुआ।

इतना लिखने क अन्तर हमें प्रियसन साहब का मुत्सङ्गास जी क सम्बन्ध का संग जो जुलाई १६३३ के रायस एशियाटिक सोसायटी क जर्नल में दया है इसमें भी बताया। उस से बाध होता है कि उन को भी पीछे सोबन विचारन से गोसाई जी के प्लेग से परलोक गमन की बात प्रामाणिक प्रतीत नहीं हुई है और आपने स्पष्ट लिखा है कि '१६२३ ई० में उस जगर 'बमारस में इन पर गोसाई जी पर' प्लेग का आक्रमण हुआ था और इसी साल इनकी मृत्यु हुई यद्यपि यह स्पष्ट है कि उस पीमारी से नहीं मरे।' और जाने फिर सोबन विचारने से कुछ दिन पीछे इन के प्लेग प्रस होन की बात भी साहब को निर्मूल मान हो।

चाहे किसी रोग से क्यों म हो काशी क अस्सी पाठ पर सं १९०० (१९२३ ई०) में २१ वर की अवस्था में पूर्णानु मोम कर बिरकास हरियरस धीनन कर एवम् गियाराम गुणमन उक्ति पूरा कविता की कई एक मनोहर मुक्तक तथा कस्याएत्र पत्रिन गर चरितार्थ निर्माण कर यह दोहा पढ़ते हुये—

१ He was attacked by Plague in that city in 1623, and died the same year, though apparently not from the disease. Tulsidas, poet and religious reformer—Journal of the Royal Asiatic Society, July 1903, P 450

२ आ जग मं० १५८३ में जम्म गानसे ई उन क अनुमतर ६७ वरें करि जा १५५६ में मारत ई उनक दिमाब मे १२६ वर ।



“रामनाम यश धरनि कै, मयहुँ चाहत ध्यव मौन ।

तुलसी के मुख दीमिय, अन्वही तुलसी सोन ॥”

आप ने सबदा के लिये मौन साधन किया । ठप पावन सरिताओं में मज्जन कर आज कितने बन कति कजुप नचाय कृतार्थ हो रहे हैं आज कितने उष क पान से परमानन्द लाभ कर रहे हैं पूर्ण कितने उष के तट के निष्ठ बैठने ही से असीम सुख पा रहे हैं ।

गोलाई जी अब इस संसार में विषमाम नहीं हैं परन्तु आप की सुकीर्ति आज भी बेसीन्दमान है एबन् इती प्रकार प्रकृत पर्यन्त इस संसार में अपनी प्रभा प्रसारित करती रहेगी ।

त्रिष काल ने गोलाई जी जैसे समस्त रत्न को भारतभूमि से उठा लिया त्रिष काज कराल के सामने प्रवृत्त प्रतापी जगद्विजयी महिशाओं को मस्तक ध्वजनाथ करना पड़ता है, त्रिष के निष्ठ अनुश्रम बलशास्त्री वीरवरो को भी किसी प्रकार बल-वीर्य प्रकाश करने का साहस नहीं होता त्रिष के सम्मुख जगद्विजयात् वर्मप्रवारकों तथा बलशाओं का मुख बन्द हो जाता है, त्रिष के आग बहुर बुद्धिमयियों की भी पाकड़ी मूल जाती है त्रिष के सम्मुख सबपुण्य कवि कोवियों का भी कलाकौराज कुछ कम नहीं आता त्रिष के सभीपस्तक होने ही से श्रुति मुनियों को भी मौन ही साधन करना होता है और जो अक्षय रोग स्त्री माति २ के हँसुओं के द्वारा संसार क परावर जीवों को पास के समान सर्बथा कष्टता रहता है उसी सर्वोपरि बलिष्ठ कालदेव को हम बारम्बार प्रणाम करते हैं और अपने पलकों से सविनय निवेदन करते हैं कि आपसोय मृत्यु को सदा स्मरण करते हुये संसार में कमल पत्र की नाई रहते, परोपकार श्रोतपकार, सदाचार शिष्ट स्वबहार में शिष्ट लगार्ण मयबहुजन का आनन्द उठाना करें और त्रिष महापुण्य को इतनी कम्बी-बीड़ी जीवनी पढ़ने में आपने उत्साह दिखलाना है तथा आगे दिखलावेंगे उष की सब बातों पर नहीं तो इस बात पर तो अवरय प्याम रखें—

“तन से काम करौ यिधि नामा । मन राखो अई कृतानिधाना ॥”

क्यों कि इसी से उष कृपावाम की कृपा के भागी हो समस्त लोक का सत्ता सुख प्राप्त करने की सम्भावना है, अन्वना नहीं ।

द्वितीय खण्ड



## प्रथम परिच्छेद

# कविताशक्ति तथा काव्यभाषा

गोस्वामी तुलसीदासजी हिन्दी साहित्यकाय के सर्वोत्कृष्ट महकन हुये हैं यह बात सब लोग स्वीकार करत हैं। इस महकन को भलत हुये आत्र १०६ वर्ष हो गये परन्तु इस की स्वच्छ सुन्दर कीमुदी आत्र भी इस जगत् में अमुर्दिक फँस रही है एवम् भिय १२ उतारोत्तर आनन्ददायिनी हो रही है। इस अतीविक्र बन्ध के अरत होन पर भी केवल इस की सुधीति अम्बिदा की ओर दृष्टिपात करने से हरिकर्मों तथा काम्यामुरागियों का गम्भीर हदन तरङ्गित होने लगता है एवम् रविन्द बहोर उमी की ओर टकटकी बाँध हेते हैं और अम्मजनित ब्रजभाषों से सन्धा कितने ही अम्बिकि इमका आधय प्रदण कर मुक्त पावे तथा अगाप्य मानसिक रोषों से मुक्ति साम करत हैं। इस अतीविक्र कथापर क प्रताप से धीरामपरागमित महा मनो हारिणी कविता कुमुदितियों ने अन्ले विद्याव से ग्रंथ सरोवरों को ऐसा आरसादिन कर रखा है कि उपर एक बार देखने ही से मन मुग्ध हो जागा दे। उन कुमुदों की मयुर सहर सरम मुगध भारतवन में ही नहीं बत रही है बल् मुक्तयानि पवन क वंशों पर बड़ कर अन्य वशों में भी पदुब बहों क निवासियों को मोहित तथा आसादिन करती है।

वीज समाकाचना का प्रबएव मार्तण्ड इन कुमुदितियों को शुद्ध तथा नीरस करन की सामय नहीं रक्ता। इनकों की कुम्बिका भी इहें पिब-मिष नहीं कर सकनी इपे का गुणार भी इहें मट नहीं कर सकना। अर तक हिन्दी साहित्य का नीरस बना रहेगा जब तक हिन्दुओं की हिन्दोभाषा में ममता रहेगी इन की सहर सटा की नित्य प्रति रुटि होनी रहेगी।

गोसादमी के हिन्दी साहित्यममोम का अतीविक्र शर्याक बरतन तथा साहित्य संसार में तेमा वचन रवान प्राप्त करने का कारण यह है कि इन में गम्भीर अमुमक तथा अमुरुतितन का अरणा संयोग हुआ था। न पदार्थों को बालाविक रूपों में श्रगत एवम् अम्बनाशक्ति के सहारे ममयाशुमार उम्हें अगातर कर सकत थे। इन क हृदय में मनोरुटियों भी दृष्ट अन् से अनिदिगिन हानी थी, इहें देवदान का पूरा ज्ञान था एवम् गाय ही साथ लभना तथा सहरवना भी पगाहाग्य की थी।

“नानक नन्हा हो रहो, जैसी नन्ही दूय।  
मयी घाम जल मार्यंग, दूय मूब क मूर॥”

रखिने ऐसा महान गुणवान कवि होने पर भी एवम् अपनी कविता कागिनी को सर्वांगद्वारों से अर्धहृत करने की योग्यता रखन पर भी वे अपने को इस कार्य में सक्षम मानसमर्थ ही समझते रहे और इन्होंने इस बात को कई स्थानों में निःसंकोच भाव से स्पष्ट कहा भी है। यथा—

“कविन होई नहि पतुर प्रधीनू। सकल कला सब विद्या हीनू।

कथित-विवेक एक नहि मोर। सत्य कहौं सिद्धि कागद कोर ॥”

बीकाकार शोक चाहे इस का जैसा अर्थ करें, रामदासी शोक अपना वह समझन के क लिये चाहे इसपर बड़ा खेद कर तैयार हो जाय, परन्तु गोल्दामीनी को अपने विषय में अपना जैसा विश्वास था उसे उन्होंने वै निष्कण्ट भाव से बिना संकोच कहा दिया है।

इन्हे अपने विषय में एवम् जैसा विश्वास और विश्वास हो परन्तु कविता मर्मज्ञ इन्हें एक महान प्रतिभावान सम्बन्धि देखते हैं क्योंकि जिस की रचना में भाव की गम्भीरता भाषा की सरलता परकाशित्व भाङ्गुर्ण श्रयादि गुण हो एवम् जिसकी कविता के पढ़ने तथा भङ्गुमान से मनोवृत्तियाँ विकसित होकर अस्वीकिक आनन्द अनुभव करने हों और जिसकी कविता का रस अमलकरण में सहज ही प्रवेश कर जाय वही प्रकृत कवि कहलाने का अधिकारी है। जैसी कवि मिष्टान का कथन है कि कविता सरस सरस मर्मस्पर्शिणी मलकारिणी एवम् साक्षर्य होनी चाहिये, क्योंकि यदि शब्दों में अधिक भाव बरखाना ही प्रकृत कवि का प्रचाल लक्ष्य है।” मिस्मन्नेह गोसार्दे जी की कविता पूर्णतः सब गुणों से भूषित है और इन्होंने कवि का सर्वत्र के समान प्रकृतिपुलक के पृष्ठों से पाठ ग्रहण किया है। आप सुप्रसिद्ध मंत्र की कवि शोकनिबर के समकालीन थे और उन्हीं के सरस बने तन्त्र तथा प्रकृति एवम् मानवी स्वभाव के बावले ज्ञाता थे एसा इन के ‘रामचरित मानस के अंश की अनुवादक एक एम प्राउस भाइय ने लिख्य किया है और इसी से इन की रचनाएँ ऐसी उत्कृष्ट हुई हैं। क्योंकि बर्तनीय विषय का अनुभव नहीं होने से तब का कथन कदापि सरल तथा मर्मवेधी नहीं हो सकता। गोल्दामी नी को प्रकृति तथा मानवी स्वभाव समझने-बुझने का सुखभर भी पूरा मिला था। बालकाल ही में इन्हें ‘मंगमतीर्षराज’ छन्दों के समास का सङ्ग हुआ था। एवम् इन्हें एहदकी का भी सुकामन्द प्राप्त हुआ था। फिर गृहियापी होने पर भित्त २ प्रकार और प्रशानन बासे जनसमुदाय से भी समासम हुआ ही करता था। इस के अतिरिक्त वे एनुमान नी के परम कुरापात्र तथा सरस्वती के निब पुत्रों में से थे। इसी से प्राकृतिक तथा अत्राकृतिक उच्च पत्राओं विविध रूपों और अवरत्नाओं में ध्यान करत ही उल्लमान में इन के नेत्रों के सामने अन्विष्ट हो जाया करत थे और ये कविता ‘आमेरा में अद उग का निब कीन सन व। या यो कहिये कि इन की विषयस बुद्धि कमी नथिनो तथा एरोवरो के ठरों पर दिवरण का कमी वर्तनो पर अदभर, कमी वनो में प्रवेश कर कमी शाशास में उदकर कमी सनुर में बन कर, और कमी पुरातन मरहन-नाशिय-वाटिकाओं में प्रमय कर तब स्थानों से सुदूर वरुक्त यमयिनां वृद्धिन करती नरी है और इन्होंने वे उन क सहारे अपनी कविता कविता को सुन्दर संवार दिया कर सुमिगित किया है। (कलघण ललित उपमाओं की माला

गूय कर विविध अनुप्रासों की जीवन्ती जोड़ जाह कर उद्य क गले की रोमा बढ़ा है धनि और म्यत्र की करपनी तथा को-सुं भी डाल दिये हैं । शब्दाष्टकार भाषातत्कार अर्थात्कार किसी अर्थकार की कमी नहीं रखी है । बरणों में विविध ललित पठि भी दिखलाई हैं हास की हासकारण भी किटकार है । रीद्र तथा बीर का अर्थक भी सन्धाना है; अर्धुपुत्र कपटी का अर्धुपुत्र अन्तर भी पहना कर उसकी विश्वनोहिनी मूर्ति खरी की है ।

बहुज-से लोगों का यह विचार है कि कबल रमणीय अर्थ प्रकट करने का शब्द काम्य कहता है और सद्गम्य के लिये पदलात्किम मक अमुप्रास रखप, अर्थमपुत्रता अर्थात् रसिक सुम्प नहीं होगा और पद लाशिय मनुजना मपुत्रता सरलता व्याकरण की शुद्धता, अन्तों की निर्दोष व्यवस्था इत्यादि सब प्रकार से योग्य ही हैं । ये सब काम्य की रोमा बढ़ाती हैं पर एसा भी नहीं कहा जा सकता कि काम्य की रोमा इन्हीं पर निभर है ।

काम्य की रोमा इन्हीं पर निभर हो या न हो परन्तु मनुष्य का विना पहल बाहरी अर्थक इमक हो को बख कर आर्चपिन होगा है और ऐसे उद्य पदाय का वास्तविक गुण स्वभाव जानने का उद्य अन्तर मिलता है । और रसिक अनेक प्रकार के शोव है । किसी को बाय अर्थक-इमक हो उन्मत्त बनाने रहता है कोई भाव अर स्वभाव ही पर गुम्प हो जाता है कोई मपुत्र मनुष्य स्वर ही पर सर्वत्र निशान करने को उद्यत होता है । अतएव हमारी समक में जो सबगुण सम्पन्न एवम् सर्वत्र मानन्द-दायिनी कविता हो रही स्वाभाविक तथा सद्गम्य है और प्रतिभावान कवि ही ऐसी कविता करन को समय होता है । उस क बाहरी उजावट को और विद्यत भ्यात नहीं रखन पर भी उस की कविता स्वयम् सब मूपणों से मुपजित हो जाती है एवम् पूर्वोक्त गुण उसमें एवम् ही का जाव हैं । इसी से यद्यपि वह नित्य ही घटनाओं का ही बरण करता है ता भी उसकी कविता सबगुण दायिनी तथा इवम् माहिणी हो जाती है ।

यदि गोसाईं जी में कबल एहदयता ही होती यदि इनकी कविता कबल रमणीय अर्थ प्रकट करनेवाली ही होती और माय' क समान इनकी कविता ठपमा अर्थ गीरक तथा पद लात्किम आदि से सर्वाङ्ग मूढिन नहीं हाऽी तो वह सर्वत्र प्रिय कदापि नहीं हो सक्ती, कबल यथाय एवम् ही उस स मानन्द लाभ करत । परन्तु यहाँ तो—

“जहाँ दुखता हूँ जिपर दुखता हूँ । ये सनभत का जिसया यहाँ दुखता हूँ ॥”

गोसाईं जी न यह निश्चय लिखा है कि ‘उद्य कविता कीरति विमल, सोई आदर्श सुमान परन्तु मूपणविहीन कविता आदरणीय होन का इन्होंने कहीं उक्तेत भी नहीं किया है । बरन इसकी आदरयचना की मलक आप ने इन वाक्यों में दिखलाई है— आपर काम्य अर्थकनि नाता । ईद प्ररूप अर्थक विधाना ॥ भाव-जेद रखनेद अगारा । कवित दोपगुन

१ उन्मा काजिदायस्य आदरार्थगौरवम् ।  
दुखितः पदलात्किमं माय सन्नि प्रयो गुणः ॥

विभिन्न प्रकारा ॥ और नम्र भाव से अपने में इन बातों का अमान दिखलाते हुये कहा है कि 'मुझे कविता का विशेष एक भी नहीं है, परन्तु मेरी कविता में रज्जुवर के उदारनाम का वर्णन है इसी का मुझे भरोसा है कि साग इस अमानमें क्योकि सचगुण भूयिष्ठ कविता भी रामपरा विहीन होन से बुचकनों में आकर नहीं पायी ।' तथापि कविता के गुणों पर इति रचना भी इन्हीं के वाक्यों से प्रकटित होगा है क्योकि "रामचरित मानस" का इतक बर्णने में आप कहते हैं— अरब अनूप सुभाव सुभासा । छोई पराग मकरद सुबासा ॥ पुनि अचरेव कवित्त गुन जाती । मीन मनोहर से बहु मती ॥ हाँ । वे अन्य कवियों के समान अपनी निपुणता प्रदर्शन करना नहीं चाहते थे । वे रक्षा में तो नहीं समझते थे कि क्या प्रयोग सूत है अथ में इन की कविता कौरस की मोरी रिटोई जाऊत आनो कवि बरसाये । इन्हों में अपनी कविता कौरस को रंग विरंगी रसम एवम् रामपरा को मोती मान उघ के मध्य में उस रसम को क्षिपाने रखने का विचार किया है परन्तु उस अद्भुत मोती की अनुभव बना का योग पाकर वह रसम आप ही-आप आर भी अधिक अर्पू कृपा सन्मन् हो गया है ।

और मूयक विहीन कविता के विषय में जोसाई जी के समकालीन एवम् उच कोसि के एक कवि सेनापति' की कहे हैं 'सोय सों मलीन गुमहीन कविताई है तो किने अरबीन परवीन कोउ मुनि है । ---इत्य को करि के कवित विनु मूयन को कर को प्रसिद्ध ऐसो काम सुरमुनि है ॥" पुन - 'राजति होने पोपे पिंगल क लपन को बुद्धि कवि की को उपकंठहि बसति है । जो वे पद मन की इरव उपभावत हैं तबे की कुनर औन कन्द सरसति है । अकर हैं बिसद करत ऊपे आपस में जाये जगती की जकताक विमसति है । मानो कवि ताकी उद्वति सविता की सेनापति कविता की कविताई बिससति है ॥'

मूयक कविता का हृदय है ।<sup>१</sup> हृदयस्थ शरीर भी क्या किसी काम का हो सकता है ? जो हो अर इसे बोधिये । रस की ओर भ्यात दीजिये ।

१ इन का जन्म लगभग १५६ में हुआ था । वे हीनित काव्यबुद्धि दास्य गंगा तट के रहनेवाले थे । वे सूरदास तथा तुलसीदास ही के सरीले ईरवार भक्त थे, परन्तु आदि कविता में कुछ अलग-अलग पाये जाते हैं । वे उच्च अंशों के कवि थे कविता अच्छी करते थे । इन की रचना में अनुमान समक रोजे, कान्त का आधिक्य देना जाता है । इन की उपमाएँ तथा प्राकृतिक वर्णन बहुत मनोहर हुए हैं । इन के भाव सब की इन के अपने और उत्तम हैं । इन्होंने काव्य कशमूम तथा कविता रनाकर की रचना की है जिसका एक तरंग परब्रह्म भी है । मिश्रबन्धु लिखित इन का कृतान्त सरस्वती भाग ११ पृष्ठ १२२ २० में पाठ कीजिये ।

२ एवम् अरुन भूत इत्य कर मुय भावज्जुभाव ।

अप पायी मुति अचरी काव्य सुमद सुभाव ॥"

—मानुषकृत काव्य प्रभाकर ।

गोसाई जी की रचनाओं में शान्त कव्य आदि की प्रधानता होते हुए भी अन्य रसों का अभाव नहीं है और वहाँ त्रिस रस की कविता का समावेश हुआ है वहाँ पर वह पाठकों के हृदय पर अपना पूर्ण प्रभाव डालने की प्रयत्न शक्ति रखती है। कवि का हृदय निमल और स्वभावसरल होने के कारण त्रिस प्रसंग की कविता शक्ति उस से नहीं रस उत्पन्न रहा है। क्या इन की कारण रस की कविता पाठ से नेत्रों से सबकुछ अनुभूत प्रवाहित नहीं होने लगती ? क्या शीरालम्ब कविता के पढ़ने से भुआएँ नहीं चढ़ने लगती और मन में शीरता का संसार नहीं होता ? क्या शीरालम्ब से चित्त में पूका नहीं उत्पन्न होती ? क्या हास हमें हँसाकर लोट पोछ नहीं कर देता ? क्या शान्त से मन शान्ति प्राप्त नहीं करता और चित्त की एकाग्रता तथा संसार से विच्छिन्नता का उद्भव नहीं होता ? और क्या मित्र २ श्रावणों की काम्याहित कवि अकलोकल से मन में आनन्द की लहरें नहीं उठने लगती ? ये सब बातें प्रत्यक्ष ही होने लगती हैं क्योंकि शृंगार और कवच इत्यादि को मित्र २ मनाहृतियाँ हैं वे इन्हें अत्यन्त सूक्ष्म और स्पष्ट रूप से अनुभूत की और वे उन के विभावन में बड़े ही प्रवीण विचारक थे। कवच है कि विरमिष्ट जिस रस का बृह पर बढ़ता है उस का रंग भी उसी बन का हो जाता है। इसी प्रकार गोसाई जी की श्लेषनी त्रिस रस की ओर लुङ्गी की ठही रस क रंग में रंग जाती की चार काम्यचित्र में उसी रस का सुन्दर रंग बढ़ाने का जाती की।

मास्वामी जी की रचनाओं में शृंगार रस का भी अभाव नहीं है। शोभाविधान शौन्दर्यकाव्य भी अभाव रामचन्द्र की माधुरी मूर्ति के अनुगामी हा कर वे शौन्दर्य तथा शृंगार का अनादर कैसे करत ? हम का अनादर करने से इन की कविता कामिनी एक मुख्य अङ्गविहीना हो कर काश्चित्कृत्य हा जाती। इसी से इन्होंने शृंगार की भी दृष्टा दिष्टकाने में धृष्टि नहीं की है। परन्तु उसे स्वच्छ पवित्र रूप में पाठकों के नेत्रपत्र में लबा चिवा है त्रिस की ओर रक्षिपाल से मन में पवित्रता का संसार होता है कर्तुपिन मास सर्वथा भट हो जाता है। वह शृंगार भी शान्तिरस का काम करता है। वह इन की कविता विचारकी की निपुणता का लक्ष है एकम् महत् कवि होने का एक प्रमाण है।

इसी बात को ध्यान में रखकर इन्होंने रामायण में कहा है —

“अग्नि यस्त जे विषयो यक कागा । एहि सर निकट न जाहि अमागा ॥

संबू मक सिधार समाना । इही न विषय कथा रस नाना ॥

तहि कारण आवत हिय हार । कामी काक पलाक विषारे ॥”

— कुछ शृंगाररस का अनादर में नहीं क्योंकि विषय चार शृंगार में प्रमेद है। यह अनादरक नहीं कि जो शौन्दर्योपायक हा वह विषयी तथा भ्रष्ट हो, या जो विषयी हो वह अभाव शौन्दर्य के भी तथा शृंगाररस की हो। यह कवि मूलम विचार है। विना इस पर ध्यान रखे गोसाई जी का शृंगार का अभाव नहीं है।

अंशेरी कवि बट मूर्धन्य का सम्मान आगारे की प्राकृतिक शान्दर्योपायक य एवम् स्वच्छता तथा शान्दता को उग का प्रधान काम मानत थे। वे ध्यान शौन्दर्य के विषय क



ग खे जल स स्नान नहीं करते थे । पवित्रता के स्वच्छ गमा जल से स्नान कराकर उसे रत्नों मन्दिर में स्थापित करते थे ।

प्राकृतिक क्षति निरन्तर में इन की खोजनी प्रमाण साक्षिणी तो है ही परन्तु क्या वर्चन भी इन्होंने मे इस ढंग से किया है मानों वे बटनामें अपनी हम लोगों क नेत्रों के सामने हो रही हो । यदि किसी से बावर्ताप हुषा है, कहीं किसी विषय में परामर्श क निमित्त कोई समा हुई है या जो कुछ हुषा है उस के निरन्तरपाठ से यह नहीं ज्ञात होता कि वे बातें हम लोग किसी अग्न स्वक्ति के मुख से सुन रहे हैं वरन् कवि की खोजन-शैली के प्रमाण से ऐसा प्रतीत होने लगता है कि पाठक उस स्वान पर पहुँच कर उन बातों को स्वयम् सुन रहे हैं और उन बटनाओं को देख रहे हैं । क्या रात्राओं के तमक तमक कर धनुष तोकने के लिये उठने, दोनों माइनों का सीता के घग बन में बरूने एवम् प्रामीय स्त्रियों के तत्कालीन कन्योपकरण का प्रकरण पाठ से ऐसा नहीं ज्ञात होता कि वे बातें हमलोगों की आँखों के आगे हो रही हैं ? क्या कण्ठकाण्ड पढ़ने से शस्त्रों की म्झर धनुषों की ठकार भरमार की ललकार पीरों का परस्पर प्रहार समय विधि अय-अय क ठकार, रत्नों की परपरवाहट शरों की सनसनाहट गदाओं की तबतबाहट मु डों की मवमवाहट धकों की मवमवाहट हमलोगों के कानों में नहीं प्रवेश करने लगती !

उत्कृष्ट तथा निष्कृष्ट पात्रों का इन्होंने ऐसा लुभा बिन लीया है कि कदाकिन् कोई विरका ही कवि इस बात में हमकी समता कर सकता है । इनके पात्रगण कहते करते सोचते, विचारते मानो हमलोगों के नेत्रों के सामने उपस्थित किये जाते हैं । रामायण पाठ से वस्तुतः ऐसा ही प्रतीत होता है कि नाटक क पात्रगण नेपथ्य से निष्कृत निकलकर रङ्गभूमि में घाते और बातचीत करते हैं । पात्रों की परस्पर बातचीत बहुत उत्तम, उचित तथा सहज रीति से कराई गई है । कुपात्रों का भी बिना इन्होंने म एक बम कासा ही नहीं लीया है । उन के विनाहम में भी वे यथानुसंग सु-रङ्ग का झँटा बेटे मने हैं ।

भिवर्चन साहब कहते हैं कि 'इन के काम्पात्र पूर्ण वीररस से भरे हैं' -- -- इन के पात्र नर्त मरी कौलों के सामने ऐसे नाच रहे हैं जैसे प्रसिद्ध अंगरेजी महाकाव्य के पात्रगण ।' कन्ठ इन्हीं की शम्पों क द्वारा उन्होंने हमारे चरित्रनायक को सुविस्मयत विज्ञानवी कवि शोकसिन्धु मिस्टन इत्यादि के साथ कुसरी प्रथम की है । स्वमुख गोसाई की शोकसिन्धु से कम नहीं है, वरन् उन से वे कई बातों में बढ़े हुये हैं । विचार करने से पाठक इन्द् स्वयम् यह बात जान सकते हैं और हम भी यह बात कही बनाने की चेष्टा करेंगे ।

सुरदास प्रभृति कवियों के आदर देने से गोस्वामी जी क समय में ब्रजभाषा का बका ही प्रापण्य था । कविता उसी भाषा में की जाती थी । ब्रजभाषा में गद्य का भी सिध्दना आरम्भ हो गया था । परन्तु गोसाई जी ने अपनी रचना में किसी विद्वेष भाषा का निरवम नहीं रखा है । भारतवर्षीय विविध भाषाओं का सहारा लेकर जय और उर्ध्व विद्य भाषा क शब्दों को उपयुक्त समझा ट, उन्हीं को काम में लाया है । हाँ प्रकों को उन्निकर तथा उत्तम बनाने एवम् मानों को सहज रीति से प्रकट करने का ध्यान इन्होंने सर्वत्र बना रखा है । इन्हीं से इन की रचनाओं में ब्रजभाषा नथनाकी अवधी प्राग्ग तथा प्राहट भाषादि क शब्द पाये जात हैं ।

और फारसी अरबी के शब्द भी बहुत आये हैं, यथा—रहम कलक, सलत, बानू पादमार, ताक कुलाह, दाद काहिल गमी नेकाज पगक (प्रगज), फरम, एतायत, इत्यादि । यही नहीं फारसी लोगों के भाष भी कहीं-कहीं इन की रचना में उल्लिखित पाये जाते हैं ।

गैहार शब्दों की भी कमी नहीं है यथा—वेहज माहुर, कड़ीता रेंगाई मुठमेरी, अहरठट्ट, बारहबाट, पनही बूता इत्यादि ।

और इन्होंने आने मित्र २ प्रयोगों को मित्र-मित्र भाषा में तथा मित्र २ वृत्त भी लिखा है । रामायण की भाषा विशिष्टतः बँसवाही और बनभी है यद्यपि उग में अन्य भाषाओं के शब्द भी आये हैं और कुछ संस्कृत के भी उल्लेख है । इन की छोटी पुस्तकों की भी यही भाषा पाई जाती है । गीतावली तथा कृष्ण गीतावली 'पुत्र ब्रह्मभाषा में बनी हैं । कवितावली और बाहुक की भाषा बँसवाही मिश्रित ब्रह्मभाषा है । विनयपत्रिका में पूर्णतः उग्र भाषाएँ आई जाती हैं एवम् बहुत से विनय के पत्रों में संस्कृत का अनुकरण देखा जाता है ।

बैसे ही इन्होंने सरस उक्तिर छन्दों में भी रचना की है और इनकी कविता गूढ़ भाव पूर्ण भी हुई है । कविता किसी ढंग से की गयी हो कवि का आत्मीयत्व उन्हीं ही में वर्तमान है ।

गोस्वामी जी की केवल काव्यनिक शक्ति ही बलवती नहीं थी परन्तु आपकी भुक्ति भी बिलक्षण गुण धारण करती थी । शब्द तथा वाक्य-विन्यास में आप भाष और स्वर का मूढ ही मिलाप करत गये हैं—यथा "बिच्छे सरणि बहु कंठ गुणत पुत्र मंजुल मपुकरा" इन्में इन्होंने शब्दों ही में भ्रमरों का गुञ्जर करा दिया है । इनकी रचना से ज्ञान पक्का है जैसे किसी निपुण चित्रकार ने चित्ररत्न में सुन्दर रङ्ग बढ़ाया हा या रंग-रंग क रंग ही सुन्दर रंग रूप से प्रदर्शित किये जाने के लिय स्वयम् प्रकट होत गये हों । अर्थात् जहाँ जैसा भाव प्रकट करना है वहाँ वैसे ही शब्द और वाक्य रत्न गये हैं । जन्तना में विनयी ही उत्तमता हुई है वाक्य उत्तम ही प्रबल होता गया है और वाक्य तथा पाराप्रवाहवत् देखा जाता है माना उमक पदन में कवि का कोई परिभ्रम ही नहीं हुआ है—सरस्वती कदती गई हों और वे लिखत पसे हों । पाण्ड को यही प्रतीत होता है कि वह करोक, सदाप्रवाहित वाग्पारा में प्रवेश कर बिना हाथ पर हिलाये सानन्द बहा या रहा है और अरुध धानन्द अनुभव कर रहा है अर्थात् इनकी रचना धारा प्रवाहवत् हुई है ।

इन्होंने सबदा भाष के उपयुक्त शब्दों का प्रयोग किया है ।

जब तक संभरा की कुम्भरणा से कहेवी की मति नहीं निरी थी तब तक उमक सम्बन्ध में ये भरतमानु आदि शब्द रलत आये हैं यथा—

“भरत मासु पहँ राड धिन्तवानी”,

‘ईमि कह रानि गाल पद सोरे”,

—परन्तु जब यही की बुद्धि कष्टमयी बातों को मुन कर से बुद्धिपदा हो गी तब योग्या जी ने दशाध-बंध म उमहा सम्बन्ध तोड़ करे 'कथयुगा कानि करमा कागम दिया है ।

द्वि—जब भाग जी ने मुठ करने की मँदागी से निदान बना दे तो उम मन्त्र कवि कहत है—'बने निवद आहारि गोहारी । मूर गहन रव कथद रागी । मुनिनि गाम-पद

पंकज-पलही । भाजा नाभि बवाइन्हि बनही ॥ यहाँ रामचन्द्र की पलही का सुमिरन कराया, क्योंकि मुझ चेष्ट में जाने के समय कोमल पशु का जैसे प्याल कराया ।

और यहाँ निपाव की बातों में गंवारू शब्दों को रखकर उन्हें स्वामाबिक बना दिया है—  
“हृषबासहु बोरहु तरनि कीबे बाटारोह” बेगहि भाइहु सबहु रंबोड” इत्यादि । इस प्रकृत्य के पाठ से नही प्रतीत होता है कि मानो छन्दोबद्ध उची भरी का कोई प्राणी बोल रहा है ।

और दक्षिमे रावण सर्बदा राम छत्रमुख के सम्बन्ध में ‘तपसी’ आदि शब्द प्रयोग करता था । परन्तु अब वह मुझ करने को बला है तब ‘क्येठ वसामन सुनहु सुमट्टा । मर्वहु माहु क्यन्हि कर टट्टा ॥ हौं मारिहो भूप दोउ भाई । अछ कहि सम्मुख फौज रगाई ॥ क्योंकि रावण के समान प्रतापी राजा बना तपस्वियों के सत्र मुझ करेया । यह उसके गौरव के विरुद्ध और उसका अपमान-सूचक होगा । अतएव यहाँ ‘भूप’ शब्द का प्रयोग किया गया ।

गोसाई की अपनी रचनाओं में पूर्वापर का भी विरोध प्याल रखते थे । इसका दो एक उदाहरण देखिये । प्रथम सोपान के २२ श्लोक के उपरान्त वाली २ अंक की चौपाई में लिखा है कि “भरि सोचन जबि सिन्धु मिहारी कुसम्य जान म कीन्ह जिहारी ।” इस कुसम्य का मास लंकाकाण्ड के ११४ श्लोक में लिखा है कि देखे सुषण्णर राम पहि, आये संसुसुभान । २ सोपान के १ श्लोक में ‘राम काम कीहे बिना, मोहि कहा बिधाम’ श्लोक के २६ श्लोक में विधाम कराया है “दूख बुझाई बाह धम । फिर हमरे सोपान के २९ श्लोक में राम वरस हित नेमव्रत काम लगे नर-नारि मगहु कोक बोली सकल हीन जिहीन तमारि । तिख कर उसची समाधि सातवें सोपान के ३ श्लोक के बाद वाली प्रथम चौपाई में की है यथा ‘यहाँ भाउ कुठ कमल दिवाकर । कल्पि दिखावत मगर मनोहर ।’

लोग कहते हैं कि इतना पूर्वापर का विचार रखने पर भी गोसाई जी ने शिवजी से पार्वती की के प्रश्नों के उत्तर दिखाने में पहले वह क्यलबाकर राम हुआ तें पारवती सन्नेहु तब मन मारि । सोक मोह सन्नेह भ्रम मम विचार कहु मारि ॥ फिर क्यलबाया है ‘एक बात नहि मोहि सुहानी । नदपि मोह बस क्येठ मथानी ॥’ अब शिवजी के विचार में पार्वती की के मन में स्वप्न में भी मोह प्रमादि नहीं तब वै मोह बस कोई बात फिर क्यों कहने लयी । बोल होता है कि अपने इन्द्रदेव के सम्बन्ध में ऐसी शंका युक्तकर थी शिव की को रोप हो गया था इन्ही से मोह बस पृथका कहा परन्तु फिर सम्मेल कर कहा कि मुझे आश्चर्य होता है कि तुम मोह रहित हो कर ऐसा प्रश्न करती हो ऐसा प्रश्न तो मोह पिशाच प्रसित अप्रथम नर करत हैं । ‘तुम जो कहा राम कोउ जाना । जेहि स्मृति गाव बरहि मुनि प्याना ॥ क्यहिं सुमहि अछ अप्रथम नर प्रये जे मोह पिशाच । पार्वती हरि पद विमुक्त जानहिं मूठ म साव ।’

हौं ! इस सम्बन्ध में और इस स्थान में हम इसमा और कहने का साहस करने कि गोसाई जी की सब रचनाएँ पढ़ ही सी नहीं हैं । रामायण गीतावली कृष्ण गीतावली कविनाथो दिनवादिछा के दूँ को इन के और प्रथ नहीं वा लच्छत । इन का अरथ यह है कि कविना का उत्तम होना वा न होना सम्यक् तथा योग विरोध पर निर्भर है । मिस्त्रन का

कवन है कि मेरी प्रतिभा कप के कुछ महीनों में अधिक समुज्ज्वल रहा करती थी। इसी से मिस्टन कृष्ण 'परेडाइज रीगेनड (Paradise Regained) उतना उत्तम नहीं है जिनका कि 'परेडाइज लास्ट (Paradise Last) पाया जाता है। पोप ने २ कप की अपरसा में जसी कविता की जैसी कविता वह फिर करने को समर्थ नहीं हुआ। बंगदेशीय सुविख्यात बद्रिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की भी यही श्रा देखी जाती है। उन का अंतिम उपन्यास 'सीताराम' उन क पूर्ण रचिन उपन्यास 'बीबीअपराधी' आदि से टकर नहीं लगा सकता। किसी कवि की सब रचनाएँ एक-सी हों यह सम्भव भी नहीं है। शेक्सपियर ने नाटकों के अतिरिक्त और भी कई एक छोटे छोटे ग्रन्थों की रचना की है जिन के विषय में हासम साहब का कथन है कि 'ये ग्रन्थ इस कवि-श्रद्धामणि की स्वच्छ कीर्ति में धक्का लगाते हैं यदि कवि इन ग्रन्थों की रचना नहीं करता तभी अप्पना बा। यही क्या ? इन प्रतिभावान् कवि के सब नाटक भी तो एक समान ही उत्तम नहीं हैं।

हमारे परित्रनायक का तो ग्रन्थ वा किसी ग्रन्थ का कोई अंश सबथा निकट भी नहीं है और पूर्वोक्त ग्रन्थों के समान जो अन्य ग्रन्थ सुन्दर नहीं देखे जाते, उनमें से कई एक को बहुत-से लोग गोसाईं की विरचित होना मानने ही को तैयार नहीं है।

सारांश यह कि हमलोग गोसाईं जी की कविता को जिस प्रकार से बगल हैं, उसे सर्वपुण्यमय पाते हैं जिस से इन का प्रतिभावान् प्राकृतिक तथा उत्कृष्ट कवि होना निर्विवाद प्रतिपादित होता है।

## द्वितीय परिच्छद

### गोस्वामी तुलसीदास कृत ग्रन्थावली

गोस्वामी जी ने कितने प्रकार कितने प्रयोगों की रचना की है, इस में बहुत मतभेद देखा जाता है। मिरजापुर-गिवासी व रामगुहाम द्विवेदी रामानन्द की शिष्य-परम्परा में स्वयम् गोसाईं जी से सम्मान रखते थे। उन्होंने एक रचान में लिखा है—

'रामललानहृद्, स्यो विराम्य प्रदीपिनिहृ बरवै बगइ विरमाई भठिसाईं की। पारवली, जानकी के मंगल ललित पाव, रम्य राम—धाडा रबी कामनेउ नाईं की ॥ दोहा भी कवित मीत बंध, कृष्णकथा करी रामानन्द बिने माहिं बात सब उरईं की। जग में सोवानी जमवीस हूँ के मन मानी सन सुखवानी बानी तुलसी गोसाईं की ॥'

इस के अनुसार गोसाईं जी कृत १२ प्रबंध होते हैं जिनमें रामानन्द, कवितावली पीठावली दोहावली विनय पत्रिका तथा रामायण के छ बड़े प्रबंध हैं और रामललानहृद् वैराम्य-सदीपिनी, जानकी मङ्गल पार्वती-मङ्गल कृष्ण मीठावली तथा बरवै रामायण के छ छोटे प्रबंध हैं। इस से राम सतसईं वा सतसईं गोसाईं की कृत होना विनित नहीं होता। परन्तु प० रोपरत जी ने—'मे भी शिष्य-परम्परा में गोस्वामी जी से सम्मान रखते थे—सतसईं का गोस्वामी जी कृत होना मान कर इसकी ठीका मी लिखी है और उन के पुत्र के शिष्य कोदोराम ने गोसाईं जी के प्रयोगों की रामायणी वर्णन में एक कवित कदा है। इस में 'दोहावली का नाम न केकर सतसईं का नाम दिना हुआ है और नाम-कथा-श्लेषमसि' एक अन्व ज ब का नाम है जिस से कोदो राम के अनुसार गोसाईं जी रचित १२ प्रबंध होते हैं।

किसी-किसी का कथन है कि गोसाईं जी ने १५ प्रयोगों की रचना की है। शिवसिंह सरोज के अनुसार पूर्वांक १२ प्रयोगों के विषय गोसाईं जी ने १ अन्व प्रयोगों की रचना की थी। अर्थात् रामनतसईं, संछट मोक्षण अनुमानबाहुक राम सलका, अन्दावली, मुंढलिया रामानन्द कडका रामानन्द शोका रामानन्द फूलन रामानन्द और छपै रामानन्द।

अगोवन्दरी गोसाईं जी निरवय मूल गन। उन्हें विरहा रामानन्द आरहा रामानन्द स्वरिक रामानन्दादि भी लिख देना चाहता था। इनसे कई एक विशेष बातियाँ का मारी उपकार होता और और जाने उन्होंने शिष्या भी हो कार कोई अनुभवजामसि रामायण-प्रकाशक उन्हें रामानन्द के राज-साध करी प्रकाशित कर रहे।

'मङ्गलात् हरिमल्लि प्रभासिद्य' तथा 'मङ्गलप्रभुम' में शिवसिंहसरोज बंशित रामायण सनसईं अन्दावली तथा कुरङ्गलिया रामानन्द के नाम नहीं दिये गये हैं। परन्तु इनमें अनुमानबाहीस और कलियमन्त्रिण्य दो नवीन प्रयोगों का नाम दाने जाते हैं।

प्रियसंग साहब न इंडियन एंटीक्युरी पृ० ११ में २१ प्रथो का नाम गिनाया है अर्थात् शिवसिंह सरोत्र कवित छन्दावली का नाम छोड़ कर आपन अन्य सब प्रथो का नाम दिया है। और बाँकीपुर के 'खड्गबिलास' प्रेस द्वारा प्रकाशित 'रामचरितमानस' में जो आप की लिखी गाथाई जी की जीवनी लुपी है उसमें आप रामायण क सिवाम १९ छन्द अन्य प्रथो का अर्थात् कुल १७ प्रथो का नाम बताया है और एक प्रथ का नाम पंचरत्न रख कर आप न उस में जानधी मझल पावती मझल बराम्यसन्दीपिनी रामलज्जामहादृ तथा बरबे रामायण सम्मिलित किया है। पंचरत्न नाम तो मला एक ठिकाने का भी है परन्तु 'धी बेंडटरवर' प्रेस क अण्यथ न एक अन्य का नाम 'योद्धरामायण' रखा है और उस क नीतर पावती मझल कृष्णगीतावली तथा कश्चिपमनिस्सरा पुरनके भी पुसा ही हैं। यह विचित्र नामकरण है। क्या इन तीनों पुस्तकों की भी गणना रामायण में ही होगी? या गोसाई जी की लेखनी म निर्गत सब बस्तुएँ रामायण ही कहलाएँगी?

वर्हित रामेश्वर भद्र में २२ प्रथो में से छन्दावली तथा छाने रामायण का नाम नहीं देकर 'रामलता' नाम की एक नवीन पुस्तक बनाई है।

मुनत हैं कि काशी-नागरी प्रचारिणी समा का सत्र में ज्ञानक्षेप परिचरण, मद्रस रामायण गीताभाष्य राममुहावली तथा ज्ञानदीपिका ये पांच ग्रन्थ आर मिल हैं। एक सुप्रसिद्ध प्रकाशक ने अपनी ग्रन्थसूची में मोस्वामीजीन 'बारहमास' सिख मारा है।

आग मतने प्रदर्शक एक करू ब दिया गया है जिस से पाठकों को लक्ष्य ही विदिन हो जावगी कि बीन २ महाशय बीन २ प्रथ गोरबामी की इत दोना मानत हैं और बीन २ प्रथ नहीं मानते।

उस क दृश्यने से यह भी सात होगा कि पूर्वार्द सूची क १२ प्रथो का गोसाई जी इत होना प्रायः सबलोग स्वीकार करत है किन्तु सब प्रथो क सम्पाद्य में अपिचारा की यही सम्मति है कि ये सब गाथाई जी क बनाम नहीं है तुलसी नामक किसी अन्य कवि के बनाये हुये हैं। निस्सन्दह बात भी ऐसी ही प्रतीत होती है। एक तो इय नाम के और भी कई कवि हुये हैं। दूसरे गोसाई जी के शिष्यपरम्परा के लोग तो बिर काल से १२ १२ ईय मानते आते हैं और अन्य महाशयों में इन के प्रथो की संख्या अप १२<sup>१</sup> तक पहुँचा ही है। पूर्वोल १२ प्रथो में से भी कई एक गोसाई जी इत होने में लोगों को सन्देह है। इस का हास पुस्तकों को समालोचना से विहित होगा।

२ राम चरितमानस, पवितावली, गीतावली, बिनपरत्रिका, शोदायनी रामायणी (रामशतुनावली) रामसलानहृदय बैराग्यसंशुद्धिनी ज्ञानकीमल पार्वतीमाल, कृष्णगीतावली, चरबेरामायण मतमई (राममतमई) संकटमाचन, दनुमानबाहुकं, रामसलान छन्दावली छाने रामायण कव्या रामायण भोजा रामायण मूलना रामायण कु दलिया रामायण दनुमानबावलीमा कश्चिपमनिस्सरा रामलता नामक्या योगमणि मन्सारणी, मंगल रामायण गीताभाष्य ज्ञानकाय परिचरण राममुन्धायना और ज्ञान शिपिका। (मन्सारणी और मन्सारामायण सम्मयतः एक ही पुस्तक के दो नाम हैं।)

## द्वितीय परिच्छद

### गोस्वामी तुलसीदास कृत ग्रन्थावली

गोस्वामी जी ने कितने और किन किन ग्रंथों की रचना की है इस में बहुत मतभेद देखा जाता है। मिर्जापुर-मिर्जासी पं रामगुलाम द्विवेदी रामायण की शिष्य-परम्परा में स्वयं गोसाईं जी से सम्बन्ध रखते थे। उन्होंने एक रत्न में लिखा है—

'रामसत्तामहद्गु स्यो विराम-पदीपिनिहु बरबै बनाइ विरमाई मत्तिसाईं की। पारबती जानकी के मयस ललित गाम, रम्य राम—भाजा रनी कामकेसु नाईं की ॥ दोहा श्री कवित, मीत बंध कृष्णरत्ना श्री रामायन विने माहिं बात सब आईं की। कम में सोहानी अयवीस हूँ के मन मापी संग मुलवाची बानी तुलसी गोसाईं की ॥

इस के अनुसार गोसाईं जी कुल १२ ग्रंथ होते हैं जिनमें रामायण, कवितावली मीतावली दोहावली विनय पत्रिका तथा रामाज्ञा, ये छः ग्रंथ ग्रंथ हैं और रामसत्तामहद्गु, वैराम-संशीपिनी, जानकी-महल पावती-महल कृष्ण वीतावली तथा बरबै रामायण, ये छः काटे ग्रंथ हैं। इस से राम सतसईं वा सतसईं गोसाईं जी कुल होना विदित नहीं होता। परन्तु बं० शेषदत्त जी ने—'श्री श्री शिष्य-परम्परा में गोस्वामी जी से सम्बन्ध रखते थे—'सतसईं को गोस्वामी जी कुल होना मान कर जसकी टीका भी लिखी है और जस के पुत्र के शिष्य कोदोराम ने गोसाईं जी के ग्रंथों की नामावली बहुत ही एक कवित कही है। इस में 'दोहावली का नाम म देकर सतसईं का नाम दिया हुआ है और 'नाम-कला-शेषमणि' एक ग्रन्थ का नाम है जिस से कोदोराम के अनुसार गोसाईं जी रचित १२ ग्रंथ होते हैं।

किन्ती-किसी का कथन है कि गोसाईं जी ने ११ ग्रंथों की रचना की है। शिवसिंह सरोज के अनुसार पूर्वोक्त १२ ग्रंथों के सिवाय गोसाईं जी ने १ अन्य ग्रंथों की रचना की थी। अर्थात् 'रामसत्तामहद्गु, संकट मोक्षण हनुमानबाहुक' राम सत्तामहद्गु-दन्दावली कुंडलिका रामायण कवला रामायण दोला रामायण पुलक रामायण और कृष्ण रामायण।

अगोपझरी गोसाईं जी निरवय मूल ग्रंथ। उन्हें विरहा रामायण, कारहा रामायण, शौरिक रामायणदि भी लिख देना चाहता था। इनमें कई एक विरोध जातिवों का भारी बर्बाद होया और श्रीम बान उन्हें लिखा भी हो और कोई अनुभवमयि रामायण प्रकृतक उन्हें रामायण के साथ-साथ कभी प्रकाशित करे ।

'महमात हरिमकि प्रकाशिका' तथा 'महकल्पद्रुम' में शिवसिंहसरोज रचित रामाज्ञा सतसईं दन्दावली तथा बुद्धकिया रामायण के नाम नहीं दिख गये हैं। परन्तु जसमें हनुमानबाहीसा और कतिबर्ननिहवस दो गवीन ग्रंथों के नाम पाये जात हैं।

विद्यमान साहस्य न इन्द्रियत एन्टीक्येरी पृ० ११ में २१ प्रथो का नाम विमाया है अर्थात् 'शिवसिंह सरोज' कवित छन्दोबन्धी का नाम होय कर आपन अन्य छप प्रथो का नाम दिया है। और बाँकीपुर के 'खड्गविलास' प्रेश द्वारा प्रकाशित 'रामचरितमानस' में जो आप की शिखी मोमाई जी की जीवनी लयी है उसमें आप रामायण क सिषाय १६ छोट्टर अन्य प्रथो का अर्थात् पुस्त १७ प्रथो का, नाम बताया है और एक प्रथ का नाम पन्धरान रख कर आप न उस में जानकी मइल पार्वती मइल वराम्यसन्दीपिनी रामललाभइतृ तथा बरबे रामायण सम्मिलित किया है। 'पन्धरान' नाम तो मठा एक ठिकाने का भी है परन्तु 'भी बेंडम्ब' प्रेश क सम्पाद ने एक अन्य का नाम 'पोड्यारामायण' रखा है और उस क नीतर पार्वती मइल कृष्णवीणावती तथा कल्पिमनिकरण पुस्तके भी पुमा दी हैं। यह विषय नामकरण है। क्या इन तीनों पुस्तके की भी गणना रामायण में ही होगी? या गोगाई जी की होलनी छ निर्वल सब वस्तुएँ रामायण ही कहलायेंगी?

वैदित रामेश्वर मइ ने २२ प्रथो में वे छन्दोबन्धी तथा छपे रामायण का नाम कइते बेकर 'रामलला' नाम की एक मरीन पुस्तक बनाई है।

पुनत हैं कि काशी-भाषी प्रचारिणी समा की छोट में ज्ञानचोद परिषद, मइल रामायण गीतारमाण राममुहावली तथा ज्ञानशीरिका व पांच अन्य का मिल हैं। एक सुप्रसिद्ध प्रकाशक में काशी अन्यसूची में गोस्तामोहन 'बारहमास' लिख मारा है।

आगे मननेइ प्रसर्क एक बकू व दिया गया है जिस स पाठके को यद्व ही विदित हो जायगी कि बीन २ महाप्राय बीन २ प्रथ गोरवामी जी इत होना मानते हैं और बीन २ प्रथ मही मानते।

उस के दखने से यह भी जात होगा कि पूर्वार्द्ध सूची क १२ प्रथो का गोगाई जी इत होना प्रायः सर्वत्रोय स्वीकार करत है किन्तु छप प्रथो क सम्पाद में अपिच्छ की यही सम्मति है कि वे सब गोगाई जी क बनाये नहीं है। सुसुधी मामक विभी अन्य कवि के समाय हुये हैं। निरुच्छरद बात भी ऐसी ही प्रतीत होती है। एक ता इस नाम क और भी कई कवि हुये हैं। हमरे, गोगाई जी के शिष्यपरम्परा के छोप ता फिर बात से १२ १२ छप मानते पाते हैं और अन्य महासुचो में इन के संघो की संख्या अप २२<sup>१</sup> तक पहुँचा दी है। पूर्वार्द्ध १२ प्रथो में से भी कई एक गोगाई जी इत होने में लोगों को सम्देह है। इस का हल पुनतके की समालोचना से विदित होगा।

२ राम चरितमानस बबिनाबली, गीतावली, विजयप्रिया, दारदरती, रामाज्ञा (रामयजुबावली), रामसखानदए बैराग्यसंहीरिनी ज्ञानबीमाल, पार्वतीमइल, कृष्णगीतावली, वरधैरामायण, मनमइ, (रामयनमई), मंअमोहन दनुमानबाबुक, राममहाका, छन्दोबन्धी, छपे रामायण कइगा रामायण शंका रामायण कइका गनाए कइसिया रामायण दनुमानबावलीमा, कल्पिमनिकरण रामलला, रामयण कावली, मइसावली, मगत रामायण गीतारमाण ज्ञानभार परिषद राममुहावली और काशीका। (मन्नावनी और मन्व रामायण सम्भरतः एक ही पुस्तक क हा नाम है।)



## द्वितीय परिच्छेद रामायण की सृष्टि

ऐसा ठहरे उक्त तथा बुद्धिमिच्छा कवि होने पर भी गोस्वामी जी ने पारसी भाषा के सुप्रसिद्ध कवि शोकावारी के समान ऐसा करना कि—“शावरी बिस्वार शुद्धतन्व शेरदाए पुरमनक । कस म गुप्त शर इस न् सीक ऐम बोत्रास ये ।”<sup>१</sup> अर्थात्—बहुत से कवियों ने मञ्जेश्वर कविचार्य की परम्परा चावी के समान किसी ने पदरचना नहीं की,<sup>२</sup> उचित नहीं समझा । बरत सरल-वित्त तथा नमस्त्वभाव होने के कारण इस प्रबन्ध के निमाद्य में अपनी अनोम्मता अनुभव कर इन्होंने स्वयं इससे कशा है कि —

करन चहई रघुपति गुन गाहा । लज्जमति मोर भरित अथगाहा ॥

सूक्त न एकहु अंग तपाऊ । मन अति रंक मनोरम राऊ ॥

परन्तु हमसोम कहते हैं कि समु प्रसाद सुमति हिम हुतधी के प्रभाव से ही क्यों न हो, जैसे विद्यावती कवि अपने निबुद्ध को अगाध कवितागान आरम्भ कर देते हैं, गोसाईं जी ने भी गुरद्वैत तथा देव अर्चन एवं श्री बन्दना कर एवम् सज्जन अक्षय्यम सकल जन श्री विभव पूर्वक प्राथना कर प्रबन्ध लिखना आरम्भ कर दिया है और इस श्री रचना में इन्होंने ऐसी विमलव्युत्पत्ता तथा विमलव्युत्पत्ता लिखलाई है कि बुद्धि पत्रित हो जाती है ।

कवि ने इसकी रचना विरोपयः बीपार्ई में की है । इसी से ओई-ओई बीपार्ई उमाशय भी कहते हैं । परन्तु दोहा सोरठा हरिगीतिका बीपैवा विमंगी तोयक तोमर (माकुर्ग) मुधमप्रवात अनुभुत शादक विद्विध वसंततिलक, नायत्वकपिष्ठी (प्रमायिका) आदि अनेक भाँति के लय इस के संल्लभ रसोर्धे में तथा इस के मापामाग में रखे जाते हैं । फिर प्रस्तार विचार से ठन सन्धो में भी जिह्वे सवसावारण बीपार्ई जानते हैं, पादाकुष्ठ, अतिनी प्रसूति कई एक भेद के लय हैं, तथा बोहे भी सङ्गुठ वशी के विचार से कई प्रकार के पाये जाते हैं ।

जैसे एक बीपार्ईको क बार से बधायि केवल एक मा अथिक दोहा या कवत सोरठ सवसा दोहा सोरठ दोनों देते गये हैं । कहीं-कहीं बीपार्ईको के अलग्गतर हरिगीतिका बीपैवा

१ शावरी = शा + व + री + या ।

२ मिश्रण रूप 'पैरिदाइर साष्ट के नीचे लिखे हुए पद्यों से भी यही स्थिति निकलती है — "Unattempted yet in prose or rhyme"

अर्थात् विमगी बेकर इन्होंने ने दोहा या सौराग रखा है। हरिवीतिअदि का प्रयोग प्रायः मुठ, भानन्बोस्तास, उमह, बिनय इत्यादि के समय देखा जाता है। निरसुन्देह मन में महानन्द तथा प्रबल उमह के भावेषा ही से कवि ने उन स्वानों में इन छन्दों का प्रयोग किया है। उन विराप र्पानों में उन, छन्दों के पाठ से पाठकों के मन में भी उमह तथा हर्ष आणत हो जाता है।

प्रयेक सोपान (काण्ड) के आदि में संस्कृत के श्लोक हैं। उत्तर काण्ड के अन्त में भी संस्कृत के दो श्लोक हैं। काण्डों के मध्य में भी कई एक स्थानों में संस्कृत में स्तुतियाँ दी गई हैं।

अपवि आपने इस ग्रन्थ की रचना विरोधतः चौपाई तथा दोहा आदि साधारण छन्दों में की है तथापि अपनी कविता-शक्ति से आपने दते ऐसा रोचक तथा मनोरञ्जक बना दिया है कि इसके पाठ से पढ़नेवाले का मन नहीं उबरता, बरन् इसके पदम ही की श्रद्धा बढ़ती जाती है।

एयेक काण्ड के अन्त में ये उसके पाठ का फल भी कहते गये हैं। काण्डों के मध्य में भी इन्होंने विराप विरोप कथाओं का फल प्रायः कह दिया है। परन्तु कथावर्णन में निःशेषोन्नत बातें कह कर आपने पाठकों का समय नष्ट नहीं किया है।

आपने अपने इस महाकाव्य को प्रथम ही के रूप में नहीं बरन मानसरोवर रूप में भी हम लोगों के रक्षिण्य में उपरिषत किया है।

पाठक हृद ! इस मनोरम मानसरोवर की क्षुधि की और दृष्टि कीजिये। पहले इस सरोवर के पायों को निहारिये कि ये क्या हैं और कसे हैं। 'मुठि मुन्दर सम्वाह पर निरषेक बुद्धि बिचारि। तेइ एहि पावन सुमम सर पाट मनोहरि चारि ॥' और इस सरोवर में सात लीङ्गियाँ हैं। 'सम प्रबन्ध सुमग सोनामा—ओ अय काण्ड के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह सरोवर सुपा समान की सोताराम अष्ट सतित से परिपूर्ण है इस में उपमा की तरंगें उठ रही हैं मुन्दर मुक्तिशों के मखि इस में वर्तमान हैं। चौपाई, दोहा, सौराग तथा अन्यान्य छन्द सपन पुरश्न और भीत १ क कर्मशों के समान शोभायमान हैं। एषम् अनुपम अर्थ मुन्दर भाव तथा सरल भाषा उन कर्मशों के पराग मकरन्द और सुगन्ध के सन्ध हैं। उनपर मुक्ति रूपी अमर गुबार कर रहे हैं। ज्ञान और विराग विचार के दो मराल इस सरोवर के दोनों किनारे विराज रहे हैं। कविता के निष २ गुण इसमें भाति २ के मुन्दर मीन हैं। अथ तप आदि अष्टवर इसमें कल्लोल कर रहे हैं। सम्य सम इसकी चारों ओर बाविका स्वरूप है जहां भद्राक्षी श्रुतुराज सर्वदा राज कर रहा है, और समा दया, मुन्दर तलवर और कृपा विठान इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। संवम नियम उसके पूल एषम् ज्ञान उसका फल और हरिपद में रति

१ रामायण परिच्छेदा परिशिष्टप्रकाश (अर्थात् महात्मा हरिहर प्रसाद हन डीडी) पृ० ४१ ४४ वा० की० एषम् 'भावमतत्तवाधिनो (किण्डिया की) पृ ५२-५४ में पात्रसङ्घ में सोताराम सरोग मखिपठारण, चकोप्या—पैराण, आरण—मीमाया, डिदिङ्ग्या—पाग, मुन्दर—म्बाव, म १—कान्या, उत्तर—माठाग-शाग, प मीदिपों इय पाठ व निम्नार्द्ध गर्द हैं।

होना ही ब्रह्म का रस है और अनेक व्यापारों में उस वादिका में शुद्ध-चित्त के स्वरा ब्रह्मरूप बर रहे हैं और "पुस्तक वादिका वाग वन सुख सुखिहंम विहास । मातो मुमग एनेह-अस सीध्या लोचन वाच ॥" एवम् "जे गारुडि यह बरित संसारे । तेई एहि ठाळ बट्टर रखवारे" और इसके अधिकारी हैं । बेकारे धामी काक और बलाक इस घर क निबट नहीं बाठ कर्कोकि सम्बुद्ध, भेक और सेवार के समान इसमें विपद-कथा नहीं है । मद्योह मस्तरादि रूप कामन इस लकाग को परे हुए हैं जिसमें कुलंगति आवि सर्प व्याघ्र, अद्भुत एव भूम रहे हैं, सांसारिक बन्धों पहाव हैं और उससे कुलक स्विकी मयावनी मरी प्रवाहित है । अतएव भया रहित सोम इस सरोवर के निबट नहीं वा सन्धे और जो भद्रावान पुत्र इस लकाग में मज्ज करता है वह अपने अन्तःकरण के मल को दूर कर स्वच्छनीय सुख प्राप्त करता है ।

सम्बुद्ध इस सरोवर का इय अद्भुत सोमा-सम्पन्न महा-मनोहर और अकल्पनीय आनन्द-प्रद है । इसकी अपूर्व कथा देखते मन मुग्ध हो जाता है और चित्त नहीं बाधता है कि इसे मिरन्तर निहारते ही रहें, इसके निर्माण कर्ता को स्वैर पन्थबाद बेटे ही रहें उनके पवित्र चरणों में सर्वथा नमस्कार करते ही रहें । परन्तु हाय ! उन चरणों का दर्शन अब किसी के माय में क्या बड़ा है ।

पाठकचन्द्र यह तो जान गये हैं कि सुन्दर सम्वाद इस सरोवर के बाठ हैं । परन्तु ये सम्वाद और हैं वह भी उन्हें क्या देना आवश्यक है । अन्वयवक्ति कथा—शिव और पार्वती सम्वाद मानवस्वय और महाशय सम्वाद तथा कागभुधु की और गरुडसम्वाद—गोसाईं की ने हमलोगों को सुनाई है । वे ही उन सम्वाद इस मानसरोवर रामायण के सुमग पावन बाठ बड़े भये हैं । वे तीनों सम्वाद तो तीन बाठ हुये । बीजे बाठ के सम्बन्ध में कोई गोसाईं की के सुख और गोसाईं की का सम्वाद, कोई गोरखामी की और उनके मन का सम्वाद एवम् कोई गोसाईं और भुधु का सम्वाद बताते हैं । यह अन्वितम कथन गोखामी की के रचय लेख स प्रतिपादित होता है "अहिहर्षे छोई सम्वाद बयानी । सुनहु सचल सम्जन सुख मायी ॥" अर्थात् बाधवस्वय और महाशय बाबा सम्वाद हम कहेंगे, आप सम्जन लोग सुनपूर्वक इसे सुनते आवें । यह तीन सम्वाद है इसे भी आपने रामायण में ब्रह्म दिया है ।

महात्मा हरिहरप्रसादजीने इन कथों का देना भी निर्दिष्ट किया है—शिवपार्वती का 'ज्ञानवाच'—'एतत् सीप महं मास त्रिभि बवा मानुष्यट वादि । बहनि भूया तिहुं बाल छोई, प्रम न सटे जोड उरि ॥" महाशय और महाशय का 'कर्मचारण वाच'—

"महाशय सुन जाहि बर, होत विधाता बाम । भूरि मेर सम जगक बम ताहि स्वात्त कमराम ॥" काग भुधु की और गरुड का 'उपासना वाच'—'शैवक दैव्य भावकितु भव न

१ यह प्यान देने योग्य बात है कि पाठकचन्द्र के स्वप्नर से मरुत के मन बर्हन तक कहीं इन लोगों के सम्वाद का संकेत नहीं पाया जाता और कि बाध के पूर्वाह्न में तथा धारण से उपासनावाच तक देखा जाता है । इससे बहुत से लोगों पर अनुमान है कि पहले स्वप्नर और भरत प्रम हो की रचना हुई थी पीछे सम्बुद्धी रामायण लिखन का विचार दाने से व सब कानें उनमें जोड़ ही गई ।

तरिये उरपाति । गोसाईं जी श्रीरमन का सम्बाध वैश्य पाट— अति बहि मोरि विगाइ खोर ॥ मुनि अघनरकडु नाकविजोरी ॥ यह पाटों का नाम करण हुआ ।

श्रीर 'मानस मयक' में मूक्ति काण्ड का पूरुषपाट कर्म काण्ड का दक्षिण पाट ज्ञान काण्ड का पश्चिम पाट, तथा शुद्ध उपासना काण्ड का उत्तर पाट । यह पाटों का दिशानिरूपण हुआ ।

परन्दु उपासना तो मूक्ति ही क अन्तगत है श्रीर उधी की एक अक्षरया है ।

सेवक तथा 'वैश्य मार्गों में भी तो कुछ इतना ही ने— मही हैं । सेवक (उपासक) तो सर्वदा दीन रह है । फिर अक्षयुषु भी तथा गास्वामी भी की भावनाओं में भी तो अन्तर नहीं देखा जाता । जब कर्मकाण्ड ज्ञानकाण्ड उपासना (मूक्ति) काण्ड हुआ तो टीकाकारों को योगकाण्ड भी दिखलाना चाहता था विरोधन जबकि गोसाईं जी ने योग की बातें भी अपने ग्रन्थ में अक्षरय कही हैं ।

कोई टीकाकार मरदाना, ज्ञानाना पशु तथा पक्षी पाट भी स्थिर कर इस तो अस्वी पाठ होती, यथा ज्ञानकाण्ड मरदाना पाठ मकितकाण्ड ज्ञानाना पाठ अथवा साधारण पाठ उपदेश मरदानापाठ शुभ रहस्य (गूढतन्त्र जो परदे में होना कहा जाता है) ज्ञानानापाठ पशु सरीसृपें लोगों को बर्हातहा फलकार पशुपाट और पक्षीपाट तो प्रत्यक्ष ही हैं ।

पाटों का नामादि तो टीकाकारों की दृष्टा से विदित हा गये, अथ सोपानों की बनावट भी देख लीजिये । गोसाईं जीने कहा है यह प्रथम मुभय सोपाना । सभी कोलहर मु० मुगडक साख ने छीदियों की बनावट अपन पाठकों को दिखलाई है श्रीर लिखा है कि छीदियां छार से भीष की छोर छोटी हाती जाती हैं अतएव बास सबस बड़ा अयोप्या उच्छ छटा अरगग उमठे छोटा, और किच्छिन्धा काण्ड सबस छोटा फिर सुन्दर उच्छ बड़ा, संका सुन्दर स तथा उत्तर संका से बड़ा है । अत्र प्रत्येक पाट की छीदियों की अर हृष्टि कीजिये—

एक पाट की छीदियां—उमठ छीड़ी, बामकाण्ड क पूरुषाट की		१७३	बापाइयो
दुमरी छीड़ी, अयोप्या	,	१२५	
तीगरी छीड़ी, आरस्य	,	२५	
उमठे गामन क दुमरे—पदमी छीड़ी उत्तरकाण्ड पाट की छीदियां		७०	
दुमरी छीड़ी	मका	९०	
तीगरी छीड़ी	सुन्दर	३०	,
तीगरे पाट की छीदियां—पदनी छीड़ी बामकाण्ड		१०५	
दुमरी छीड़ी	अयोप्या	१००	
तीगरी छीड़ी	आरस्य	१५	”
दुमठे गामन क चौदे—दुमरी छीड़ी उत्तर की छीड़ी		३५	,

आर बारो ओर श्री बीपी सीपी बनाने में किष्किन्धा काण्ड को विमलस्य कर के आपन वच २ बीपावनां बारो ओर बिठा दी हैं ।

परन्तु इस कांड में तो सात सीढ़ियों के बगले प्रत्येक ओर बार ही बार सीढ़ियों हो गए । क्यक सर्वत्र सर्वांगी नहीं होता । सीप कांठ कर उसे सब दौर सर्वांगी दिखलाने की केटा करने से उचड़ी ऐसी ही दुर्वसा हो जाती है । सरोवर में सीढ़ियाँ भी होती हैं इससे योश्वार्थी ने साधारण रीति से बह दिना सत प्रवाच सुमध सोचामा । बहू तक क्यक की कथा सोहावनी रही जब उसकी लम्बाई चौड़ाई, सुरभी जूना सब इत्यादि की विवेचना होने लगी उमी हम उचधी मिथी खराब हो गई ।

आप का यह कथन है कि बाह कांड का सीता स्वयम्बर तथा अयोध्या काण्ड देखने से मान होता है कि पहले योश्वामी श्री श्री इच्छा समस्त रामायण लिखने की नहीं थी । किष्की का बनावा हस्तिमनी मङ्गल बख कर इन्हें सीतास्वयम्बर लिखने की प्रमिच्छापा हुई और उसी का अनुकरण करते इन्होंने रामायण तथा बाणकी जी का नाटिका में परस्पर दर्शन करामा है एवम् शिशुगतादि के समान अनुपमग द्वारा पुराणों का पर्व-वर्णन करामा है । इसी प्रकार आपने सातो काण्डों के रचे जाने का कारण कहा है ।

परन्तु कोई कहत हैं कि संवत् १६३१ वैश शुक्ल सप्तमी को इन्होंने संस्कृत भाषा में रामायण लिखने के विचार से बालकाण्ड के आदि के अन्तिम श्लोक को छोड़ कर बाकी ५ श्लोकों की रचना की । उषी तिथि की रात्रि में आपने स्वप्न में देखा कि एक बृहत् प्राण्य उम श्लोकों को पुरा ले गया । दूसरे दिन इनके अन्तर्गत रह जाने से अग्रमी की रात्रि को फिर स्वप्न में दर्शन से उच प्राण्य न इन्हें भाषा में 'रामचरित मानस' रचने की सम्मति दी और शिवरूप से दर्शन किया । इसके प्रमाण में यह दोहा कहा जाता है—“सम्पेक्षुं चांशु मोहि पर औ हरि गीरि पयाठ । तो फुर होउ को कइहुं सव भाषा मलित प्रमाउ ॥” और तब पूर्णेश्वर श्लोकों के नीचे “जानापुराण निगमायम सम्मर्त बत्” बाह श्लोक की रचना कर से भाषा अनुवच्य करने लगे । यह भी कहा जाता है कि “सोनों का नामा पुराण बासे श्लोक के आचार पर यह कहना कि इन्होंने अन्त रामायणों और पुराणों के छह से रामायण की रचना की है महाभूल है, क्योंकि कोई भी अज्ञ पुत्र्य अपने एक प्रवाह में दो प्रकार की बानें नहीं कर सक्ता और यदि इन्होंने इसको अन्त प्रमाणों से संग्रह किया तो इसी मानस में इन्होंने ‘शंभु को-ह मद चरित सुहावा और रवि महेश मित्र मानस राका’ इत्यादि इन चौपाइयों को क्यों लिखा ? इन प्रमायों से यह निर्णय सिद्ध है कि इन्होंने संग्रह द्वारा नहीं बनाया किन्तु शिवरचित मानस को भाषावद किया है ॥”

अब एक प्रवाह में दो प्रकार की बातें कोई आत पुरण नहीं करता और गेताई जी ने जानापुराणों की बानें इसमें समावेक्षित नहीं की तो आपने यह श्लोक ही लिख कर एक प्रवाह में दो बानें क्यों की ? और उचके सिंगने की क्या आवश्यकता थी ? सब यह है कि योश्वार्थी जी ने दोनों बातें ठीक ही लिखी हैं । इन्होंने शिवरचित मानस को भाषा-वद किया है और अनुपुंक्ष स्थानों पर अन्त पुराणों और शारतों की बातें भी वे यथा योग्य समावेक्षित

करते गये हैं। इन्होंने ऐसा नहीं करने की कही शपथ नहीं खाई है वरन् उस श्लोक का रामायण में रहना हम बात का सिद्ध करता है कि हम की ऐसा करने की शक्ति तथा प्रतीक्षा थी और इन्होंने ऐसा किया है।

और अपने शत्रुओं से यदि बहनबाल का यह आशय हो कि क्यार सबमुख स्वप्न में हरगौरी हमारा प्रसन्न हुए हैं।" तो एक तो टीकाकारों ने इसका यह भाव नहीं दित्तसाया है दूसरे स्वप्न में तो बन्धु शिवजी ने दर्शन दिया था गौरी का दर्शन हुआ ही नहीं? उनकी प्रसन्नता का भरोसा क्यों?

और 'नामापुराण' वाला अन्तिम श्लोक छोड़कर ८वीं कीम ७ श्लोक रूप मये से? रामायण के सप्त संस्करणों में तो यह श्लोक मिलाकर ७ श्लोक बन जाते हैं। कोई-कोई रामायण का स्वप्न प्रकृत छोड़कर रामायण रूपने का आदेश करना पठात है। स्वप्न में राम या शिवजी की आगाई हो या नहीं बिना ईश्वर की प्रेरणा तथा कृपा के क्या किसी से ऐसा उत्तम कार्य सम्भव होना कभी सम्भव है?

## चतुर्थ परिच्छेद

### रामायण का रचनाकाल

गिरधर जिस समय मोसाई जी ने रामायण की रचना के लिए अपनी प्रभावशालिनी लेखनी उठाई होगी बागेवरी अपने कमकासन को परिव्राज्य कर इनके सम्मुख स्थ विराट विद्यालय की समुज्ज्वल कामरु पर सूर्य दृश्य करने लगी होगी कविताकामिनी अपूर्ण समूह्य अलंकारों से अलंकृत किये जाने की उमर में अङ्ग-अङ्ग पृथ्वी नहीं समाती होती लेखनी भविष्य में अक्षय कीर्ति काम की आशा से इनके हाथ को बारम्बार सागन्द मृती होगी एवम् इनकी आह्वानवर्तिनी हो हुआसपूर्वक मञ्जु २, सुर-पुर शय्य करती इनके इच्छानुसार पत्रों के उद्यान में विचारण करने लगी होगी, स्वर्गीय कवीवरों की आशा सागन्द से उद्वृत्त लयी होगी। साहित्यसरोवर एक अद्भुत अम्बुज सयह विकसित होने की आशा से तरङ्गित होने लगा होया। सुरभन्ध भी इस सुभ्रमण में सुमन की इष्टि करने में नहीं चूके होंगे। क्या ! हिन्दी साहित्य, हिन्दू समाज तथा हिन्दू धर्म के लिये वह कैसा सौमन्य का दिन था जब इस अद्वितीय महाकाव्य की रचना आरम्भ हुई।

मोसाई जी ने अपने इस प्रौढ़ ग्रन्थ की रचना प्रौढावस्था ही में की है। परन्तु नीचे लिखे हुने दोहों को समूह करके 'काशीनागरीप्रचारिणी समा' द्वारा प्रकाशित रामायण के सम्पादकों से लिखा है कि 'इस (रामायण) को कवि ने छोटी ही अवस्था में बनाया। —

“संत सरल यित जगत हित, जानि सुमात्र मनेह ।

याक्षयिनय मुनि करि कृपा, राम चरन रति वेहु ॥

कवि कोविद रघुवर परित, मानम मञ्जु मराल ।

पात पिनय मुनि मुग्धि क्षमि, मो पर होहु कृपाल ॥”

इस नहीं समझते कि 'रामचरितमानस' की समाप्तोक्त्या के आश्रि ही में ऐसा लिख कर भी कि 'इस अद्भुत ग्रन्थ की मोसाई जी ने सम्बत् १९३१ वैश शुक्ल २ (रामनवमी) मंगलवार को आरम्भ किया' सम्पादक महाशयों से गुंथाई जी के छोटी ही अवस्था में इस ग्रन्थ के रचने का अनुमान करने का बँधे साहस किया। जो हो मोसाई जी के कृतानुसार इस ग्रन्थ का प्रणयन वैश रामनवमी मंगलवार सवत् १९३१ (१९०४ ई.) में हुआ जब कि मोसाई जी की अवस्था ४० वर्ष से कम नहीं थी। 'वाचस्पिनय' कैवल मन्त्रा से कहा गया है और उक्त नहीं। कोई वाचस्पि नेमा प्राद ग्रन्थ कदापि नहीं लिख सकता।

प्रोफेसर जकोबी (Jacobi) का—'हिन्दू त्रिभि गणनायक' के मध्यस्थ होने पर विषयन साहच न रामायण की रचना त्रिभि की शुद्धता की स्वयम् खों की की और उधे प्रोफेसर साहच से भी खँबनाया था । एक गणना से मयमी त्रिभि रुप को होनी की और एक गणना से रविचार को बहु त्रिभि पवती की । उक्त प्रोफेसर न ठहें लिख नेत्रा था हि मय सिद्धान्तों के अनुसार बनारस (अवध) में ११ मान १४७४ ई० सुपचार का बुद्ध गिन था मयमी त्रिभि समस्त दुई की अन्वय उमी दिन मयमी मुनि की परन्तु त्रिभि हिम त्रिभि कीवती हो उमी दिन शुभ कार्य किया जाता है । इससे यह अनुमान हो सकता है कि तुलसीदास ने मगल को अचना प्रन्थ बनाना आरम्भ किया । अन्वय उन्पु हू चौपाई खेरक नहीं है ।" और प० सुपाकर भी ने लिखा था कि 'तुलसीदास अयोध्या में स्मार्त वैष्णव थे जो महादेव क भी बड़े मयन होत हैं और इससे अनुमान करत है कि उन्हेनि रामनरमी का मगलवार का होना शक्यता के अनुसार रहा ।"

उपनिषत्प्रमाणों में त्रिभि दिन का त्रिभि समस्त होना हो उमी दिन बहु त्रिभि मानी जाती हो, परन्तु स्मार्त वैष्णवों का को खीन करे सर्वसाधारण भी त्रिभि दिन को त्रिभि विदेव मोयनी है उमी दिन बहु त्रिभि मानत हैं ।

कवि क कथनानुसार इस प्राय की रचना अथथपुरी में आरम्भ हुई । परन्तु इसकी समाप्ति कहा हुए मय कियन में कवि न बुद्ध नहीं कहा है । लोग अनुमान करत हैं कि आरग्यदायक तक तो अयोध्या में लिखा गया और उप बाद काशी में । इस अनुमान का कारण यह है कि गोमाई जी ने आरग्यदायक के बाद विरचित्या ही में काशी क विदेव में कहा है :—

“मुक्ति मन्म सहि जानि, ज्ञान पानि अथहानिकर ।

जहां पस संनु मयानि, सो कामी सेह्य कस म ॥”

१ No es on Tulsi Das—Indian Antiquar 1893 P 5-6

२ कविन ज्ञाना प्रसाद तथा अन्वय करे एक महान्थ दास्यदायक ही तक अरथ में लिखा जाता यनारो है । बाद भोह मय कावरी को गंगापुर में जिया जाता मारने है ।



## पञ्चम परिच्छेद

### रामायण का मुलाधार

यत् तीसरे परिच्छेद के अन्त में इस प्रश्न का मुलाधार भी कुछ अन्तक बीच पकी है। वही यहाँ पर स्पष्ट रूप से दिखला दिया जाता है। रामायण में गोरक्षजी भी ने आनन्दकन्द भीरामकन्द के गुण पर खीटा तथा सुधीरि का परम भक्तिभाव से कीर्तन किया है और इसमें वही भी कथा समेत बरण भी गई है, क्योंकि रामकथा एक अपूर्व वस्तु है जैसा कि कवि ने स्वयम् कहा है—

“युव विभ्राम सकल जन रंजनि । रामकथा कस्तिकरुप विमंजनि ।  
रामकथा कस्ति कामद गाई । सुजन सजीवनि मूरि सुहाई ॥  
सोई यमुधा तल सुधा तरंगिनी । मय रंजनि-भ्रम-भङ्ग-सुखंगिनी ॥”

और—

“रामपरित चिन्तामनि चारु । संत सुमति त्रिय सुमग सिंगारु ॥” श्यादि ।

यह कथा यद्यपि इनके पूर्ववर्ती अनेक कवियों के ग्रन्थों में बर्णित हुई है परन्तु इन्होंने निज ग्रन्थ की रचना में किसी एक ग्रन्थ को सर्वथा आधारभूत नहीं माना है। यह बात इन्होंने स्वयम् ही कही है :—

‘नाता पुराण्य निगमागम सम्मत् यत्रामाग्यो निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।

स्यान्तःसुखाय सुप्तसी रघुनाथगाथाभाषानिकन्धमतिमञ्जुकुलमाठनोति ॥”

पुन :—

यत्पूर्वं प्रसुणा कृत् सुकथिता भीशम्मुना दुर्गमं  
भीमश्रामपदाञ्ज भक्तिमनिर्षा प्राप्नोतु रामायणम् ।  
नत्या तद्रघुनाथनामनिरर्थं स्यान्तस्तमः शान्तये  
भाषापचमिर्दं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ॥”

ती भी इनका विशेषण अप्पारम् रामायण से किया गया है और इन्होंने वास्मीकीय रामायण को भी प्रमाण आधार रखा है। इनके विचार इन्होंने—रघुवरा इतुमपाठक, भीमश्रमागवत भीमश्रमापवत पीता प्रणवरापव प्रकृति ग्रन्थों से भी क्या एहि उदाहरता सी है। और मन्त्रि भी प्रमाणता पर एहि एत कर इन्होंने कथा प्रकृति निजम्भानुगार किया है जो निरुत्तरह अर्थ है। इन्हींसे इस ग्रन्थ के निज निज घोषणों का क्या वर्तन

जहाँ-तहाँ बास्मीचीय तथा अप्पात्म रामायण से सर्वाङ्ग नहीं मिलता । अतएव इन्हें न किसी ग्रन्थ का अनुवादक ही कह सकते और न किसी का अनुगामी ही बता सकते । बरन ये इतक स्वतंत्र रचिद्वारता कहे जायेंगे ।

इस ग्रन्थ के किस-किस कथा प्रकरण में—बास्मीचीय तथा अप्पात्म रामायण बणित कथाओं से प्रमेद है, यह बात बास्मीची रामायण का परिच्छेद देखने से ज्ञात होगी ।

जो लोग अन्य शास्त्रादि की बातों से इसमें समावेशित होने की बात को अप्रमाणिक और भूल बताते हैं उनके कथन का उत्तर अभी दिना जा चुका है ।

## पष्ठ परिच्छेद

### रामायण का वास्तविक नाम

वर्षों यह अमूल्य ग्रन्थ दुस्तुहीकृत 'रामायण' 'रामायण' तथा श्रीपाई रामायण के नाम से प्रसिद्ध है परन्तु इसका यथार्थ नाम 'रामचरित मानस' है। गोस्वामी जी ने स्वयम् ही कहा है —

“रामचरित मानस यह नामा । सुनत क्वचन पाश्य विज्ञाना ॥  
रामचरित मानस मुनि भाषन । विरचेत् संमु मुहायन पावन ॥  
स्त्रियिष दोष दुष वारिद दावन । कलिकुचात् कुशिकसुप्तसावन ॥  
रषि महेश निज मानस राखा । पाइ सुसमठ सिपासन मापा ॥  
ताते 'रामचरितमानस' धर । धरेव नाम हिय हेरि हरप हर ॥”

परन्तु यह पूछा जा सकता है कि अब भी महेश जी ने इस कथा को रचकर इसे अपने मानस में रखा और सुषणसर पाकर यह कथा उन्होंने भी पारंगती भी से कही तब गोसाईं जी को इसकी जानकारी कैसे हुई । इसका उत्तर आगे श्री श्रीपादों में वर्णमान है :—

“शंभु कोन्ह यह चरित सोहाया । बहुरि कृपा करि बमहि' सुनाया ॥  
सोई शिव काग भुसुंकिहि दीन्हा । रामप्रगति अधिकारी बीन्हा ॥  
तहि सन आगबलिक मुनि पाया । तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गाया ॥  
मे पुनि निज गुरु मन मुनि, कथा सो सुकर प्त ।  
समुक्ति नहिं तस यासपन, तय अति रहव अथत ॥  
तदपि कही गुर धारहि वारा । समुक्ति परी कछु मति अनुमारा ॥”

गोसाईं जी ने उसी कथा को अपने मन के प्रवेश क हेतु माताबद करके अपने ग्रन्थ का नाम 'रामचरित मानस' रखा है । अपने मन के प्रवेश के ही हेतु क्यों ? संसार के परम कल्याण के निचे इनकी चरितारथा हुई हमने अणुमात्र भी छोड़े नहीं ।

गोघाई जी का रामायण की कथा में पुराण तथा अन्य ग्रन्थ बखित कथाओं से जो कहीं भेद पाया जाता है उसका समाधान गोघाई जी ने इन चौपाइयों में स्पष्ट कर दिया है —

“नाना भांगि राम अपतारा । रामायण सतकोटि अपारा ॥

कल्पमद हरि भरि सहाए । भांगि अनक मुनीमन्ह गाए ॥

करिय न समय अस उर भानी । सुनिय कथा सादर रगिमानी ॥”

हम भी पाठकों से यही निवेदन करते हैं कि आप लोग इस रामायण बखित कथा का सारंगी वाद सुनिये कि कवि ने प्रत्येक काव्य में क्या-क्या कहा है ।

## सप्तम परिच्छद रामायण का विषय

वाल्मीक्याय

पहले सात रत्नों में कृष्ण ने बायीं दिशा में महावीर, शंकर, गुरु कबीरधर (वाल्मीकि जी) कबीरधर, सीता तथा रामचन्द्र की बन्दना करके प्रथम के आधार एक रचना का आरम्भ किया है। फिर पाँच ओरों में श्रीगणेश विष्णुगणेश, कमलापति तथा शिवजी की बन्दना की गई है। तदनन्तर वेदों गुरुपद का कृष्णार्जुन नरकपहरि। महामोह तमपुत्र का सुबन्धन रवि कर गिहर ॥” यह श्लोक दिया हुआ है। पञ्चाभा प्रसाद पं रामेश्वर भट्ट महाराम हरिहर प्रसाद जी महाराम सन्तसिंह प्रभृति टीकाकारों ने तथा प्रोफेसर साहब ने इस ओरों के द्वारा गुरु की बन्दना बताई है और सर्वसाधारण भी ऐसा ही समझते हैं। मानस मर्कट की टीका में इसके द्वारा गुरु की सूर्यवत् बन्दना और इन पाँच ओरों में प्यरेव की बन्दना लिखी है। मानस मर्कट के रचयिता पण्डित शिवलाल पाण्डे ने ‘मानस अमिप्राय शीतल’ में यह बोधा दिया है—

प्रथम राम हे विष्णुगुरु, तीसरे कमलाकान्त ।

चन्द्र मुरीय ठमरा युव, गुरु रवि पद नस अन्त ॥

इसके आधार पर गणेश ओरों के द्वारा सूर्य की बन्दना मानी जाती है। सूर्यवत् गुरु की बन्दना में तो उक्तता हुई नहीं परन्तु इसके गुरु की बन्दना सर्वथा उदा देना योग्य नहीं। महाराम रामचरण दास जी ने भी इसमें गुरु की बन्दना मानी है और लिखा भी है कि हरि (सूर्य) अपनी किरणों से रात्रि को दूर करता है और गुरु अपने बन्धन किरणों से शत्रु का अज्ञानतम नाश करता है।

दूसरे ओरों में भी कोई २ सूर्य की बन्दना बताते हैं कि बाएँ मूक तथा पंगु रहता है सूर्य चान्द्र दिनों से उदाइ दोनों दीव दूर करते हैं। प्रोफेसर साहब ने इसके द्वारा सरस्वती की बन्दना बताई है।

द्वि तन्मम अमन्मन, देव दामद इत्यादि की बन्दना कई पृष्ठों में होती जाती पाई है। इस बन्दना में बुरातमाओं पर व्यंग भी होता गया है। इस कारण की बन्दना बनी ही विशद तथा अगद्विगत है। इनकी लम्बी कीही बन्दना अन्य किन्हीं ग्रन्थ में नहीं देखी जाती

इसके अनन्तर प्रवरचना का कारण, नाम माहात्म्य प्रवरचना का समय बढ़ कर कवि ने रामायण की भावसरोवर की मूल दृष्टा दिखलाई है जिसका कारण पूर्व ही हो चुका है। फिर रामायण की कथा की मानों सभी सी ही गई है और उसमें यह बात भी कही गई है कि रामायण में कल्पद्रुमों की बहार विद्यमान है —

“हिम हिमर्षल सुना-सिय-भ्याहू। मिसिर सुखद प्रनुजन्म-उत्थाहू ॥  
वरनत रामधियाह समाजू। मो सुखगस्तमय रितुराजू ॥  
मीपम हुमह राम धन गमनू। पयकया पट आतप यरनू ॥  
पया घोर निमाधर रारी। सुरकुल सासि सुर्मगलकारी ॥  
रामगज मुख विनय यद्दाह। विमद सुखद सोड मरद मुहाह ॥”

इसके बाद भीमाश्रमकर्म और भद्राक्ष का सम्बाध आरम्भ होता है और जो रामकथा महादेव जी ने पापनी जी से कही थी, वही कथा माहात्म्य युधि भद्राक्ष जी को सुनात है।

रामकथा की प्रियविशेष में स्थित-चित्त देव्य कर सती को एका प्रथम मोह उत्पन्न हुआ था कि महादेव जी की बात पर भी विरवास नहीं करके नीता जी का रूप धारण कर के रामकथा की परीक्षा करने गई थी।

रामकथा का प्रभाव 'कण्ठर बढ़ नेनी खटाकिन हुई कि परीजा का दर्याप हास महादेव जी से काने का उठे शाहन नहीं हुआ। परन्तु महादेव जी प्यान द्वारा गर हाथ बाण गये और उगहोन मन ही मन यह प्रतिज्ञा की— यह तम सनी भेंट कर नाही' सनी का इस प्रतिज्ञा का ज्ञान रूप महेश मति भयति उद्गारे' इस गमन गिरा से विन्नि हो गया। रामायण में जो बात योगार्थी जी का किसी क पुरा से कहलवाना करदा नहीं लगा है या जिसके कहलवाने को उठे मुविधा नहीं हुई है, वह बात आचार्यबायी द्वारा कहलवाई गई है और मारको में मेरव्य की आज में किया करत है। इसक कई एक उदाहरण रामायण में बतमान है।

महादेव जी सती का बहुत प्यार करते थे। इसी से उन के सती हाकर पनि की बाजी में प्रियताग नहीं करन कर परीजा की बात क्षिपान पर भी उठे प्रकट रूप से यह बदन का

१. प्रथम तो रामकथा उठे पहचान गये, फिर सौम्यी समय उठोने वाले में खुदिक मया, विष्णु, महेशादि बखित रामकथा को देगा। सब का मिश्र-मिश्र रूप से सुन करे परन्तु राम, सीता तथा लक्ष्मण का एक ही अतिबर्णित रूप देव्य में आया। इसमें कवि ने निरपमूर्ह सभमय जी को भी अन्य रचनाओं से भण्ट दिखलाया है। इसका आचार शिष्य पुराण तथा अथर्ववेद के प रत्नाक मनीष होते हैं — 'वीमिको लामगुरथैव गृधिर्येदारकाच। तमेव उतकरेण मन्त्रिण्ये जगद्विजम् ॥ बज्रभूतस्त्रयमेवामि क्विन्ति एवं च प्रजावति । तिरस्त्रेण संहता शिष्यस्त्रय पातक । मम रूपेण संवप्यै एव लोक रिणविमैवेत् ॥' — शिष्यपुराण।

बहुपासावमेवार्थं पूजाभीतरकोः पूषन् । बागमापोऽपि सीतेषु जनकरय गृह तदा । जनकपते तथा साहै सव मगारपावदम् । — अथर्ववेद रामायण।

झाड़स नहीं हुआ कि 'दिन तुम्हें परिव्राज किया' और मन ही मन परित्याग करने पर भी खेद ही रहा। सती के सच्ची बात कह बने पर मे उन्हें इस तरह त्याग करते ना नहीं, वह बात झूठा पूर्वक नहीं कही अब सफ़री। और सती के मोह के प्राणभ्य ही के कारण रामचन्द्र ने उन्हें प्रसन्न प्रभाव भी दिखलाया परन्तु इस पर भी क्लेशित उन्हें पूर्णतया प्रसोध नहीं हुआ और इसीसे दूसरे अंश में गी मन्त्र ही भाव से क्यों न हो उन्होंने सती सम्बन्ध में शिवजी से फिर प्रश्न उठाया।

शिवजी की प्रतिज्ञा के कुछ कारा पीछे अपने पिता के घर बहुराजा में शिवजी का भाग न देख आर उनका अपमान समझ सती ने योगाम्नि में शरीर त्याग कर हिमाचल के घर पुनः पार्वती नाम से जन्म ग्रहण किया और नारद के उपदेश से तप करके विवाह द्वारा अपने पूव पति महादेव की को फिर प्राप्त हुई। इसी के मध्य में देवता के विनय से कन्वर्प महादेव की का अधिपत प्याम मन्त्र करने गया है जिसमें कि वे पार्वती से विवाह कर सकें और परहित-साधन में शिवजी की योगाम्नि में मरम हुआ है।

कवि ने महादेव की की विभिन्न बरात का अन्त्या चित्र लीना है। वह बरात देखकर बालकहन्व तो पहले ही प्राण लेकर पलायमान हुए थे परिकल्प के समय शिवा भी विफट भेयकारी महादेव को देख जान लेकर भागी और मैना पार्वती को गोद में लेकर नामा प्रकार से विज्ञाप कलाप करने लगी।

मैना का विज्ञाप श्री-स्वभाव-सुलभ था। वह कितनी ही रङ्ग विष्ट क्यों न हो बी आगिर की ही। अपनी सुन्दर सुन्दर सुता का ऐसा बर देख उनका दुःखित होना स्वामाधिक था विशेषतः अब कि उन्होंने पहले ही अपने पति से कह दिया था कि 'मुनि की बातें मेरी समझ में नहीं आई अथवा पर बर कुल देख कर कन्या का विवाह कीजिये जिसमें आगे सर में दाह न हो।' और उन्होंने पार्वती को तप करने की सम्मति हिमाचल के यह करने पर ही की थी कि सुन्दर सर पुननिधि इयकेन ॥

अंगरेजी भाषा के आदि कवि चौसर (Chaucer)<sup>१</sup> के समकालीन मैक्सि कवि विद्यापति ने भी अिन्हें बहुत से लोग शिवमङ्ग मानते हैं, एक पद में मैना से ऐना ही विज्ञाप कराया है :—

“इम नहिं ध्यासु रह्य यहि अंगन, जो सुदु होयन जमाइ गे माई । एकत यहरि मन्ना पिहि थिबाता दोमरे पिआकर घाप ॥ तीमरे यहरि मन्ना नारद घामन, जे पुद्ग ध्यानल जमाइ गे माई ॥ पहिल्लुक बाजन ठामरु तोरय, दोसरे तोरय रन्हमाझा । परद हाकि परिआत कैलाइय, पिआ लं जाइय पराइ गे माइ ॥ घोसी कोटा-पतरा-पोषी ग्हो मब लेवन्हि छिनाय । जो किछु यजता नारद घामन, दाई ये पिमिआइय गे माइ ॥”

गोसाई जी न परिछन हन नहीं दिया है बिद्यापति न चौका पर बैंग कर महारेव जी का घर ख रह दिसलाया है—

“वैमल महावम चौका चढ़ि । जटा छिरिआओल माइव मरि ॥ विधि करु विधि करु विधि करु विधि करु । विधि न करे से हर हो हठ घर ॥ विधिण करेत हर हो घुमि स्वंसु । संमरि खमल फनि श्री गौरी हंसु ॥”

बिहार क प्रामोण नीतों में भी ऐसा ही दया जाता है —

हिमिर हिमिर इमरु याजे सियजी मङ्गले अमवार ।  
 कइयां क ए दइया उम्मत आईल, आइल मजलो न जाइ ।  
 परिछ यहर मङ्गली मासु मदागिनी सग्य छोइला पुसुकार ।  
 पसतर सजि क पराइल मदागिनी ना मल एह क समहार ॥  
 बिद्याल में उइय पिआलें में बूझ्य धिया लें में बिछायें पतार ।  
 अइमन तपमिआ फ पिआ ना में दयों पर गौरा रहि हें कुआर ॥  
 कलसा फोरय मांढो तोरय चउमुख्य द्यहें गुताइ ॥

इससे विदित होता है कि शिवपुराण कुमार संभव आदि ग्रंथों में महारेव जी का विवाह सुन्दर रीति से बर्णन होने पर भी गोसाई जी के बहुत कास पूरा है महारेव जी के विवाह-सम्बन्ध में ऐसा बर्णन होता जाता है और गोसाई जी ने उन्हीं का अनुसरण किया है । जा हो, पाठकों का जो ध्यान महारेव जी का विवाह विवरण पाठ में मिलता है वह रामचन्द्र के विवाह-वचन में नहीं मिलता ।

अब देखिये उपर ली महादेव जी की वरात कथ प्रकार से आई और इपर सब पहाड़, घागर, बन, नदी, तासाव इत्यादि सुन्दररूप पारण कर दिमाबल के पर नेवठा पुराने आयै । यहां निरबय गोसाई जी का अनिमय पर्वतादि के अपिष्ठाता देवतों ही से है, नदी तो नदी, पहाड़ क्या शरीर पारण करेंगे !<sup>१</sup>

१ सद्युक्त दार्शनिकों क विचार में प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ के अपिष्ठाता देवता हैं इसीसे निर्जीव पदार्थों का भी इस प्रकार से वर्णन किया जाता है जैसे उनमें सजीव वदार्थों के गुण पतमान हों । वेदान्त के अनुसार यह संसार जो कर्म परमात्मा का प्रकाश स्वरूप है निरवय सजीव है परन्तु अज्ञान्य प्राणी क गुणों स सम्बन्ध है । तमम् के आभिरय से जिनसे पदार्थ निर्जीव तथा अज्ञान रहित बोध होते हैं । परन्तु सभी बर्तन यह है कि उन में अज्ञानता वा अवयव अभाव नहीं होता । किन्तु यह गुण उनमें अद्वय तथा गुण रूप से पतमान रहता है । युनानी भाषा में Nymphs, Fairies, Naird, Elves Musas आदि भिन्न भिन्न किण्व के अपिष्ठाता देवता माने जाते हैं । पाठक वृन्द इस अपिष्ठाती देवता की बात को घागर पामते (August Compt) के दार्शनिक सिद्धान्त (Metaphysical Theory) से मिलाव करेते । घागर २० ती० बोम ने भी एतन्वा सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक वस्तु परमाणु में भी अज्ञान्य वर्तमान है ।



साहम नहीं हुआ कि मने उन्हें परित्याग किया और मन ही मन परित्याग करने पर भी खेद ही रहा। छती के छप्पी बाठ बड़े पर ने उन्हें इस तरह त्याग करते या नहीं यह बात बहुत पूरक नहीं बड़ी अशुभ। और छती के मोह के प्राण्य ही के कारण रामचन्द्र ने उन्हें प्रगल्भ प्रभाव भी दिकरवा परन्तु उस पर भी कदाचित् उन्हें पूर्णतया प्रसन्न नहीं हुआ और इसीसे दूसरे जन्म में भी मग्न ही भाव से क्यों न हो उन्होंने छती सम्बन्ध में शिवजी से फिर प्रश्न उठाया।

शिवजी की प्रतिज्ञा के कुछ काल पीछे अपने पिता के घर बङ्गराजा में शिवजी का माग न देख और उनका अपमान समझ छती ने भोगान्ति में शरीर त्याग कर हिमाचल के घर पुनः पार्वती नाम से जन्म धारण किया और नारद के उपदेश से तप करके विवाह द्वारा अपने पूर्व पति महादेव जी को फिर प्राप्त हुई। इसी के मध्य में देवतों के दिनन से कन्दर्प महादेव जी का अधिष्ठित ध्यान मग्न करने गया है जिसमें कि वे पार्वती से विवाह कर सकें और परहित-साधन में शिवजी को भोगान्ति में मग्न हुआ है।

कवि ने महादेव जी की विचित्र बरात का अत्यन्त चित्र बर्णना है। यह बरात देखकर बालकदण्ड तो पहले ही प्राण छोड़कर पलायमान हुए थे परिक्रम के समक क्षिया भी विद्वत् भेषवारी महादेव को देख जान लेकर मागी और मैना पार्वती को गोद में लेकर जाना प्रकार से विहाय क्लाप करने लगीं।

मैना का विहाय भी-स्वभाव-सुकुम था। यह कितनी ही रङ्ग भित्त क्यों न हो थी आशिर जी ही। अपनी सुन्दर सुन्दर सुता का ऐसा घर देख उनका दुःखित होना स्वाभाविक था, विशेषतः अब कि उन्होंने पहले ही अपने पति से कह दिया था कि 'मुझि की बार्ते मेरी समझ में नहीं आई अन्ना घर, घर कुल देख कर कन्या का विवाह कीजिये जिसमें आगे जर में दाह न हो।' और उन्होंने पार्वती को तप करने की सम्मति हिमाचल के वह करने पर ही दी थी कि सुन्दर घर गुणमिथि रूपके ॥

संगरेजी भाषा के आदि कवि चौसर (Chaucer)<sup>१</sup> के समकालीन मैथिल कवि विद्यापति ने भी जिन्हें बहुत से लोग शिवमग्न मानते हैं एक पद में मैना से ऐसा ही विहाय कराया है—

“हम नहीं आहु रहव यहि आंगन, जो बुद्ध होयत जमाइ गे माई । एकत यइरि भला यहि विद्यामा दोमने बिद्याकर घाप ॥ तीनरे यइरि भला नारद यामन, जे बुद्ध आमल जमाई गे माई ॥ पहिलुकु वासन कामरु तोरव, दोसरे तोरव रन्हमाझा । यरद हाकि परिआव कशाडव, पिआ ले जाइव पराइ गे माइ ॥ घोली जोना-पतरा-योपी ण्हो मध जेवहि छिनाय । जो किहु यजता नारद वामन, दाड़ी पै पिसिआडव गे माइ ॥”

गोसाई जी न परिहृत होन नही दिया है, बिद्यापति न बीड़ा पर बना कर महादेव जी का अरुण रत्न बिद्यातामा है—

‘सैमल महादेव चौका चढ़ि । प्रदा छिरिआओल माहय मरि ॥ विधि करु  
येवि करु विधि करु विधि करु । विधि न करै से हर हो इठ परु ॥ विधिण करेत हर  
तो पुमि म्यसु । समरि म्यमल फनि श्री गौरी हँसु ॥”

बिहार के प्रामोद्य गीतों में भी ऐसा ही रचा जाता है —

द्विमिर द्विमिर हमरु घाने मिचजी मडले अमयार ।

कह्यो क ए दइआ उम्मत आइल, आउल सजलो न जाइ ।

परिल धहर मडली मासु मदागिनी सग्य छोइला पुसुकार ।

यमतर सजि क पराइल मदागिनी ना भयत दह क सम्हार ॥

बिआले मे उइय बिआले में वृइय धिया लें में म्विलया पतार ।

अइमन मपमिआ क बिआ ना मे दया परु गौरा रहि हें सुआर ॥

कसमा फोरय मांडो तोरय अरमुय द्यहूँ धुताइ ॥

इससे विदित होगा है कि शिवपुराण कुमार सभ्य आदि ग्रन्थों में महादेव जी का विवाह सुन्दर रीति से वर्णन होन पर भी गोसाई जी के बहुत काल पूर्व से महादेव जी के विवाह-सम्बन्ध में ऐसा वर्णन होता आता है और गोसाई जी ने उची का अनुकरण किया है। जो हो पापको जो जो आनन्द महादेव जी का विवाह बिबरण पाठ में मिलता है वह रामचन्द्र के विवाह-वखन में नहीं मिलता।

अब देखिये, उपर तो महादेव जी की बरात उस प्रकार से आई थीर इपर सब पहाड़, छागर, बन नदी ताताब इत्यादि सुन्दररूप धारण कर हिमाचल के पर मैरता पुराने आब । नही निरकय गोसाई जी का अग्निप्राय वर्षतादि के अधिष्ठाता देवता ही से है, नही तो नदी, पहाड़ बना शरीर धारण करेंगे !<sup>१</sup>

१ सद्यः दार्शनिकों के विचार में प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ के अधिष्ठाता देवता हैं हमीस निर्जीव पदार्थों का भी इस प्रकार से वर्णन किया जाता है जैसे उनमें सजीव पदार्थों के गुण बनमार हों । पदार्थ के अनुसार यह संसार का केवल परमात्मा का प्रकाश स्वरूप है निश्चय सर्जीव है ज्यम् ऐतम् प्राणी के गुणों में मग्य है । तमत् के अधिपत्य से जिन पदार्थ निर्जीव तथा बनता रहिन बाध होत हैं । परम्पु मर्षी बात यह है कि उन में ऐतम्यता का सबवा अभाव नहीं होता । किन्तु यह गुण उनमें अत्यंत तथा गुण रूप म बनमान रहता है । पुनती भाग में Nymphs, Fairies, Nard, Elves Muses आदि भिन्न भिन्न बिन्न के अधिष्ठात्री देवता मान जाते हैं । पदक बुन्द हम अधिष्ठात्री देवता की बात का आम्स बामने (Auct. Comp e) के दार्शनिक सिद्धान्त (Metaphysical Theory) म निजान करेते । रामच ३० की० भाग मे भी पुरातया सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक अणु परमाणु में भी ऐतम्य वर्तमान है ।

विवाह के पीछे शिवजी का पुनः साध होने पर पावती भी ने रामचरित्र सम्बन्धी कई एक प्रश्न किया है जिन प्रश्नों में कवि ने रामायण-बर्णित विषयों की एक प्रकार से सूची की है। उन प्रश्नों के उत्तर में शिवजी ने काम मुमुक्षी और गरुड के सम्बाध द्वारा रामचरित्र बर्णन किया है। इसी स्थान से बस्तुतः गोसाईं जी की रामायण आरम्भ होती है।

याज्ञवल्क्य ने पहले महादेव की भी कथा बिरतार एक कद कर पांच सिमा है कि भोता को रामकथा में सच्चा प्रेम है या नहीं, एवम् वे इसके सुनने के अधिकारी हैं या नहीं क्योंकि—“बिनु क्त बिरबमाध पद नेहु। राममगत कर कश्चन एहु ॥” मरदाज मुनि परीक्षा में अम्बल बनें में पासकर गये है। अलक्य योग्यता-पत्र देख लीजिये—

“मम्मुचरित मुन सरस मुहावा। मरदाज मुनि अति सुखपावा ॥

यहु क्षालना कथा पर खाड़ी। नयननीर रोमावसि ठाड़ी ॥”

और “प्रेम विवस मुख आय न यानी ॥”

यह देख याज्ञवल्क्य जी का महानन्द हुआ है कि भोता अच्छे मिले और पावती जी के प्रति शिवजी-कथित-कथा वे मरदाज जी को सुनाने लगें हैं।

### रामकथा

पहले शिवजी ने हरि अवतार का साधारण कारण कहा कि—

“जय अत्र होइ धरम के हानी। बाढ़हि असुर अधम अमिमानी ॥

करहि अनीति जाइ नहीं धरनी। सीढ़हि यिप्र भेनु सुर धरनी ॥

तय तय धनि प्रमु विधिय शरीरा। हरहि कृपानिधि सखन पीरा ॥”<sup>१</sup>

फिर दो बार बार के रामावतार का विशेष कारण कहा गया है। यथा, अय विप्रय का शाप निर पातिव्रत मंग होने से वाहनधर की श्री का शाप देना नारदमोह, स्वाम्यमुनि और शतकथा का बरदान तथा राजा मानुप्रताप का विप्रशाप।

कात्त पाकर मानुप्रताप तथा उद्यम भाई परिमर्दन रावण और कुम्भकर्ण, उद्यक सखिध धर्म रुचि विभीषण एवं उसके परिवार के अन्य लोग तथा नीकर बाकर रावण के पुत्र पौत्र आदि होते गये। रावण परिवार तथा पराक्रमी हुआ, यहाँ तक कि ‘भुववत् विश्व बल करि राक्षसि ओड न स्वर्त-त्र ।’ और तब उसकी आज्ञा पाकर उसके बंशधर तथा अनुधर घोर उपद्रव मचाने लगे और धर्मकाशों में बाधक हो ब्राह्मणों को बैतर्ह छता कर मानों शां का बहला सुनाने लग्ये क्योंकि ब्राह्मणों ही ने विवा विचारे विरपराधी मानुप्रताप को शाप दिया था। गोसाईं जी ने उस प्रकार में भित्तिर की अच्छी परिभाषा की है :—

“मानहि मातु पिता महिदया। मापुन्ह सम करवावहि सेया ॥

भिनर यह आधरय्य मयानी। त जानहु निमिधर मम प्राणी ॥”

इस निश्चिन्ता का उत्पात इस सीमा को पहुँचा कि बरणी व्याकुल हो बैठे हुए धारण कर बैठों के पास आकर <sup>१</sup> अपना कुछ रोम लम्बी और ब्रह्मा के बसों के संग स्तुति करने पर वह आकाशवाणी हुई कि "तुमसोम करो यत् करय्य अदिति को हमने पहले ही बर दिया है और वे लोम दशरथ तथा कौशल्या होकर जन्म में हैं, हम बसों के सहित उनके बर मनुज शरीर धारण कर नारद की सत्र बातें सत्य करेंगे।" अर्थात् मारी-विबोग कुछ सहन कर निश्चिन्ता का मारा करेंगे।

इस आकाशवाणी से स्पष्ट अभिहित होती है कि गोरवामी जी ने इस रामायण में कई जन्मों के रामायणों की कथाएँ यथाशक्ति सम्मिलित की हैं क्योंकि वहाँ तो भी महादेव जी ने स्वामम्बुमनु तथा शतकृता के समय की कथा धारण की है। इतर भाग्यप्रताप के राक्षस होकर उत्पात मचाने पर ब्रह्मा ने स्तुति की है और करय्य तथा अदिति के घर जन्म ग्रहणकारी नारद का समय सत्य करने की आकाशवाणी होती है। इसीसे गोसाईं जी ने स्वयम् कथपमेद की बर्षा की है।

गमन मिरा के अनन्तर का पपति दशरथ ने बभ्रुवृद्धकाल में गुरुशिष्य की सम्मति से श्री श्री श्रुति द्वारा पुत्रवन्धि यज्ञ कराया है। यह सिय स्वयम् प्रकट होकर अग्नि ने उसे यथायोग्य रामियों को बाट देने की आज्ञा की है। दशरथ जी ने आधा कौशल्या जी तथा बीबाई केकेन को स्वयम् दिया और फिर शेष का दो भाग करके एक एक भाग पूर्वोक्त दोनों रामियों के द्वारा सुमित्रा को दिलाया।

आशिदास्युक्त स्पृश <sup>२</sup> में भी कौशल्या तथा ककेयी के ही द्वारा सुमित्रा को यह का भाग दिलाया गया है। परन्तु वास्मीकिनी ने तीनों रामियों का स्वयम् दशरथ ही के हाथ सत्य दिलाया है—

"कौशल्यायै मरपति पायसादं ददौ तदा। अर्द्धाददौ ददौ वापि सुमित्रायै  
नरापिचः ॥ ककेयै पावसिप्यादं ददौ पुनार्धं चारुणात् । प्रददौ वावसिप्यादं पावसरदादतोपमम् ।  
अनुविन्म सुमित्रायै पुनरेव महामतिः ॥"

इस श्लोक से यह भी देखा जाता है कि रामचन्द्र जी यह के आपे अंश से, लक्ष्मण जी उसके बीबाई अंश से, एवम् भरत तथा शत्रुघनी प्रत्येक लक्षके आधे अंश से हुए।

परन्तु रामायण-तिलक ग्रंथ में अश्विनाय सम्बन्धी श्लोक इस प्रकार से मिला हुआ है और इसके मारवामी-लिखित विभाग टीका मिल जाता है—

"दत्तुम्बा प्रददौ तत्र द्विविधेन्द्र नरापिचः । स्वयमेव सर्वं कृत्वा मातं मायवतां वरः ॥  
अर्द्धाददौ ददौ वापि ककेयै च नरापिचः । अनुर्नामं द्विधा कृत्वा सुमित्राय ददौ तदा ॥"

१ भागवत में भी लिखा है कि पारंगी धनुष्य धारण कर बैलों के पास कुछ रोम लम्बी थी, और सबों ने इंद्रवर की स्तुति की थी—इत्यादि।

अनन्तर इस प्रकार रामियों की गर्भस्थिति होने पर<sup>१</sup> तथा समय श्री राम, भरत लक्ष्मण तथा धनुमन्त चारों माइयों का प्रातुर्माष हुआ है। श्री रामचन्द्र के प्रातुर्माष का समय जान ब्रह्मादि देवों ने आकर स्तुति की है और रामचन्द्र ने बतुमु ब रूप से माता को दर्शन दिया है।<sup>२</sup>

अबि ने चारों माइयों की बालस्त्रीलादि की सुन्दर कृति दर्शाई है। इसी सीता के मध्य में रामचन्द्र ने मुस्तुलाकर अपने में अक्षय्य अद्भुत रूप दिखलाया है।<sup>३</sup> कुछ काल बीतने पर विरवामित्र जी राम सरमय को दशरथजी से अपने बहू की रक्षा के लिये मांगने आये हैं। दशरथ जी ने रामचन्द्र को देने में पहले कुछ इतर उधर किया है,<sup>४</sup> परन्तु बशिष्ठजी के समझाने से मित्र चन्देह दूर होने पर उन्होंने दोनों माइयों को मुनि के संय कर दिया है।<sup>५</sup>

राजका तथा सुबाहु को ससैन्य बच करके बहू रक्षा के अनन्तर विश्वामित्र एवं अन्य मुनियों के संग रवाने होकर यथा क दक्षिण तट पर अहिर्वा<sup>६</sup> का उदार करते हुए रामचन्द्र

१ शत्रुघ्न के अनुसार गर्भस्थिति होने पर ये रामियों स्वप्न देखा करती थीं कि शंख बज गया पद्म धारण किये हरकनाथ पुत्रपगवा उनकी रक्षा कर रहे हैं गदग उन्हें आकाश में से जाते हैं लक्ष्मी उनकी सेवा करती हैं अति समूह वेदमन्त्र पाठ द्वारा उनकी पूजा करते हैं।

२ श्रीकृष्ण के प्रगट होने के समय भी देवतों ने आकर स्तुति की है। और उन्होंने भी बतुमु ब रूप से शंखचक्रादि धारण किये दर्शन दिया है। १० स्कन्ध, अ० २/३।

३ श्रीकृष्ण ने भी एक बार ऐसा ही किया है। १ स्कन्ध अ० ७।

४ वास्मीकीय रामायण में तो मुनि का रामचन्द्र की मांगवा सुन कर दशरथ जी मूर्च्छित हो गये हैं और रामचन्द्र के देने में सम्मत नहीं हुये हैं। इस पर मुनि ने ऐसा क्रोध किया है कि पृथ्वी काँसे खगी है। तब बशिष्ठ जी समझ्य हुम्पाकर रामा को राह पर लाये हैं।

मही में भी ऐसा ही किया हुआ है—“स दाम्बुदायइवर्ण मुमोह रामा सहिष्णुः सुतविप्रयोगम्। अर्धयुवाय चित्तियः दाम्बुदुक्ते बचस्तापसकुभरेण ॥”

किन्तु शत्रुघ्न में दशरथ ने बिना हज़र बड़े राम कर्मण्य को मुनि के साथ कर दिया है— ह्यसूक्तवचमपि ह्यवचर्षोमाहृ तं विद्वैत मुनये सख्यमशाम्। अन्वमुपशयिता रथाःकुम्भे न ब्यहृन्वत पदाधिर्पिता। सं ११ रथाक २।

५ पट्टन से जाग करते हैं कि अदिह्या बगसर में ठारी गई। बगसर के परिषम अहिरीसी नाव में अदिह्या के नाम पर एक मन्दिर भी बना हुआ है। यह बात रामचरितमानस या बार्माकीय से सिद्ध नहीं होती। वास्मीकि ने लिखा है कि जाग निदाभम स उत्तामिमुग बखकर पहले दिन सार्यकाल में साग किनारे बहरे और दूसरे दिन मन्वाण्ड में गगाण्ट पर पहुँच कर वहीं बिराजमान हुए। अर्थात् निदाभम से वेद द्विप में गंगा के मूल पर पहुँच। जब बगसर का विरवामित्र का स्थान होना बताया है तो वही से अदिह्यासी भात न दृढ़ दिन ही लगेगा नीर न सोन ही पार होना होगा, और अदिरीसी निदाभम का ही भाग होगा।

एक के सहित जनकपुर पहुँचें और वहाँ की शोभा देख दोनों माइसों को बहुत आनन्द हुआ है।

कवि ने जनकपुर की कवि विस्तार पूर्वक वर्णन की है —

“यापी कृप सरित मर नाना। सखिल सुधासम मनि भोपाना ॥  
गुजत मंजु मघ रम भूंगा। कृजत कलत यहु धरन विहंगा ॥  
धरन धरन विफसे धन जाता। त्रिधिष समीर सदा सुख दाता ॥

सुमन-याटिका पाग धन, त्रिपुल विहंग नियास।

पृक्षत फलत सुपस्तकिल, मोहन पुर चहुँपाम ॥

यनइ न धरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तईइ लोमाइ ॥  
भारु धजार विधिग्र अँपारी। मनिमय पिधि अनुस्यकर संवारी ॥  
धनिक धनिक धर धनद ममाना। बैठ सकल धनु लै नाना ॥  
पौहट सुन्दर गली सुहाई। मंगल रहहि सुगंध सिपाइ ॥  
मंगलमय मन्दिर सय करे। धिप्रित अनु रनिनाम पितर ॥  
पुर नर नारि सुमग सुधि संभा। धरममोल ज्ञानी गुनवंता ॥  
अति अनुपम अई जनक निवास। विधकहि विपुष विलोकि विलास ॥  
होत अकित पित कोट विलोकी। सकल मुपन सोमा अनु रोकै ॥

यवल धाम मनि पुरट पन्, सुपटित नाना मीनि।

मिय निवास सुन्दर मदन, सोमा किमि कहि जात ॥

गोरामा जी ने अण्णाम के अनुसार गंगा के दक्षिण तट पर अदिरवा का उद्धार कराया है। सुरदास ने १८ गवैरपुर में बन जाते समय बड़े काव्य होवा पढ़ा है ‘गगातट भारु भीराम। तहाँ पचान कन पग परमी गगम अरि की वाम ॥’ इत्यादि (धरु रापाकृष्णदास सम्पादित ‘सूरसागर’, पृ० ७३ देखिये।)

बास्मीक जी ने गंगा पार होने पर लिटु त में अदिरवा का उद्धार कराया है। सागर उस स्थान का नाम अदिरवा बताते हैं। पुरा के गोरवा में गौतम का लपस्यान मानत है। और वहीं अदिरवा का तरना कहते हैं।

अबतक गंगा सरयू तथा गंगा सोन का गठजाल मंगम स्थल एवं उस भदियों की उस समय की प्रवाहगति हररुप म प्रसागित न हो पद पा निरवध नहीं की जा सकती कि अदिरवा का कौन स्थान था, परन्तु बड़े पा गंगा पार ही, हमने सम्भेद नहीं।

बास्मीक तथा अण्णाम में अदिरवा क निस्त हान, रामचन्द्र का उच्छेद पर म एर्य करने तथा उनके पतिलाक जान की बातें नहीं हैं। हमारा विश्वास बास्मीक रामायण के अकरण में विश्वास परिरुद्ध एवं देखिये।

सुमग द्वार सब कुलिस कपाटा । भूप मीर नट मागब माटा ॥  
 वनी विसाल वाजि गज साक्षा । हय गय रब संकुल सब काजा ॥  
 सूर सभिय सेनप बहुतेरे । नृप गृह सरिस सदन सब केरे ॥  
 पुर बाहिर सर सरित समीपा । बतरे जहं तहं विपुल महीपा ॥  
 देखि भ्रान्त एक भ्रंवरार्ह । सब सुपास सब मांसि सुहार्ह ॥  
 कौसिक कहा मोर मन माना । यहां रहिय रघुबीर सुजाना ॥”

विरवामित्र के आगमन का समाचार पान पर जनक भी आकर सबसे सप्रेम मित्रों हैं दोनों माइनों की अलीकड़ सोमा वरु अति आह्लासित तथा मोहित हुये हैं और इन दोनों का मुनि के साथ एक गुनर सदन में डेरा बिलाना है । नगरवासी नर-नारियां भी इनका सहब सीन्दूर देख बहित-बित हो गई हैं । बास्मीकीय रामायण महिक्काम्ब तथा रघुवंश दोनों में जनसमुदाय के मोहित होने की बात कही है ।

“इमो जुमारो भद्रं त देवकुल्यपराक्रमो । अश्विनाशिव रूपेय्य समुपस्थित-  
 यौयनो । वटच्छयेय गां प्राप्नो वयसोकावियापरौ ॥ भूपयन्तायिनं देशं चन्द्रसूर्या  
 विवाम्बरम्” ।—(रामायण)

“इस-स्म मित्रावरुण्यो किमतौ किमश्विनो सोमारसं पिपासु । जनं समस्तं  
 जनकाममस्य रूपेण तायोजिहतां नृमिहौ ॥” —मही ।

“तौ विदेहनगरीनिवामिनां गां गताशिव दिव पुनर्वसु । मन्यत स्म पिक्तां  
 क्लिोचनै पचमपातमपि पचनानं मन ॥” —रघुवंश ।

जिस सोमा पर महाबोगेश्वर महादेव मोहित रहते थे उसपर राबवि तथा जनसमुदाय का मुग्ध होना कौन आश्चर्य की बात है ।

उस दिन दोनों माई नगर तथा अनुप-बहयाक्षा देखने गये और दूसरे दिन मोर में विरवामित्र की पूजा के लिये पूरु जाने के समय जनकजी की फुलवारी में रामचन्द्र और सीताजी का बुर ही से परस्पर संस्पर्श हुआ है ।

वह फुलवारी-बनन सर्वथा लकीन प्रकरण है और गोलाई की ही मस्तिष्क से इसकी उत्पत्ति हुई है । इनके पूर्ववर्ती किमी अन्य कवि का इसपर दावा नहीं है । साहित्य आक्षिप्त में इसकी रचितरी इन्हीं के नाम से हुई है और वह इनका 'पेटेन्ट' पदाप है । वह वर्चन विशुद्ध शृंगाररसपूर्ण आर महामनोहर है । इसकी छंदा हमने पाठकों को अन्यत्र दिखाई है और यह भी बतलाया है कि शृंगार-बनन में भी इनकी लेखनी कैसी प्रभावशालिनी थी । यदि सुगुनरुन का आगमन नहीं होता तो यहाँ से विवाहात्यर अथय में लौट जाने तक शृंगार ही शृंगार देय पड़ता ।

कवि ने कहा है कि अनुप-बह-बनन में रामचन्द्र के जाने पर दोनों को अपनी-अपनी

भावना के अनुसार इन्हीं मूर्ति कीय पत्नी<sup>१</sup> और सब राजों का मागमर्गन पूर्वक धनुष तोड़कर रामचन्द्रने सीताजी से अयमात्र पाई है। इस अनुभव प्रकरण के कारण मैं कवि ने प्रबल बरिता शक्ति दिखलाई है। एतद्वर बालसत्र के उदयपिरि-भय पर उदय होने से कसा स्वामाधिक ररय हीन्य पदा है और जहाज हुक्मे का रूप एवम् सीता शोभा कथन मी कया ही मनोहर है।

धनुष-भङ्ग होने पर परशुरामजी बड़ा सज्जोप पशुवे हैं निमको देनत ही यव कीर राजों का प्राण पशेक कावापिको में लुप्तमान सया है। लक्ष्मण जी ने उन्हें बेतरह फटकारा है। अन्त में वे रामचन्द्र को परब्रह्मवतार जानकर उन्हें अपना धनुषा व विदा हो गये हैं।

लक्ष्मणजी में बीरता तथा बाल-रबभाव-गुलम बलवृत्ता मी थी। इसीसे इन्हें किसी का प्राण दिखाना और अनीकिय (विशयता) अब वह रामचन्द्र के सम्मुख में हो) सहन नहीं हो सकता था। इसीसे उन्होंने परशुराम जी को बेतरह फटकारा और जब परशुराम जी शीप के प्रायेण में जनक से खू रहे थे कि 'धनुष तोड़ने वाले को मुरत दियाओ, नहीं तो तुम्हारा राज उल्टा दूँगे और सब राजे एक ओर से मारे जायेंगे' एवम् जब उनकी अबरथा देख तथा करणी स्मरण का सब दुःखिय महिलाओं का टरपिड कांप रहा या तप कवि यदि लक्ष्मण जी को नहीं रखा करत तो न जाने उनकी रायानि में कितने मित्रपराधी राजों को तस्कात्र ही मरम होता पड़ता क्योंकि उनके मभ तथा रामचन्द्र क रनेह से जनक को यह कहने का साहस नहीं होता कि रामचन्द्र ने धनुष तोड़ा है और सारे लोगों का मय से आप ही प्राण एव रहा या।

और इन धनसर में लक्ष्मण जी श्री जगद्वता तथा निरंजुयता का विशेष कारण यह है कि परशुराम जी ने पहले तो जगदु गृह जनक राजा का कुनारय बना कार पमसी दी। फिर रामचन्द्र से उन्होंने यह कहा—“सुनहु राम त्रिभुविय धनु तोरा। सहस बाहुं सम सो रियु मोरा ॥ सो बिलमात्र बिहाइ उमात्रा ॥ ऐसी कोर बानी रामचन्द्र के प्रति, शिष्टे से अपना सर्वस समझते थे उन्हें कब राय होती ?

ऐसी अबरथा में रामचन्द्र का अमान देय इनके दृश्य का क्या भाव हुआ होगा वह वर्णनातीत है। जो राम का शत्रु वह इनका कोटि गुण अधिक शत्रु। रामचन्द्र से सामना होने के पूर्व वह एक हाथ इनस पत्र का परिचय कर सं। इसीसे वे 'बोम परसु पाहि अमान।' अमान का उतर अमान। दूसरी श्रुतता तथा बीरतायली बाटी मुनकर पुरयन का जनक मी मरवय मत्र ही अनुबिन और गोरा बटे पर इनको दर दिय बाग का —“अनिय तनु धरि समर सदाभा। पुलरनक वेदि पावर जाना ॥ वहीं मुभाव न पुस प्रयमी। बानहु

१ मधुवा में कवि की समा में एण्णचन्द्र का मी लामों न धरन-अननी भावना के अनुसार देना था, अर्थात् धीरूप्य मर्तों को ब्रह्म के समाक अनुपों का अनुप्य श्रेष्ठ करियों का मूर्तिमान बामदेव गोपों को स्वजन, इष्ट राजों का शायनकर्ता मान-नित्त को पुत्र, कस को मृगु गंभारी को गंवार, योगियों को परमनय कृष्णगण को परम देवता स्वयं जान पड़ थे।



करहि न रन खुबसी ॥” रामचन्द्र न भी इनका पक्ष करके बड़ा है।—“येप बिसोकि कहैसि कहु बासक नहि होय। और देखि कुठार बान बनभारी। भइ खरिबहि रिसि बीर बिचारी ॥ नाम बान पै तुम्हहि न थीन्हा। बंस स्वभाव सतर तेहि सीन्हा ॥ इत्यादि।

सद्वारा की ओ सव स्वान पर गोसाईं की ने मूर्तिमान बीररस के समान बिबित किया है।

गोसाईं की न बही बतुराई की कि इतुमन्नाटक के समान परशुराम को समा ही में कबलीय किया। इससे एक तो आगे राह का बचका मिट गया दूसरे बीय छेनेबाछे रावे भी मनमीत हो मौन हो गये और पूर्वाह्न सम्भार के समय रामचन्द्र का गम्भीर मनस्वभाव भी नवरनिवासियों पर प्रकट हो गया। बस तो बनुप तोफन ही ने देख चुके थे और दोनों भाइयों के सौंदर्य पर तो ब पहले ही से आप ही आप सट्ट हो रहे थे।

इतुमन्नाटक में रामचन्द्र ने स्वयं भृगुनन्दन से खूब बात की थी है परन्तु गोसाईं की ने रामचन्द्र का माम्भीर्य—गौरवरक्षा के विचार से उन्हें नहीं खडा कराया है।

कंसवदास चाहताहू न तथा रावण को भी जनकपुर ले गये हैं आर उन्होंने बाबमीबीर के अनुसार समार्भग होने के पीछे रामचन्द्र को वहाँ ले जाकर बनुप ठठवाया है एकम् परशुराम की से बराठ छोटती समय मेंठ कराई है। गोसाईं की ने ऐसा नहीं कराया है। बाब बानकी को माता के भाव से देखता था—“मेरे गुठ को बनुप है, चीता मेरी माह १” अतएव ठठे वहाँ ले जाना इन्होंने स्पष्ट समझा होगा और बिस रावण को ऐसा बलिष्ठ और पराभमी दिखा है कि प्रतिमउ योवन कनु न पावा ॥ और बिसके बराबर्ती ब्रह्मसृष्टि के सफल बीरपारी बताये गये हैं, ठठे इन्होंने मन्त्र सना में परशुराम द्वारा भवगीत तथा किसी अन्य पुत्र द्वारा तिरस्कण करना भी उचिन नहीं बिचारा होगा और उतक साब किरी के अष्टपदी बाँटें करने से अप्रत्य की भी निरवय सम्भावना की।

किर अत्रय से परात आने पर रामचन्द्र का बानकी से बिबाह हुआ है। कबि ने बराठ की बीमारी तथा बिबाह की रीति रस्मों की बातों को बिस्तारपूर्वक सुन्दर रीति से बर्णन किया है। शम्भु दान के सम्बन्ध में कहा है —

“आरुन पराग अलज मरि मीक। ससिहि भूप आहि क्षोभ आमी के ॥”

और जवमाख देने के समय कहा है :—

“सोहत अनु जुग अलभ सनासा। ससिहि समीत वृत जयमासा ॥”

ये दोनों उपमायें क्या ही सुन्दर हैं।

इसी प्रकार अन्य तीनों भाइयों का भी वही बिबाह हुआ है और सव के अत्रय सीट आने पर गानन्द परिद्वन तथा बिबिय मद्रस्यचार हुआ है। परिद्वन के समय के आनन्द की तुलना बर्षायन्तु सं ब्रह्मी की गये है।

बासकाग्य की बन्दना पुनवारी प्रमद बनुप मद्र तथा कई एक स्तुतियों की रचना बनुप ही बिद्यत हुई है।

महामूर्ति श्री ने महावीर बरिज में धनुष-बल ही न कया आरम्भ की है और इनका कथा-बखान कथा ही कितवण है। अतएव उस भी पात्रों को वही संघात सुना देना हम अनुचित नहीं समझते।

उस प्रश्न के अनुसार जनकपुरी ही में ताकका मारीच और मुवाहु की फना हुई है, परशुराम जी भी रावण के मंत्री भाग्यवान ही क उपयोग स वहाँ आकर अन्तपुर में वहाँ राम और सीता बैठी थी पूर्वव गये हैं। उस समय दशरथादि भी जनकपुरी में थे। परशुरामजी से एवम् राम जनक अज्ञान-द तथा शिष्ट प्रकृति सबसे एव बगबुल हुआ है। सतानन्द परशुराम का शान बने पर और बमक भी उन्हें बच करन पर तपन हुए हैं। अन्त में परशुराम ने रामचन्द्र द्वारा अपनी पराक्रम प्रसिद्ध की है।

मानववान की सम्मति स सुपनगा न संघरा में प्रकश किया है। संघरा कैकयी की विट्टी पर मानने के लिये जनकपुर ही में दशरथ क पास लाई है। वही से लोग बन गये हैं। मरत को बरण पाहुदा भी वही मिनी है।

सुपनगा की माक काम आर छोठ मी कटा गया है। गरदुपणादि के बच के अन्तर कर्षण ने कहा है कि हमसे रावण ही न मेजा है और उग में बालि को मी धापक विरद मेजा है। इमी बाबधर में सरमा नामनी एक तरिकनी एक विट्टी लाई है कि विभीषण सुभीर के वहाँ आये हैं और वहाँ सीता का वृद्ध आभूषणालि भी है।

बालि और राम ही स गुप्त मैदान हुए हुआ है और मरती समय उठी न सुभीर को राम को धीया है।

### अयोध्याकाण्ड

आदि में तीन संस्कृत श्लोकों में भीशिव तथा रामचन्द्र की वन्दना और एक दोहा में गुड की वन्दना है। तब कथा आरम्भ होती है। दशरथ जी ने रामचन्द्र को सुरराज पद देने के लिये सब तैयारियाँ की हैं। परन्तु अपनी दासी संघरा की दुर्मन्त्रणा से उनकी लीवरी रानी कैकयी ने रामचन्द्र के लिये बौद्ध बन् बमबाम तथा भरत जी क सुरराज-पद पान के लिये राजा से बर प्राप्त कर लिया है। सीता और लक्ष्मण के विनयों के बरा हा रामचन्द्र उन्हें मी साथ लेते गये हैं। श्रु गवेरपुर<sup>१</sup> तक मुनग राजमात्री भी साथ गया है। वहाँ स दोनों माई सुनि-मेघ धारण कर बैठ के रामचन्द्र का पैर घो लन के अन्तर<sup>२</sup> निपाद और सीतायमेन नंगा पार हो प्रयाग में भरद्वाज मुनि का दशन एव धिपटी रनाग बरत समुना किनारे विराजमान हुए हैं। वहाँ स निपाद लौट आया है और स लोग दार्मीक जी के आभ्य पर पहुँचे हैं।

रामचन्द्र के उमसे धान रहने के निमित्त एक एका रथान बतान के लिय उदा जनक विभाग से डिगी और को कारे रमेय न हो निवेदन करन पर कुनि न कहा है :—

१ बमबाम विगरामद ।

२ 'अन्तर' में जनकपुर जाने समय केरत ने पैर धाया है।

“पूछेहु मोहिकि रहसं कहीं, मैं पूछत सकुन्वार्ड ।

जहुं न होहु तईं वहु कहि, तुम्हहिं दयावतं ठारै ॥”

और फिर उनके रहने का खाम बताने लगे हैं । कवि ने वही बहुतार्ड से मुनि के मुख से मित्र २ चर्मभ्रष्टों का बखान कराते उभरे बहुलभाषा है कि ऐसे ही चर्मपरायण लोगों के हृदय में आप निवास कीजिये और फिर समनातुल्ल बासरयाम विप्रकृत बताया गया है और वही पराङ्गुटी बनाकर तीनों प्राणी रहने लगे हैं ।

बासमीकि श्री का यह निवास-निकेत-वर्णन बहुत उत्तम और उपदेश-गमिष्ठ है । श्रीरामना सीता राम सध्याण का वार्तावाप भी वही शिष्टाप्रद है ।

मार्गस्थ गर्वों के नरनारिजों को इन लोगों का पक्षपादे जाना देखकर जैसा आत्मवर्ष हुआ है, इन लोगों के प्रति उन सबों को जैसा सख्त स्नेह-अन्मा है और इन लोगों के विषय में वे परस्पर जैसी बातचीत करती पयी हैं एवं इन लोगों के संग भी उहोंने जैसा उत्तम सम्भाषण किया है इन बातों को कवि ने एसी सख्त तथा सुन्दर रीति से वर्णन किया है कि उक्त वर्णन नहीं हो सकता ।

पुत्र्य पति और प्रिय देवर के मध्य सीता का रही हैं । कहा ! उसकी जैसी असीकिक रोमा हो रही है— जनु मधु मदन मध्य रति कसई । ‘जनु मुप विपु विप रोहनि छोड़ी ।, और मधु जीव विप माना जैधी । बाह ! क्या ही कलित उपमाएँ हैं ।

उपर रामचन्द्र न विप्रकृत में आपन जमाया है, इपर सुमत के अक्षे लौट आने पर दरारण में रामविभोग में प्राण विसर्जन किया है । मनिहास से बुलाये जाने पर पितृ मरण तथा रामचन्द्रमन का कारण सुमकर मरतत्रीने जैकेयी को बहुत विदागा है और शत्रुण ने मंथरा को देखते ही आपनमूख हो ‘हूमयि लात तकि कृर मारा । परि मुह मरि महि करत पुधरा ॥” त्रिसे उक्त कृर टूट गया कपार फूट गया दोठें भ्रम गये और मुह से कपिर बहने लगा है तौ मी आप बसं नलशिक छोटी समझ उसकी स्रोटी पक्ष एसे कसीरिने लगे हैं और उसे अपनी करनी का फल गूनी ही बचाया है ।

द्वि मरतत्री श्रीरामना का उत्तम आस्वासन कर पिता की आर्येष्टि किया में प्रवृत्त हुये । तदनन्तर उत्तरवार और सधैय रामचन्द्र को बग से लौटाने गये हैं । मरतत्री गृह-वैरपुर से पक्षपादे अक्षय से त्रिसे उक्त पैरों में काह पड़ गये थे । कवि कहते हैं—  
‘भ्रतच्छ मन्मथ पावन कये । पंकरकोस आरुचन जैठे ॥ बाह ! क्या ही सुन्दर उपमा है । अनङ्गी भी उत्तरवार विप्रकृत पृथे हैं । रामचन्द्र लौट आने पर उत्तम नहीं हुय हैं और उहोंने आपना गदाङ्क देकर मरतत्री को वही से विदा किया है । गोरखामीकी कहते हैं—

‘प्रमु करि कृपा पावरी दीन्ही । सादर भरत सीम धरि लीन्ही ॥

परनपीठ कन्नानिधान क । जनु जुग जामिक प्रजापान क ॥

संफु मग्न मनेह गतन क । आपग जुग अनु भीय जनन क ॥

कुलकपाट कर कुमल करम क । यिमल नयन सेवा सुपरम क ॥

भरत मुदिष अपर्लव सहते । अस मुल अस मियराम रहत ॥”

यन्म मोसाई गी 'धन्य । सुन्दर उपमाओं का मोती पिरोना आप ही का काम है और यहाँ अनुप्रास की बहार क्या कुछ कम है !

इस काण्ड की कविता आद्योपान्त एक समान सुन्दर मधुर ममनेयी मनोहारिणी तथा उत्कृष्ट है । यह काण्ड बैसे ही शिक्षाप्रद भी है । इससे मनुष्य बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकता है । इसकी रचना में मोसाई जी ने पराकाष्ठा की अभिरच शक्ति दिखलाई है । रामायण में यह काण्ड सर्वश्रेष्ठ और प्रथम स्थान पान के योग्य है । केवल इसी काण्ड की लेकर यह कहा जा सकता है कि दशम या विदेश्याय बहुत कम कवि इससे बहर लगाने को समर्थ हो सकेंगे ।

इस काण्ड को मोसाई जी ने कल्याण से प्लावित कर दिया है । इसके पाठ के समय एसा ही कोई पापासङ्गदम मनुष्य होगा जिसके नत्रों से अशु प्रकाशित न होता हो और जो प्रेमाशु का कवि का उपहार न देता हो । केवल को स्थानों में कीररस की यत्नक देधी जाती है—एक तो यहाँ मियाद भरतजी को राह ही में रोकने और उनका सङ्ग मुद करने को कटिबद्ध हुआ है और दूसरे यहाँ लक्ष्मण जी ने भरत का वन में ससन्न्य घाना सुन कर वन से मुद करने की मनसा की है । यहाँ तो कवि ने सोच हुने कीररस को जगा दिया है —

“उठि कर और रजायसु मांगा । मनहुं पीररम सोथन मागा ॥

यांघि अटा मिर कसि कटि माया । साजि सरामन सायक हाया ॥

आशु राम सेवक जसु लेऊं । भरतहि समर सिम्बायन दुऊं ॥

राम निरादर कर फल पाइ । सोथहु समर सेम होउ भाइ ॥

जिमि करिनिकर दलड भृगराजू । लेइ जपटि जवा भिमि याजू ॥

तेसेहि भरतहि सेन समता । सालुज निदरि निपातऊं खना ॥

जौ सहाय कर संकर धाई । तौ मारउ रन राम दोटाइ ॥”

यही कल्याण पूर्ण अक्षोपाकाण्ड राजमणि निवृभक्ति जननी आदर, सुन्दर, प्राकृतिक, पत्नीप्रीति आदिकी हम शायो को गदा शिक्षा प्रदान करता था रहा है ।

इस काण्ड में कवि ने मयरा तथा प्रामीण शिवसो क सुंद में भी कविता रणी है । मयरा—यथा, 'भानु कमलरूप पोषणदारा । त्रिजु जल शक्ति कर श्याद दारा ॥', "हर सुन्दार यह सति जपाठी । रंघट कर उगम कर पारी ॥

प्रामीण शिवसो—यथा, 'राज कुम्भर दोउ नदर चलन । इन्हो करि रुति मरकत घोने ॥ स्वामन गौर विद्यार बर, सुन्दर मुग्गा लन । गरद गरबरी नाप मुग गरद घोण्ड नन ॥ आदि मनोत्र नमोवन दारे । मुमुगि कानु का आदि सुन्दारे ॥”

मयरा की कविता पर तो गररानी विगममात्र थी, उस उग के मुग से कविता निर्माण हुई । परन्तु प्रामीण शिवसो के मुग में कविता बड़े रचुरित हुई ।

वार्तालाप के समय कवि ने भरत और रामचन्द्र से बारम्बार शपथ कराया है। शपथ की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस के बिना भी जन लोगों की बातों पर निश्चय विश्वास हो सकता था। शपथ का समय नहीं था कि शपथ में इतक खूबर ईमान धर्म से कबने पर भी कबनेबातों की बातों पर एतनाद नहीं किया जाता क्योंकि इतक लेकर भी बहुत से श्लेष झूठ योजन में लक्षित नहीं होत।

इस में कवि ने बचतों को बहुत स्वामी बताया है और बचराज के सम्बन्ध में तो यहाँ तक कहा है —

“कष्ट कुचाक्ष सीव सुरराजू । पर अकाज प्रिय आपन काजू ॥”

पता कबने का कारण यह है कि बचतों ही ने अकबरासिधों का पित जिनकूट से उपाय किया था। परन्तु जब मोसाई की ने आगे चलकर पला कहा है —

‘सो कुचाक्ष सय कई भइ नीकी । अवधि आस सम जीवन जी की ॥

नतद क्षपन सिय राम यियागा । इहरि मरत सय शोग कुनोगा ॥”

तब बिचारे सुरराज और सुरराज पर इतना मुपित होना नहीं चाहता था।

इस काण्ड में पांच सात स्थानों को लेकर प्रायः आठ २ बीपाइनों पर एक बोझा और २४ बोझों के बाद अनेक २२ बें बोझों के स्थान में एक हरिगीतिका तथा एक सोरठा देखा जाता है। हरिगीतिका और सोरठा का निम्न केवल एक बगहू पाँचवाँ पबीसी में मझ हुआ है—अर्थात् १०२ बें के बदले १२६ बें बाड़े का स्थान में हरिगीतिका और सोरठा आया है। और इसी पबीसी में अर्थात् ११ बें और १११ बें बोझों की कुछ बीपाइनों में रामचन्द्रादि के समुना पार होने पर तस्वी के आगमन की कथा बेशेक हुए पबी है। बात यह प्रतीत होती है कि मोसाई की ने यह काण्ड १२२ दाहों में अर्थात् पूरे ठेरह पबीसियों में रखा था पीछे किसी ने अपनी और से तापस की कथा जोड़कर ११ बें बोझों का दो-बो बोझ बना लिया। मु सुपदेव साह ने तो इस तापस की कथा को अपनी टीका की पुस्तक से निकाल ही दिया है। परन्तु ‘अज्ञवितासप्रेम’ तथा ‘काशीनागरीप्रचारिणी सभा’ द्वारा प्रकाशित रामायणों में यह कथा दखो जाती है जिस से रामायणवादी रामायण में भी इस का होना निन्द्य होना है। परन्तु इस कथा के उद्य में रहने से तथा एक और कारण से जो पाठक ‘रामचरितमानस के संस्करण वाले परिच्छेद में देखेंगे, उनके स्वामी की लिखित होना में सन्देह होना है क्योंकि पोटशामी की ने इस दुर्लभ रीति से कही कोई कथा नहीं सुनाई है।

रामचन्द्र निपावारी के साथ समुना पार उतरे हैं। हीर वाली गर नारिना इन लोगों को देग आर बन माया की कथा मुन पकता रही है —

‘मुनी मयिवाद मरुल पल्लताही । रानीराय कीन्ह मझ नाही ॥

तदि अयमर एक तापस आया । तेज पुंज समु ययस सुहाया ॥”

आर यह गप किमी को रूँद प्रणाम कर :—

“पियत नयन पुट रूप पियूषा । मुदित सुधमनु पाड जिमि भूषा ॥”

इसके धनन्तर लिखा है —

“ते पितु मातु कहहु सखी कैसे । जिन्ह पठय यन वालक एसे ।”

इस प्रकारके क हेतु ही से मान होता है कि मुनि सविपाद इत्यादि—इन चौपाई को 'ते पियुमातु बासी बापाई' से सहज सम्पर्क है और दोनों क साथ साथ होने उ विषय सम्बन्ध मिलता है । इन दोनों क मध्य में ८ चौपाईयों और एक श्लोक में एर ध्यय कथा सुना देना सर्वथा अनुपयुक्त है । गोपाई की लेखा करायि नहीं किये होंगे ।

और उस तपसी ने सिखाय दंड प्रणाम क कुछ क्रिया भी नहीं है । उस तपस के सम्बन्ध में टीकाकारों की विभिन्न कल्पनाएँ दृश्ये । (१) स्वयं गोसाइ की नगर निवासियों का दौड़े घाना सिपकर ध्यान में डूबे समुना दिनारे पशुच दंड प्रणाम कर आय और वो प्रसंग सिपकर ध्यान में डूबे वे उस के आगे हनुमान की ने उन क दंड प्रणाम का हाल लिख लिया । और गोसाइ की उस मिटा न सके । (२) रामचन्द्र का रावणवध का संकल्प शरीर धारण कर उठे वाद दिलाने आया । (३) विश्वकूट ही शरीर धारण कर अगुवानी करने आया । (४) वेष्णु व और भूषा दोन क कारण लोग इस तपसी तनपारी अग्नि बनाउ हैं । यह इन बारत का धमका कि अर निपाद को रामचन्द्र पेर देंगे, माय में तीन का जाना कराम है हम अब साथ साथ जायगे । और परावर साथ रहा इगी स सीताभी इसे सींगी गई (दुम पाबक मह करहु निबागा) सुभीक के माथ मित्रता क गमय साधी हुआ और लंका में सीता अग्नि में शोपी गई । (५) समुना दिनारे अजरत्य का एक शिष्य रहता था यह दशन करन आया ।

किधी २ संस्करण में तपसी की कथा क बाद यह चौपाई है— 'उर परि धर रजादगु पाई । बन मुदित मन अग्नि हरसाई ॥' इनसे ता तपसी क माथ जान की पाल स्वयं रण होनी है । और मानन मयंक भी इगही पुन्दी करता है । उस क अनुगार गानर का पुत्र आया था और दंड प्रणाम कर निपाद के साथ ही लौट गया । परन्तु पूर्वीक दानों संस्करणों में (अनपन राजापुरवानी रामायण में) यह चौपाई नहीं है अतः टीकाकारों का कथन विश्वरूपीय है ।

गोसाइ की के ध्यान की बात से और नम स पुत्र सम्पन्न नहीं । यह कथा तब समय की कही गई है जब गोसाइ की के इस संसार में रहने का कोई पना भी नहीं पना सकता । यदि इनके ध्यान ही की बात है तो यह निश्चय हनुमान की हन देगड ही है । इस से ता हमारे कथन का पूरा समर्थन होता है ।

इसकी व्याख्या बानर्त्तों की गत है । रामचन्द्र मुन्दद घोड़े थे । आद्यात्मिका की बत माह रही कि मनुष्यशरीर धारण किया और अब समस्त करान की आरम्भकता हुई । और फिर इस शरीर में तो अभी उठने प्रथिमा भी नहीं की थी, आग बरगे ।

बिजडूट अगुआनी करने आया पंचवटी क्यों नहीं आई ! कामदनाब आये अम्बक माय क्यों नहीं आये ! क्या पंचवटी तथा अम्बकनाब इन्हें परमज्ञ परमेश्वर नहीं मानते थे ।

यदि पत्र में तीन पयिबों के साथ चलने का शेष विचारण करने के हेतु अग्नि शरीर पारण कर यहाँ से छात्र हुआ तो सीता अपहरण के अनन्तर श्वपचकार्ष्णत पार्श्व जाने तक तीन का शेष कैसे विचारण हुआ ! और सीताहरण इन्हीं महात्मा के छात्र रहने के समक हुआ । कहे क्या शुभकाम्य कहियेया ! लका में सीताजी के परिष्कार लक्ष्मणजी ने अग्नि प्रसट किया था । छापी के लिये अग्नि वा किसी देवता को शरीर पारण कर रामचन्द्र के साथ क्यों बन बन घूमने की आवश्यकता नहीं थी ।<sup>१</sup> समय पर मंत्र द्वारा उनका आवाहन हो सकता था और ऐसाही आज भी विवाहादि के समक हुआ करता है और शुभ पावक मंड करण किया था । छापी के लिये अग्नि वा किसी देवता को शरीर पारण कर रामचन्द्र के साथ क्यों निशाया के 'मंड' शब्द से यह प्रतिपादित नहीं होता कि वे किसी शरीरपारी स्वक्ति के कार्य में दी गई । अग्नि में प्रवेश के लिये तो मंडा के समक वहाँ भी अग्नि प्रसट किया जा सकता था और तीन के लिये भी राम पर मंत्र द्वारा अग्नि का आवाहन हो सकता था । रही अगस्त्य के शिष्य की बात सो तन्नाभिक तथा साम्नाभिक है । परन्तु तीनों इच्छा उत्तर नहीं मिलता कि यह क्या बेशक कहे पुसी । घोसाई जी को तो किसी पात्र को इन बुर्जगपने से अपनी रचना में प्रवेश कराते नहीं नहीं देखते ।

इस कायक को क्विनी २ रामानुज प्रकशक ने 'अवयकायक' तथा 'आरण्य को 'अनकायक' किया है । कायकों के नाम बदलने की कोई आवश्यकता नहीं बरन यह आन्तिक-बनक है ।

### आरण्यकायक

आदि में दो रगोचों में थी शिवजी तथा श्री रामचन्द्रजी की बचनमा है । पहले इन्द्र का पुत्र ब्रह्म काग बन कर सीताजी के बरण में बौच मारने के कारण काना किया गया है । फिर रामचन्द्र बिजडूट से प्रयाण कर अग्निपुत्रि से मिले हैं । उनकी इका स्त्री अनघुया ने योगा जी का पानिनपर्म का उपदेश किया है । इस उपदेश पात्र से महिलागण महान लाभ उठा सकते हैं । उनके पात्र का इन लोगों में अवश्य प्रकार करना चाहिये । फिर विराय को बच करत एवम् शरमभुक्ति मुनीक्षण अगस्त्य<sup>२</sup> प्रवृत्ति श्रुतियों के वर्णन का आनन्द छूते

१ कामनीकिनी के अनुसार उस समय इतुमान जी ने दो अत्रिकियों को रावकन अग्नि प्रसट किया था ।

२ अगस्त्य जी किम्पाचल स दक्षिण गिर कुजर पर रहते थे । वे उस प्राण के प्रयाण अत्रि थे । आदि दानिह जानियों के घटी साहित्य तथा विज्ञान के शिष्य माने जाते हैं । काइपय (Dr Caldwell) मादक के अनुसार इनका सम्बर ईसा क पूर्व ६वीं वा ७वीं शताब्दी में आरम्भ हुआ है ।

दरबारखाने में पहुँच कर लोगों ने पञ्चवटी<sup>१</sup> में बैठा जमाया है। वहीं पर रामचन्द्र ने लखनऊ को महिजागादि का उपदेश दिया है।

कुछ दिन बाद रावण श्री बहूत स्वप्नला इरिरोपे बनाकर रामचन्द्र के पास आ उन से प्रेमप्राप्तता की है और उनके पास नाक काट गये हैं। और इसी कारण लखनऊ ससैन्य रामचन्द्र के हाथ से युद्ध में निहत हुये हैं। उधर स्वप्नला रावण के पास पुकार करन गई है, इधर सीताजी ने आत्मा प्रतिबिम्ब छोड़ कर अग्नि में प्रवेश किया है।

बाष्पीकि श्री ने न तो सीता को अग्नि ही को सीता है और न स्वप्नला ही को इरिरोपे में उपरिबत किया है। उनही स्वप्नला को बतिये।

“सुमुन्वं दुर्मुन्वी रामं वृत्तमर्घ्यं महोदरी ॥६॥

विशाखान्तं विरूपाक्षी सुपर्शं ताम्रमूषभा ।

प्रियरूपं विरूपा मा सुरपरं भैरवम्बना ॥१०॥

सर्गा दासणा वृद्धा दक्षिणा पामभापिणी ।

न्यायवृत्तं सुदुर्घृष्टा, प्रियमप्रियदशाना ॥११॥”

(आरगदफागद मर्ग १७)

स्वप्नला पही ही खेटी हुई आनाक रही थी। रामचन्द्र के प्रति रावण को सतर्जित तथा कोपित करने के अभियाम से यह बात ही आत्मा अगल हात न कह कर नीति को रखने लगी क्योंकि रावण बड़ा नीतिन रहनाता था। तब समा में मूर्ति पर गिर कर रोने लगी और बहने लगी ताहि विस्त दसधं पर मोरि कि अग्नि गति होइ।” और रावण के मित्रक

१ यह दंडक पत्र का एक भाग है जहाँ से गादाबरी प्रकाशित हुई है। और नासिक से हो नीति पर है। पञ्चवटी के वर्णन में गाताहूँ जी ने ता रामायण में कुछ नहीं लिखा है किन्तु रामचन्द्रिका में उनकी महिमा को बतित है :—

“सब जान कही दुग की दुपरी कर्षी न रहे जहाँ पठ परी ।

निपरी नच नीच घटी हूँ परी अगर्व व अर्जन की सुरी ली ॥

अप चीष की घेरी कही बिकरी निबटी प्रगटा गुग्गान गरी ।

चहुँघोरन नाचन मुक्ति ली गुन धर जरी बनपंदपरी ॥

और एक पद्य कवि ने कहा है :—

मुनि तीरम संयुग बापु सुरी मयुरे महराम्बन से लपरी ।

करि कोइल आर कपागचरी चटवालि चरीर चिरे घसरी ॥

अनि निमन और प्रवाह ली महिमा त्रिदि बेह न जान ली ।

रमुनाथ कही जदे पनबुरी घनपण्य निर्दुपुर पंचवटी ॥



कर हास पूरने पर रामचन्द्र का बस पराक्रम बर्णन करती एवम् उम के संग एक परम सुन्दरी नारी होने की सूचना देती हुई इस ने कहा कि वही पुरुषसिंह रामचन्द्र ने मेरी यह बरशा की है— अर्थात् नाक फाट काट्य है, और इस ने मूठमूठ यह भी बोध दिया कि 'सुनि तब भगिनि करी परिहोवा। फिर इस ने चरत्पण के मारे जाने का हास कहा। अपनी करतूति इस ने कुछ भी नहीं कही। ये सब इस की महारियाँ थीं। कवि ने इस के महारपने का अन्धा विश्व खींचा है।

इस के अनन्तर मारीच गया है तथा सीताहरण हुआ है। ये अशोकनाटिका में रची गई हैं। रामचन्द्र त्रिविक्रमयोग में म्यानुक्त उन्हें इधर उधर खोजते कटायू से रावण द्वारा उन के हरे जाने का समाचार पाते तथा उन के शरीर का स्वयम् अन्तिम संस्कार करते, मार्ग में शबरी का जूट फल खाते माई के संग पम्पासर पर विराजमान होते हैं।

वर्तमान पेनायर को पुरातन काल का पम्पा बटाते हैं और कहते हैं कि माइसर उम बाबर प्रचारों का प्रसिद्ध स्थान था जिन्होंने रामचन्द्र की सहायता की थी।

पम्पासर के सुन्दर हरणों का संस्कृत कवियों ने बहुत मनोहर बर्णन किया है। कादम्बरी में बाणभट्ट ने उस का बड़ा सुन्दर विश्व खींचा है। बास्मीकि भी ने भी भारतस्य कायड के अन्तिम अध्याय तथा किष्किन्धा के प्रथम अध्याय में उस सरोवर की अन्धी कवि दरसाई है। भवभूति भी लिखते हैं —

“एतस्मिन् मद्फलमस्त्रिकायवपञ्चाधूसस्तुरुरुदयदुपुडरीका ।

याप्याम्मः परिपतनोद्गमानन्तराले संदृष्ट्वा कृत्यक्षयिनो मुखो विमागाः ॥”

और पोसाई भी ने उस की कृपा बों दिखवाई है —

“संत हृदय जस निर्मल यारी। पधि घाट मनोहर घारी ॥

जई तई पियहिं विविष मृगनीरा। अनु उदार गृह जाषक मीरा ॥

पुखन सपन झोट जल, बेगि न पाइय मर्म

मायाह्वम न वैभिय, जैसे निगुन मझ ॥

मुखी मीन सय एक रस, अति अगाव जल माहिं ।

जया धर्म सीशन्ह क, दिन मुख संजुत जाहिं ।

विकसे सरमिअ माना रंगा। मपुर सुपर गूअत बहु रंगा ॥

पोसत जल कुमुट फल इमा। प्रसु यिलोकि अनु करत प्रसमा ॥

पञ्चाक ' एक म्ग समुदाइ। देखत वनइ धरनि नहिं जाइ ॥

सुहर पग गन गिरा मुहाइ। जात पविक अनु लत बोझाई ॥

तात समीप मुनिन्ह गृह छाये। बहु दिमि काना कितप मुहाये ॥

१ चंगेरी कविता में जैसे कपाल पंहुक (Dove, turtle) दक्षिण का आदर्श माना जाता है वैसे संस्कृत कविता में चक्रवाक माना जाता है।

चंपक यहुत कदम्ब तमाला । पाटल पनम पगस रसाला ॥  
 नय पल्लव कुम्भिल तरु नाना । चंचरीक पटली कर गाना ॥  
 सीतल मंद सुगंध सुमाऊ । संतत बहइ मनोहर वाऊ ॥  
 इह इह कोकिल घुनि करही । मुनि रय,सरम ध्यान मुनि टरही ॥  
 पल्ल मर नम्र विलप मय, रह मूमि निरराइ ।'  
 पर बपकारो पुष्प अमि, नबहि सुसंपति पाइ ॥

कवि न रामचंद्र क सुख स ज्ञानू भी बचावित प्रशंसा कराई दे और कहतवाया है कि तुम अज्ञान कर्म स गद्गति क अधिकारी हुये हो —

“अल मरि नयन करहि रघुराइ । तात कम निज नै गति पाइ ॥  
 परहित यम अिनक मन माही । तिन कहैं मग दुखम कहु नाही ॥  
 तनु सजि सात जाहु मन धामा । दउं काह तुम्ह पूजन कामा ॥”  
 इतना ही नहीं बरन रामचंद्र के हाथ स कवि न ज्ञानू भी अल्पचित्त किया भी कराई है । आर काम जे कवि नै लिता है —

“कोमल पित अमि दीन दयाला । कारण यितु रघुनाम कृपाला ॥  
 गीष अघम स्वग धामिपमोगी । गति दिन्हौं जो जाघत योगी ॥”

तो न गीष क धामिपमायी ही जाने में अन्दर है और न उस क उत्तम गति ही जाने में । परन्तु रही इमानुषा तो निस्सन्देह यह ब्यालु और समझदार मातृक का ही काम है कि योग्य अधिकारी पुरुष को उस के मुद्यर्म का उचित पारितोषिक दे ।

त्रिष समय भी रामचंद्र माई सहित पम्पाधर पर विराजमान ये नारद भी भी पूज्य स वहाँ पहुच गये हैं और शिक्षाधार के अनन्तर जहाँ न रामचंद्र स पूजा है कि उस समय आन भरे विराह में कबो बापक हुये थे । रामचंद्र स उत्सवा कारण बढाया है । कारण बचन करने के पूर्व हम यह कहेंगे कि इस समय नारद ने त्रिष मास से प्रथम किया हो किन्तु उक्त काल में वे मोह में अचभुच पागत हो रहे थे कि भगवान के यह सन्त कहने पर भी कि —

“जेहि विधि होइहि परम द्वित, नारद सुनहु तुम्हार ।  
 साइ करय न ध्यान कहु, पवन न दूषा हमार ॥  
 कुनय मांग क्त ब्याजुत रागी, बेद न दंड सुनहु मुनि योगी ॥’

इन्हे यह नदी ज्ञान हुआ कि ज्ञान में अरयय बुझ जाता है भगवान हमें करना ही नहीं देंगे । कवि ने इन क माह का प्रारम्भ गूढ अर्थवादा है ।

१ इयके भार वा इय कामी का परिभा स लिखाइय —

माय पर मत्त माधर जर्मि ।

अब रामचन्द्र अचित कारका सुनिये —

“सुन मुनि कह पुरान खुति संता । मोह विपिन कह नारि वसंता ॥  
जप तप नम जप्तासय मारी । होइ प्रीपम सोपइ सब नारी ॥  
काम क्रोध मद मत्सर भका । इन्हि हरपप्रद वरपा पका ॥  
दुयामना कुमुद मसुदार्ई । तिन्ह कई सदा सरद सुसुदार्ई ॥  
धर्म सच्छर सरसीरुइ वृन्दा । होइ शिय तिन्हि दइइ सुख मंदा ॥  
पुनि ममता जयास बहुतार्ई । पलुइ नारि सिसिर रिनु पार्ई ॥  
पाप उलूक निकर सुखकारी । नारि निखिइ रजनी अविधारी ॥  
मुटि वस सोल सत्य मव मीना । वसी सम त्रिय कहि प्रवीना ॥

भवगुन मूक्त सुख प्रद, प्रमदा सय दुप पानि ।

ताते कोइ निवारत, मुनि में यह त्रिय जानि ॥”

कवि ने नारी से श्रुतियों की तुलना तो अर्थात् की परन्तु रामचन्द्र से रिश्वतों को अर्थात् साहित्यिक नहीं दिखलाई । स्त्री गुणवाचक कविरवर तथा स्त्रीमहल पुरण गण इसके कितना सम्बन्ध होंगे सो नहीं कह सकते । गोसाईं जी प्रमदा से ऐसे चित्रे क्यों थे ? क्यों करते हैं कि गोसाईं जी को मानु विद्योय शैशवावस्था ही में हो गया था स्त्री का सङ्ग चिरकाल तक रहा नहीं, पहरपायी हो जाने के कारण इन्हें उब भेषी की महिलाओं से संसर्ग नहीं हुआ । इसी से इन्हें रिश्वतों के सम्बन्धों की शंभ का सुमबर नहीं मिला और इसी से इन्होंने रिश्वतों की स्वर्ण निम्ना को है और रामचन्द्र से भी करार है । सब पुष्टिने तो यह समस्या बड़ी ही अटिन है । इस सम्बन्ध में शिश का जैना स्वयम् अनुभव है वैसा ही कहेया । परन्तु प्रमदा सब दुप पानि होने पर भी हमारी अर्थात् स्त्री तथा अर्थात् स्त्री ही कहसती हैं स्त्री जीवित रहने पर हमारे पारस में उस के आसीन हुये बिना हमारा सम्बन्ध नहीं हो सकता । रामचन्द्र को भी अरवभेष बड़ के समय सीता जी के आश्रम में रहने से उन की स्वर्ण की प्रतिमूर्ति<sup>१</sup> बनवानी पड़ी थी । आश्रमनुसार हिन्दू महिलाओं को ऐसा उब आसन प्राप्त है । और नारी रिश्वतों की शक्ति शक्तियाँ हैं । रामचन्द्र उस समय आरि-विरह से दुःखित थे अतएव वे उन्हें दुःखदायिनी कह सकते थे । परन्तु गोसाईं जी को तो उन की स्त्री ही उनके ईश्वर के सम्बन्ध होने का कारण हुई, उन्हें नारियों से ऐसा नाराज होना नहीं चाहता था-

रामचन्द्र से सपत्नी का लक्षण कहलवाने में गोसाईं जी ने यहाँ तक कहलवा दिया है—

“सुन मुनि साधुन क गुन जेत । कहि न सकहि सारद खुति तैते ॥”<sup>२</sup>

यह मानु का लक्षण बर्णन अर्थात् हुआ है ।

१ आश्रमानीय रामायण उत्तर काण्ड, पत्र २१ श्लोक २५, तथा सर्ग २३ श्लोक ७ श्रुतिसे ।

२ साधु का अर्थमा वेद म जानदि—भी गुण वाचक ।

कोई तो इस काण्ड के आरम्भ से लोटा कठिन काल मल कोम पर अयोध्या काण्ड की समाप्ति करते हैं। और मुगरी सुबदेन राज ने बात हीन धम दम मदि इमी दाहा से यह काण्ड समाप्त करके इस के रोप माग को किरिष्णा काण्ड में रख दिया है इसी काण्ड में उन्होंने ने बहुत काट खाँटी भी किया है और इमी में पात्रास्तर का भी बाहुभ्य है।

### किष्किन्धाकाण्ड

बाहि में दो श्लोकों में श्रीरामचन्द्र की बन्दना तथा राम नाम माहात्म्य है और एक सोरटे में श्री कारी जी का वर्णन है।

इनुमान जी के द्वारा श्रीरामचन्द्र और सुग्रीव ने मिठाई हुई है और तब रामचन्द्र ने बाहि को मार कर सुग्रीव को बानरों का राजा और बालि के पुत्र काण्ड को पुत्रराज बनाया है। बर्षा शत्रु के आगमन के कारण रामचन्द्र और सरमण जी ने प्रदर्वन पर्वत पर निवास किया है और सुग्रीव राज पाकर भोग वितास में प्रवृत्त हुये हैं। बयाकाल विप्लव होने पर भी सुग्रीव के रामचन्द्र साधन में प्यान नहीं देने से रामचन्द्र की खीर हुआ है। अन्तत सीता जी भी खीर में बानर समूह चारों ओर भेजे गये हैं। राह में प्यास से व्यथित होकर इनुमानादि के एक बिल में प्रवेश करने पर एक तरखिखी की सहायता से ये श्लोक समुद्र किनारे पहुँचे हैं और वही वनजोमों का अटाय के माई सन्ताति से भेजे हुई है और उसी ने टीक २ बताया है कि राक्षस ने सीताजी को लपट की अरुणोच्चाटिका में रखा है जिस वक्त हो वह समुद्र पार जा कर उन का समार सावे।

इस काण्ड की कविता बहुत ही सुन्दर और सराहनीय हुई है। इसमें कवि ने बर्षा और शरद ऋतु के वर्णन में अनुपमसूची उपमाओं की सही बांध दी है। उन का कुछ अर्थ यहाँ पर उद्धरण कर देना अनुपयुक्त नहीं होगा।

“हामिनि दमकि रह धन माहीं। पल की प्रीति यथा धिर नाहीं ॥  
 पुंद आपात माहीं गिरि जैसे। पल के बधन संत सह जैसे ॥  
 मिमिट = अल मरहि लक्षणा। जिमि सदगुन मञ्जन पहि आया ॥  
 हरित भूमि हन संकुल, समुक्ति परहि महि पंथ।  
 - जिमि पार्षद विषाद तें, गुन होई सद मन्य ॥  
 महा वृष्टि पति पुष्टि क्षिपारी। जिमि सुभ्र भये धिगरहि नारा ॥  
 देन्विपन अकपाठ मग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं ॥  
 बधुं प्रपन्न पन्न माग्य अर्ह लक्ष्य विमाहि।  
 जिमि कपूत के ऊपरें, कुल मटम नमाहि।  
 मरिना मर निर्मल जल माहा। संत हृदय जम गल मद माग्य ॥  
 विनु धन निमल माह अकामा। हरिजन इय परिहरि मय आया ॥

मुम्बी मीन ले नीर आगाथा । जिमि हरि मरन न एकहु वाधा ॥”  
इस कारण मैं मित्रता का भी बहुत उद्यम वर्णन हुआ है—

“जे न मित्र दुष होहि दुपारी । सिनहि विक्षोकउ पातक भारी ॥  
निज दुष गिरि सम रज कर जाना । मित्रक दुख रज मरु समाना ॥  
कुपय निघारि मुर्षय बसाया । गुन भग्नइ अबगुनहि तुराया ॥  
विपनिआज कर सत गुन नेहा । स्तुति कह संत मित्र गुन एहा ॥  
आगे कह म्हु यथम यनाइ । पाठे अनहित मन कुटिआई ॥  
आकर चित अहि गति सम भाइ । अस कुमित्र परिहरेहि भलाई ।  
सेवक मठ नृप कृपिन हुनारी । कपटी मित्र सूख सम चारी ॥”

इस प्रकार के आदि और अन्त की चौपाइयों के अतिरिक्त अन्य एक चौपाइयों को मु० मुखरेशनाथ ने गोसाईं जी हून होमा नहीं माना है । कोई उन्हें गोसाईं जी हत माने ना नहीं परन्तु उन में मित्र का यथार्थ साक्ष्य बर्णन किया गया है ।

श्लोको का कथन है कि इसी कारण से गोसाईं जी में रामायण की रचना आती थी थी है क्योंकि इसी में पहले-पहल आषी का बचन हुआ है ।

बाल्मीकीय रामायण में सीता जी के खाने के किये बानरों के लक्षण मेरे जाने का हास विस्तार पूर्वक किया हुआ है । उसक पढ़ने से पहले हमें धरमभा हुआ था कि जब वह बात मालूम हो गई थी कि रावण सीता को हर ले गया था तब सर्वत्र बानर क्यों भेजे गये । पीछे सोचा कि बानर और चारी का मांस खाने पर ही नहीं रहता । अतएव वह विचार कर कि कदाचिन् रावण सीता जी को कहीं अन्वत्र रक दिया हो चारो ओर बन्दर भेजे गये और रावण के खाने का हास खाने ही से इच्छित दिशा थी और बुबराक के सब बंधे-बन्धे बन्दर भेजे गये और उन्हीं में से एक को रामचन्द्र में आमी मुहिंका भी थी ।

### सुन्दरकाण्ड

आदि में दो रजोद्यो में श्रीरामचन्द्र और एक में हनुमान जी की स्तुति है । हनुमानजी इस किनारे से लखनऊर रास्ते में छुट्टा भी पपीका में पाव होते आयायायी राक्षस को समुद्र में बंध करते तब पार पहुँच कर सिरे पर बड़ के हाहा की शोभा देखने लगे हैं । किता बड़ा ही बँडा है । सागर मानो उठे चारो ओर से इबाये गोह में किये बँडा है और कबकछोटि की प्रमा बझापीय किये देती है । बँडा का बर्णन उद्यम हुआ है । हेगिये —

“वनक कोटि विपित्र मनिगुन सुंदरापन अति पना ।  
पट्ट हट्ट हाट मुपट्ट बायी पाणपुर पट्ट चिपि पना ॥  
गज पाज गज निहर पदपर रच पत्पनिह फो गनह ।  
पट्ट रूप निमियर जूय अनि यति सैन यरनत नहि यनह ॥

यन पाग उपयन धाटिका मर रूप धापी मोहती ।  
 नर नाग मुर गंधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहती ॥  
 कर्तु मल्ल दह विमाल सैल समान अतिवल गर्जती ।  
 नाना अस्वान्ह मिरदिं यद्दु विधि एक पकन्हि वर्जती ॥  
 करि मगन मट कोटिन्हि यिद्वतन नगर यद्दु दिम रण्ठती ।  
 यद्दु महिप मानुष भनु पर भ्रज पन्न निसापर मण्ठती ॥”

द्वि मसक सम्मान रूप बनाकर लंका की मुष्टिका द्वारा पूजा करत पर पर सीताजी को खोबत विनीतपण की भेंट का आनन्द पावे हनुमान की अयोध्यादिशा में पहुँच हैं । वही समय मन्डोदरी आदि के सब बहो रावण भी सीता जी को पुनः लान और बरान गया है । हमसे रावण के प्रति सीता जी का भाव और व्यवहार हनुमान जी पर पूरी रीति से विदित हो गया है । उन्होंने अपनी आँसों से देखा लिया है कि रावण सीता जी को किनसा सजाता है; वे रशमीरिह के ताप से कैसा सन्तत हो रही हैं । महादरी आदि पर भी सीता का स्वप्न भाव प्रगट हो गया है ।

एक महीन की अवधि दकर और निशाचरियों को सीता का पाप दिवान की आज्ञा से रावण बजा गया है । सीता जी न विज्ञाप करना आरम्भ किया है और वे अपने के लिये अयोध्या से आग मांगने लगी हैं । उसी समय हनुमान जी न रामचन्द्र की अंगूठी गिरा ली है और फिर प्रगट होकर आना परिचय द गीता जी का प्रबोध किया है । बाटिका विचल करने और रावण क पुत्र अप्सवामार का बप धरन पर मेघनाद द्वारा पकड़ा कर हनुमान जी रावण के पास लाय गये हैं । इसी दूर में आग लगाई गई है और वे लंका दहन कर लका छोटा भी से बिदा हो रामचन्द्र क पाप धाप हैं और न्होंने उनस सीता जी का यह संकेत कहा है — “अभो ! आपन मुझे क्यों मुजा दिया ? यह तो ठीक है कि आप स विदोह होठ ही हमने शरीर त्याग नहीं किया, पर करें क्या ! इन तैरों से बेकरा हैं । क्योंकि—

“विरह अग्नि तन तूज ममोरा । स्वाम जरे छन मोह मरोरा ॥

नयन अरहि मज निम हिन सागी । जरे न पाप दह पिग्हागा ॥”

और प्राग भी निश्चय तो कसे निहने !

“नाम पाहरन दिवम निमि, ब्यान तुम्हार कपाट ।

सोपन निम पद मंत्रिदा, आहि मान फेहि पाट ॥”

बस योगाई जी ! पाप बहुत कड़ा किया कि हम गंग से जान गीत भी क शरीर और प्राण की रक्षा कराई ।

द्वि मानु बहनों को नेता के मदिन रामचन्द्र मनुष्य दिकारे पहुँच है । उपर मन्डोदरी रावण को सीता जी के माथा देने के लिये समझाने पुमान लगी है और इसी समझान क कारण विनीतपण रावण से लान गाकर बड़े अन्ध से रामचन्द्र के बगवन्तन का मनोव्य करत रामचन्द्र के पाप धारे हैं और संकेत बनाने गये हैं ।

मारी खे बार रहा है और क्यामता देखने हो से हनुमान भी ने रामकन्न की मूर्ति का उस में आमास देला । इसी प्रकार दक्षिण का दरप देख कर रामकन्न विभीषण से कहने लगे कि देखो दक्षिण की ओर आकाश मेघ मंडित हो रहा है बरसा भी बमक जाती है और मधुर-मधुर गरज भी हो रहा है । विभीषण करते हैं कि नहीं छपाजिबान ।

“तद्धित न होइ न पारिद माणा ॥

लंका सिंहर उपर आगारा । तहँ एसकंधर केर असारा ॥

छत्र मेघ डंमर सिर धारी । सोइ जनु जलदधना अति कारी ॥

मंदोदरी स्वयन साटका । सोइ प्रमु जनु दामिनी दर्भका ॥

वाजहिं तासमृद्ग अनूपा । सोइ रय सरिस सुनहु सुरमूपा ॥”

यह सुन रामकन्न ने एक बाण बसाया और छत्र मुकुट तथा टाढक सब मूमि पर लोगों के देखते गिर पड़ा । सब समासद के हृदय में घासक समा गया कि क्या मारी मर्भर अशकुन हुआ । परन्तु रावण को भय नहीं । उसे रामकन्न ने मुसकरा कर बाण फटाया था, उसने भी विहंस कर कहा :—

“सिरो गिरे सतत सुम आही । मुकुट खसे कस असगुन ताही ॥”

पाठककृद ! कवि में शकुन अशकुन, तथा रवण का भी बहुत विचार रहता था । ये बबोधित समय पर सर्वदा शकुन अशकुन कराते गये हैं । लंका काण्ड में तो कई बार अशकुन हुआ है । रामकन्न की बाराठ जाने के समय और लक्ष्मी बमयाभा के समय भी शुरुहुन हुआ है । परन्तु बाबा समय शुरुहुन क्यों ? बाह कना लख । इसी बाबा में तो देव कार्यसाधन हुआ बुन्धी का मार हु हुआ जिस के निमित्त दुःखों ने मनुष्य शरीर धारण किया था । तप शकुन क्यों न हो ।

और भविष्य दुर्बलता लुबक दुःस्वप्न कैकेयी मरत भी और जिगटा न देता ही था ।

तार्ढक गिरने पर मन्दोदरी ने राम का विराट स्वरूप बखण कर क रावण को फिर समझाया है । पर वहाँ भी न सजता है । यह विराट का ध्यान अथवा लिखाना गया है ।

प्रातःकाल भोग भी रामकन्न की ओर से बचीरी गये हैं और रावण क यह समझा बहुत बाधासाधन हुआ है । भोग-रावण सन्बाद क्या ही मज्जेगार आनन्दप्रद और किताकर्यक है । परन्तु किरी-किरी के मन में प्राणिक नहीं है । क्योंकि महाराजको भी ममा में हुत इग तरह की अपेक्ष नाने नहीं कर सकना । इस रावणमा का निबम नहीं जानते । इस में कुछ नहीं कर सके । परन्तु जिदें अन्ध के पैर नहीं छत्र के गन्धर्व में छपेह होता है के प्रोकेवा राममूर्ति के बन को रमण करे । आत्र भी भारतवर्ष में एक ऐसा व्यक्ति है जिस १२ लोको की पछि की की मोरें लोको ओर से ओर करने पर अन्न खान से नहीं दिया सछी ।

अर मुद आरम्भ हुआ है । पहिले दिन हनुमान और अउद मे बयलगाका उहाई है । दुपरे दिन की उहाई में मेघनाद के हृय से लवमरा की पायल दाकर अगेत हुये हैं और

संभ्रम क बच सुनेन क आदिष्ट स हनुमान जी राते में मुनि मेघवाही बान्धनमि राक्षस का बच करत रात ही का संजीवन पत्र लाने हैं आर श्रीपति प्रयोग स सत्संग भी फिर रखरप हुए हैं । मही पत्र लाने समय अनजानते मरतमी के एक बाण मारने से हनुमान भी मूगल में गिर पड़े हैं और मरतमी न एक पृणाल सुतन पर महात्म्य प्रकाश किया है और कहा है कि :—

“तात गहक होइहि साहि जाता । काम नमाइहि हान प्रमाता ॥

चतु मम मामक सैत समता । पठवई तई अई हृपानिचना ॥”

सत्संगी के पावन हान पर गामाह जी न रामचन्द्राय श्रद्धा बरुन किया है इस प्रकरण की इच्छा श्रीपादों का लहर रामायणी लाने अरुनी बुद्धि प्रकटित कर अरु श्रीपाद अर्थ हान लगत हैं । कथन इनने ही पर सयोग मही करने हैं उन श्रीपादों के द्वारा कति न मानना प्रकृति का उभा बिष लीका है । नीचेर नि निनुल बलपारा महा पराक्रमी योद्धा कुम्भकथ अक्षय हा रामचन्द्र की सहा में लड़ने को बुद्धयुक्त में उपस्थित हुआ है और अक्षय हो गय बानरी सहा का बहारेन, मूर्खन और पराभिन कर दिया है । आज का युद्ध बहा ही मर्कट हुआ है आर आज ही पहिल पदन रामचन्द्र का घोर युद्ध करना पडा है । अज कुम्भकथ निहन हुआ है । यह गय का मूर्खि कर यह सुमीर का अंग में दाबकर ले बहा था ता मयन हान पर सुमीर ने उस की काध स बिच्छ कर उमकी नाक काट ली थी ।

श्रीपे दिन मेघनाद ने घोर संताप करके सन कपि दम ही को ब्यथित मही किया है परन्तु लक्ष्मण का मोहित कर रामचन्द्र का मां माय पींग में बंध किया है । एक आत्मवन्त में उसे मुग्धता मार आर उग्रहा पर पड़क उम सुमाकर लंका पर चेंक दिया है । वहाँ पत होने पर मेघनाद न पत्र आत्म किया है और यह समाचार मिलन से लक्ष्मण जी रामचन्द्र की आशा से आश्चर्य की साथ लंका बह कर कर बन हैं —

“जो तोहि आज यै यिनु आवउ । तो रघुपति सेयक न कटावउ ॥

जो सत संकर करहि सहाइ । तदपि हतउ रघुपीर दोहाइ ॥”

एह विषय के अनन्तर श्रीरामचन्द्र की मारी युद्ध करके मेघनाद कीर्णित को प्रन्त हुआ ।

आज पाँचवें दिन अग्निशयी अट्टरुनराक्षसी राक्षस लक्ष्मण रघुमर्षी में कबलीर्ण हुआ है । उसे देखते ही विभीषण मदभीत हो रामचन्द्र से बहने लगे :—

“नाथ न रथ नहिं तनु पदप्राना । पहि विधि अंतप गिपु दक्षयाना ।”

उगठे उर में रामचन्द्र न कहा है :—

“जेहि अय होय सो रथदन आना ।”

अर उम रथदन का काम बरुन काम लग हैं —

“मोरम पींगज जहि रथ पाका । मत्य मोन हृदयता दनाकर ॥

पज विषक दम परहित घोर । जमा हृता ममता ग्नु जार ॥



ईसमजन सारथी सुजाना । यिरसि चर्म संतोष कृपाना ॥  
 दान परसु युधि सक्ति प्रथंदा । पर स्थिजान कठिन कोर्दंदा ॥  
 अमय अथल मन त्रोन समाना । सम अम नियम सिखीमुख नाना ॥  
 कवच अमेद विप्र गुरु पूजा । पहि सम यिजय उपाय न दूजा ॥  
 सपा धर्ममय अस रय आक । जीत न कह न कतहु रिपु ताके ॥  
 महा अमय संसार रिपु, जीत सकै सो धीर ।  
 आके अस रय होई दृढ़, सुनहु सला मसिधीर ॥”

हमारे सब पाठकों को अक्षय-संसार-रिपु पर बबरताम करम के क्षिप्त ऐसा रथ प्रस्तुत करने का उद्योग करना चाहिये ।

अब रावण का मुद्द आरम्भ हुआ है । वह प्रबन्धकारों से नेत्र नेत्र कर अपि दल को कर कर करने लगा है । बानरी सेना भाग बली है । तब लक्ष्मण भी उसके सम्मुख जाकर गोर मुद्द करने लगा है । दण्डे भी शक्ति प्रहार से रावण ने भूशामी बना दिया है और इन्द्रमान भी दण्डे उग्ररामकण्डकेपाश टांसे हैं । मूर्खा विपत होने पर मे फिर मुद्द करने लगे हैं और रावण के रथ सारथी को नाश कर उसे भी बाण प्रहार से शम्भोने अन्त कर दिया है । और हमरा सारथी रथ पर बिठाकर उसे कर से मरा है ।

दूसरे दिन यह विचित्र किये जाने पर रावण अन्वेष मुद्द करने को उपरिबत हुआ है । इसी दिन पहिले पल्ल राम-रावण का विच्छेद संग्राम हुआ है । इन्द्र ने यह विचार कर कि बिना रथ रावण के साथ काम नहीं चलेगा अन्ना रथ मेला है । धाम का मुद्द बहा जनधोर और मन्वन्त हुआ है । रावण ने एक बार रामकण्ड के सारथी को दूसरी बार शेरों को भायल किया है । बाणों से रामकण्ड को तोष दिया और उन्हें मूर्च्छित भी कर दिया है । यह देख विभीषण ने दीहकर जत पर गदा प्रहार किया है । इन्द्रमान भी उस से का मित्रे हैं । वेधता भी मन्वन्त हो भाग बसे हैं । इन्द्र ने भी पराक्रम प्रकाश किया है । परन्तु रावणों में इन्द्रमानादि सब माल बानरो को मूर्च्छित कर दिया है । अन्त में कामन्त के ज्ञात से रावण पावत हुआ है और सारथी उसे रथ में बद्ध कर कोट के भीतर से गया है ।

छातवें दिन भी पूर्व दो दिनों के समान विच्छेद मुद्द हुआ है — रावण मारी मन्वन्त मुद्द करता और सरो को बर्बरित करता अन्त में रामकण्ड के दाब बध हो, यह कहता हुआ कहा राम रथ हनो प्रयाती प्रसंघनीन बीर गति को प्राप्त हुआ है । इस मुद्द का प्रहरण गोमान भी ने ग्नी प्रयासोग्नादिनी माया में बर्बरित किया है कि परते समय रोय लड़े हो जान ही चार मुत्रावें पड़ने लगनी हैं । मुद्द बर्बरण में बरानर हरिगोतिषा का लाना इसे और भी प्रोद्धार बना दिया है । मुद्द समय विमल्य हरन भी अन्ना दिगलाया गया है ।

अन्तर मंदोदरी का विमान रावण का शरीरसंस्कार विभीषण का राग्यामिषेक धीनारी का अग्निप्रवता, देवताओं की स्तुति और पुण्यविमान पर सरो के यह रामकण्ड का अन्त की चार प्रधान करना बर्बरित किया गया है ।

इस काण्ड में गोसाइ जी न युद्ध बरण बहुत ही उत्तम और विशद किया है। मित्यप्रति युद्ध की भीषणता उत्कर्ष कर क उससे महारोचक तथा प्रभावशाली बनाया है और इसमें इन्होंने अच्युत कर्मिण्यशक्ति दिखलाई है। इस विषय में बाह्यीक जी भी इनकी समता नहीं कर सके हैं क्योंकि उनके युद्ध वर्णन में प्रतिदिन उत्कर्ष-वृद्धि नहीं होती गयी है।

### उत्तरकाण्ड

शे संस्कृत श्लोको में भी रामचन्द्र तथा एक में शिवजी की बन्धना के बाद क्या आरम्भ होती है। उत्तर अयोध्या में रामचन्द्र-सूक्त माना प्रकार का शत्रुन हो रहा है। इधर भरतजी रामविरहसागर में निरावस्थ बचने लगे हैं उही समय हनुमान जी उद्धार के सामान राम शुभायमन समाचाररूपी अमृत्य रत्न शिव उनके पासही पहुंच गये हैं। फिर क्या था शोच के बदले सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया। अब बेर क्यों हो ? भरत जी माता आदि के अपने भीरामचन्द्र से मिलने को आगे बने हैं और भरतमिथ्याप होन क परबाल रामचन्द्र ने सके पात्र नगर में प्रवेश किया है। फिर उनका राजमाभिषेक हुआ है। स्वताको न वृषक १ स्तुति की है, पानरों की बिदाई हुई है, परन्तु हनुमान जी बही रह गये हैं। फिर रामराज्य बर्णन और नारो भाइयों के दो २ वृष<sup>१</sup> होने का हाल है। फिर समझादि आये हैं। भरतजी ने प्रश्न पर रामचन्द्र ने सन्त और असन्त का लक्षण बर्णन किया है। रामचन्द्र ने भक्तिमहिमा कथन द्वारा प्रजा को उपदेश दिया है। फिर वशिष्ठजी और भारद्वाजी ने वृषक १ स्तुति की है। अयमुगु डी की क्या राम-कथा महात्म्य कथन, सच्चिन्म रामकथाश्रवण, कागमुगु डीक्या अन्तर्गत गुह-माहात्म्य निरूपण और कसिदोष बरण किया गया है। फिर ज्ञानरीरक का बड़ा लम्बा चौड़ा स्तक है। अथ पात्रकाण्ड में मानस शरोवर का स्तक प्रसिद्ध है बसे ही इस काण्ड में यह स्तक विवक्षित है। इनमें ज्ञान भक्ति की विवेचना कराने भक्ति की प्रपाकता सिद्धताई गई है। इसी काण्ड में कवि ने अतना मठ प्रतिपादन किया है।

इस काण्ड के अन्त में एक श्लोक में अन्य रचना का कारण और इधरे में रामायण पाठ का रचन बताया गया है। इसमें कागमुगु डी की पूर्वक्रम कथा वर्णन में संस्कृत का एक दशाष्टक भी है। कवि न द्म काण्ड में तथा लडा आदि काण्डों में अन्तपुराणों और देशताको से रामचन्द्र की विशद रचुनिर्मा करार है और उनमें अन्न पाण्डित्य और कर्मिण्य शक्ति का पूरा परिचय दिया है और प्रत्येक रचुनिर्मा में विनम्रण आनन्द प्राप्त होता है। रामचन्द्र का मग-निराग शौच<sup>१</sup> में भी अनेक स्थानों में बर्णन हुआ है। उनमें भी उन्होंने अतनी विनम्रण वृद्धि की बही पनाकारी सिद्धताई है।

१ रामचन्द्र के सब और बुदा धान जी के मण्ड और पुराण सयमग के अगर् और विषडु पयम शत्रुम क मुवाडु और शत्रुपानी।

इस परिच्छेद में हम लोगों ने सीतास्वयंवर का दृश्य बताया है, रामचन्द्र की पितृमूर्ति का पूर्ण परिचय पाया है। परन्तु शेक्सपियर का Merchant of Venice (दुर्लभ बन्धु) <sup>१</sup> में पोर्चिजा के स्वयंवर बहान में बतेजियो के सम्पूक खोलने के समय तथा उस के पूर्व पोर्चिजा के बित के भाषादि को तथा सीता के स्वयंवर में रामचन्द्र के अनुप तोड़ने के समय सीता के बित के भावों तथा उन की माता के बिचारों को तुलना की तुला पर खाने से शेक्सपियर का पक्का बहुत ज्यादा उठ जाता है। एम क्रिपशियर ने राम की पितृमूर्ति के सामने काशीखिजा का पितृमेम क्षया में बा बैय्या है। उन के अन्य नाट्यों के विशेष विशेष वर्णनों का भी इस रामायण के तादरद प्रकरणों से तुलना करने पर गोस्वामी जी की खेबनी की प्रशंसा किने बिना नहीं रहा जाता।

हमारे अंगरेजी जाननेवाले पाठक दागों कबियों के ग्रन्थों का स्वयम् पाठकर उस की बिबेचना कर सकते हैं और केवल हिन्दी भाषा के जाननेवाले प्रेमी लोग भी 'सङ्गविज्ञाप' प्रेस में प्रकाशित दुर्लभ बन्धु तथा पुरोहित गोपीनाथ कृत शेक्सपियर के नाट्यों के अनुबावों को देख कर अपना सिद्धान्त स्थिर कर सकते हैं।

सुप्रसिद्ध छात्र प्रोफेसर टी प्ल बास्वानी ने साधारण रीति से गोसार्ई की तथा शेक्सपियर की तुलना करते हुये कहा है कि ये काम्यकला में शेक्सपियर से कम नहीं हैं और उस अलक ब्रह्म के लखने में जो राम कृष्णादि नामों से कहात हैं, भाषा में उन से बाकी मार ली है। इस बिबेचना में ये उन से बड़े बड़े हैं। ये जगता के जीवन के एक अंश हो रहे हैं। कवि की समीकता के प्रमाण में यह एक उपलब्धि की पूजा-मोट कही जावनी। शेक्सपियर दंडितवर्ग के कवि हैं, परिभ्रमी दुःख-नीहित भार कमिलाया पूर्ण सखाही बनता के नहीं। अपने निजी जीवन व्यवहार में बा काम्य बिचार में यह प्रजा पक्षपाती नहीं है। तुलसीदास ने अपने जीवन और मत्रन में तीन बुतियों और मत्र गुत्रों की आध्यात्मिक उन्नति में छात्रामूर्ति बिबेचार्ई है।

हम कहेंगे कि उषु क गुणों के साथ गोस्वामी जी पठित-मंजरी के भी महामात्म्य कवि तथा महारामा हैं। इसी जीवन के पाठ में पाठकण्ड इस का पूरा प्रमाण पावेंगे।

उषु क समगोत्रा की कहते हैं कि इसमें तनिक भी समेह नहीं कि काम्य-जपत में साशे, प्रिरसोही प्रातिव मिबदन शैकसपियर इत्यादि उगत प्रसिद्ध महाकवियों की तुलना में हमारे मिय महाकवि तुलसीदास जी का पर भी हकीस ही रहेमा, उकीस नहीं।'

यह सन्तिस्तर बिपय बिबरण देखने से यह भी भाग होता है कि इस ग्रन्थ में कवि ने मिन्टम के समान धर्म और अयम्म में मुद्ध कराकर धर्म की बिपय कर्तार्ई है क्योंकि उल्लम कुल में अन्म खेडर एवम् गिया <sup>२</sup> पल लप और पुबवार्थ में आर्षों से किग्री प्रकार कम न होकर

१ भारत के स्वयंवर बात्रे बिबाद किमी न किरी शर्म पर निर्मर रहते थे। हम अंगरेजी भाटक में भी बिने ही एक शत बा स्वयंवर बा आर्षार्थ बीबा गया है।

२ सुगत है कि घासी गिदला तथा लाराबक के प्रभाव स राखन ही ने बेदों का परबेदर किया था। वार्ई २ उन वेदों का माप्यकार भी कहते हैं

राज्य सदा पाप ही में रत रहा एवम् अपने अनुगुणों का सबका दुष्प्रयोग करता रहा और उसकी प्रजा भी प्रायः उसी का अनुकरण करती रही अतएव जगत के ज्ञेयों के लिये उसे यथोचित दण्ड दिखाना बहुत उपयुक्त हुआ। सुपापों में भी कोई अपर्यय का लेश होने से कवि न दंड द्वारा उस का भी परिशोधन कराया है।

हिन्दु जबकि 'परेडाइस साय' में छन्द की प्रीकृता, माया की गम्भीरता तथा रस की पूर्णता होने पर भी वह प्रिय केवल पुनरात्मकों की खोमा बड़ा रहा है और देश का धन नहीं है यह 'रामचरितमानस' की पुस्तक हिन्दु समाज के घर पर विराज रही है एवम् रामा एक लकी इसे अपनी सम्पत्ति मान रहे हैं।

जैसे बहुत से समालोचक होमरकृत 'इलियड' बर्णित द्राव के युद्ध की रूपक मानत हैं।<sup>१</sup> वैसे ही कोई-१ रामकथा को भी रूपक मानने को उत्पन्न होत हैं। कोई कथत है कि राम में 'रम धातु तथा सीता में 'सी' मानु होने से रामायण रूपिकार्थ का रूपक है। सायन साहब इसे आर्यों के भारतवर्ष के दक्षिणप्रान्त में आक्रमण का रूपक मानते हैं। बीरर साहब को इस में भारतवर्ष के दक्षिणप्रान्त तथा सत्रा में आर्यगन्धता के प्रकार तथा प्रसार का रूपक दीक्षता है। परन्तु रामायण से ये बातें सिद्ध नहीं होती। उस में हमलोग यह कही नहीं पाते कि रामचन्द्र न दक्षिण का सत्राविजय करके वहाँ कोई आर्यगण बसाया था—वहाँ की सन्धता में कोई परिवर्तन का इति भी थी। और रामचन्द्र द्वारा लंकाविजय के अनन्तर सुगमय पाकर आर्य आदरों तथा श्रमिण उपवेशित सद्रम्य तथा सदाचारों का दक्षिण में जो प्रचार हुआ तो हम नहीं समझते कि इसमें कौन कदा से पुन पका। लक्ष्मण देहपारी रामचन्द्र इन सब आर्यों का धावन होना स्वीकार करने में क्या अपरिणत है। जो हो हमलोग हिन्दु इसे रूपक की दृष्टि से नहीं देखते। यदि ऐसे विचार बाने होने भी तो सद्रम्य में एक। हम तो ऐसे रूपक-निष्पन्न कथनवालों की केवल बुद्धि की प्रशंसा करते हैं।

इसी गम्भीर में सुविख्यात बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय ने रचरचित 'ब्रह्मचरित्र नामक ग्रंथ में लिखा है कि हम समझते हैं कि चेन्ना करने से भूमंडल में जो युद्ध है वह गण इस लक्ष से उठा दिया जा सकता है। उन्होंने ने यह भी कथा है कि 'एक बार ईवी में हमलोगों न विख्यात कश्मीरस्थिण शृण्वाचन्द्र को रूपक कहकर उठा दिया था एवम् एक बारक न इतिहासकलिण प्लासी के युद्ध के सम्बन्ध में यह रूपक बोला था कि पत्र माप उत्रागत जो अग्नि वह कनीय गुणवुन (बनाएव) के द्वारा प्रयुक्त होने से सत्रा अर्थात् जलम रामा परामृत हुआ।'<sup>२</sup>

१ मिस्त्र ह्य एक ग्रंथ।

२ The surge of troy is but a repetition of the daily surge of the east by the solar powers that every evening are robbed of their brightest treasures in the west. Maxmulary Cox's Tale of Ancient Greece.

३ शृण्वाचरित्र, प्रथम सर्क, अध्याय ६ दृष्टिये।

एक साहज सोच भी इस में सहमत नहीं हैं। आर्थर मेकडानेल साहज रामायण को स्पष्ट नहीं मानते। उन का कथन है कि यदि भारत के इतिहास से आने ही एक रामायण की कथा समाप्त हो जाती तब तो यह खासा ऐतिहासिक निवरण हो जाता क्योंकि प्रथम के उतने अंश में कुछ मामलों तथा स्वाभाविक बातों बर्णित हुई हैं एवम् इत्यादि दरारय रामायि सुप्रसिद्ध तथा पराक्रमी रामों के नाम हैं और वे नाम कियों में भी पाये जाते हैं। प्रोफेसर जेम्स भी इसमें स्पष्ट का आभास नहीं पाते। गुच्छस कांगरी के प्रोफेसर बालकृष्ण जी एम-ए-कृते हैं कि रामायण कोई कश्चित पुरुष नहीं हैं किसी समय निरखन वे भारतवर्ष में विराजमान थे और निम्न सुक्तार्थों से उन्हें हम लोगों का जन्माद्य किता है।

वस्तुतः रामायण की सृष्टि कवि की कल्पना से नहीं हुई है। आप ऐतिहासिक पुरुष हैं। स्वर्बरीय इत्यादिपुस्तक में एकल धर्म-गुरुकुल एक समय जन्म भारतवर्षर आपने पूर्ण का पालन प्रजा का संरक्षण और सुशासन एवम जगत का हितसाधन किया है। आप आदर्श बालक, आदर्श युवक आदर्श पुत्र पति आता रामा थे। आपके स्वका र्व द्वारा प्रदत्त शिष्ट शिष्याओं का प्रभाव आज भी हिन्दू समाज में व्याप्त है। आप प्रत्येक हिन्दू के हृदय में जाइ किसी रीति से हो विराजमान हैं। आप यदुत्थ के घर पर क आदर्श ब्रह्मचर्य हैं। जिस घर में आप के आदर्श की श्रितानी ही पूजा होती है कितना ही आदर्श और अनुकरण होना है वहां उतना ही शक्ति-मुख राज्य करता है। भारतवर्ष में आप के करोड़ों स्मारक विद्य हैं। आप के गुरुगान के सहस्रों प्रबंध वर्तमान हैं। यही क्यों? मेक्सिको (Mexico) में भी राम-मीना का जलन होना है। दक्षिण अमेरिका (South America) के पेरू क ब्लेन्ड रामा गो इन्हीं के घर से आना सम्भव जोड़ता है और आप की याद में ब्राह्मणों की नाई एक उरख मनाता है।

रोमनगर यद्यपि रामकुल का बसावा कहा जाता है तथापि कितनों का विचार है कि किसी राममठ भारतीय या र्व ने उय नगर को बसाना है, जैसा कि पूर्वोक्त बालकृष्ण जी ने भारतवर्ष क इतिहास इतिहास (इ. ५) में लिखा है। जान जाने रामकुल ही कोई रामदास हो या वह नाम ही रामकुल आदि का अन्वय हो।

यही नहीं, बल्कि विदेशीय परिचित महात्मा यह भी कहने को तैयार हैं कि रामायण केवल हमारे ग्राम्य का अनुकरण है। परन्तु इतिवत् बर्णित कथा में तथा रामकथा में जति समता है तो कर्तव्य गती कि कुछ दोनों प्रबों में रही अन्वय के कारण ही हुआ है एवम् इतिवत् में पुत्र न अनिष्टीय क शिष्य अस्त्रारण कथन भेजा है और रामायण में वचन ने अपना रथ ( एवम् बाश्मीय के अनुसार शस्त्र भी ) रामायण की सेवा में लिखा है।

परन्तु बर्तनैव कल्पन नहीं प्रीति के कट्ट में लगी मुक्तज्ञानगद् से समक विता रही है और यहाँ शीतली प्रतिविवाग ताव स गन्दा अशोकादिना में बैठी अशुभित मैथी से शशोक अशुभक कर रही है। बाल काण्ड तथा अयोध्या काण्ड बर्णित फलानों का एवम् अन्य

अण्डों की उपयोगी बाने और शिष्याओं का उस में लयमान भी बचन नहीं है। उस में केवल युद्ध ही युद्ध है। मृत्यु ही में नहीं बरन् स्वर्लोक में भी उस युद्ध का प्रभाव होता रहा है। शूय के पक्ष पर बृहस्पति (Jupiter) तथा मीथ के पक्ष पर देवगानी (जूनो Juno) हैं।

यदि दा प्रबंधों में दो एक बानों के मिलन से एक दूसरे का अनुकरण क्या जाय तो हम समझते हैं कि मंत्रिकता का नाम ही संसार से विलुप्त हो जाय। आधर मैकडानल साहब भी यह स्वीकार करने को तय्य नहीं हैं कि रामायण बचन में यूनानी लेखों का प्रभाव पड़ा है। साहब का लक्ष मीथ उद्घृत कर दिया जाता है —

Professor Weber's assumption of Greek influence in the Story of the Ramayan seems to lack foundation. For the tale of abduction of Sita and the expedition to Lanka for her recovery has no real correspondence with that of rape of Helen and of the Trojan war, nor is there any sufficient reason to suppose that the account of Ram bending a powerful bow in order to win Sita was borrowed from the adventures of Ulysses. Stories of similar feats of strength for a like object are to be found in the poetry of other nations besides the Greek and could easily have arisen independently — A History of Sanskrit literature by Arthur A Macdonell M A Pp.307-8

## अष्टम परिच्छद

### रामायण में ऋटियों का आभास

सुनते हैं कि इस का मुख्यफल बहुत से विज्ञानवी पाठकों को दृक्कर प्रतीत नहीं होता। परन्तु इतिहास के श्रेणियों को यह मुख्यध्यान आरोपक क्यों लगता है। यह बात हमारी समझ में नहीं आती। इसमें भी तो अनेकगिरी घटनाओं की मरमर है। इसमें बेवियों तथा देवगण रणरथ में आकर बहती और बुढ़ेया की ओटों में समन दस की सहायता करते गये हैं। निहत योद्धाओं को रक्षामूर्ति से उठा कर आकाशमार्ग से से से जाकर सन के प्राणों की रक्षा तथा शस्त्राघातजनित घटों की चिकित्सा कर उन्हें हृष्ट-पुष्ट करते गये हैं। देवराज और देवराज भी पक्षपक्षों से हुए रथों पर, त्रिभु के दोनों सारी पूष्णी को एक वेप कर छूटे से स्वर्ग से उधर दो एक बार रक्षण में पहुँचे हैं। वा ईडा पर्वत पर बैठकर रसास्वीका की बहार देखते गये हैं। देवराज ने प्राणिकप्ररक स्वप्न को मेरुकर अयमेमनन को मुद्र में प्रहत कराया है और मिनवदिनी को पित्रकर शान्तिर्मन भी कराया है, एवम् अविनीत्र के लिये शस्त्र भी पित्राया है। भूकम्प बहुराहार विद्युत्पात तथा केन्दुउदय द्वारा लोगों को भवनीत करते गये हैं। योद्धागण अरुणरथ के सिवाय बड़े २ अरुणरथ बड़े २ कर प्रतिद्वन्द्वियों का माया तोड़ते और अड्ड छोड़ते गये हैं। बस्तिप्रदान तथा इवन आदि भी भी कभी नहीं हुई है। यन्त्रिहास के प्रायस होने पर ब्रह्मानी राजा ने विज्ञाप कलाप भी किया है एवम् वेप बुलाकर चिकित्सा भी कराई गई है। ये सब बातें तो साधारण मनुष्यों के मुद्र में होती गई हैं और यहाँ ता मोहाई की के बोधे ही अनेकगिरी से। तब मुद्र भी कुछ अनेकगिरी रीति से बहान करना उचित ही था। और यदि देवराज आदि के आकाश में जाकर यहाँ से अरुणरथ बरवान की बात अनेकगिरी जान अष्टिक होती हो तो इस की आलोचना के समय वे लोग प्रायुक्त आकाशयान (Aero-plane) को बेनी क यामन पक्ष कर बैठें कि आज बहद के बीरपु गव योद्धागण उस से क्या २ पदार्थ और कहे, अनेक शत्रुओं पर बरसात हैं। सम्भवतः उस समय भी कोई ऐसा ही जान काम में लाया जाता होगा।

कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि राजरा का अक्षय कम कर देने से मुख्यध्यान पीडा हो गया है। अक्षय जैसे कम हुआ है यह तो वे ही लोग जानें या कि वह पाठक स्वयम् विचार करें। हम तो यही कहेंगे कि दंभ का विषय गोगार्ड भी का मनोव्यक्त नहीं है। प्राचीन दंभ बन्धित क्या के आचार पर ही दृष्टों न इस की रचना की है —

“मुनिर्हि प्रथम हरिकीरति गाइ। तंदि मग बलन सुगम मोहि भाइ ॥”

केवल रचना स्वर्न वंग से हुई है। अतएव घटनाक्रम में प्रमेद हो बर्तनशैली में विनिब्रता हो परन्तु मुख्य विषय में बंध मेर हो उभना था। और वास्वीवीय ए जो हम

मुद्रबलन में मिलता पाई जाती है तो इस का कारण ऊपर ही क्या या सुना है कि इन्हों में उत्तरोत्तर मुद्रोत्पत्ति का सत्य रखा है चार यह प्रथम उस का अनुवाद भी नहीं है।

गोसाईं जी किसी अन्य स्थान में अपने भावनों का गुणोत्कृष्ट दिखलाने के लिये उपनायकों को नीचा दिखावाये हों परन्तु उस मुद्रप्रकरण में यह बात कदापि नहीं कही या मन्नी।

पाउण्ड होमरद्वय परम प्रसंख्येय इतिहास की ओर समिक दृष्टि कीजिये। उद्यमें भी निरन्तरि मुद्र की उत्कर्षता होती मद्र है। उस का नाटक यूनानदेशीय बीरवर कविनीत्र है। उस क विगड़ी इस का प्रधान योडा द्वायनधर-निवासी प्रायम का पुत्र महाराजमी हेक्टर है। वह मुद्र भी एक परम सुदरी हेक्टर के इरलान के ही कारण उठ खडा हुआ है। उस काम में जब कबिलीत्र स्वप्रदत्त शस्त्रों से समित हो रणक्षेत्र में घातुत हुआ है, उस समय अपने प्रथम क नायक का उत्कृष्ट बदान क लिये हेक्टर ऐसे बीर को जो कभी मुद्रक्षेत्र में साहसहीन नहीं दया जाता था जिसे रणकीडा ही आनन्दप्रद प्रतीत होती थी और जिस की यही अभिलाषा थी कि प्राणविवर्जन हो तो देशहित साधन करत रणभूमि में ही हो होमर ने एक महाअधर के समान रूप से विमुक्त करा कर मगा दिया है। हा कवि ने सगरी और प्रकृति में कडा प्रत्याभवावा है प्राण क बाहर लडा हेक्टर विचार कर रहा है कि इस मुद्र में पीडा हो नहीं दिखला घटत परन्तु अप कदाहित साधन किस प्रकार से होगा। मुद्र करन ही या रथि करने से। इतन में कबिलीत्र निद्र का पटुपना है। उसे देखते ही हेक्टर को होमर कसे मवाते हैं और कबिलीत्र को उग क पीडे कसे दौडाते हैं; चाप लीन स्वयम् दस लीजिये।

'Thus pondering, like a god the Greek drew nigh,  
His dreadful plumage nodded from on high  
The Pelian Javelin in his better hand  
Shot trembling rays that glitter'd o'er the land;  
And on his breast the heavy splendours shone,  
Like Jove's own lightning or the rising sun.  
As Hector sees, unusual terrors rise,  
Struck by some god, he fears recedes and flies;  
He leaves the gates, he leaves the walls behind;  
Achilles follows like a winged wind.  
Thus at the panting dove a falcon flies  
(The swiftest racer of the liquid skies)

ॐ

ॐ

ॐ

With open beak and shrilling cries he springs.  
An' aims his claws and sports upon his wings



No less fore-sight the rapid Chase they held  
 One urg'd by fury one by fear impell'd  
 Now circling round the walls their course maintain  
 Where the high watch tower overlooks the plain,  
 +                    x                    x                    x                    x  
 By these they pass'd, one chasing one in flight  
 (The mighty flew, pursued by stronger might)  
 Swift was the course no vulgar prize they play,  
 No vulgar victim must reward the day

x                    x                    x                    x  
 The prize contended was great Hector's life.  
 Thus three times round the Trojan wall they fly  
 The gazing gods lean forward form the sky

इससे ऐसे प्रसिद्ध महाकाव्य में अपने नामक की उत्कृष्टता प्रदर्शन के लिये हेक्टर के साथ और की बेटी पुर्णति कराई गई है, युद्ध के समय में उससे तो ही बार बार करना पना है और वह भी सर्वथा निष्कल । रथारथ में मृत्युवादी होने पर जो उस की पुण्य कराई गई है उस की बात तो म्यारी है ।

और यहाँ मोसाई की ने राबल के गले में विषम की माता न प्यलाई है यही परन्तु उसे सर्वत्र वीररक्षण रथ-मन-मत, युद्धमय और रथप्रतिष्ठा देखलाना है; उसे संग्राम क्षेत्र से कभी पराक्रम नहीं कराया है; उसका बल विक्रम तथा बुद्ध-वीर्य प्रगट कराने में कहीं भुक्ति नहीं की है । उसके हाथ से बड़े-बड़े योद्धाओं को परयावर को एव अपने प्रमु-युवक नामक को भी मूर्च्छित कराया है; मरते समय भी उससे कटक का संहार करना है और उसके मुख से बड़ी कहलवाना है कहां राम रन हर्ना प्रबारी । उसी को बौन गई उस के पुत्र के हाथ से भी अनन्त-वज्रकारी धीरकमल की को जिन्होंने अनुपपन्न में अपना पराक्रम को वर्णन किया था कि—

“जो तुम्हार अनुमासन पायउं । कंतुक ह्य प्रसायड ठठायउं ॥

काँच पट जिमि डारउं फोरी । सकउं मेह मूलक ह्य होरी ॥”

मूर्च्छित कराकर भी रामकन्द से मारी विलाप कलाप भी कराया है । एक राबल का वर्णन कम काम की साम्रज्जा इन पर कसे हो सक्ती है और मुझ शिपिलता का दोष तो इन पर आरोप हो ही नहीं सकता ।

माउस हाइब ने लिखा है कि जैसे—‘पेरी टी जुम्सी’ नामक प्रब में स्वेग्नर के विवर में कहा जाता है, तुलसीदास ने भी तुल्यन्त मिलाने के लिये शब्दों में बाट-दुष्ट और उनका अन्तर करने तथा उनका अन्वय उन्वय में कभी संभव नहीं किया है, कभी किसी

अमारे शब्द का माया ही मरोह दिया है कभी किसी की पूछ ही ऐंड सी है और कभी किसी को अन्य स्थान से ताड़ मोह डाला है।

सामन्तर तथा निरदरेस मेष की गबारी बोलबाल की माया 'हिन्दस ह्य मंत्र के अमरेयी पात्रों को शिकना बकित करती है उस से बड़ी अधिक हिन्दू-पाठक-रन्द माया के ऐसे विषयक ज्ञाता के एव मन्मानी काम से बकित होत है।'

इन के शब्दों के तोह मरोह और करि कौट से हिन्दू पात्रों को वहाँ तक आरभ्य होता है इस की हमें खबर नहीं। और हमें उस अज्ञाने शब्द भी कम मिलते हैं जिन की ऐसी सुरक्षा हुई हो। हों ' न बुकान्त मिलाने के लिये लघु को गुह एवन् गुह को लघु अवश्य करते गये हैं। परन्तु वहाँ इन्होंने ऐसा किया है वहाँ सर्वथापारस्य से उस क अर्थ समझने में कष्टिनाई नहीं होती। भारतीय अन्य बकि मी आकरअध्यातुकुल ऐसा बाद-द्वन्द्व किया करते हैं जिस में श्याग बकि-स्वल्पम्' कृत है। अब तक ऐसा करन से बकिना का अर्थ समझने में बाधा तथा कठिनाता न हो, अथवा उस का सीधमें कष्ट न हो तब तक इन स्वतन्त्रता से काम उठान में कोई हानि नहीं है। और वाहव ही के अथनामुहार इस रीति के तोह मरोह की प्रथा अमरेयी लेखकों में भी प्रचलित है।

वाहव बहादुर २६ भी लिखत हैं कि कई पुराने प्रचलित शब्दों का बारम्बार प्रयोग करता तथा अरण्यमत पदपङ्कज आदि आधुनिक योरपदेशीय लोगों की रचन क बिरद है; परन्तु 'होमर' के काम्य में तथा 'म्लोपसंग' इत 'मसीहा' में भी इसी प्रकार के विरोषणों का बारम्बार प्रयोग पाया जाता है।<sup>१२</sup>

1 As has been said of Spencer's in 'Faries D'Oniney' Tulsidass never scruples on his own authority to cut down or alter a word or to adopt a mere corrupt pronunciation to suit a place in his metre or because he wants a rhyme Sometimes he twists off the head or the tail of the unfortunate vocable altogether Such vagaries being unconsciously requoted by the genius of the language are no more puzzling to a Hindu than the colloquialism of Sam Weller or Mrs Gamp are in De-ken's work to an English reader, —Gross Introduction to the Translation of Ramayan P XVIII published by Ram Narayan Lal

2 the constants repetition of a few stereotyped phrases— Such as lotus-feet, streaming-eyes, quivering frame—are irritating to modern European taste, though they find a parallel in the Stock epithets of the Homeric poem and still more striking one in Klopstock's Messiah, where similar expressions are for ever recurring in wearisome re-iteration F S Croves's Introduction to the Translation of Ramayan P XIX published by Jam Narayan Lal Ibid P XX.

साहब बहादुर को 'कमल कुमोदिनी कालि, जबास बरु मधोर चाउक, हुंस आवि को उपमाएँ भी पीकी प्रतीय हुई हैं आर मे कर्त हैं कि इन उपमाओं को सुनकर देशीय महाशय आनन्द से सज्जत पवते हैं, परन्तु विदेशियों के कणकुदुर में ऐसी उपमाएँ नीरस और पीपी सपती हैं' एसा होना सम्भव है। परन्तु एक दश के कवि अपनी कवितारचना में स्वदेशियों की छवि एवम् स्वदेशी रीति के अनुसार ही उपमावि का प्रयोग करते हैं और उसी में अपनी योग्यता और निपुणता प्रकट करते हैं। इस से उनकी कविता में किसी प्रकार का रूप नहीं आता। भारतीयों को भी golden hair flaxen hair swan neck azure eyes इत्यादि की उपमाएँ सोहाबनी और मनमावनी नहीं सपती तो इच्छे कया बर्षपूर्व मिस्त्र आदि की रचना अप्रशसनीय हो सटनी हैं। अतएव पूर्वाक्त उपमाओं के प्रयोग से पाहे वे विदेशियों को अधिकर हो वा नहीं—इन की प्रतिभा में भयना नहीं लग सज्जा।

और बैररेड एड्विनपीबस साहब लिखते हैं कि "कमी मोसाई" उपमाओं के वन में घूमते २ घूम हो जाते हैं और बहुत दूर तक निकल जाते हैं, पर कया चन्द्रमा में कर्लक नहीं है ? हा ! किर्लक तो केवल ईश्वर ही है परन्तु यहाँ चन्द्रमा के गिरीच्छक में एक कपुचोप भी है। क्योंकि निशिनाय को कमी उज्ज्वल वास्तों की ओट में पीने-पीने जाठ देखकर और पुनः बसनागन में पूर्ण प्रमा प्रकाश करत हुवे शोभायमान पाकर जैसे बिल आइसादित होता है, वैसे ही मोसाई की को असौकिक विद्यत उपमाओं के वन ही में खड़ी घूमते और फिर बाहर जाठ देखकर मन मुग्ध आर आनन्दित हो जाता है। परन्तु न एकको चन्द्रमा की वह कटा ही अपलोडन करने का सोभाग होता है और न सब कोई मोसाई की के उपमाविगिन में अमण की बहार ही का यथार्थ आनन्द अनुभव कर सज्जा है।

और जब हमारे बैररेड साहब को मोसाई की का उन्मादन में घूमना ही सोहानन नहीं लगता तो 'रक्ष्य सी मुमन बरसना' कवे रोबक हो सज्जा है ! परन्तु किस सुबोम बैररेड साहब को मोसाई की का स्वभाव एवम् रचनादि की अधिकारण नाते उत्तम और सुन्दर प्रतीय हुई हैं यदि उन्हें 'उन्मा के वन में घूमना आर 'मुमन बरसना' रोबक नहीं हुआ तो इच्छे उन में रूपण आरोरण करना उचित नहीं और यदि कोई रूपण लपाने भी तो उन्हीं के कबनानुसार कया चन्द्रमा में कर्लक नहीं है ! हम ता मोसाई की के नाते उन की सपदा प्रशसा ही करेंगे।

बहुत-से लोगों का यह भी कपन है कि इस ग्रन्थ में अन्वय्य कथाओं का बीच २ में आना और उनका एव सज्जा बीडा विवरण पारवाय वैशियों को आरोपक प्रनीत होता है। यदि इस का सत्य सैक उगाखानों पर है तब ता आरोपक होना ठीक ही है। परन्तु ऐसे उपाखानों का रामायण में पुगाने का दोष मोसाई की क नापे नहीं मडा जा सज्जा। हा, महन बदन तथा प्रनापमानु आदि का जो कई एक उगाखान गोरगामी की मे स्वयम् रामायण में लिखा ८ विदेशियों का रोपक हा वा न हा परन्तु हमारे देशीय कपुचर्ग उनके पाठ में कम आनन्द नहीं पाठ और व सचमुच उल्ट-तथा आनन्दप्रद भी हैं। इसके निराय मव महाकाव्यों में न्यूनाधिक इग प्रचार की उरुचार्ण पाई जाती हैं। इतिवद भी

इससे खाली नहीं है। उपासकानों की बात हीन कहे, नद प्रथ कथाकरण, परस्पर वार्तालाप  
 कर्तों के अनुभव परग वा अग्रेसर तथा वाक्यों की असहनीय पुनरुक्ति से परिपूर्ण है।

रामायण में भी कहीं २ भागों की पुनरुक्ति पाई जाती है और किसी २ छन्द  
 कर्ता का अग्रेसर शब्दारा का यथा है। यथा—

- (१) सफल पूंग फल कदलि रसाला ॥ ३४४ ॥ या १  
 सफल रसाल पूंग फल करा ॥ ६ ॥ अ०
- (२) सो सय अनु पहिलेहि करि रहठ ॥ १२३ ॥ या  
 सो तहिकाम प्रथम अनु कीन्हा ॥ ७ ॥ अ०
- (३) जेहि पितु दइ सो पाण्ड टीका ॥ १५५ ॥ } अ०  
 जेहि पितु दइ राज सो सहइ ॥ १ ७ ॥ }
- (४) भूप न यासर नीद न जामिनि ॥ २१ ॥ } अ०  
 भूप न यासर नोद न राती ॥ २१० ॥ }
- (५) मांजहि स्वाड मीन अनु मापी ॥ ५४ ॥ } अ०  
 मांजा मनहु मीन करे ठयापा ॥ १५३ ॥ }
- (६) परेठ घरनिगत व्याकुल मारी ॥ १५० ॥ } अ०  
 पर भूमितल व्याकुल भारी ॥ १६० ॥ }
- (७) निज हित अनहित पसु पहिषाना ॥ १६ ॥ } अ०  
 हित अनहित पसु पन्हिउ जाना ॥ २६४ ॥ }

परन्तु इन सब ५४ में इनकी अरथ पुनरुक्ति नहीं करारकर समझनी चाहिये।

और रामायण में जो रामकथा कई एक स्थानों में सघन बरित हुई है। उक्त  
 कारण तो वही स्पष्ट विदित होता गया है।

कई बीगाइयों में १२ भागा होने का भी लोग कृपण दिखलाते हैं यथा :—

- (१) मन्त्री मर्तो प्रनु स० धनी । बैरा यदि कदि मानसगुनी ॥ २२ ॥ अ०
- (२) नाय भगति अति सुखदायिनी । देहु कृपाकरि अनपायनी ॥ ३४ ॥ सु०
- (३) अथ कृपाल निज भगति पायनी । देहु सदासिप मन मायना । ४६ ॥ सु०
- (४) इदर उदधि अपगोवायना ॥ अगमय प्रनुका यमुकलपना ॥ ६५ ॥ ल०
- (५) मिर अरु सैव कया पित रही । ताते धार धीम नै कही ॥ २८ ॥ ल०
- (६) लही धीप निमापर अनी । अमममात अइ अति धनी ॥ २७ ॥ ल०

१ इन चर्चों का तथा चागे के प्रकरण के अर्थों का दाहों का कद समझिये की  
 अर्थों के उतर की बीगाइयों का 'काली' भागी प्रचारिणी तथा इत्या प्रचारित रामायण में  
 किये।

चौपाई का प्रतिचरण १६ मात्रा का होता है वहीं परन्तु कहीं २ कमी १२ मात्रा ही पर समाप्त कर देते हैं। कदाचदास हून रामचन्द्रिका<sup>१</sup> में प्रायः नही बात देखी जाती है। और पटियालाभिवाधी धीराबा रामदासहून 'यद्य प्रस्तारक प्रकारा माया'<sup>२</sup> में १२ कता के छन्दों के बचन में लिखा है :—

“तिथिकल अर्तम अतरस होय । यहि तिथि कह चौपाई कोय ॥”

और एक अन्य कवि ने कहा है—

“पदरह कै सोस्तह फल रामु । तामु नाम चौपाई मानु ॥”

तब गोसाईं की कहीं १२ ही मात्राएँ रहों तो क्या बिन्ता ?

रामायण तथा अन्य ग्रंथों में गोसाईं की ब्यक्तिवाचक नामों का भी कहीं २ अनुवाद करते मने हैं कते हाटक शोचन (हिरवाच) इत्यादि। परन्तु यह बात अन्य कवियों की रचना में भी बची जाती है। और डाक्टर राजेन्द्रहास मिश्र ने इन्हो परिचय नामक ग्रंथ में बंगाल के पालर्षीय राजाओं के विषय में जो निबन्ध लिखा है, उस में उस बंश के आदि संस्थापक गोपाल को 'सोकात' का नामांतर बताते हुने उन्होंने कहा है कि 'मगध युग में शोष में शोष अंगरेजी नामों का लैटिन भाषा में अनुवाद कर दिया करतमे और आज भी कविलोक पद मिहान के छिन्न ब्यक्तिवाचक नामों को प्रायः बदल दिया करते हैं।'

रामायण में कहीं २ दोहों में भी मात्रा की ग्युतता दिखाई जाती है —

या — प्रेम मगन कौसल्या, निसदिन आत न जान ।

मुत सनह यस माता, बाल परित कर गान ॥२००॥

रोम रोम प्रति लागै, कोटि कोटि ब्रह्मागड ॥२०१॥

यहु भूप मन हरपित, सजहु मोह अज्ञान ॥

धर्म सुबस प्रसु तुम कौं, इन्ह कई अति फल्यान ॥२०॥

आ०— करि अपाय रिपु मारे, छन मई कृपानिधान ॥२०३॥

समा मर्मक परि ब्याकुल, यह प्रकार कह रोइ ।

१ चौपाई संग्रहा २६२ ३०१ ३ १ ३ ७ ३०६ ३७१ ३५० ।

२ यह ग्रंथ पटियालानगरेण की आज्ञा से मुद्रित हुआ है ।

३ It might appear repulsive to an Englishman that Mr Black should change into Mr Melanos to suit the convenience of a poet, but in the Middle Ages it was not uncommon in Europe to translate English names into Latin even in prose Epitaphs and in the present day poets not unfrequently change the quantity or proper names to suit their rhyme. In Sanskrit the practice of using synonyms either for the sake of metre or that of rhetoric was at one time not unknown.—Indo—Aryan Vol. II pp. 227 28



नवम परिच्छेद

## रामायण में नवीं रस

“धीर मयानक हासमुत, अद्भुत करना चारु।

सान्त विमरस्यद रौद्र ये, रसपति रस शृंगार ॥”—मापामुपगो।

कविता इन्हीं नव रसों में विभक्त है। यदि वह पूछा जाय कि रामायण की गहना किम रस के काव्य में होगी तो यही कहना उचित और न्याय्य होगा कि वह प्रत्येक नवो रस-पूर्ण है। कविता प्रेमी इस के पाठ में सर रसों का स्वाद पाते हैं। स्वाद बल्लुतः त्रिभ अत्रुमन की वस्तु है। कहने का नहीं। अतएव पाठकों को न्याय्य स्वाद अत्रुमन के सिने स्वयम् पुस्तक पाठ करमा भयस्कर होया। तथापि इस परिच्छेद में उदाहरणस्वरूप कुछ उस की कवि दिखलामे की चेष्टा की जायगी।

शृंगार—प्रियदर्शन साहब का यह कथन उक्त है कि गोसाईं जी ने अपनी कविता कामिनी का 'अरलीला शृंगार' (अर्थात् नायिका मेरादि बर्णन) से मूर्धित नहीं किया है। परन्तु इन की रचनाओं में शृंगार रस प्रचुर पाया जाता है, क्योंकि वेबल नायिकामेवापि बर्णन ही शृंगार नहीं कहलामा। नायक तथा नायिका का सौन्दर्य गुण परस्पर प्रीति-रीति उन का हाक-माक संयोजन-विशेष वे अपनी शृंगार रस में सम्मिलित हैं। और वे सब बातें इन की रचनाओं में इस रीति से दिखलाई गई हैं कि शृंगार रस बर्णन करनेवासे बड़े २ अद्भुत कवि इस विश्व के अंजन में भी इन की समता नहीं कर सकते। शान्त कथन तथा बीररस की प्रधानता होत हुये भी रामायण में इन्हीं न शृंगार की सुन्दर कथा दिखलाई दे। रामचन्द्र तथा जानकी जी का सौन्दर्य इन्हीं के पयासो अद्भुत निराशा एक से एक आना आर मनोहर बहुर से बर्णन किया है।

पाठकहृन्द तनिक हमारे साथ अनकपुर की पुराणारी में बलिने। वैदिये अद्भुत शोभापाम भी राम :—

“अिन निज रूप मोहनो डारी। कीन्द म्ययस नगर-नर-मारी ॥”

आन परम कथावाम भ्राता के भंग गुण के निमित्त पृष्ठ लाने पये हैं और उभर सावगपमयी की जानकी जी अिनके रूप बर्णन में गोसाईं जी ने कहा है कि :—

‘जो छवि मुया पयोनिपि होइ। परम रूपमय कच्छप सोइ ॥

मोमा रघु सुन्दर शृंगारु। मथे पानिपकअ निज मारु ॥

इहि बिभि कपजे लच्छिउ तय, सुन्दरता सुख मूल ।  
सदपि सकोष समत कथि, कहहि साय सममूल ॥”

विरजा पूछी आबी हैं । इतन में —

“कंकन किकिनि नूपूर धुनि सुनि । कहस कपनसन राम हृदय गुनि ॥  
मानहु मदन दु दुमी कीन्ही । मनसा विरवपिअय कहि कीन्ही ॥  
असकहि फिर बिलय तिहि ओरा । सिधमुप ससि भये नयन चकोरा ॥  
भये किलोषन चारु अर्षचल । मनहु सहुचि निमि तजे टगचल ॥  
दखि सीयसोमा सुख पाया । हृदय सराहत पचन न आया ॥  
सात जनकतनया यह सोई । अनुपयज्ञ जेहि कारण होई ॥  
पूमन गौरी सखी जौ आई । करत प्रकास फिरइ फुलतआई ॥  
आसु सिद्धोकि अलौकिक सोमा । सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥”

अब आप ही सोच कहिय कि यह शृंगार रस में परिमलित नहीं होया तो किम रग में  
इसकी पहना होमी । हां जोलाई बी न आपनी काम्य चातुरी से इसे पवित्र शृंगार बनावा है  
इस में कन्देह नहीं क्योंकि आप आगे बढते हैं :—

“रघुवंसिंह कर सहज सुमाऊ । मन कुपय पशु घरे न काऊ ॥  
मोहि अतिसय प्रलोत मन परी । जेहि सपनेहु परनारि न हरी ॥”

अतएव वह सहज प्रेम है और स्वयं शृंगार है । दोनों ओर सहज ही प्रेम है । इसी  
से उपर जानकी बी :—

“सोपन मग रामहि ठर आनी । दोन्ह पलक कपाट सयानी ॥”

और तदनन्तर मरानी क मन्दिर में निज मनोरथ सच्य होने के निमित्त प्राथना करने  
लगी है और इधर धीरामचन्द्र

“परम-प्रेममय मृदु ममि कीन्ही । पाक विषा भीनि सिन्ध कीन्ही ॥”

और सरल स्वभाव के कारण भी विरवामित्र क पाठ आकर सब बया सुनान लग है ।  
सहज प्रेमचलु स्वमिचारी नहीं होता । दोनों दिशि रूप लाक्षण्य ही ऐसा था कि दशनमात्र से  
ही प्रेम उत्पन्न हो क्योंकि सौ दास प्रेमजनक है । कवि न पुलकारी वाचन में तथा सुन्दर भाष  
दिघताया है कि उसके पाने और समझने से महानन्द मिलता है ।<sup>१</sup>

१ राज बहादुर समशोदा पृष्ठ- ८० न मायुता के कई संस्करणों में इस प्रकरण  
की विराट् स्वारथा कर के गायार्हों का का वाच्य कला-कीर्तन बड़ी उत्तम शैली में प्रस्तुति  
और प्रतिपादित किया है ।



“रामचरित मानस” में इस प्रकार का शृंगार वर्णन बहुतायत से पाया जाता है। इनके अन्य प्रयोगों में भी शृंगार की कृता मशहूर रही हैं। शान्त रस के प्रधान ग्रन्थ ‘विनय पत्रिका’ में भी इन्होंने एक स्थान में इस की कवि दिखलाई है।<sup>१</sup>

(२) कठय्या—से तो सारा मनोपमा अंग ही प्लावित हो रहा है। कौन ऐसा बज्रहरण होगा जिसका नेत्र इस के पाठ से सम्पूर्ण न होता हो।

जब कौटुम्बा की से रामचन्द्र के मुख से उनके मनवास पाने की बात सुनी है, उस समय भी उन की मनस्था विचारिये —

“सहमि सुख सुनि सीतलत वाली । तिमि अवास परे पाबस पानी ॥  
कहि न जाइ कहु हृदय बिसादू । मनहु मृगि सुनि केहरि-नाइ ॥  
नयन सभल तन धरधर कापी । मांजहि स्नाइ मीन अनु मापी ॥”  
ब्रह्मा क्या सुन्दर मान है ।

रामचन्द्र भिन्न पत्नी तथा परमरनेही बन्धु के धम धीरामचन्द्र बन जा रहे हैं। उस समय घर बाहों की बात कौन पस्तावे नामरनिवाशिनों की दृष्टा देखिये —

“यक्षत राम लखि अक्षय अपनाया । यिकल सोग सब क्षागे साया ॥”

क्योंकि उनके विरोग में :—

लागति अक्षय मयाबनि मारी । मानहु कासराति अचिञ्चारी ॥  
घोर मनुसम पुरनरमारी । करपहि एकहि एक निपारी ॥  
घर मसान परिजम अनु भूता । सुत हित मीत मनहु अमदूता ॥  
वागन विटप बलि कुम्हिसाही । सरित सरोवर देखि न जाही ॥

भी रामचन्द्र को चित्रदूत पहुँचा कर निपाद के शृंगारपुर सीट धान पर कुर्मत —

“राम राम सिय सपन पुकारी । परेठ परिन तप्त व्याकुल मारी ॥”

धीर श्वर

“इति दक्षिन दिस इय दिहिनाही । अनु यिनु पंप विहंग ककुलाही ॥”

इतना ही नहीं बरन

“नहि दन परहि न यियहि असा, मोचहि लोचन धारि ॥”

जोनों ही की दृष्टा देख कर रामचन्द्र के परिवार के दुःख की बाहू तथा कीर्तये। अचिद करने की धारयचना नहीं।

१ विनयपत्रिका की समाप्तिवचना देखिये।

किर भीषीताहरण प्रकरण भी कल्या रस पूर्ण है ।

(३) वीर—कृष्णकाण्ड इस रस का मण्डार है । अितनी इच्छा हा वीररस की कविता बहा देख लीजिये ।

(४) भयानक—अब देखिये देव, दनुज सम्पर्क मनुज, सखी का मानमर्दक शिवपनुज होता है । उसके दृष्टने से कैसी मयाबनी घटना होती है —

“भरे भुवन घोर कठोर रय रवि वाजि वजि मारग खजे ।  
विषरहि दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कस्तमल ॥  
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल विकल विचारही ।  
कोईह खंडड राम, सुसखी जयति वचन बचारहीं ॥”

(५) विभक्त्य—अब विभक्त्य का रस देखियेगा । राम रावण के मुँह में कबिर की नदी बह बसी है —

शौर—“कटकटहि मंजुक मूष प्रेक्ष पिशाच स्वप्नर संपही ।  
पताल घोर कपाल वाल बजाइ जोगिनी नंचही ॥  
अंताधरी गहि बद्ध गोप पिशाच कर गहि भावही ।  
संभाम पुरपासिन मनहु बहु बाल गुहड़ी बड़ावहीं ॥”

यह मन्त्रा शौर देखिये :—

उसी नदी में—

“जसअंतु गज पदधर तुरग स्तर विविध याहन को गने ।  
सर सक्ति तोमर सर्प पाप तरंग धर्म कमठ पने ॥”  
“मजअहि भूत पिशाच बेताला । प्रथम महा मोटिंग बराला ॥  
काक कंक लै मुजा बड़ाही । इक ते छीन एक लेइ ग्याही ॥  
रीपहि गीध अंत तट भप । अनु बंसा खेलाहि बित दये ॥  
बहु भट यहहि पडे लग जाही । मनु नाबरि खेलाहि सरि माहीं ॥”

(६) रौद्र—‘तेहि अयमर मुनि शिवपनु भंगा । बाये मृगुभक्त कमल पनंगा ॥  
दंलि महीप मक्षल सनुपाने । पाज कपट अनु लया लुकावने ॥  
गौर सरीर भूत भल धाजा । भाल विमाल त्रिपुण्ड विगाका ॥  
मीम अटा ममि दहन मोहाया । रिनि यम कलक बरगा है ब्याया ॥

भुङ्कटी कुटिल नयन रिम राठ । सहभु चितकत मनहुं रिमात ॥  
कटि मुनि वसन तून दुइ काये । धनु सर कर कुठार कल कांधे ॥”

(७) अद्भुत—“सती दील कौतुक मग भावा । आगे राम सहित सिय भावा ॥  
फिर चितया पाछ प्रभु वखा । सहित धंधु मिय सुदर वपा ॥  
अई चितहिं तई प्रभु आसीना । सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रयीना ॥  
वखे शिय विवि विपणु अनेका । अमित प्रमाठ एकतें एका ॥  
यंदत चरण करत प्रभु सेवा । विविष वेप वखे सब देवा ॥” इत्यादि ॥

पुन —“करि पूजा नैवेद पदावा । आपु गई अई पाक घनावा ॥  
घट्टि मातु तहवां पक्षि आई । मोहन करव वखि, सुत जाई ॥  
गइ जननी सुत पई मयमीया । देखा वाल तहां पुनि सूवा ॥  
घट्टि भाइ देखा सुत सोई । इवम कंष मन धीर न होई ॥  
इहां उहां तुइ वासक देखा । मतिभ्रम मोर कि आम विसेपा ॥  
वखि राम जननी ककुत्तानी । प्रभु हंसि दीन्ह मधुर मुसकानी ॥  
दखराया मालहिं निज, अद्भुत रूप अलखइ ।

रोम रोम प्रति जागे, कोटि कोटि इहायइ ॥”

(८) हास्य—अब श्री शिव जी को बारात बेचकर हास्वरस का आनन्द सीखिये । योछाई जी कहते हैं कि अन्ना समाज बेचकर स्वयम् शिव जी को हँसी आ गई थी—

“कोइ मुखहीन त्रिपुल मुख काहू । विनु पद कर कोठ धनुपद याहू ॥  
त्रिपुल नयन कोइ नयन विहीना । रिष्ट पुष्ट कोइ अति तन खीना ।  
तन खीन कोइ अति पीम, पायन कोइ अपायन गति घरे ॥  
भूषण करास कपाल कर सध, सध सोनित तन मर ॥  
खन स्थान सुअर सुगास मुख, गन-वप अगनित को गन ।  
घट्टु दिनिस प्रेय विसाष ओगी, जमात परमत नहिं घन ।  
नाथहिं गायहिं गीत, परम सरंगी भूत सध ।

दखत अति विपरीत, वालहिं अचन विचित्र विधि ॥”

बारात ऐसी तो दुदहा क्या ! अरबा उन्हें भी बेच सीखिये ।

“ । अन्ना सुकुल अहि मोर सँभारा ॥

कुंइस कंकन पद्धिरे नपासा । तन विभूति पत्त कहरिछासा ॥  
मयि सल्ला सुंदर मिर गंगा । नयन तीन उभरीत मुर्जगा ॥  
गरल बँठ डर नर सिर-मासा । असिप भय मिय घाम वृपासा ॥

“अत्र त्रिसूक्तं अथ इमं विराजा । चले यस्य चक्षुः शक्तिं याजा ॥”

श्रीर “तत्र छार प्वास्त क्पास्त भूपन जगन अटिस्त मर्षकरा ॥”

तमी तो वेचारे बालकगण प्राण खेचर भाम के माताओं की गोदों में लुके थे । तभी रात के बखान से हमारे किसी पाठक को ईंसी नहीं आये परन्तु ऐसा समाज देखने से तो निश्चय मत्र किसी का हंसते ईंसत पेट फूट जायगा । श्रीर सूर्यनया की इस बात पर भी अचरित ईंकी भावेली :—

“तुम्ह मम पुरुर न मंसम नारी । यह संजोग विधि क्या विचारी ॥

मम अनुरूप पुरुर जगमाही । देखिईं स्त्रीमि लोक सिद्धिनाही ॥

तात अय लागि रहिईं सुमारी । मन माना कहु सुम्हहि निहारी ॥”

“येही स्त्री हमारे किसी पाठक को देखने सुमन में नहीं आइ होगी । इस ने बाजारियों की भी नाक काट ली थी । अन्दा हुआ कि इस की भी नाक काटी गई ।

इस की दशा देख लक्ष्मणजी की भी माइ से होगी करन का उमंग था यया था -

“प्रभु समरथ कोसलपुर राजा । जो कुछ करहि बनिहि सय छाजा ॥”

रामचन्द्र ने भी मारद से होगी की है :—

“जेदि विधि हाइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार ।

मोइ हम करय न भयान कहु, यचन न मृया हमार ॥”

दशदा हिन किया कि मुनि को बन्दर बनाया और होगी का पक्ष भी गृह ही भोगा । दरमणों ने तो ईंसी का ऐसा कत्र पाया कि उन्हें राक्षस बनना पडा ।

तापि ने बाबलीजी से कहा था कि टिक से विवाह कर के क्या करोगी । उन्हीं ने ता काम ही का काम कर दिया ।

ये सब ही हारनरम क उदाहरण हैं ।

(६) शान्त—पाठकभर अब इतना ही पर शान्तिपारण कीजिये । शांतरण का उदाहरण हम से न मोंविये । क्योंकि शान्तरणप्रपाम तो यह मंत्र ही है । बालकगण का आदीना पदिये । आरण काण्ड में मुनियों का दसन कीजिये, उत्तरकाण्ड का काजिय और १२२२२२ में निमग्न रहिये ।

शरणागतिर की रचनाओं में शान्तदि कई रणों का अन्तर्गत होकर रहता है । गोमादे जी ने माननी प्रश्न का बरण करत हुए उन में ईश्वरीय प्रश्न अर्थात् शान्तरण की महामयूर धारा प्रकाशित की है जिन रस के जान के सामने सांसारिक गन्धर्वन अन्तर्गत ही

मीरस बोध जाता है।<sup>१</sup> शोकसपिबर मे मानवी प्रकृति का बाहे जैसा भावना बिभ खीना हो, परन्तु नह रस प्रस्तुत करना ठम के बदि में नहीं पवा है। ईश्वरमक्ति उपदाने बाकी यक्ति ठम की रचनाओं में नहीं है।

---

१ पुस्तकालिका की कुछ चीखाइयों की ज्वाल्पा में उक्त राजबहादुर कमगोवा एम० ए० ने भी अन्य रीति से इस कथन का समर्थन किया है। वह कहते हैं कि 'प्रारंभिक नाटकों के लिखते समय शोकसपिबर को इसका स्थान भी नहीं था कि यह समस्त अगत निदान्त स्थगन है। स्वसन्ती के दिनों में हजर जनका ज्वाव गया और उन्हें अपने दोषों का अनुभव हुआ। इस समय उन्हें मानवीयता एवं आध्यात्मिकता का निस्तम्बेह पूर्व विरवास हा गया था।

हमारा कवि तुलसी प्रारंभ से ही इसी विरासातनुसार कार्य करता रहा है और इसी कारण हमें स्वान-स्वान पर मानवीयता तथा आध्यात्मिकता का समिभजन दृष्टिगोबर हाता है।"

'हमारा कवि तुलसी (दिया सूचक ग्रन्थ) की सूई और आध्यात्मिक चरित्रों (मिथ पापनी इत्यादि) भ्रुवनचक्र की भांति इस संसार के संझाडीर्न एव में हमारे वष-प्रदर्शक के समान मीर है।"

## दशम परिच्छेद

### रामायण में रूपकादि की वहार

गोसाईं जी की रचनाएँ सर्वात्मकार-भूयित हैं, ती भी रूपकार-कार का वस में बाहुल्य है। इस क रचने में वे बड़े विपुल दग्ने जाते हैं। आप ने अनूठी उष्याओं से भूयित रूपकार-कार द्वारा विविध वस्तुओं का सुन्दर चित्र यीना दे। पाठक-मन्द रचना-प्रदर्शनी के इस विभाग की ओर भी रचित कालकर आमन्त्र लाम कीजिये। आदि ही से मुख्य मुख्य पद्याओं को देखते चित्रिये।

रामचरितमानस केना सुन्दर सरोवर है इसे तो आप सोम पक्षि ही इस युक्त हैं। अब अन्तगमात्र प्रकाश का दर्शन कीजिये —

“राम भगति नंह मुरमरि धारा। मरमह म्रम विधार प्रधारा ॥  
 विधि-निपत्र-मय कक्षिमल हरनी। करम क्या रयिनन्दिनि धरनी ॥  
 हरिहर क्या धिरात्रनि धनी। सुनत सकल मुदमद्रल दनी ॥  
 यदु विष्णाम अत्रल नित्र धरम। तीरधरात्र समात्र सुधरमा ॥”

यह तीथ राम — “मथहि सुलभ मवदिन सय देमा। सेयन सादर समत कथमा ॥”

अन्यत्र निम्नोद्देश ‘अक्षय कर्त्तविक’ है और इसी कारण से शरीर रहत ही मनुष्यों को चारों कण देनेवाला है।

धीरामकदादि का रचित्त में आदिर्भाव होने पर गोसाईं जी अक्षय की लक्षि कर्त्तव्य करने में बहत है —

“अप्यपुरी साहइ यहि मानि। प्रमुहि मित्तन आइ जनु राती ॥  
 दय मानु जनु मन मनुषानी। तदरि धनी मन्ध्या अतुमानी ॥  
 अग्न भूष जनु यदु अचियारी। उदइ अपीर मनहु अरमाइ ॥  
 मन्दिर मनि समूह जनु तारा। नृष गृहि कलम मो इन्दु उदारा ॥  
 मयन यदपुनि अलि मृदुपानी। जनुगय सुन्दर ममय जनुपानी ॥  
 कौतुन देमि पवंग भुजाना। एक माम तइ जात न जाना ॥”

वाह गोसाईं जी ' आप धन्य है। कर्त्तव्य तो ऐसे भुजाये कि एक मरीन का एक दिन ही मया। परन्तु आप ने आपनी कविताशक्ति से इतने बड़े दिन में भी आपका ही बदर दिग्गता ही ही।

बनकर पौत्रके के अन्तर पुण्यवाटिका में श्री सीता जी के दर्शन के लिये दिन सुबोधय  
देख कर जब रामचन्द्र लक्ष्मण जी से कहते हैं —

“अरुण उदय अक्षतोक्नु ताता । पंकज लोक कोक सुम्य दाता ॥”

उस समय लक्ष्मण भी उधी सुबोधय के मिस रामचन्द्र का प्रभाव वर्णन करते हैं —

“अरुण उदय सङ्घे हुमुद, उङ्गल जोति मलीन ॥

विमि तुम्हार आगमन मुनि, भये नृपति बल हीन ॥”

“नृप मय मन्त्र करहि उमियारी । टारि न सकहि पाप तम भारी ॥

कनक कोक मधुकर खग नाना । हरप सकस निसा आवमाना ॥

पेमहि प्रसु सब मगत तुम्हारे । होइहहि दूट धनुष सुखारे ॥

रवि निज उदय ब्याज रघुराया । प्रसु प्रताप सब नृपहि दखाया ॥”

श्री लक्ष्मण भी का वह वाक्य छिद्र करने के लिये गोछाई भी भी यज्ञस्थल में विराम  
पर शिवशक्ति श्रीरामचन्द्र का उदन कराते हैं । अब उस की कृपा अक्षतोक्नु कीजिये :—

“उदित उदय-गिरि मंच पर, रघुवर याज्ञपतंग ।

यिकसे सन्त सरोज सय, हरप लोचन मृग ॥”

“भूपन्ध केर आसानिमि नासी । वचन नपत अयली न प्रकासी ॥

मानी महिष कुमुद सङ्घाने । कपटी मूप उलूक लुकाने ॥

भये बिसोक कोक मुनि दवा ।”

एक रवि के उदन होने ही से लोगों ने प्रयत्न किया कि तबसे बाद-बहुत समय में शकर  
बाण-ब्रह्म बलकभी पर्वत से उतरा कर दो घण्टे ही मय और मिन मिन लोगों की नि-  
मित्त बस्तुर्ष उध के छाप ही जाती रही ।

यह बात शत्रु होने का समाचार सुन कर परशुराम जी आते हैं और अपना पराक्रम  
सबो वर्णन करते हैं—

“पाप श्रुया मर आहुनि शान् । कोप मोर अति घोर कृशान् ॥

ममधि सेन चतुरंग सुडाइ । महामहीप भये पसु धाई ॥

मैं यह पसु काटि बल हीन्हा । ममरयज्ञ जग कोटिक कीन्हा ॥”

परन्तु दग अनीकिक मानु के गामने उन का चत्र भी दीपक के समान मलीन हो गया ।

जिहाह के बाद अक्षय में लौट आन पर परिहण के समय गोछाई जी ने दीप माण में  
बर्षा की ब्रह्म दिवहाई है—

“भुव भूम नभ मयक मयऊ । मायन धन धर्मइ अनु उयऊ ॥

सुर-तद-सुमन-भाज सुर धर्षि । मनुष्य यज्ञाक अपलि म्नु कर्षि ॥

मन्त्रुक्त मनिमय घन्दनिघारे । मन्धु पाकरिपु चाप सँघारे ॥  
 प्रगटहिं दुरहिं अग्नि पर भामिनि । चाद चपल अनु दमकहिं दामिनि ॥  
 दुँदुमि पुनि गरजनि घन घोरा । जाबक चातक दाहुन मोरा ॥  
 सुर सुगंध सुधि धरपहिं घायी । सुखी सबल मम पुर-नर-नारी ॥”  
 अब देखिये अबप में विपति का बीज बना जाता है—

“विपति बीज वरपारिपु घरी । भुईं मह कुसति कैकयी केरी ॥  
 पाइ कपटु अल अकुन आमा । घर दोठ दल दुखफल परिनामा ॥”  
 अब वर मांग कर कनेमी शरोप ठठ खरी दुईं हीं उच समर का रूपक देखिये—  
 “अस कहि कुटिस भइ ठठि ठाढ़ी । मानहु रोप तरंगिनि घाढ़ी ॥  
 पाप पहार प्रगट मइ माइ । मरी क्रोध अल षाइ न जोई ॥  
 दोइ वर पूस कठिन इठ फारा । भँघर पूखरी यषन-अचारा ॥  
 बाइत भूय रूप तरमूला । बली विपति धारिष अमुहूला ॥”

वहाँ पर नदी का एक बीर बचक देख लीकिये । बिषयूठ में जनकादि श्रीराम के रूप उन के आधम पर आ रहे हैं—

“आधम सागर सन्तरम, पूरन पायन पाय ॥  
 सेन मनहु कम्ला सरित, लिये जाहि रघुनाय ॥  
 योरति ज्ञान विराग करार । यषन ससोक मिलाव नद नारे ।  
 सोप बसांस ममीर तरंगा । धीरज ठट-तफ्यर कर भंगा ॥  
 विषम विपाद तोरापति धारा । मयधम भँघर अयर्च अपारा ॥  
 केयट बुध विधा मडि नावा । सकहिं न खेइ एक नहिं आया ॥  
 धनधर कोस किराठ विषारे । धक दिस्लोकि पयिक हिय हारे ॥  
 आधम उदधि मिली जय जाई । मनहु बटेउ अँडुपि अधिकाई ॥”

अब आगे बलिये । श्री रामचन्द्र प्रियाविह से विचल विदिन में रहें खोज रहे हैं । वन बसन्त की शोभा से छहनुदा रहा है पर क्या कैसा है भी सुखर पदार्थ किसी विकोमी की गुणवत्त हो बचना है । बरतन की बहार निहार रामचन्द्र अमुन से बच रहे हैं—

“हँवहु ताठ यमगत सोदाया । प्रियाहीन मोहि भय उपजाया ॥”  
 बर बरत नदी है, बरत—

“पिरइ विचल पतदान माहि जानेमि निपट अचल ।  
 मदिम विपिन मपुइर गग, मदन कीन्द यगमल ॥



चिटप विसासत जता अस्मान्नी । विधिषि विधान विद्ये जनु ताना ॥  
 कदसि तालपर ध्यमा पताका । वैकि न मोह भीर मन आका ॥  
 विधिषि मांति पृथे तह नाना । जनु यानैत यन बहु याना ॥  
 कहुं कहुं सुन्दर विटप सुहाये । जनु भट विलग विलग होइ छाये ॥  
 कुंभत पिठ मानहुं गज मात । टक महीप उंट विखरात ॥  
 मोर पकोर कीर वर बाजी । पारायत मरास सव ताजी ॥  
 वीतर सावक पदपर जूमा । वरनि न जाव मनोज वरया ॥  
 रथ गिरिसिन्हा दुहुमी मरना । भासक वंशी गुन गल वरना ॥  
 मधुकर-मुल्लर मरि सहनाई । त्रिधिष पयारि वसीठी ध्याई ॥  
 पतुरंगिनी सन संग की हैं । विषरस सबहि पुनोति दीन्हे ॥”  
 इसी विरहावस्था में विकरण करते दोनों भाई पंचास पर पहुंचे हैं । वह घर कथा है—  
 “सन्त हृदय जस निर्मल वारी । बांध पाट मनोहर घारी ॥  
 भंड तइ पियहि विधिष सुग नीरा । जनु उदार गृह आषक मीरा ॥”

विधिष्या अथर्व में बरसात तथा शरदऋतु की रोमा बदन भी उत्तम और  
 आनन्दप्रद है । उस की चंद्र चतुर्मासों की उपमाओं में शिष्या और सपुत्रैश मरा हुआ है ।  
 उस का कुछ भेदा अल्पत उद्धृत हुआ है एवम् की एक रूपों का हीर्ष्य अन्वाय स्वार्थों में  
 दिखताया गया है । अथर्व पाण्डों को शर ही अन्ना रचना अन्ना न हान्या । रूपों में  
 लक्ष्य उपमाओं की वहार देखी ही गई है । अथर्व की अथर्व लक्षि विज्ञानों की भी  
 आश्चर्यकता नहीं । ही इतना कह देना अनुपयुक्त नहीं होगा कि रामायण तथा गोसाईं की हरे  
 अथर्व अन्नों के पद पद में उपमाओं की कता चलक रही है और वे उपमाएँ बहुत ही मनोहारिणी  
 अन्नी और आनन्ददायिनी हैं ।

गोसाईं जी ने एकक की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है । परन्तु रामायण में अनुप्रास  
 की कमी नहीं देखी जाती । उस का कुछ उदाहरण देखिये :—

“सोहत मोर मनोहर माध । अस्तमय सुकुनामनि गांध ॥  
 यदि ममन विनु भूपन मारु । यदि विरति विनु प्रस विचारु ॥  
 मील संकोष सिधु रपुगाऊ । सुसुप सुसोचन सरस सुमाऊ ॥  
 समुमल सुनत मुपद मय काई । मुचिमुसरि कचि निद्रि सुपाई ॥”

मगया महामत्सीन, मुण मारि संगल पहल ।

निष्प निरंकुम्, निद्रु निरंसू ।

दरि दशा दुप दान्त मयऊ ।

पूर कुणिल गल कुमनि फलंठी । नोष निमील निरोम निरंसू ॥”

जो श्लोक 'Full fathom five thy father lies' जैसे अंगरेजी अक्षर (alliteration) पर सुन्य रहत हैं वे गोसाई के अनुप्रासों का दस अधिक आनन्द पा और हम उन स यह भी कह बत हैं कि संस्कृत भाषा के कवियों को ज्ञान रहे हिन्दी भाषाकारण कवि भी इस विषय में उन्हें बहुत आनन्द अनुभव करा सकते हैं ।

गोसाई जी के श्रवणों से सब प्रकार से अलंकारों का एक २ उदाहरण निम्नलिखित का भी एक विस्तृत पुस्तक की आवश्यकता होगी । अतएव सब का उदाहरण दिखलान की पर चेन्दा नहीं की गई । कई एक टीकाकार रामायण की टीकाओं में जहाँ तहाँ अलंकार दिखलाते गये हैं । उन श्रवणों से बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है ।

विटप विसाल क्षता भ्रमरानी । विविध वितान दिये जनु घानी ॥  
 कदलि तालवर स्वभा फाका । वैलि न मोह भीर मन जाका ॥  
 विविध मांति पूजे तरु नाना । जनु जानैत वने बहु वाना ॥  
 कहुं कहुं सुन्दर विटप सुहाये । जमु भट विपग विपग होइ छाये ॥  
 कूजत पिक मानहुं गध मात । टेक महीप छंट बिसराते ॥  
 मोर बकोर कीर वर वाजी । पारावठ मराज सव वाजी ॥  
 तोवर लायक पदचर जूया । घरनि न जाय मनोज वरुया ॥  
 रथ गिरिसिखा तुहुमी भरना । चातक वंशी गुन गल वरना ॥  
 मधुकर-मुल्लर भरि सहनार्ह । विविध घयारि वसीठी ध्यार्ह ॥  
 पतुरंगिनी संन संग ली हें । विचरत सवहि चुनौति दीन्ह ॥”  
 इही विरहावरवा में विचरत करते दोनों माई वंपावर पर वहुये हैं । वह घर कसा है—  
 “सन्त हृदय अस निर्मल वारी । वाभे घाट मनोहर वारी ॥  
 मंह तंह पियहि विविध सुग नीरा । जनु सहर गृह जाचक मीरा ॥”

किष्किन्धा काण्ड में बरवात तथा शरदशुद्ध की शोभा वर्णन की उत्तम और  
 आनन्ददा दे । उस की कुछ घटनाओं की उपमाओं में शिखा और सतुभैरा मरा हुआ है ।  
 उस का कुछ अंग अन्वय उद्धृत हुआ है एक ही एक रूपों का हीर्द्वय अन्वय रूपों में  
 दिखलाना गया है । अतएव पाठकों को इतर ही बन्धा रचना अन्वय न हम्मा । रूपों में  
 ललित उपमाओं की बहार देखी ही गई है । अतएव की अधिक कृति दिखलाने की भी  
 आवश्यकता नहीं । हों । इतना कह देना अनुपयुक्त नहीं होगा कि रामायण तथा गोसाईं की इत  
 अन्वय अर्थों के पर पर में उपमाओं की बड़ा प्रसक्त रही है और वे उपमाएँ बहुत ही मनोहारिणी;  
 अन्वी और आनन्ददायिनी हैं ।

गोसाईं की ये समक की और विशेष प्वाभ नहीं दिना है । परन्तु रामायण में अनुभास  
 की बनी नहीं देखी जाती । उस का कुछ उदाहरण देखिये —

“सोदित मोर मनोहर माय । भगवतमय सुहृतामनि गांघ ॥  
 यादि यसन विनु भूपन मारु । यादि यिरति विनु अक्ष विचारु ॥  
 मील संकोप सिधु रघुगऊ । सुसुप सुसोचन मरल मुमाऊ ॥  
 समुक्त मुन्ना सुपद सव काहुं । सुविमुरमरि ऋषि निदरि सुपाहुं ॥”

मपया महामतीन, सुए मारि संगल चहन ।

निपट निरकुस, निद्रुर निसंकू ।

दधि दशा दुप दाग्न भयकू ।

दूर मुन्नि मल कुमनि कर्तरी । मोष निमील निरोम निसंकू ॥”

जो लोग 'Full fathom five thy father lies' जैसे अंगरेजी अनुप्रासों (alliteration) पर मुग्ध रहते हैं वे मोसाई के अनुप्रासों को देख अधिक आनन्द पावेंगे। और हम उम्र बढ़ती बढ़ती देखते हैं कि संस्कृत भाषा के कवियों को कौन कड़े हिन्दी भाषा के साधारण कवि भी इस विषय में उन्हें बहुत आनन्द अनुभव करा सकते हैं।

मोसाई की कंठों से सब प्रकार से अक्षरों का एक २ उदाहरण दिखाने का क्रिय भी एक विज्ञाप पुस्तक की आवश्यकता होगी। अतएव सब का उदाहरण दिखाने की जहाँ पर जन्म नहीं की गई। कई एक टीकाकार रामायण की टीकाओं में जहाँ जहाँ अक्षरों की दिखलाते गये हैं। उन कंठों से बहुत कुछ ज्ञात हो सकता है।

## एकादश परिच्छेद

### रामायण में राजनैतिक विचार

भ्रमपूर्वक 'रामचरित मानस' पद्य से देखा जाता है कि गोसाईं जी ने इस ग्रंथ को राजनैतिक विचारों से भी भूषित किया है जिस से स्पष्ट बोध होता है कि उत्पत्तीय राजसम्बन्ध पर भी इन की दृष्टि पहुँची थी। राजनैतिक विचार को महत्त्व तो इस के पात्रों के अर्थव्यवहार ही में देखी जाती है और जनक रथानों में इन्होंने राजनैतिक बातें स्पष्ट रूप में स्वयम् भी कही हैं और पात्रों के मुख से भी कहलवाई है। श्री रामचन्द्र कावर्धन राजा थे। मन्ता उन की क्या वर्धन में ये राजनैतिक बातों का क्यों नहीं उल्लेख करें ! पाठकों के सम्मुख इस का कुछ उदाहरण उचित किया जाता है।

गोसाईं जी राजाओं के अर्थ वस्तु को मुक्त नहीं समझते थे। क्योंकि चाप चढ़ते हैं —

“धैरी पुनि कानिय पुनि राजा। छल वल कीन्ह नहे निज कामा ॥”

राजा को प्रजा के कष्टों को कोई बात नहीं करनी चाहिये इस का उल्लेख इस दोहे में इन्होंने किया है—

“जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप आवसि मरक अधिकारी ॥”

बाद रामार्थ भीराम के मुख से ऐसी बात कहलवाई कर बना गोसाईं जी ने अपने समय के भ्रष्ट जहाँगीर के अराधीक व्यवहार की समाशोधना की है। क्योंकि उस समय काशी में मन्दिर आदि ठीकने का बरतान हुआ था।

राजा रामचन्द्र के अंग्रे में पकड़ भी प्रायः उचित काय कर बैठते हैं। उन्हीं के विषय में श्री रामचन्द्र के मुख से कहलवाते हैं—

“कही गत मुम नीति सुहाइ। सप से कठिन राजमद माई ॥

मदमघाटु सुरनाय त्रिसंभू। कहिन राजमद दीन्ह करुफू ॥”

प्रजा को सुगम ही में वचार्थ मुम होता है। इन्हीं भाव को इन्होंने मरत की के इस वाक्य में कहाया है :—

“भरत दोग्य धन मैल ममाजू। मुदित लुपित जनु पाय सुगाजू ॥”

और भी कहा कि —

“ईति भीति जनु प्रजा दुम्हारी । विविध ताप पीडित प्रहमारी ॥  
पाय सुराज सुदेस सुखारी । मइ मरत गति तिहि धनुहारी ॥”  
इहोंने सुराज्य की महिमा और भी कही है :—

“राम वास वन सम्पति भ्राजा । सुखी प्रजा जनु पाय सुराजा ॥  
विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा । धृष्ट प्रजा जिमि पाय सुराजा ॥  
अर्ध जपास पात विनु मयऊ । जिमि सुराज्य स्वस्त वधम गयऊ ॥”  
नीतिक और ब्रह्मशास्त्र का ही प्रसंग के योग्य है । इस बात को इन्होंने इस बीपार्श्व में दिखवाया है :—

“सोचिय नृपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय मान समान ॥”  
और भी देखिये—

‘एक न रेनु मोह अम घरना । नीति निपुन नृप की जम करनी ॥”  
भीति निपुण राजा न होने से क्या हानि होती है बड़ी बात भरत भी के मुँह से  
कहाते हैं :—

“भोहि राज हठि दहदु जयही । रमा रमातल जाइहितयही ॥

इस विनु रघुबीर पद जिय की जरनि न जाय ॥”

राजसभा में सम्मिलित होने का अभिप्राय होकर कबल मुट देगी बात करनी योग्य  
क्योंकि इस में राजा और प्रजा दोनों की हानि होती है इसी से कहा है कि—

“कहहि मधिय सय ठडुर सोहाली । नाथ न भक्त होइहि इहि मानी ॥”

रामायण में सीता का उपदेश भी उपाधेयत है । गोवर्ध जी की संनृतकता का  
उपदेश दसमे से मह बाल विदित हाथी ।

## द्वादश परिच्छेद रामायण के पात्र वर्ग

रामायण की पूर्व बर्णित बातों ही पर संतोष करना नहीं होना, क्योंकि यह केवल काम्य रस ही का अनुभव करानेवाला ग्रंथ नहीं है। यह सद्गुणियों के अमूल्य प्रभामय मणि माणिक्य की खान है। संसार में काम प्रहण कर मनुष्य का किय के प्रति क्या कर्तव्य है और परस्पर वैरा बर्तान रखना चाहिये यह ज्ञान बिना हमसोक सुखपूर्वक जीवन निर्वाह नहीं कर सकते। संसार में सानन्द जीवन व्यतीत करने पूर्व परलोक में परमानन्द प्राप्त के लिये कितनी बातें जानने की आवश्यकता है: वे सब हम इस ग्रंथ के पात्रवर्ग से सीख सकते हैं। यदि हमसोक संसारे द्वारा प्राप्त कल्याण-कारक उपदेशों को हृदयगत करें तो हमारा निरवयव हितसाधन हो।

संसार में अ-बहुला होने सकलता प्राप्त करने तथा स्वयं स्वाम के हेतु रज संकल्प स्य सचता स्वार्थत्याग आत्मत्याग आत्मनिभरता सहनशीलता पुण्यार्थ आदि इन कई गुणों का होना बहुत आवश्यक है। किसी कार्य में प्रथम कठिनाई हो कष्ट हो निराशा पीडा पड़े परन्तु अपने सत्य और सफल से कदापि विचलित नहीं होना चाहिये यह शिक्षा तो इस ग्रंथ के सुपात्र और सुपात्र प्रायः सभी दे रहे हैं। परन्तु हमसोकों को इस के विशेष पात्र से विशेष शिक्षा प्रदत्त करनी उचित है। यदि वे अनेक आदर्श विद्वानों को हमसोकों के सामने प्रस्तुत किया दें।<sup>१</sup>

श्री शिबजी—सीता जी का रूप पारण कर रामचन्द्र की परीक्षा देने और उस बात को पति से छुल रखने के लिये शिव जी ने 'यह तन सती गैठ आर नाही' यह मंत्र में संकल्प करके सती ऐसी प्यारी फणी का परिचाय कर दिया है। निरवयव उन्होंने सती को तिलाक बकर कर से बाहर नहीं किया है। परन्तु किसी आसमीय से प्रीति रीति में कमी होना ही उस के त्यागने का लक्ष्य है। इस कार्य में उन्होंने दिसलावा है कि मल्लि और फणीन्द्र में विशेष पक्ष से किस प्रकार मल्लि का निर्वाह किया जाता है। आज किन लोग कुल कर्तक राक्षस कपिणी कर्षणा कामिनी की प्रकृता के लिये कुलपम और ईश्वर से विमुख हो जाते हैं और अपने सकल परिवार को भी सोच बूझते हैं।

श्री पायसी जी—इपर पार्वती जी—

“जम कोटि लागि रगर हमारी। यों संसुन तो रहां बुझारी ॥”

१ इस परिच्छेद में बर्णितों की दुखि तासाई जी के ग्रंथ के अनुसार दिनाई गई है।

यह प्रतिज्ञा कर अपने संकल्प पर लगी रह रही है कि किसी साधारण व्यक्ति की काम कहे सात श्रुतियों के भङ्गाने और बहकाने पर भी मैं अपनी प्रतिज्ञा से विचलित नहीं हुई हूँ और सन्तों के स्पष्ट कह दिया है कि तुम लोगों की तथा बात है—

“तत्रो न नारद कर उपवसू। श्वाय कश्चि सत पार महसू॥”

आज गुरु के बचन में विरवाच रखनेवाले और निज प्रतिज्ञा पर अचल रहनेवाले किशने और कसे श्राग हैं यह तो सभी स्वयम् समझ सकते हैं। इसी से पतिपत्ता रिश्वों में इन्दे प्रथम आसन प्राप्त हुआ है जैसा कि ज्ञानधी भी न कहा है—

“पति द्यना सुनीय मई, मातु प्रथम तय रेस्य॥”

और इसीसे ये तीव्र भूरण (महादेव) के अङ्गभूषण हुई हैं।

भी जनक—आपने प्रतिज्ञा की थी कि जो शिक्षण तुम करेगा उसी से ज्ञानधी का विवाह करेगी। अब पशुपत यम में जब राजा हार मान कर छिग नीचा कर बैठ गया और चारों ओर निराशा छा गई उस समय भी अपनी प्रतिज्ञा पर रह रह कर इहों में कहा—

“सुकुल जाड जो प्रगा परिहरऊँ। सुअरि सुधारी रहँ फा करऊँ॥”

परन्तु ऐसे स्वप्रतिज्ञा का काय सिद्ध न हो यह कदापि सम्भव नहीं। ईश्वर ने उन के प्रण की आप रक्षा की।

भी दशरथ—दूदें दमलोग इन के पूर्वजों के समान स्वप्रतिज्ञा पाते हैं। यह इही का बचन है —

“रघुकुल गीति मदा फलि आई। प्राण जाय पर धपन न जाइ॥”

यही कह कर इहों में कहेरी को बर मानन को कहा था। अपनी एक रातियों में कश्यपी को ये अधिष्ठ प्यार करत थे। यह बात हमलागों में कश्यपी को शाली के मुख से सुनी है।

“हुम्हहीं न सोप सोहाग यम, निज यम जानतु राड।”

और कवि ने भी कहा है—

मूल कुक्षिम अमि अगयनि हारे। त रतिनाथ कुमुम मर मारे॥”

जो हा कश्यपी ने महा कपूर कमहनकारक हृदयविदारक, मन्त्रजनककारक कर माँगा। ये बाह्य तो प्रतिज्ञा भङ्ग कर बर स विमुक्त हो जात। गी पुण्य के मध्य लेशी प्रतिज्ञा की बान को कोन कइ यके गमनट निरिबड प्रतिज्ञा का अनादर कर रजाइन को रक्षिर से रज्जु देने में गल्लेप नहीं करत, परन्तु अपनेबद हारर उग से प्राङ्गुण होना इहोंन अने तथा अपने पुन के महेश्वर के यम्य काय मही गममा। इसी म इहोंन कश्यपी को परन बहुत उच्च समझया बुझया कि ये विचार कर कर मन परन्तु उम का हठ प्रवृत्त और अदमनीय देव कर अन्न में उमय मही कहा कि अब जम भर तुम अना सुद मन िगाओ और भारी रामनिवाण—दु ग रमग्य कर म मृदिन हो गिर पये।



इसमें पुत्रप्रेम का अधिक प्राबल्य था। प्यार तो ये सब पुत्रों ही को करते थे, परन्तु रामचन्द्र इसके कुछ अधिक स्नेहभाजन थे। इन्होंने विस्वामित्र से कहा था—

“सय सुत प्रिय मम प्राण की माई। राम दत्त नहीं यने गोसाईं ॥”

और इन्होंने भरत तथा रामचन्द्र के सम्बन्ध में कहेनी से कहा है—

“मोरे भरत राम बुझ आस्त्री। मत्य कहों करि संकर साखी ॥”

यदि मेरे या तो नहीं कि रामचन्द्र बाहिनी आँख से। कारण यह था कि रामचन्द्र को इन्होंने बहुत कष्ट उठाकर और मारी तपस्वा कर क पाया था। जो वस्तु कष्टिनाई से प्राप्त होती है वह अचरन अधिक प्यारी होती है। इसी से रामचन्द्र के साथ इसकी ऐसी प्रीति थी कि—

“जिअइ मीन बरु वारि बिहीना। मनि पिनु फनिक जिअइ दुख धीना ॥

कइई सुमायन छल मन माहीं। जीवन मोर राम विनु नाहीं ॥”

इसी से भी रामचन्द्र सम्बन्धी कोई बात जान ही से ये बड़े असमंजस और आपत्ति में पड़ जाते थे। विस्वामित्र के रामचन्द्र को मारने पर भी ये बचका उठे थे किन्तु कश्चिपु के अपदेश ने इन्हें प्रतिज्ञा पासन का साहस प्रदान किया। आश भी उसी पुत्र वास्तव्य से निहल होकर ये मन्त्री मन शंकर को मनाने लगे कि राम बल यमन नहीं करें और बचने लगे—

“अयस होइ यरु सुयस नसाऊ। मरक परों यरु सुर पुर जाऊ।

सय दुख दुमाइ महाबह मोही। लोचन झोण राम जनि होही ॥”

इस समय स्वयम् रामचन्द्र ने इन्हें प्रतिज्ञास्य नहीं होम दिया। किन्तु इन्होंने पुत्र विषेय में प्राण बिसर्जन ही कर दिया। यह सब हुआ सही, परन्तु कहेनी के बार बार यह कहने पर भी कि ‘मरि प्रतिज्ञा पासन न करना हो तो उठे मुकर आरव’ इन्होंने बचन नहीं किए और रामचन्द्र को भी अपने मुख पर बन जाने को नहीं कहा मला इससे बड़ कर पुत्रवास्तव्य और तपस्यता का कोई उदाहरण हो सकता है। इसी से मगधाम ने इन्हें अपवय्य नहीं होने दिया इसकी प्रतिज्ञा थी भी रक्षा की मार उन्हें पुत्र रसह का एक परमोत्कृष्ट उदाहरण बनाया।

कहेनीजी—कवि न कहा है कि—

“कोन कुसंगति पारै नसाइ। रई न नीध मने यतुगाइ ॥”

कहेनी की कथा इस बचन को मन्त्री मति सिद्ध कर हमलाओं को फिटावनी दे रही है कि कुसंगति करने तथा भीलों की बातों पर ध्यान करने का महा बहुराजकारक परिणाम होता है। उस से कुसंगति करनेवाला ही कष्ट नहीं पाता बरन् उस से उस के लगे सम्बन्धी लाल परिहार दुःख भोगते हैं। कुसंगति अपने अपने विद्वानों की मति भी भ्रष्ट कर देती है। अन्तर्द्व कवि के इस वाच द्वारा शिष्या पर आन रस कर सब को कुसंगति से बचना ही बाध्य है।

दृष्टिसे कृष्णी को यद्यपि कोप और मान करना अशक्य लगता था जैसा कि दशरथ ने कहा है—

“तुमहि कोइय परम प्रिय लागी ।”

तथापि उन का हृदय अत्यंत मही था । वह पुष्पिणी भी थी और रामचन्द्र को प्यार भी करती थी क्योंकि उन्होंने न परीया करके देख लिया था कि रामचन्द्र उन से विशुद्ध स्नेह रखते थे । इसी से उन्होंने ने राम तिलक का सम्बन्ध मुन कर कहा था कि—

“राम तिलक जो साँप कासी । मांसु दुई मन भायत आसी ॥

प्रान त अधिक राम प्रिय मोर । तिन क तिलक लोम कम तोरे १ ॥”

और उन्होंने पहले पिती का अनमन भी नहीं किया था । परन्तु कुछ दासी की बातों पर विश्वास करने और दुर्लभति से वे ऐसी अज्ञान हो गईं अपने कर्तव्य से ऐसी भूल-मद और ऐसी पुष्पिणी हो गई कि—

“पर्वों रूप तय यवन सगि, मकों पूत पति त्याग ।”

ऐसी प्रतिक्रिया करने में भी उन्हें दिक्कत नहीं हुआ । पति को दुःख से कातर देखकर दया के बदले —बरे पर नमक दौंती ही गई और अपने प्राणरथ और बालों से उन्होंने ने पति को ऐसा अपौर कर दिया कि उनका समान मंभीर और रहस्य व्यक्ति को भी—

“किर पठिनेह अन्न अमागी ।”

कहना ही क्या लखी लक्ष्मिनी ने भी सुन्दर चीज नहीं मानने के कारण उन्हें दुर्लभत कह ही जाता पति से निर्विषोद हुआ ही पुत्र ने भी—

“ईसईम दशरथ जनक, राम जयन से धान ।

मननी तू जननी मइ,”

मेवा बाह्य कह सुनाया । उन्होंने ने और बरग्न का दुःख मोगा और स्वपरिवारका तथा पुराण परिचय का भी शोकापर में दुःखाया । उन्हें तो दुःख होता ही साहना था । क्योंकि वे एक चीति से पति प्राणपतिनी हुए, परन्तु इनके गणपदोर से कीरी का भी दुःख भङ्गा था । आया करत हैं कि श्री-पुत्रप मभी इस विषय पात्र के साधारण से शिष्टा प्रहण करेंगे ।

कौशल्याजी—न धीगमचन्द्र की पतिभर्मवगायत शोचनी शोचनी माता हैं दशरथ भी क मद बदन पर भी कि हम वद दाय क रिहार म श्रुति करत ये—

“रामगणप मल कहई सुमाद्र । राममातु मोहि पटा न काद्र ॥”

कहना करती है—

“जग कोगिस्ता मोर भक्त नाका । तम फल दुई बन्दे करि माका ।

और रामचन्द्र ने पुत्र को—

“प्रान प्रान क जीयन जा क ।”

पापाच्छादयतीति वनवास विख्याता रहीं और यह सम्वाद पुत्र के मुख से सुन कर अथाह शोकसागर में निमग्न होने पर भी कौरव्या कह रही हैं:—

“जो कृत्वत्त पितृभ्रायसु ताता । तौ जनि जाहु जानि वड़ माता ॥

जो पितृ मातु कहैहु घन जाना । तौ कानन सत अथय समाना ॥”

और मरत भी क नागिहाल से जाने पर ऐसे शलक कर जन से मिलने को दीवती हैं मानों राम ही वन से फिर आये हों । मन्त्र कौरव्या भी आप का आचरण अवश्य सराहनीय है और सब विमाताओं को अनुकरणीय है । आप के आचरण का अनुसरण करने से आसक्तिने परों में सुख शान्ति का राग्य हो सकता है, कितने विमातु पुत्र धान-प आलस्येप कर सकते हैं; इतना ही नहीं आप के वाक्य और कार्य में सर्वथा धर्म तथा नीति मरी हुई है । आप बाहरी तो सम्भवतः रामचन्द्र का वनगमन इक जाता और स्वजन परिवन विच्छादिदि में नहीं होने पाते परन्तु धर्म का अवलम्बन कर आप ने समजातुकूल दूरदर्शिता विद्यताई और करने उदाहरण से आर्यामी सम्प्रति का महोत्कार किया —

“राज्ञों सुतही करों अनुरोधू । धर्म आय अरु यन्तु विरोधू ॥”

मत्ता इव में नीति तथा धर्म का कितना आदर है । जब आप मरत को रामचन्द्र के दुःख समझनी थी तब दोनों माइनों में बैर-बीज बोने का कबो उपाय करती ?

रामचन्द्र को तो नीति धर्मविचार से वनगमन से नहीं रोका और पातिप्रतर्द्धर्म के ध्यान से सीता भी के पति के संग जाने में बाधक नहीं हुई । कृत्य नहीं कर कर रामचन्द्र से पूछती हैं कि ‘भ्रिम जानकी को प्राण में लमाकर रखती थी और—

जीवन मूरि जिमि जुगलत रहऊ । दीपयाति नहि टारन कहऊँ ॥

वही जानकी तुम्हारे साथ जाता चाहती है, हे पुत्र तुम्हारी क्या आज्ञा है ? वन में रहने योग्य तो मे नहीं है और भर यह जान तो हम को बहुत अवलम्ब हो सो सब बातों को विचार कर जैसा करो उतक अनुसार हम नन्दे सिद्धा हों । इन भी ये सब बातें निपट कास में हम के असार बैर्यवती होने का परिचय दे रही हैं । दशरथ भी तो राम विरह में प्राण विसर्जन कर निरिचन्त हो गये । किन्तु ये १४ वर्ष तक पुत्र और पुत्रवधू के विनोय को अट्टहा बगवणा सहती रही । कौरव्या का एक अनुपम विचर । वे वै र्म की गर्नि खड़ी की गई हैं ।

मुमिप्रा भी—राम और कौरव्या से जो कैकेयी को सम्वाद है वही सम्भव मुमिप्रा को भी है । परन्तु कैकेयी नित्र पुत्र को राजविहायन पर बैठान क लिये राम के राज्याभिषेक में विष्णु हास कर उन्हें १४ वर्ष के लिये वन मित्रवा रही हैं और मुमिप्रा स्वयं इत्य से अपने पुत्र को कह रही हैं:—

१ ‘विदुर्गुणा माता गौरव्यानिश्चये ।

मानुर्गुणा माम्वा विमाता धर्मभक्तम् ॥

“जो वे सोय राम बन जाहीं। अथप तुम्हार काज कहु नाहीं ॥”

श्रीर राम ही साथ भक्तिरूपक सीता राम की सेवा करने का उपदेश दे रही हैं, जिस में उन लोगों को किसी प्रकार का बन में स्तरो न हो।

“उपदेश यह जेहि तान तुम्हरे राम मिय सुख पायहीं।”

अर्थात् यह कथा अकारण स्वार्थत्याग है अथि न कैसा सहज मोहावन यह बिना खाया किया है। अर्थात् किनी माताएँ स्वार्थत्यागिनी हो अपनी सन्तति को ऐसी भ्रातृभक्ति का उपदेश देती हैं श्रीर उन्हे भ्रातृप्रेम में निमुक्त करती हैं। यदि सभी माताएँ सुमित्रा के समान अपनी सन्तान को भ्रातृप्रेम और भ्रातृप्रेम की शिक्षा दिया करें तो इनमें संभव नहीं कि सन्तति का पदा कल्याण हो।

सुमित्रा की निरक्षय स्नेहमयी बुद्धिमति स्त्री थी। इन्हे अपनी दोनों सपत्नियों से तुल्य प्रेम था। काटिशाय न किया है —

“साहि प्रणययस्यामीन् सपत्न्योश्मयोरपि।

भ्रमरी धारणायय मदनिरयन्दरक्षयो ॥”

अर्थात् अपनी जैसे हाथी के गड की दोनों मदरगा पर बराबर ही आगस्त रहती है उसे ही समय सपत्नी के प्रति में स्नेहवती थी। अर्थात् इन के बदल्य तथा आत्मनिष्ठ का परिचय तो रामचन्द्र के इसी बनवास के समय पा रहे हैं। इसी से काटिशाय ने खुद का १० श्लोक ७१ में इन्हे किया से उपमा दी है।

स्मिता—बहिष्कृत्य प्रदर्शनी में यह पाठिकाय का आदेश किम है। स्मिता की पुत्रवारी में सपत्नियों के अनुरोध से रामचन्द्र को बग्य य उन के आनाशय पर मोहित हुई हैं। परन्तु स्मिता का प्रथम स्तरण कर श्रीर पम्पसद्वय अन्य कार्य उपाय नहीं देगा य मरानी के मन्दिर में आ हाथ बाँध कर बन्दना करने लगी हैं कि हि माता पतिव्रताओं में आन का प्रथम स्थान है आन की महिमा अस्मात् इ आन परदायिनी है आन अन्तर्यामिनी है हमारे मनोप का कर्त्री तरह जानती है। अर्थात् यही का कर भयवता के धीवरणों में निष्ठ गई है। मरानी ने उन की मनोरामना का मन्त्र किया है।

अब एक पुत्र को देगा उन के त्रिग मन्त्र में अर्थात् पवित्र स्नह का उद्भव हुआ तो फिर मरानी ने दूसरा मन्त्र भी परम पूजनीय बनाया हुआ। यही पतिव्रत पद्म है श्रीर गगनगुप्त से आर्ष महिमागण सुतोमिन है। इसी से य मरानी भर की सपत्नियों की गिरीमणि समझी जाती है।

पतिव्रत पद्मभूतिगा गीता पति को बन में मन्त्र आप कृष्ण म गणिक विभवपुत्र में निष्ठ रह सकती थीं। मरानी आश्रम से स्थापित पतिव्रत एवम् आत्मन सुप्रकार कल्याण होने पर भी रामपुत्र श्रीर गणविवर से पूजापुत्र सुद मोक्ष का पति की दुःखारत्ना में उनकी मदरनिनी

होने को उठ खड़ी हुई । परन्तु सास का निरादर नहीं किया । उनसे आजा मांगने के लिये उनके समीप जा कर लज्जाकुल पुप बाप वठ रहीं । स्वयम् धर्मपरायणा स्नेहमयी सास इस सुकार्य में कब बाधा दे सकती थीं । रामचन्द्र ने देशकाल विचार कर इन्हें बर रखना चाहा जिसमें ये सासादि की सेवा कर उन्हें कुछ कुछ पहुँचा सकें और सहज स्नेह से बन की विपत्तियों का भी बर्खन किया । परन्तु पतिप्रेमा मुच्यते नामकर इन्हो ने सचिनद कहा ।—

“अई जागि नाथ नेह अरु नात । पिय यिनु तियहिं सरनिहुं त तासं ॥  
तन धन धाम परनि अठ राजू । पति विहीन सय सोक समाजू ॥”

पतिवियोग दुःख के सामने पतिव्रता को किसी अन्य दुःख का कब प्यान हो सकता है ! इन्हो ने बहुत ही ठीक कहा—

“नाथ साथ मुर सदन सम, परनसाज सुखमूल ॥”<sup>१</sup>

और अधिक क्या कहें—

“रापिय अवनम जो अथय जागि, रहत जानिये प्रान ।”

और बन में मुझे दुःख होगा, हाव —

“मैं सुकुमार नाथ यनजोगू । तुमहिं सचित तप मोकई मोगू ॥”

कहा ! कसा मयुरभाषण है ! कितना छह्त्रस्त्रह उपक रहा है

सीता जी आप बन्ध हैं, और आपका अनुकरण कर के जो रिशवां पातित्त धर्म में लगी रहती हैं और सभी रहे एवम् आपकी के प्रति अनसुना का यह वाक्य—

“अमितदान मत्ता मैदेही । अन्नम सो नारि जो सेय न तही ॥”

स्मरण रख कर कार्यवृत्तिही हो वे भी धन्य हैं, और धन्य हैं आपके उत्पत्तिक के विप्रकार गोसाईं जी अन्हो ने एक दिवसीय वाक्वी रेवरेण्ड एडिबल प्रीचर से भी यह कहा दिया कि “क्यों नहीं ! ग्नी पतिव्रता सभी दुःख और मुक में अपने माथ के साथ क्यों नहीं रहे ! मेरी समझ में सम्पूर्ण रामायण में ऐसी सुन्दरता और रोचकता कहीं नहीं मिलती जैसी इस स्थान में दिखलाई देती है ।”

सीता जी ने कई कठिन परीक्षाएँ पास कर ऐसा उपरबान प्राप्त किया है । रामभवन में अनन्त सुख भोगत हुए इन्हो ने सहजस्नेह और सेवा से पति को प्रणय रखा है । वाक्यीकि जो अद्वय है कि यशस्य ने औराग्या क सम्बन्ध में कहा था कि ‘यद दामी गच्छी, मगिनी और भाता की तरह हमारी सेवा करती है । सीताजी में भी निरसनेह ने गुण वर्तमान थे । आज भी अधिदांश दिग्गमदिनायें इन इन शुभ गुणों से बधित नहीं हैं और किसी प्रकार से पति की सेवा करने में लज्जा नहीं करती । ध्मात्र संशोपक महाशय चाहे उनकी हवाई दुर्बला बरण

१ एक सग्य कवि ने भी कहा है :—

दूर दूर पर उपकन लम्बोदर । पिय की बाँह उमिरवां मुन को लट ॥”

कर भिन्नता का न्यु बहामा करे और उनके पनि का उम्हें केवन बाग प्रयुक्ति मत्र ही मानने का गौरव प्रदान किया करे परन्तु वे पतिसेवा का धरना मुख्य धम्म समझती हैं और पति उम्हें सहपत्नियी तथा गृहस्थी मानते हैं । फिर सब मुख को तिलाप्रकृति है, बनवासिनी हो, पनि के सग बन बन धूम कर इन्हों न खाने प्रेम, धम्म तथा सेवा से पनि को संतुष्ट रखा दे । और इस पद के अनुसार— 'ई सरा लोटा मुहम्मत में वे कैसा 'होशियार' । आतिसे दिवरा में नूब इसको तथा कर देख लो ॥"

अष्टाक वादिका में पतिविशेष क अपेक्षित हुए ज्वाले को विरहात सदन कर इहों में अनन निरवतन पातिव्रत धर्म पाठन का परिचय दिया है । रावण का प्रसन्न प्रताप, मधुर प्रणय, मयातक तादना मयावनी राक्षसियों की भीषण यत्नता एवम् स्वयं दुःख संघ का विमल इन के मन को विचित्रता भी बलायमान नहीं किया । और य ही रामचन्द्र के प्रति अटल प्रेम से तनिक भी विचलित नहीं हुई । यह इन क पातिव्रत का ही बल था कि भयभीत-विश्रयी महाबली रावण को भी त्रिभु क नाम से बपलोक भी बर्रा उगता था य खयदा पिहार देम को समर्थ हुई । नहीं ता सीता के गानन मीद लज्जा को उख के सामने नू करन का भी बल साहस होता ! इन्हों न विरहात्मन में दुःख हो कर अपने प्रथम प्रेम का विना नहीं टाका है वरन् सबमुख सहजती हुई आग में सहप प्रवेश कर इन्होंने अनन प्रेम तथा पातिव्रत का प्राबल्य जगत पर प्रकट कर लिया है । इसके अनन्तर गोसाईं जी न बार्मीकि के आश्रम में रज कर इन को पुन परीक्षा की आवश्यकता नहीं दखी है ।

इस विषय से यह भी शिक्षा मिलती है कि कैसी ही पतिपरायणा श्री कर्वा न हो, पति को रक्षि के विरुद्ध एक भी काय्य करने से बाह बह विरुद्ध म नही आशय क कारण हो, उसे आवश्यक दुःख भेडना पवता है । तब का ही अपनी दुःखालों से सुखमय सदन को प्राप्त कर समस्त बनाये रहती है बसकी क्या पनि होगी !

रामचन्द्र—य प्र प क प्रयास नायक हैं । इनका चित्र मन्त्रालय है और कई विभागों से दशनीय है । महारक्षक, इसी कारण से नहीं कि य मन्त्र क व्यवहार माने जाते हैं, किन्तु विरायतः इस कारण से कि एक राजवंश में काम प्रवृत्त कर इन्हों ने शिष्य पुत्र प्राप्ता, पनि, ऋषु मित्र आदि अनेक रूपों से अपने महान् काव्यों के द्वारा सुदृग्धपरम उपवायी देगी सृष्टिपात्र प्रदान की हैं कि सहयोग बर स्थीत होने पर आज भी का यत्नताम उन से महान लाभ उगा रही हैं । तथा यद्ये शिक्षा सुदृग् मिलना दुष्कर है । मया रामचन्द्र सेवा सुरीत, गम्भीर, आत्मसाधी सुरमल विरुमल मातुमक, विरग्लेही, आनुराग्यत, दास बन्धु, स्वयन परिचय और विषय सुगहायक एक ही पुत्र बर्रा बल है । समार का कौन देस और कौन जनि तथा सृष्टुण सुगह आदरा विषयमेयोगी क नत्रपय में उपरिपन कर रहती है ।

इसकी सुरमक तथा सुरसेवा विरादित्र के एक सुदृग् दाय क समान आश्रमकी होने एवम् शरीरदि क गम्मान में म्दन करती हैं ।

होने को ठठ खरी हुई । परन्तु सास का निरादर नहीं किया । उनसे आज्ञा मांगने के लिये घनके समीप जा कर सख्यासुत चुन चाप बँध रही । स्वयम् धनपरायणा स्नेहमयी सास इस सुकार्य में कब बाधा न सख्ती थी । रामनन्द ने देशकाल विचार कर इन्हें घर रखना चाहा जिसमें ये सासादि की सेवा कर उन्हें कुछ सुख पहुँचा सके और सख्य स्नेह से घन की विपत्तियों का भी बचाव किया । परन्तु पतिसेरा मुखन जानकर इन्होंने न सन्निवृत्त कथा ।—

“अहं क्षमि नाथ नेह करु नाते । पिय विनु तियहिं तरनिहुं ते ताते ॥  
सन घन धाम परनि करु राजू । पति विहीन सव सोरु समाजू ॥”

पतिविमोग दुःख के घामने पतिव्रता को किसी अन्य दुःख का कम ध्याम हो सकता है ! इन्होंने बहुत ही ठीक कथा—

“नाथ साथ सुर सदन सम, परनसात सुखमूत ॥”

और अधिक क्या कहे—

“रापिय अयध जो अयध क्षमि, रहत जानिये प्रान ।”

और वच में मुझे दुःख होगा हाव ।—

“मैं सुकुमार नाथ वनमोगू । मुमहिं चञ्चित तप मोकरैं मोगू ॥”

कथा ! कथा मगुरमापण है । कितना सख्यस्नेह व्यक्त रहा है

सीता भी आप धन्य हैं और आपका अनुकरण कर के जो रिश्या पाठिकृत धर्म में लगी रहती हैं और लगी रहे एवम् आपही के प्रति धनसूया का मह बाध—

“अमितदान मर्त्ता बैदही । अघम सो नारि जो सेव न सही ॥”

स्मरण रख कर कार्यवृत्ति हो वे भी धन्य हैं, और धन्य हैं आपके सख्यरिज के निरकार गोसाईं की जिन्होंने मे एक विदेशीय पादकी रेखरेड पृथिवम प्रीवृत्त से भी यह कथला दिया कि क्यों नहीं । म्मी पतिव्रता रही दुःख और मुख में आपसे नाथ के साथ क्यों नहीं रहे । मेरी समझ में समूह रामायण में ऐसी सुन्दरता और रोचकता नहीं नहीं मिलती जैसी इस खान में दिखलाई देती है ।

सीता भी न कहीं कर्मि परीक्षा पाय कर ऐसा अचररूपान प्राप्त किया है । रामभजन में अनन्त मुग भोपते हुए इन्होंने मे महकरवेह और सेवा से पति को प्रगता रखा है । बान्धीकि जो कदन है कि बराग ने औरगया क गम्वाय में कहा था कि 'बह दानी रागी, मयिनी और माता की तरह हमारी सेवा करती है । सीताजी में भी निरसखेह व गुण वर्तमान थे । आज भी अविच्छाद दिन्दु मदिनामं इन इन शुभ गुणों से वधित नहीं हैं और किसी प्रकार से पति की सेवा करने में लगन नहीं करती । समाज गंशोपठ महाराय जाईं उनकी ह्वार् दुर्बरा बराव

१ एक अन्य कवि ने भी कहा है :—

दूर दूर पर टपकन गरिबोदूर । पिय की बाँह उमिरावां मुन को मृत ॥”

कर त्रिभुजा श्रीमद् बहामा करे और उनके पति का उन्हें केवल बाल प्रसविनी यज्ञ ही मानने का गौरव प्रदान किया करे परन्तु वे पतिसेवा को अपना मुख्य धम्म समझती हैं और पति उन्हें सहस्रमिणी तथा गृहस्थी मानते हैं। फिर यह सुन्न को तिलाञ्जलि दे बनवासिनी हो, पति के संग बन बन धूम कर इन्होंने अपने प्रेम, धम्म तथा सेवा से पति को संतुष्ट रखा है। और इस पद के अनुसार— 'है करा खोटा मुहम्मत में वे कैसा 'होशियार'। आसिये हजरा में यह इसको तथा कर देख लो ॥

असोक वादिका में पतिवियोग के भयछते हुए प्वाल्ले को बिरहाल सहन कर इन्होंने अपने निरबल पातिव्रत धर्म पालन का परिचय दिया है। रावण का प्रबल प्रताप, मयूर प्रसव, मवानक ताड़ना, मयावनी राष्ट्रियों की भीषण यज्ञया एवम् स्वर्ग तुष्य संका का विभव इन के मन को द्विजिमात्र भी बलावमान नहीं किया। और वे श्री रामचन्द्र के प्रति अलस प्रेम से तनिक भी विवर्तित नहीं हुई। यह इन के पतिव्रत का ही बल था कि अयोध्या-विजयी महाबली रावण को भी जिस का नाम सं देवलोक भी बर्रा उठता था वे सदा पितार देने को समर्थ हुई। नहीं तो सीता के समान भीह ललना को उस के सामने पू करन का भी कर चाहस होता।<sup>१</sup> इन्होंने बिरहानल में दग्ध हो कर अपने प्रतर प्रेम का सिद्धा नहीं टाटा है बल्क सपसुख सहस्रती हुई आग में सहर्ष प्रवेश कर इन्होंने अपने प्रेम तथा पातिव्रत का प्राबल्य जगत पर प्रकट कर दिया है। इसके अनन्तर योसाई जी ने वाश्मीकि के आधम में रच कर इन की पुन पतीया की आवश्यकता नहीं बची है।

इस विषय से यह भी सिद्धा मिठती है कि कसी ही पतिपरायणा स्त्री क्यों न हो पति की रक्षि के विरुद्ध एक भी कार्य करने से पाहे वह विरुद्ध प्रेम के ही आधम का कारण हो, उसे आवश्य हुण्य मेकता पड़ता है। तब का ली अपनी बुबालों से मुन्नमय सहन को प्राणपीडक समरान बनाये रहती है बसकी क्या गति होगी ?

रामचन्द्र—ये प्रप के प्रपान नायक हैं। उनका विषय महारवण है और की विभागे से दशनीय है। महारवण, इगी कारण से नहीं कि ये जग के अवतार मान जाते हैं, किन्तु विशेषत इय कारण से कि एक राजवंश में जम महण कर इन्होंने शिष्य पुन, प्रता, पति, प्रमु, मित्र आदि अनेक रूपों से अपने महान् कार्यो के द्वारा सुहस्रधर्म उपयोकी ऐसी सृष्टिपूर्ण प्रदान की है कि सहस्रो वर्ष व्यतीत होने पर आज भी आ संमन्तान उन से महान लाभ उठा रही हैं। ऐसा सखी 'शिद्धा मुहम्म' मिलना दुष्कर है। महा रामचन्द्र जैसा सुशील, गम्भीर, आत्मवाणी सुदमन विभुभक्त मानुमरु, प्रियान्वही, आनुभवत दास बन्धु, स्वजन परित्रक और मित्र सुगदायक एक ही पुन बर्रा पाते हैं। संसार का कीम दस और कीम जालि तथा सद्गुण सम्पन्न आदर विप्रमनोगी के नेत्रपथ में उपस्थित कर सघनी है।

इसकी सुनसिद्ध तथा सुमेवा बिरामिष के एक सुन्द दस के समान साक्षात्की होने एवम् बसिणादि के सम्मान में च्चनक रही है।



पितृमर्क ही तो इस अनुपम चित्र की मुद्रमूर्ति है। जिस समय इन्हें राज्याभियेक होने को या उसी समय इन की विमाठा में इन के पिता को पहले प्रतिज्ञाबद्ध करा था इन के बचवास का बर मांग दिया। विमाठा ही से यह सम्बन्ध सुन कर केन्द्र विस्मय रहित प्रसन्नचित्त भाव कइने लगे—

“सुन जननी सोइ सुन वड़ मागी। ओ पितृ मातृ वचन अनुरागी ॥

बनगमन में हाथि ही क्या है! वहाँ तो मुनिजों के दर्शन का अधिक व्यवहार और आनन्द मिलेगा मेरा सब प्रकार से हित साधन होगा, और बचवास के लिये पिता की आज्ञा होने से और उत में हे माता! तुम्हारी सम्मति होने से यह तो और सोने में सुगन्ध मिल गया। मैं अभी बच की आज्ञा करता हूँ।” बच अपनी माता का दर्शन कर चार सनकी आज्ञा से पतिपरायणा पत्नी तथा प्राणामक भाई के संग बनगमन के लिये तैयार हो गये। होते क्यों नहीं? रात्रिप्रायः का सोम बोधि ही था। यह तो पहिले ही से कह रहे थे—

“विमलार्धस यह अनुचित एकू। वधु विहाय पढ़हि अमिक्षेयू ॥”

विषय में अनुरिक्त भी हो नहीं—

“नाहिन राम राम क भूये। धर्म धुरीन विषय-रस-रूपे ॥”

और भरत के राज पाने में आज्ञा ही था—

“भरत प्रायप्रिय पायहि राजू। विधि सय विधि मोहि समुप जानू ॥”

बाहरे आत्मसाय बाहरे पितृमर्क केवल नहीं एक परित्र इन के चित्र को धर करता है। और परित्रों की पान दूर रहिये। इन के इसी परित्र से मोहित होकर एक सुविक्रान्त बचन उक्त में एक बार एक समाचार पत्र में लिखा था कि क्या यह अनुपम का काम है!

इसी मातृमर्क की ऊपर की पट्टा से परकृत होती है और मातृदेव के नियम में तो स्वयम् कहेगी भी ने कहा है—

“कौमन्त्या सम सय महठारी। रामहि सहज सुमाय विधारी ॥”

आर—

“मो पर करहि मनह बिसेयी ॥”

धिर—

“तुम अपराध जोग नहीं तावा। जननी जनक यद्यु सुखदाता ॥”

इसी के कारण बचवास होने पर भी उक्त प्रतिज्ञा प्रेम में कुछ बची नहीं हुई और गब माताओं पर पूर्णतः तथा तुम्हें स्नह बना रहा। इसी से बच आते समय बारह हाथ जोड़ कर सबों से कहते में वही दिनय दिया।—

“मातृ सकल मोरे विरट, जेहि न होहि दुम्ह हीन।

गोट उपाय तुम करय सय, पुत्रजन परम परकीन ॥”

भीमा जैशो मुखीला पतिव्रता पत्नी या वर भी यदि इन में क्नी प्रेम का अभाव होता तो य आदरां पुरय कैसे हाते । य उन्हें भी प्यार करत य आर उन्हें प्रसन्न तथा सन्तुष्ट रखन की शरा जन्टा भी हिवा करत थे । बरन् उनके प्रसन्न करने के उद्योग ही में इन का अग्रहरण भी हुआ । ऐसे माटीरत्न के विद्योग में इन्का माटी बिलस बसाय कोई आर० य भी बात नहीं । निरवय ऐसी प्रियतमा यद्वाग्मिणी के निमित्त इन को काल स लहन के निधे उद्यत इना उचित हो या—

“एक वार कैसेहु मुधि जानो । कालहु जीस निमित्त मई ध्यानो ।”

आर इसी नीति के कारण महाबली राजु स तुमुन मुद कर इन्को न इस का गरिबार सदार भी किया । इन्हों ने आनी प्रियतमा का ज्ञान हृदय में भाग्य पर विद्या या सही, परन्तु इन्हों ने अज्ञान मन्त्र उक्त के हाथ में नहीं र किया या और न उक्त के प्रसन्नार्थ आप सब परिचार स मुह मोह वर य । य भाई का श्री स बर कर समग्रत य । हा आज स्थिने स्थानों में माटी के घर में प्रवेश करत ही एक उक्त का पाम-कान-बासा माई एक गृह में बास नहीं करन पाता एत स्तन स और एक गाँव में पना हुआ माई एत हाँकी स एक बीबा पर खान नहीं पाता

परन्तु रामचन्द्र के हृदय में जानूँस कहा था । इतिथे लका में पनचोर मुद हो रहा है लक्ष्मण पावन हा संसारय भूतन में पके हुये हैं इन्माम महीन कृती लान ग्ये हैं । यहाँ रामचन्द्र माई की दशा देख जगोर हो फूट ० कर रो रह हैं और कर रह दे —

“मम हित तान लजेउ पिनु माता । महउ विपिन हिम ध्यातय याता ॥  
 औँ जनितो पन पन्तु यिलोहु । पिता यचन मनिताँ नहि छोहु ॥  
 मुन यित मागि भयन परिगारा । होहि माहि अग यारहि पाग ॥  
 अम यिपार मिय आगाहु ताता । मित्तहि न जगत महोदर ज्ञाता ॥”

हमारे रामाग्नी माई लोग इन्काय पर तो अवरय माया गगन को तीरार हो जाते हैं कि लक्ष्मण तो गणेश नहीं य मोवाई जी ने देमा क्यों जिगा या रामचन्द्र ही न गया क्यों क्या । परन्तु हम स मद्रिच्छा अंग की खन में भी पेटा नहीं करते । चरे माई रामचन्द्र 'परोर' को 'गोहर' नाम उक्त के जीवन के नामन सिद्धाग्नी तथा परिवार को दुग्ध बना रहे हैं और तुम जिन रात रामादर पा करन पर भी महान को 'परोर' ही नहीं करन पोर राजु गमक उक्त अंग के अदक बनन में भी गराव नहीं करने ।

मम भी रामचन्द्र के अंगुलि थे । जिग अन्व विप्रकृत में मम को मदन आत देग लक्ष्मण जी ज्येन उक्त में मुद करमे था तदार हुये हैं उक्त अन्व मम जी का हीन रात बर्तन करने रामचन्द्र अंगुलि में मम हो गये हैं । उक्त ने ली जी ने हमणोंला लक्ष्मण कहा है । और बर भी का ट दि—

“मम मग्नि को गम मनरी । जय जय गम गम जय चेता ॥”

ये पुरजल तथा प्रजापति को इतना प्यार करत थे कि इन के बलवाच होने का समाचार सुनते ही सपसोरा बिकरत हो गये इन के साथ बल पड़े और बड़ी कठिनाई से वे वन सोपों से अपना पियर छोड़ा सकें और लक्ष्मण जी को भी वे प्रजा के दुख के ध्यान ही से भ्रम्य में रखना चाहते थे। क्योंकि इन्होंने कहा था—

“आप्तु राज प्रिय प्रजा तुस्वारी। सो नृप अक्षय नरक अपिकारी ॥”

बहु विचार इन का उस समय था जब ये बैरव रामदुमार थे। बहु वाक्य निरुच्य प्रीति और नीति गर्भित हैं।

इन की नीति निपुणारी के विषय में बहु भी कहा जा उच्छता है कि अक्सर अपने पर किसी के छग प्रीति मिताई करने में वे संकोच नहीं करते थे। इन्होंने निपाद तथा बलवरो से प्रीति की सुधीव से मिताई कर माहा बानरों को भी अपना बनाया और राम के बन्धु को शरण प्रदान कर इन्होंने राम की शिष्टता का पूरा परिचय दिया। परन्तु जिस से मित्रता हुई वह निष्कण्ट मित्रता हुई; बैरव स्वाध साधन क सिये नहीं और बहु अम भर निबाही गई। एवम् अपना यह कथन—

“जे न मित्र दुख होहि दुस्वारी। विनिहि विलोकत पातक मारी ॥”

सदा सार्यक किया गया।

ये अपने प्रेम के बड़े भूके थे इसी से इन्होंने राम की का बूठ पाया और अपनी हान से भीष का वैद-निरकार किया। और सबाई में तनिक खोटाई देखने से इन्हें कमी-कमी कोष भी आता था। इसी से सुधीव क सम्बन्ध में इन्होंने कहा था—

“जिहि मायक में मारा याखी। तेहि सर हतौ मूढ़ कछैं फाखी ॥”

और कुछ ऐस ही कारण से राम पर भी कोष हुआ था। संसार में कार्य साधन के शिवे गरम और गरम होना दोनों ही आवश्यक हैं। जिगी एक के उर्धवा अभाव से काम नहीं चल सकता। राम रादी ने कहा है—

“दुरशती को नमी वहम दर दिहल ॥”

अर्थात् गरमी और गरमी का संवाग उत्तम होता है।

दुसरो का दुःख दण के अन्त-करण में पीड़ा होती थी। दुमी से मुनिबों क मुठ से उन क बसेर का हात मुन कर इन्होंने निरन्तर विदीन चुपी करने की प्रतिज्ञा की और सुधीव की पीड़ा ही बेगकर बाति का भी बप दिया। परन्तु अंत में होकर बप क्यों किया? यह कथा से कर हम यहाँ विगृहा बाद करना नहीं चाहते। दुःख उत्तर स्वयं गोगाद् की तथा आदि करि में देने की योग्य थी है। ये बाई सन्तोष-वाक्य हैं, वा न हो हम यहाँ पर यही कहें कि इनक बनि में ऐसी कोई बात नहीं रहने से ये हनमोनों से बहुत दूर ऊँच बल गठ और आदर्श विषय हो कर केन परमद हो रहे जाते। ये बात इन्हे अभिनेन नहीं थी क्योंकि ये संसार के कर्माचार्य समार में विगृमान हुये थे।

समस्त जी-सामाज्य में यह एक अनीकिक दर्शनीय विषय है। तदुभाव विमुद भानुमहि तथा शार्पशाग एक ही कक्षर में मूर्तिमान गया है। कभी भी में काहि दोष क्यों न हो

केवल मरत क समान एक सन्तान प्रसूत करन स वै हमजोगी की सर्वथा पूजनीया हो गई हैं ।  
 वन की कुशाळ से जो मरत आ पर कर्षक की दीक्षा लगन की सम्भावना की उठे इहो न स्वार्थ  
 त्याग तथा रामचन्द्र के प्रति निरच्छल प्रेम प्रदर्शन कर सषषा निर्मूल कर दिया । इन के सहगुणों  
 को तो सोच पहल ही से ज्ञान ध परन्तु यह इन की जीव का अन्वय वा और इस जीव में भी  
 ये पक्के निश्चल ।

पानिहास स आने पर अपनी माता का दयन पाव ही ये पूजने हैं —

“छट्टू कहू मात कहा सब माता । कहैं मिय राम लखन प्रिय भ्राता ॥”

और माता क मुण्ड से विना की परलोक यात्रा का हास मुन कर उस का कारण  
 पूजते हैं उस समय राम के बन्धाय का पुनान्त धरण कर—

“भग्नहि विमरउ पितु भग्न, सुनत राम बन गौत ।”

इतना ही नहीं । विनाप्रदत्त रात्र को लोगो क आग्रह करन पर भी इहो न स्वीकार  
 नहीं किया और परिवार तथा पुत्रजन सुभन रामचन्द्र की सेवा में पशुष कर बहो इहो ने ऐसा  
 विगुण्ड प्रेम का परिचय दिया कि मय स बहगराज का भी कलका काँन तथा कि कही तथा न हो  
 कि इन के प्रनवाय में पैँवर रामचन्द्र करण लौट जीव कार देवों का यथा बनाया काम मिथी  
 में मिल आय । अतएव वे निर मररवती की शरण में सींके कि वे महायता करें । शारदा म  
 कहा कि तुम्हें हजारों आगे रहते हुए भी नहीं समझी ? य क्या दुबल विन दासी हैं कि हम पर  
 हमारा दाष पड़ेगा ? अब रामचन्द्र न अवन लौटन या नहीं लौटने का विचार इही पर छोड़  
 दिया तर धर्मत्र मल की उहें संज्ञान में हास कर अक्षय केर माना कविन म अमम उत की  
 पञ्चाङ्ग से कर लौट आय एवम् इही पापुडाओं का निहासन पर विराज्यान करामा । उपर  
 रामचन्द्र १४ बज बज बज पूजते रहे उपर मल की बडा बहल कारण किये मन्दोदान में  
 समय अर्पित करने लग । कवि ने इनके विग में इमी वाक्य में बहुत कुछ का दिया है—

“जो न होत जग जनम भग्न का । मरुज धरम धुर धरनि पग्न को ॥”

संसार में ऐसा स्वार्थ त्याग अमम है ।

ये बलबाम भी ऐसे थे कि इन का बिना जन का कारण लगन म हनुमान की श्रेण पवन  
 समेत पूषी पर घम से गिर पड़े थे और उग समय इहो ने कहा था कि आर्य दर्शन महल मेरे  
 बाय पर बिये में मुग्न कार को गदा पदुंका बना हू ।

श्रीलक्ष्मण — ये श्रीमी अनामद रनेइग मरमी मन्दावी अन्वुम्ह में आन्वविरचन  
 और संगारविरचन हो रहे थे । इन का यह गरम म नरुण स पष्ट होना मना है । अने  
 रनदमय व रों म इहोने उग कमी प्रष्ट नहीं किया है । य रामचन्द्र क लाना मरुप से, राम  
 के बिना उहें एक घण भी बन नहीं पदनी थी । इमी स राम क बन्धाय का पुनान्त मुन कर  
 से आहुन विन होय है और कहीर हा उन का कारण गहन है । रामचन्द्र मन्दावतार उपरग  
 करने हुए इहें अर में मरुन की मम्मनि दग है । पानु बिना राम क इहें नैन कही । ये  
 अतुन में कर उगों और ये मरुगगा में अमम करे मना दर कर मम्मर है । अन्वु  
 मरुगा की बल है कि “अन रामा है ये नाम है, मुन अम श्रीरिज ता म बना कर मरुन  
 है । पानु बाउ दर है—

“गुरु पितु मातु न जानौं काहू । कहूँ मुभाय नाथ पतिघ्याल ॥”

क्या जो सब प्रकार से बरखों में रत हो उस त्याग बना उचित है ? इस क प्रेम के कारण रामचन्द्र को इन्हें साब खना ही पड़ा । किन्तु यह विकलता क्यों ? ये तो सुख-दुःख में उबल नहीं पड़ते थे । टीक है । यह विकलता उपस्थित या मारी विपत्ति क कारण नहीं आतु सेवा से बधिन होने की घासंका स थी । नहीं तो हम शीत इन्हें बपीर कर पाते हैं ? विराय के बंधुल में सीताजी के बँध जाने एवम् रावण द्वारा अपहृत होने पर भी तो हम इन्हें रामचन्द्र को समझाते ही पाते हैं ।

ये राम के बने आत्माकारी भाता थे । हम ने इन्हें उन के सिध बन में दुःख दुःख काम करते, उन के इशारे से सूर्यनका की नाक जान करते उन का रूप देख लडा में सीता के अग्नि-यथेय के तिवे विता बनाते देखा दे ।

अन्न प्रति ये किसी का अपराध सहन मले ही कर लें परन्तु राम के प्रति किसी का अपराध जमा करन को ये तबार नहीं थे । इसी से सीता जी के मर्म बाधन को तो इन्हों ने सह लिया परन्तु सुमंत से बरारय के विपन में स्वकी बातें करते इन्हें कुछ संकोच नहीं हुआ ।

ये निर्भीक तेजस्वी बीरवीर, सत्साही साहसी पुरुषार्थी तथा पुद्गिमान पुरुष थे । उन की निर्भक्ता एवम् सेव आदि का प्रकार भद्रपवन में एव बजन में आया है । राजाओं की बतवती देख—

‘अहन नयन मृच्छुनी कुम्भिल, अितयन नूपन सकोप ।

मनहु मत्त गजगन निरसि, सिह किमोरहि चोप ॥”

धीर परशुराम बसे अत्री-उल्लसालक कोपी बीर पुरुष से निबर हो कह रहे हैं —

“यहाँ कुहंङ वतिया कोब नाही । जो तरजनी दखि मर आहीं ॥”

इन की बीरता लडा में बेलन में आई है । विरोधत जब ये शरय करक बले हैं कि आज मेपनाह का अवरय बपक्यंगा और सब मुक उने मू शामी बना ही दिवा दे ।

अने पीएय और बल पर मरावा करना भी इन में विघमान था । समुद्र से रास्ते प्राग्ने के रामय इन्हों ने रामचन्द्र से पेलदक कह दिवा दे—

“नाथ दैय कर कौन भरोमा । मोपिय सिधु करिय मन रोया ॥

कादर मल कह एक अघारा । दैय दैब आलामी पुकारा ॥”

इस विधी हुई अचम्बा में अन्न उभिन मल और पीएय पर भरोमा कर बेश दशा सुभारने की शिष्टा मनुष्य इगस प्रहस कर गजना है । इन के इय बात से यह स्पष्ट विदित होता है कि मझ इन की राय रामचन्द्र से नहीं मिलनी थी बहा यह अगनी मति प्रकाश कर बने में भव नहीं करते थे परन्तु लड लडर उन के विरोध करने का तैयार नहीं हो जात थे ।

ये दोनों पुरन भ्रातृ भक्ति क आदर्श चित्र हैं । स्वार्थत्याग तथा आत्मत्याग का नए गाथा गज इन पर नसा हुआ है । दोनों अने विरोध प्रमा स ददीप्यमान हो रहे हैं । एक कोई सुन्दर अन्वय मजुर बन क ममान है और एक नित्य क पुन्दिरा लोप पत्थाय के नुस्य है ।

जब हम एक को बिना प्रदत्त रात्र को परिस्वाग कर तपस्वीरूप धारण किये जन्मीधाम में राम क प्यान में मान देखते हैं और दूसरे को नित्र इच्छा से वनवास स्वीकार कर पशुप-बाण किये योगी मेघ में भ्राता के पीछे वन-वन घूमते उन के दुःख और कष्ट क मागी हावे अपनी जान को हथेली पर रखे उन के कार्य वाचन क लिये प्रबल शत्रुओं के संग सप्राप्त करते निरीक्षण करते हैं, तो हमारी बुद्धि चकड़ा जाती है। हम इन दोनों महापुरुषों को सपशुब स्वर्गीय जीव एवम् आदर का वन तथा परम पूजनीय देवता मानते हैं। ऐसी उज्ज्वल तथा प्रबल भ्रान्तुबुद्धि होने ही से कवि ने भरत के निषव में कहा है कि—

“अगम सनेह भरत रघुपत्र को। जहं न जात मन विधि हरिहर को।”

और रामलक्ष्मण वेले ‘एक जान दो कासिब’ होगये हैं कि धीमा तथा भरत के बिना राम की कल्पना हो सके तो हो सक परन्तु लक्ष्मण के बिना राम कहाँ? इसी स चीता राम से अधिक राम लक्ष्मण का इस बेरा में प्रचार है। ये उनके निषव क काय में मिल गये हैं।

हा जिस बेरा में भ्रान्तुबुद्धि के ऐसे २ आक्षर हैं वहाँ विरोध बरा एक तूरि भूमि के लिये भाई, भाई का गला घोटन को उद्यम हो जाते हैं एवं फिर सम्भवतः पत्रिक पत्र तथा निम्नो पात्रित सम्पत्ति पर पापी फेर बत हैं। क्या उन्हें रामायण उ सुन्दर सिद्धा देने वाला कोई नहीं है? क्या रामायण की क्या बाबनेवाल व्यास महाशय कभी अपने धनाश्रमों का प्यान इन बातों की ओर भी आक्षिप्त करते हैं? क्या रामायण-पाठीगण इन उद्दिष्टियों का कभी मनन करते हैं? क्या सीता प्रेमी भङ्गवत रात्रितिक पशुपत्र एवम् पुत्रवारी की मन्त्री ही से अपने की इन्तार्थ और अगत् का कववाण समझते हैं? इय भ्रान्तुबुद्ध में कुछ धार नहीं पाते।

थी राम सीता, भरत तथा लक्ष्मण की क सन्तुष्टों पर मुग्ध हो कर दाउग गाहब ने तोभाई जी प्यन मानस रामायण के अंतरेकी अनुवाद की उरकमणिका में जो निम्न दे, वह पाद मोट में उद्यत कर दिया जाता है।<sup>१</sup> गाहब क कथन का गांतरा यह है कि कोई इन लोगों की पूजा न करे वही परन्तु इन के सन्तुष्टों की साहना सभी करते। हम कहते हैं कि इन्हे कोई ईश्वरवाचन या ईश्वरवाच होना स्वीकार करे या नहीं परन्तु अपने धनीबिक मद् गुणों से वे लोग अक्षय ईश्वरवाच तथा ईश्वर को प्रदत्त हैं और सबसे पूजित होने क योग्य हैं।

1 All may admire though they may refuse to worship the piety and unselfishness of Bharat, the enthusiasm and high courage of Lakshman the affectionate devotion of Sita—that paragon of all wife like virtues—and the purity meekness, generosity and self-sacrifice of Rama the model son, husband and brother the guileless king high self-contained and passionless the Arthur of Indian Chivalry—Introduction to english translation of Ramayan by, Tulsidas P. N. published by Ram Narayan Lal.

हिन्दू समाज में विरहल से बर भर इन की पूजा होती जाती है और अबरम होनी चाहिये। इन्हीं लोगों में भ्रष्टा भक्ति रखने इन्हीं की पूजा करने एवम् इन महा पात्रों के पुत्राचार्यों से छुट्टियां महाराज करने तथा उन का अनुकरण करने से हम लोगों का समय शोक में बर्बाद हो सकता है।

हनुमान जी—एक कवि ने सेवा धम्म की कठिमाई के विषय में कहा है —'मीवा न्पुण्ड्रप्रवचनपटुर्वातुलो बहन्को वा घाम्पवा मीर्म्महि न सहेते प्रायसो मामिमात्'। इत्थः पासं वसति निपटं वृत्तरवाप्रगवमः सेवाधम्मः परमगह्वरो बोगिनामन्वगम्य' ॥

हनुमान श्री रामचन्द्र के सेवक थे। पहले ये बानरराज सुमीर के मंत्री थे और इन्हीं के द्वारा रामचन्द्र तथा सुमीर में मित्रता स्थापित हुई। जब वे इन्हें रामचन्द्र का साथ हुआ वे सरा मक्ति पूरक अध्यान्त रूप से उन की सेवा में बतबिता रहे। राम की सेवा किने बिना ये विभाम नहीं पाठ थे। ये बड़े साहसी महावीर अनुराधावामि तथा प्रमुमज्ज थे। अकेले मार्गस्व विप्लों को दमन करते सुरक्षित सहा में प्रवेश कर सीता का पता खोजना सहा दम्ब करना, शोश पर्वत का उडा लाना इन के साहस बल, बीरता और बाहुर्ब का पूरा परिचय दे रहे हैं। राम के राम मन्महाताप के समय एवम् सहा में राक्षस के साथ पाठबीत करने में हमें इन की विद्या बुद्धि का पूरक मन्दात्र मिला दे। इन्हीं ने एक ही एक मुष्टि का मार राक्षस कुम्भकर्ष मेवनाह प्रभृति बोद्धाओं को बध कर अपने महावीर नाम का सार्थक किया है। इनकी अकण्ठ प्रमुमज्ज ही से सुमीर राज्य प्राप्त कर सके और उस पर अधिपार रखने को समर्थ हुए और इन्हीं भक्तिसेवा से सन्तुष्ट हो कर रामचन्द्र न कहा—

“सुन कवि बुद्धि समान उपकारी। नहीं कौऊ सुर नर मुनि तनुपारी ॥

प्रति उपकार करों का तोरा। समुप होइ न सकत मन मोरा ॥”

इन्हें रामचन्द्र स्वयम् ऐसी सार्थकिकिन्ने देत हैं उन के विषय में बहुरे किती को अधिप करने का कहा बधदारा है। इन का रमारक सपनक बिन्दू हनुमान गवी आत्र भी भी बधब में विराजमान है।

अह्वद—बानर राज बालि के पुत्र तथा सुमीर के मंत्री थे। अन्त्यावस्था ही में ये सुरराज क पर से भूविन हुए थे। बालि न रामचन्द्र से कहा था कि यह बालक मेरे ही समान बली और बिनवी है। यह बात प्रसय ही देखन में आई। इन्हीं ने अपने शील स्वभाव और आर्त्त से रामचन्द्र को निरबब सन्तुष्ट किया। इन का बल पराक्रम तो इन्हीं से प्रकट है कि राक्षस की भरी सभा में इन के पूर्यो पर एक बार हाथ पडने से राक्षसालि सभी लोग सु ह के बन गिर पडे और इनक वीर रूपने पर कोई उस निल मर भी इराने से समर्थ नहीं हुआ। बार राक्षस के स्वयम् उन्ने पर इन्हो ने एक ही बात कह कर 'कि मेरा पर पडने से तुम्हारा बन्धन नही है। उमे एवा लाजगत कर दिया कि वह अपना सा सु ह से कर बठ गया। यह इनकी वगुगई थी और इगी अनुराई क विचार से रामचन्द्र ने उन्हें पूरा अधिपार दे कर राक्षस के नाम दून जहा था बार उस समय जहा भी था कि —

“बहुत मुभाय तुम्हें का कहऊँ। परम अनुर मैं जानत आऊँ ॥”

राज्य के साथ सम्पापण करने में इन्होंने अपनी बुद्धिमानी, वाक्यपटुता और हाथिर जवाबी प्रदर्शित की है। रणक्षेत्र में भी हमने इन्हें हनुमान ही के समान उत्साह और उमङ्ग के साथ युद्ध करते एवम् बल विजय प्रकाश करते देखा है। तब इन्होंने समुद्र किनार बसो कहा था :—

“जिय संसय कहु फिरीती वारा ।”

इस का उतर देना रामायणियों के कानों में है, उन्हीं से पूछ लीजिये।

जामवन्त—ये आनुषों के राजा थे। ये बिक्रम और बल बली थे। युद्ध काल में रामचन्द्र ने इन्हें अपना मंत्री बनाया था। इन्होंने भी सम्मति से लक्ष्मण के शक्ति स्थान पर लक्ष्मण के बेटे सुमेन लावे गये थे और इन्होंने हनुमान को लक्ष्मण जान के लिये प्रोत्साहित किया था। वृद्धावस्था होने पर भी इन्होंने एक बार मेघनाद को भिक्षु प्रहार से मुक्ति कर और उसका पर पक्ष कर उसे लक्ष्मण पर छोड़ दिया था। अपनी बहानी का बत तो इन्होंने बानरों से स्वयं बतान किया है।

सुमीय—रामचन्द्र से मिताई कर के अपने माई का बच कराकर इन्होंने विष्णुका का राज्य प्राप्त किया था। परन्तु राज्य पाकर वे विपवासङ्ग हो गये थे। हनुमान ने नीति ज्ञान का उपदेश करके इन्हें फिर ठिकान पर लाया था। इन्होंने बानरों सेना से रामचन्द्र की पूरी सहायता कर अपनी कृतज्ञता दिखाई थी और रणक्षेत्र में गौर लक्ष्मण थे। वे रामचन्द्र के प्रधान युद्धमंत्री और सेनाध्यक्ष थे।

विभीषण—ये राजा के कानों में थे। राजा से अपमानित होने पर राम से मिलकर इन्होंने अपने कुल परिवार का नाश कराया। सुभीष और विभीषण यद्यपि भी राम के मङ्गल थे और इन दोनों से रामचन्द्र को लक्ष्मण विजय में अग्रणी सहायता मिली तथापि इन दोनों की भक्ति हनुमान और अक्षय के समान स्वायत्त नहीं थी। बड़ा मरत और लक्ष्मण का स्वर्गीय विजय और बड़ा य बानु पामकों का विजय। परन्तु इन विधियों को दिखा कर भी यदि हमने दोनों को सुन्दर सिखा प्रमाण कर रहे हैं। घर में विरोध होने से कदापि कन्याएँ नहीं होंगी। अन्तर्गत पर के विभिन्न व्यक्ति के संभव होगा बतान करना उचित नहीं किंग से वह शत्रु बनकर गवनाथ करा डाल।

परन्तु वे लोग कौसे बतानों से इतने विरक्त बड़े हग की भी कुछ कानोबना उचित है। सुभीष के पक्ष में तो वह कहा जा सकता है कि बानि उन की ' इधी और मर गम्पनि आदर्य कर चोटें देन से कही रहने भी नहीं देना था परन्तु विभीषण के गवनाथ में गला नहीं कहा जा सकता। राजा इन्हें बहुत आदर मान से रगता था। उन ने इन्हें अपनी गमा का मंत्री नियुक्त किया था। इन के रामचन्द्र में भी बाना नहीं डालना था और वे युद्ध में रामचन्द्र करने पाते थे। यदि यह बात नहीं होगी तो हनुमान जी इस का गू

१ वास्वीदीय रामायण में वर्णित जाता है कि बाने मूर्ख ही न बानी की थी को करना सिखा था समुद्र किनारे बानरों के मङ्गल चन्द्र का बालाचार पर नीतिवत्।



रामाशुपमन्त्रि नही देख सङ्ग और न इन्हें रामनाम जपत ही सुनते विभीषण ने जो कह था कि—

“सुनहु पवन सुत रहनि हमारी । जिमि दसनन्हि मईं भीम बैचारी ॥”

तो इस से भी यही अनुमान होता है कि जैसे सर्वदा दौतों से बचने पर भी भीम को क्लेश नहीं होता और वह स्वतंत्रतापूर्वक अपना कार्य चला करती है वैसे ही दुराचारी राक्षसों से छटा बचने पर भी इन्हें मज्जन भाव में बाधा नहीं होती थी ।

राक्षस को तो सब लोग ही समझाते रहे परन्तु अपने हाथ तो किसी को नहीं मारी । इन को शात मारने का कारण यह हो सकता है कि उसे यह समझा था अथवा यह कि इन्हीं ने हनुमान जी को सीता का मेघ बताना था और ये गुप्त से गुप्त से मिले हुए वे तथा राक्षसों ही थे । यदि राक्षस ने अन्याय ही से इन्हें शात मारी थी तौगी पिता के गुप्त ज्ञाता को त्रिषु भी कृपा से वे इतने क्षल तक कुछ मोगते रहे ऐसे कुसमय में परिचाय कर और शत्रु के संग मिलकर राक्षस कुल के संहार का इन्हें ज्ञाप्य बताते रहना उचित नहीं था । इन में आत्मविश्वास भी यंत्र भी नहीं पाई जाती । बोल होता है, विभीषण का यह कार्य दिनों से निन्दनीय समझा जाता है । बाणभक्ति भी ने मेघनाद के मुख से तथा गोसाई जी के समसामयिक केदारदास ने रामचन्द्रिका में सब के मुख से इन्हें बहुत बिकारित कराया है । गोसाई जी को भी यह बात कुछ अच्छी नहीं है । इस का आभास गीतावली में देखा जाता है । रामायण में तो उन्हीं बुम्भक्ष का सम्मुख इन्हें अपनी सहाई के लिये ले आकर उस से इन्हें यज्ञदान और ‘कृष्णमूषण’ की पदवी दिलवाई है । परन्तु यहाँ में पूर राक्षस मन्त्रण बुम्भक्ष का यज्ञदान ही क्या ? सदा मिथ्या ही राक्षस इन्हें कृष्णमूषण समझते हैं तब तो ।

इन का कार्य निःस्वार्थ तथा उचित तब समझा जाता जब वे सीता के लंका में जाते ही उस की लहर भी रामचन्द्र को प्युषा बैठे । बा लव के कनकानुहार उसी वम लक्ष परित्राण कर बैठे । बात यह है कि जब इन्होंने देखा कि रामचन्द्र प्युषा प्ये और लक्ष पर अथर्व अपिहार कर सेंगे तब एक बहामा खेदर अपने स्वायसाधन के लिये उन से छा मिले भला दहों ने शात मारने से तो राक्षस को त्याग किया परन्तु उस की भावना को अपनी पहिणी कबो बनाया ? सुधी ने तो गौर, बहसा सुमाने के लिये ऐसा किया होगा और व बनकर ये परन्तु वे तो, सतत कुतूहल, पुलकित सुनि के यमपररायण मारी वे अपने भाई राक्षस के समान दुराचारी भी नहीं सुने जात । थी रामचन्द्र का इन लोगों के आन्तरिक अहिमात्र कि बिपार से इधर प्याम नहीं गया हो परन्तु स्वयम् गोसाई जी को इन लोगों की यह करनी पाप ही प्रतीत हुई है । इसी म अर्थों में कहा है—

“जिदि अथ पथेड व्याप जिमि वाली । फिर मुफँट सोइ कीइ कुपाली ॥

मोई करतूति विभीषण केरी । सपनेहु सो न राम द्विय इरी ॥”

यदि योशर्षे जी इस चित्र पर भक्ति का गाड़ा रोगन न फेरे होत तो यह चित्र रक्षिपात के योग्य भी नहीं होता ।

रायण—सद्यः का अपोश्वर रक्षसंक्षय महा-वृत्त-शास्त्री, आत्म निर्मल सुपरिपुष्ट वाक्यरूप तथा नीतिज्ञ था । इसने तप भी बहुत किया था किन्तु अभिमानी होकर धर्म विपुल्य और अत्याचारी हो गया था । एतन्ना क मुख से उसके अन्तर्मात्र तथा खररूपण के बंध का हाथ एवम् रामचन्द्र का वृत्तान्त सुन कर यह शोषामिभूत हो गया और सोचने लगा कि मेरे मुख्य बलवन्त खररूपण को विनाश ईश्वर के धीन मार लवेगा ।

“मुर रञ्जन मञ्जन गहिभारा । जो जग नाथ लीन्ह अपनारा ॥  
 तौ मैं जाय धयर हठ करऊँ । उन के सर भय सागर तरऊँ ॥  
 मजन न हो यहि तामस दहा । मन यथ कर्म मन्त्र ददु पहा ॥”

किर क्या था ! सीता को आहरण कर द्यु न राम से बैर की राज ही तो ही और अपने संकल्प पर एसा रद्द रहा कि न उस ने हनुमान जी के समझान पर ध्यान दिया न कश्यप के उपदेशों को मान किया । स्त्री पुत्र भाई मन्त्री सगे सम्बन्धी सप समझा कर द्वार गव परन्तु वह सभी की बातों को दृष्टी में उठाता गया । खर निर्भीकण को इसी कारण पाद प्रहार भी किया । वह समझत हूँ कि नीतिज्ञ होन पर भी उस ने यहाँ पर नीति का समुचित विचार नहीं किया । तब समय में उस भाई को रप्य करना नहीं चाहता था । परन्तु जब उग्र ने जान घूम कर बैर बढ़ाया था और जब वह करता था कि—

“निभ भुजयल मैं घेर बढ़ाया । दहूँ बतर जो गिणु पढ़ि आया ॥”

तब उसे नीति विचार की किन्ती आबरवदशा थी सो नहीं रहा या सच्चा । उग्राला में उन का मुरर अक्षरमात्र विरन से कर्म गभायनों क उदाग होन पर उग्र ने सामिमान कहा था—

“मोस निरे सन्तन मुम जाफ । मुकुट गिर फम अमगुन ताफ ॥”

आर मजा निगिन नर बाबर द्वारा आनी मृग्यु की रोगा कर्म मान में देग कर उस ने कहा था कि मजा बाबा मूढ़ हो गए गयी से उग्रों न भयकर रोग निग दिया है । रणयुद्ध में हम न वह बीरता और मुदौशान प्रशान किया कि फल गमय तब दह । और दर्शो का मन्त्र ही दना रहा कि देखो क्या दन का शिष्टतामी मन हो १ है । रामचन्द्र जी क विचार दृगग कोई वाया दृगका म्मच्छ मरी था कर दह मारा भी गया तो उग्रों के हाथ न । यदि दह देन गया फलमनपणी अति मुक्ति का दहक आनकारी नहीं

१ “द्विपमव मादक ने निगा द कि उमने जागिय कम करके कनि बीरता दूयक गुह कि का जमा मिच्छन अदि न अपने मरावाप्य में दुष्टाया वा कल्प दिया है ।”

होता तो वह गिरजन पूजा के योग्य था। और एक विचार से तो आज भी वह हमलोगों के पन्थबाह का भागी है। यदि यह न होता तो रामचन्द्र भी नहीं हावे और रामचन्द्र आवि के समान आदर्श चित्र भी हम लोगों को सुलभ नहीं होते और न मोघाई भी श्री कल्याण-कारिणी तथा मनोहारिणी कविता ही जगत को प्राप्त होती।

अज्ञेय के संघ बाध भीत के समय परावर बरजस्य ज्वाय देने में इसी वाक्यप्लुता देखी गई है।

कुम्भकर्ण—यह भीमकाय महाबलवन्त योधा, रावण का छोटा भाई था। यह सः महीना सोना करता था। इस युद्ध के समय यह बहुत यत्न से जगाया गया। रावण को कारंबाई पर इसने खेद तो प्रकट किया सही परन्तु इस कुसमय में भाई को परित्याग करना इस से संचित नहीं समझा और अकेले ही रामचन्द्र की सारी सेना से लड़ने के लिए चला आया। रणभूमि में इस ने महाबिक्रम प्रकाश किया। सैनकों बानरों को पकड़ १ अपने सत्रों में और मूलतः पर मसकमसक कर प्राण-रहित कर दिया। सब विषयात् बानर बीरों को अपेक्ष कर प्रबान सेनापति सुभीन को खींच में हाथ माने रावण का बदला चुकाने ही के लिए गढ़ की ओर ले चला था। ऐसी विशाल सेना से अकेले ही बिना शत्रु पारण किये संग्राम करने की जिसके शरीर में शक्ति हो ऐसा दूसरा कोई व्यक्ति नहीं गुना गया।

मेघनाद—यह प्रबल पराक्रमी पितृमह, रावण का पुत्र था। सुमते में इस का प्रथम स्थान था। इस ने देवराज इन्द्र का गर्भ चूर कर 'इन्द्रबीज' पर प्राप्त किया था। यह पिता का बड़ा ही आज़ाकारी पुत्र था। इस से जो कुछ कहा जाता था उसे वह तुरंत ही कर डालता था। पिता की आज्ञा का उल्लंघन या दंडन यह कभी नहीं करता था। इसी से यह पिता का स्नेह-भाजन बना था। ऐसा सुशील आज़ाकारी पिता का यत्न और नाम बड़ानेवाला पुत्र माय ही से प्राप्त होता है। हम वहाँ पर इस के जन्म अयमर्ग का विचार नहीं करते। जो हो वह वैश्विक धर्म ही का अनुयायी था।

अबि ने सुयनत्वा को निर्लंग्यता की मूर्ति पारी की है और लक्ष्मण के हाथ से उछड़ी नाक और जान कटवा कर उसे यथोचित दंड भी दिलाया है। मरु लक्ष्मण सिंह न लिखा है कि पिता की प्रतिज्ञा पालन के लिए राज परिवाराग कर देने की प्रशंसा नहीं करनी तो असम्भव है; परन्तु रावण के संघ युद्ध कबले जिस का अन्तर्गत केवल यही मालूम होता है कि उसने अपनी बहन के प्रति अयोग्य अमान का बदला लिया इतना इतिहास को उचित समर्थन करना सुन्दर है।<sup>१</sup> हमारे जानते यह अयोग्य अमान ठर होता अब राह चलत वा बँडे १

१ It is impossible not to admire the feeling which prompted Ram to relinquish the honour of sovereignty.....in order that the promise given by his aged sire might be fulfilled. But it is difficult to justify so much blood-shed in the war that he waged against Rawan whose only fault seems to have been that he revenged a wanton insult to his sister &c —Life of Guru Govind Sinha Chap. XXV P 141

रामचन्द्र या लक्ष्मण जग की बहन क माय देव छाड़ करतं, इसी मन्त्रक उवाचन या उसकी माक काम काण्ते । कोई भी अन्य या शिष्टजन इय बात को सहन नहीं करया कि जहां वह प्रिय पत्नी, माता, बन्धु या छिरी आर ही के संग बग्न हो वहां एक कुलकलकिनी कामुकी कुनारी पशुब कर उसने प्रेमगां रोदने आर प्रीति रीति करन की प्रार्थना कर, हठ करे और बल प्रयोग करने पर उचत हो प्राय । लक्ष्मण ने तो माक काम काटमा उषिण समझा परन्तु हमारे भाई लक्ष्मण विद्वामी अक्षर्या में क्या करतं उमका आदर करते या अपमान यह जानने की हमारे पाठकों को निरक्षय बनी उक्तं । होगी ।

उसी प्रकार कब ने मंपरा को कुटिलता के शब्दे में टाळा दे और शत्रुण से की खात से उस का बूबर और दौत भी तोडवाना दे ।

इस का कार्य भी छिन्दे २ को सराहनीय तथा उषिण बोध होता दे । और ने करते हैं कि इन ने अरुनी स्वामिनी क हियाप लगा किया था । परन्तु प्रथम तो उन का इन से कुछ हिन सापन नहीं हुआ । हमरे यदि इनने अरुनी अलगहता के कारण पहले कुछ कहा भी था तो कैदवी के यह करने पर—

“जेठ श्यामि सेषक लघुमाइ । यह दिनकर फुल रीति मुहाइ ॥

राम निक्षक जो सांच्हु कासी । देउं मंगु मन मायनि आसी ॥”

इसे पुर रह जाना चाहता था । परन्तु इस क पेट में कुटिलता भरो थी । इन पर भी वह अनेक प्रकार की मिथ्या बातें कहनी ही गर यहां तक कि इनल दशरथ को भी—

“मन मक्षीन मुंह मोठ नृप,”

अर्थात् पुष्टि कर ही जाना और दान्धन्य प्रेम में शिष्य दागदग सचन परिवार को तथा स्वामिनी का नी निरति-आरिषि में भगा लिया । तीसरे यदि इसका काय सराहनीय है तो अनुकरणीय भी अक्षरय ही दे । परन्तु इय के काय क प्रयाशों क पर भी यदि उनकी कोई शानी इसका अनुसरण कर क उन क तन्मू उनक छह परिणिणियों के मन्थ कोई बगना गना कर उन के परिवानों को एवम् उन को दामादोन करन की पन्था करे तो क्या स लोग या कोई दूसरा प्राणी जग शानी क काम की प्रार्थना करगा ! कर्तावि नहीं । अन्तएव इस मंपरा को स्वामिनी द्वितकारिणी होन की गर्दिच्छिष्ट इन में गहमन नहीं दे ।

इय संघ में परोरकार क महान आदर्म अन्दर और उदायु हैं शिन लोगों न दुगों का नि रार्थ उपकार करने में आने प्राण का भी विगहन कर दिया दे ।

रामायण प्ररतिन विनो पर आन मन स यह सन्द भाग हाता दे कि गद्वमनिष्कल तथा गर्दिच्छिष्टताम क निनिही इस संघ की अरुतागना हुई दे और प्रदानी माज्जगला में गना हो कर इन के पावतग आर भी अन्त उगागनों में आदर क परमोत्तम गग लक्ष्मणताम गपता, मन्थता, धीरता, शीरता, उदायता गहनगन्ता दमादना आर की दुन्दर सिचा महान कर ग्दे दे ।

## त्रयोदश परिच्छेद

### रामायण का आदर और प्रचार

गोसाईं जी को पहले ही से विश्वास था कि सज्जन रामचरित मानस से प्रीति रखेंगे और भक्तजन इस जी के बचन ही गिन्या करेंगे। इसी कारण से इन्होंने कहा है —

“छमहहिं सज्जन मोर बिठाई। सुनिहहिं वाल वचन मन लाई ॥  
जौं बालक कहि तोतरि वावा। सुनिहहिं मुदित मन पिमु भव माता ॥  
हंसिहहिं हूर कुटिल कुविचारी। जे पर रूपन भूपन घारी ॥”  
और

“पैहहिं सुख सुनि सुजन सब, खल करिहहिं उपहास ॥”

इन का यह विश्वास ठीक ही हुआ। सज्जन लोग बालक जी तोतरी बोली सी ही इसे सुन कर प्रसन्न नहीं होते बरन् उन्हीं में इस ग्रन्थ को बहुमूल्य अनुपमेशरत्न-रूप एक सुन्दर मंथना समझा और आज भी समझते हैं एवम् इस पर आन्तरिक प्रेम रखते हैं। परन्तु कूर कुटिल इसकी गिन्या करने में नहीं आते।

माया में लिम्बे जाने के कारण काशी के तत्कालीन परिहृतगण भी इसकी गिन्या में प्राप्त थे। गोसाईं जी को इस का भी सब पहले ही से था और इसी से इन्होंने कहा भी है —

“माया भनिग मोर मति घोरी। हंसिब जोग हूने नहिं शोरी ॥”<sup>१</sup>

सुनते हैं कि एक दिन एक संस्कृतज्ञ परिहृत जी मणिकणिका घाट पर स्नान करते समय इनसे पूछ भी बड़े थे कि ‘संस्कृत के परिहृत हो कर आप में आज सब की गैरारी माया में क्यों लिया? इन्होंने मे कदाचित उत्तर दिया था कि मेरी गवारी माया अभावपूर्ण होने पर भी संस्कृत के नाबिधा बर्षों में बाले ग्रन्थों से अच्छी ही है क्योंकि :—

“मनि भाजन विप पावइ। पूजन असो निहारि।

का साहित्य का मंगलिय, कहुहु विष्क विचारि ॥”

१ गोसाईं जी के समसामयिक बहि देशबहाय जी को भी हिन्दी भाषा में रचना करने में सब हुआ था। उन्हीं में भी कहा है —

‘माया बाल न जानहीं जिनके कुल क राम।

माया बहि मो मन्द मति तैहि कुल केतवदाय ॥

सब तो यह है कि इन्हीं अपना पाणिन्य प्रदर्शन की मज्जा नहीं थी। इन्हें पाठकों को लाम पहुँचाना और जगत का उपकार करना अभिप्रेत था। अतएव यदि ये हम ग्रंथ की रचना संरक्षित में करते तो इस से इतने उपकार की सम्भावना नहीं थी। इसी से संस्कृतज्ञ ज्ञान पर भी इन्होंने भावा में बान सबसाधारण के समझने योग्य भाषा में इस की रचना की। इसी अभिप्राय से विलासत में १८२२-२४ के बीच में लूपर के माइलिज और १८२५ ई में दिव्य के नियु टरामेंड की रचना हुई थी। और इसी कारण से ऐटिक में कविता करने को समर्थ होने पर भी मिश्रम ने देश प्रबलत भाषा में ही अपनी पुस्तकों की रचना की जिस में अभिर्वास लोगों का उपकार हो।

द्वि रामायण की प्रामाणिकता में भी बहुत-से पण्डित सहमत नहीं थे अब बदायित रात को यह ग्रंथ विश्वनाथ जी के मन्दिर में रखा गया और भोर को इस पर लम की 'स्वीकृति' लिपी देयी गई, तब लोगों को हार माननी पड़ी। हमारे सब पाठक सम्मत यह बात मानने को तैयार न होंगे। परन्तु महाराज गोपाल दास इत 'रामायण माहात्म्य का यह खण्ड कि 'पहले बहुत से पंडितों ने इस ग्रंथ का आक्षेप नहीं किया अब 'मानन्दकानन' वाली प्रज्ञाचारी ने इसकी प्रशंसा में यह श्लोक लिख दिया —

'मानन्दकानने कश्चिज्जगद्गमस्तुलसीतरुः।

कविता मञ्जरी यस्य रामधर्मरभूषिता ॥'

तब शीघ्र इसका आक्षेप करने लगे" मानने में किसी को दिक्कत नहीं होगी। इस श्लोक का अनुवाद रवीन्द्र काशीराम भीमान महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण टिंड की ने इस प्रकार किया है —

१ विहारी सतसई के सम्बन्ध में भी यह किशोरीयती मण्डल है कि उपरसाक जी की समा के प्रधान नामक एक बलि ने विहारी जी के देखा-देखी एक सतसई की रचना कर कोसाहस मचाया कि उनकी ही सतसई उत्तम थी। इस पर विहारी जी के प्राणानुसार रात को दोनों ग्रंथ भी सुगल दिवार के समीप रख दिये गये और प्राण ज्ञान देखा गया कि विहारी के ग्रंथ पर आपुगलरिशाह का इनामर बना हुआ है। इसी समय विहारी ने यह दोहा बनाया— 'नित प्रति प्यतर्ही रहत, बैम बरम मय एक। पदियत सुगल किगोर लजि सोचन सुगल कनेक ॥ ध्याम कम्बिका दल विखिल 'विहारी विहार' की भूमिका का पृ० १०—नोट देखिये।

२ कैजनाथ दाम के अनुवाक मधुगूदन मरारणी ने मोमाई जी म माहात्म्य में पारान होकर इन की प्रशंसा में हम श्लोक की रचना की। पं० सुपथ जी ने बड़ी बान कर कर हम श्लोक को इस प्रकार लिखा है— 'परमानन्दप्रज्ञो'प जगमस्तुलसीतरु इत्यदि। पं० महाराज प्रसाद न शरित का नाम बड़ी लिखा है और इन के अनुवाक 'कश्चि' के रचान में 'कश्चि' है।

“तुलसी अंगम वह जैसे, ध्यानैव कानन खेत ।

कविता आकी मंजरी, रामभ्रमर रस लेत ॥”

आदि में किसी प्रश्न का विशेषतः गूढ़ प्रश्नों का, यथाच गुण सर्वसाधारण नहीं समझ सकते और न उस का आधार ही कर सकते । उस के समझनेवालों की संख्या अल्प ही होती है । और यदि कोई प्राचीन पूर्व प्रचलित प्रथा का उल्लंघन कर कोई रचना करे एवम् कोई नई राह निकाले तो वह अविश्वर हास्यास्पद तथा निन्दास्पद होता है । प्राचीन प्रथा के अनुयायी उसे नीचा दिखाने को प्रायः जलजान हो जाते हैं । ऐसी रचनाओं का आगामी सन्तति विशेष आधार करती है । ज्यों २ कास्य अतीत होता जाता है ऐसे प्रश्नों के आधार सम्मान में पढ़ि होती जाती है । इसी से मुकवि मिथारीवास कामरूप ने कहा है —

“आगे न मुकवि रीझें तो तो कवितार्थ,

ना तो राधाश्याम गाइये को सुन्दर बहानो है ।”

इसी प्रकार से गोसाईं जी कृत ‘रामचरित मानस’ को पढ़ते आधार की दृष्टि से देखनेवाले आनन्दचन्द्रनगवासी मधुसूदन सरस्वती नामाजी आदि जिने जिनाये ही महारमा होंगे । सब कसे समझते । परन्तु मरिच्यत् में जब इस का अमृतम गुण लोगों पर बीरे-बीरे प्रकट होने लगा तब तो केवल मुकवि ही क्यों कहे सर्वसाधारण भी इसपर लड्डू होने लगे और इनका कवित छीठारामपराधीर्गन का सुन्दर बहाना ही नहीं हुआ बरन् इस का मुख्य कारण तथा परम सहायक हो गया और हो रहा है ।

आज कलकत्ता से पंजाब पर्यन्त एवम् हिमालय के नर्वदा पर्यन्त वहाँ सुनिये रामायण ही रामायण उच्चारण हो रहा है । इतनी दूरी में इस का प्रबल अविश्वर तो है ही अन्य प्राणियों में भी इस का अवरय कुछ न कुछ प्रकार पाया ही जाता है । क्या राजा क्या राज, क्या ब्राह्मण क्या ब्राह्मण, क्या मुकवि क्या मुकवी सब अवरया तथा सब जाति के लोग इसे पढ़ते और इस का आधार करते हैं । कहीं ब्रह्म महाराज आध्यायी लगाय अपने भोताओं को रामायण की कथा सुना रहे हैं कहीं गाँवों में बोल और म्हास बना-पजाकर भूम-भूमकर बिन्ता २ कर लोग इस का गान कर रहे हैं; कहीं बे-चार माछी ही किसी पेश के ठले बैठे यह ग्रन्थ पौक रहे हैं कहीं कोई एकलत में शान्तभाव से इस के गूढ़ तरवों को विचार

‘भक्तमार्गा रामचरितमसी तथा पं० उवासाप्रसादजी की कही रामायण के अनुसार एक बरिचल से शास्त्राय के जिन महाराज जी के स्वधार्दल न गोस्वामी जी सुगिषा बनाये गये । इन्हीं ने एक लिप्य को पाँच पात्र देकर सब लोगों को बाँट देने को कहा । बरि जाले पर पाँच पात्र उरो का रहीं बना रहा । यह देण्ड उक्त पंक्ति से शास्त्राय कथा अस्वीकार किया । गोसाईं जी ने उन्हीं अरनी रामायण ही । पंक्ति से सब पत्रों का लपटन मकडन उसी में पाया । उन्हीं न वह श्वाक बनावा और ने गोसाईं जी के लिप्य भी टा गय ।

पात्र बाँटने ने ता गोसाईं जी का बरिचल्य प्रकट नहीं हुआ ? इन की कथामान ईन्हीं गई । सब बरिचल जी शास्त्राय ने भागे क्यों ?

रहे हैं कहीं कोई रामायण समाज ही <sup>१</sup> स्थापित कर बैठ हैं और रामायण के विषयों पर व्याख्या हुआ करती है। कहीं कोई इस क सदुपदेशों पर मोहित हैं कहीं कोई इस क काम्य लासिन्य ही पर बाह-बाह कर रहे हैं कहीं कोई किसी शोहा बीगई के रूप ही के नियम में मग्न रहे हैं। कहीं आँगन में बैठी हुई कोई महिला ही मधुर स्वर से इस पत्र रही है और छाटे २ बालक बालिकाएँ उय क निष्ठ बैठ कमी इस का पाठ सुनती हैं और कमी गेल-बूद के लिए इपर इपर शोक आती हैं। निदान कोई इपर नहीं कोई प्राप्त नहीं, उहाँ नियम प्रति एषी लीला नहीं होती है। ऐसा पर कोई बिरसा ही दामा उहाँ एक दो प्रतिबो रामायण की नहीं पायी ज्ञान। काइ पठित कथना अपठित व्यक्ति नहीं होगा जिसे रामायण क दो बार दोहे या बीपाइसी कथन न हो और जो कदाचित उदाहरण प्रमाण और व्यवहार में उन्हें व्यवहृत नहीं करता हो। रामायण के उक्तो वाक्य <sup>२</sup> कदाचित में परिच्छेद हो गये हैं।

रामायण कथन कवितारस के प्रेम ही से नहीं पकी जाती। यह धम्म का एक अर्थ और धर्मशास्त्र की एक प्रधान पुस्तक हो रही है। बहुतों ने रामायण क आलोचना पाठ का नियम कर लिया है और इस का नियम पाठ किया करते हैं। धम्मशास्त्र ही क्यों? समाज नीति व्यवहारनीति राजनीति, सब नीतियों का शास्त्र ब्रह्मान का यह कथिधारी है। गान्गा जी ने सब प्रकार क नीत्यादेशों को आप प्रथो से लेकर इस में इस रीति से समापकित किया है कि सदा में सब की समझ में आ जाये। इनी स यह प्रणय मनमारी सब को शक्ति हो रहा है, सब प्रकार के मनुष्य अपनी दृष्टि के अनुकूल दृष्ट में उभरेपी बानें पाठ हैं और इस क पाठ स आनन्द उठाते हैं। ऐसा सर्वजन-मित्र धार कोई ग्रन्थ नहीं देखा जाता।

१ पूना में 'रामचरित मानस का अध्ययन कराने वाली एक महाराष्ट्र मण्डली है। धी अयाचना में तुलसी सप्तमं पत्रम् राजापुर में 'तुलसी स्मारक समा है। इन सबों का उद्देश्य गांध्यामी जी रचिन रामायणार्थि के पठन पाठन का प्रकार पत्रम् गोवाई जी स सम्बन्ध रखने वाले स्थानों की रक्षा ही है।

२ कुछ उदाहरण देखिये :— हाइदरद मोइ जो राम रणि राणा, प्रमुता पाइ कादि मरु नाही, सब से अधिक जानि आमाता, हाइ न श्या देखिनि बानी, परकण्या अनेक उग माही, बाँक कि जात प्रमय की पीता, ममत्थ को नहि दाय गामाई, जय हुलद तम बनो बराणा, परासीन सयम सुग नाही, जिमि प्रति माम माम कबिबाई, का बर्ता जब कृपि मुजानी, मन मर्तात तन मुग्धर कैय बिर रम भरा कनक पार जिये, मूर्खि आँग कनहु कपु नाही, देइ जाकि लंडा सय काहु, मूलत धाम परा जनु पानी, कोइ नूर दोदि दमैं का दानी, दित अनदित पणु पंदिहुँ जाना, इहाँ न मागहि राहर माया, मरु गति साइ मुग्धर केी, सब मुर काइ भगत के दाय्या, मुत्तर मुनि की पदी शीनी एतथ लागि कारिँ सब प्रीणी, जिमि हसनन सिंह जीम बैचारी, जय धारे धन वन बरबाई, समुझे जग पग ही की भाषा, जा इपना रागहु मनमाटी हरि प्रमाइ बगु हुनम नाही। इपार्थि।



साहसों जन इसे आपना जीवन सर्वस्वसमझते हैं, करोड़ों इसी का भाग्य ग्रहण कर कतिपय कुसिद्ध कार्यों से नकते हैं। कितने इस के पाठ से विरक्त साधु जन जाते हैं एवम् कितने परिश्रम ज्ञानी कदवाने लग जाते हैं। कोई २ इस के द्वारा उच्छादन, बलीकरण आदि का प्रभाव बढा कर नवाह, सताह सिवाकर इस कर्मस्य रत्न का दुष्प्रयोग भी करने में संकोच नहीं करते। परन्तु ऐसे कुसिद्ध कार्यों के साधन के लिये गोसाईं जी ने इस अद्वय पदार्थ को प्रयत्न नहीं किया, वह निर्भीक रूप से कहा जा सकता है।

रामानन्द विद्याप्रचार में भी कम सहायक नहीं है। स्कूल की पाठ्य पुस्तकों में इस ग्रन्थ के अन्वयप्रणय प्राप्त किये जाते हैं। महारष्ट्रीय, गुजराती तथा बंगभाषा की पुस्तकों में भी इस के अन्वयप्रणय तथा आशय समानेपिठ किये जाते हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय की एन्ट्रेस परीक्षा की पौष्णभाषाओं (Second Languages) में अब हिन्दी भी सम्मिलित की तब उस की परीक्षा के लिये रामानन्द ही पाठ्य-पुस्तक निरत होती थी। सिविलियन लोगों के हिन्दी में हाइप्रोफिशियन्सी (High proficiency) तथा डिग्री ऑफ ऑनर (A Degree of Honour) की परीक्षा के लिये जिनमें क्रमशः १ और २ -०) पारितोषिक दिया जाता है, रामानन्द एक प्रधान पाठ्य-पुस्तक है।

मिर्चल साहब ने लिखा है कि 'इस की सुख्याति उपपुस्त होने में तनिक भी संदेह नहीं है। आने देख में इस में सब ग्रन्थों पर प्राधान्य स्थापन किया है और सर्व साधारण पर इस का ऐसा प्रभाव पड़ रहा है कि उसे बढ़ा बढ़ा कर कहना कठिन कार्य है' विज्ञान में अज्ञाना बाधित का प्रकार है उल्लेख्य अज्ञान बंगाल और पश्चिम एवम् हिमाचल और विश्व के मध्यस्थ प्रदेशों में इस महान ग्रन्थ का प्रचार है।<sup>१०२</sup>

एक स्थान में उन्होंने ऐसा भी कहा है कि 'जबे युरोप के पादरी लोग बाइबिल को आदरणीय समझते हैं तबे ही आर्चबिशप इसमी म बोधा करते हैं।' सतमी ही और बली ही क्यों! वहाँ तो आर्चबिशप अत्यन्त अत्यन्त पुण्य और और नयेय से देवताओं के समान इस की पूजा करते हैं आरती करते हैं। इस का कारण है कि जिस से धर्म तथा विद्या का प्रचार आचार व्यवहार का सुधार जगत का उपचार नीतिरिति का सुन्दर परिवर्धन और मरोग से निस्तार हो वह निस्सन्देह बड़े आर और सधर की वस्तु है।

१ I do not think that there can be any doubt as to its reputation being deserved. In its own country it is supreme over all other literatures and exercises an influence which it would be difficult to describe in exaggerated terms—J. R. A. Society 1903 P. 45

\* Over the whole of the Gangetic valley his great work (the Ramayan) is better known than the Bible is in England. —Ibid, P. 459

श्रीमद्भागवत गोसाई जी का आभिर्भाव हुआ था उस के पूर्व ही मे मुगलशासकों के समर्थ से हिन्दू समाज में शीशानन का सुना था। हिन्दुओं पर आधाबार हुआ करता एकम् कई मत भी निमित्त होकर धर्म के नाम पर कुम्भिन कम और व्यवहार का प्रकार करने लगे थे। अन्य १ धर्म सखोपक भी करने २ लगे से धर्मरक्षा में लगे हुये थे। उन क एक थी १०८ रामानन्द स्वामी जी वैष्णव धर्म के समुद्र आर गरीबक हो गये थे परन्तु रामनाम में प्रेम तथा विरहाम उपशाने वाला एक तथा उन गगन उम्भू गम्भूम का प्रकार करने वाला गोसाई भी थे बड़े कर कोई नहीं हुआ। इन्होंने उन धर्म को पूर्ण से परिवर्तन कर दिया। इन्होंने पदे २ उपदेशों तथा बहनुताओं का आश्रय प्रदान नहीं किया। इन्होंने विनी विरोध सम्प्रदाय की नींव नहीं डाली क्योंकि इनके पूर्ववर्ती सब धर्म प्रकारक तो आश्रय इस धर्म में प्रदान रह कि धर्म प्रकार के सुखों को दूर कर भीतों का कर्पाण करें परन्तु सम्प्रदाय की संस्था कर्णी ही गई आर इस से पूरी सततता नहीं हुई। वे महा तर्क ही कर लगे भी नहीं करत चिन्ने और इन्होंने मन्त्र २ प्राणियों में प्रवेश कर दिव्यत्रय का संका भी नहीं बगदा। परन्तु स्वर्गियों के दुःख से दुःखित होकर इन्होंने कुछ अन्य ही गाय आनन्दन किया।

आज एकाम विना हो भी प्रभु क पाठ्य का करने इच्छान्तर में स्थापित कर करने कविता के सहार विज्ञानकी प्रति बहू शर्ष क समान दुर्गियों का दुःख दूर करने सुविधों को अपिच्छर सुनी बनान एक दर्शनान तथा मरिष्यत् कात क दुरष्टों और उदारगताओं को दिग्ने गोपन एक अनुभव करने क माय बनाकर अपिच्छर उम्भारी एक और तथा पामिक बनान क उपाय में कविबद्ध हुये। ईश्वर न लगे हम का य में कृतज्ञ य भी किया।

इन्होंने स्वभाव में यह एक तथा धर्मन विरुद्धन किया कि १ लगे भी सगु सुगुण ऐमन लगी, लोग सुग हो अनर भी नाई भू क के नू क भूमन हुय अथ ही अनर लगे। आज लगमग १ पर ये यह कविता धर्मन लोगों को आमान्ति कर रहा है एकम् शिष्ट एक गाय से लोगों क दान तथा मरिष्यत् को दृष्टदृष्ट आर कर्णिक करके उन्हें धर्म कर तथा गदाकारी बना रहा है। श्रीरामजीके गम्य है कि नेने गम्य में अब कि आदान्तरियों का गम्य कर्णिक क समापन धर्मरक्षा हुआ गम्य दिग्गुओं का विज्ञान लीदम्य दिग्गुओं का कमेरा कताया करता था अब धर्मरक्षा के समर्थों में लोको की बुद्धि प्रमित हो रही थी पर वैष्णवगण लोको म विरार करने ही में ईश्वर की प्रसन्नता गममन थे। यह रामोन्मत्क तथा कृष्णे गक से भी वैष्णव का सुना था और भाग एक सुगरे को पूजा की दृष्टि म दैगन लग से बहन कर्णी बुद्धि कर लगी के बन म आधाबारियों का हर्ष पूज कर मान प्रम कर हा गिदो को लगे धर्मनाथ में करने करने का तथा एक तथा प्रबन उदोग दिया जिस से लोग आज लक नाम उत्र रहे है तथा आज भी उम्भन ही प्राचीन कर्णिक गसाई जी क अर्धिन काम की कर्णिक आर उनका सम्भार शिष्ट धर्म एक उदर पर विरहद कर्णिकर प्रभाव बना रही है। विरार प्रगा को बान लो यह है कि गव सम्प्रदाय के अनुष्ठी कदा कर्णिक बना कर बना गक कदा मानवर्णी कदा कर्णी — गमी लगे निरैव मादम देव का कर्णिक बरग आर इस म शिष्टा प्रगा कर कर्णिक बान है। जो सम्भारक है उन का लो करना ही बना है। सम्भारने गव कदा है —

“हर कुजा चरमर घयद शीरी, महुँ सो गुगुँ खो मोर गिदायन्व ॥”

तत्कालीन मतमतान्तर की ममकत्री हुई ज्वाला का धाप में अपने शीतकर उपदेश-सक्ति से देखा उँदा किया कि फिर वह प्रबल रूप से कदापि प्रकलित नहीं होने पाये। रामानन्द में अहाँ देखिये वहाँ वही पुकार है कि धीराम तथा शिव में द्वेषदुष्टि नहीं, श्री शिवजी श्री राम को हृदयासन पर बिअये हुए हैं और बह रहे हैं —

“रघुकुल मनि मम स्वामि,”

तथा—“सोइ प्रभु मोर धरावर स्वामी ।”

एवम् धीरामस्त्र भी रामेश्वर की स्थापना करत हे धार बह रहे हैं —

“शिव द्रोही मम दास कहावे । सो जन सपन मोहि न पावे ॥”

धीराम तथा शिव में इन्हों ने कैसा घनिष्ठ सम्बन्ध दिखलाना है वह इसी भाषी बीपाई से प्रकट है —

“सेवक सखा स्वामि सिपपिय के ।”

अब शेष क्या रहा जो कहे। फिर धाम्नी बलकमन्दिनी से गिरिरात्रविशोरी को जमजमनी करलाकर और उन की पूजा बन्धना कराकर शब्दों का मन उठा किया है और नाममाहात्म्य का अद्भुत बखान कर नामोवाक्य निराकारवाकियों को भी धाप में छन्दुष्ट कर रखा है। धीराम तथा श्रीकृष्ण की अनेकता की बात पाठक पहले ही सुन चुके हैं।

यं तस्यदेवत्री ने बहुत ही ठीक ठिकठा है कि ‘इंसे अंकित टाम्पनेयिन का उग्यास उत्तरीय तथा दक्षिणीय अमेरिका से हबली गुलानों का बाण्डियन रोम्ने का कारण हुआ जैसे हात ही में अष्टन निकसेबर ने अपने उल्लास के बल से शिकगा क कडाईपर का सुधार कराया मनो एमिटी ने स्वकिंगिन उग्यास द्वारा शिवा क प्राकृतिक रूप का प्रचार किया जैसे इन्दी की स्वतंत्रताप्राप्ति का कारण गिबनकृत ‘रामनराज का उग्यास आर पतन (Decline and fall of Roman Empire) नामक ग्रन्थ हुआ उस अच्युतित लफ्फ्यासों क हाग हैनाई धर्म की भेन्ठता प्रतिवाहित हुई वसे ही गोनाई जी की रचनाओं ने शीव तथा वैष्णवों के परस्पर द्वैद एवम् रामोवाक्य तथा कृष्णावाक्य क परस्पर वैमनस्य और और रागद्वेष का रू कर एवम् हिम्पुग्न की भेन्ठता पूर्णवेष प्रतिवाहित कर देण को महान लाभ पहुँचाया।

इसी स प्रिबर्मन माहब ने लिखा है कि ‘भारतवर्षीय धर्मोन्नति क इतिहासों में जो आगत तुलसीदासजी को प्रणत किया जाता है उस से कही उपाहार आसन क ये अचिहारी बेने जाते हैं। क्योंकि हमनोग धर्म-प्रचारक की भेन्ठता थी ककत उस क का रचना स लगात है। बद करने में कि ठीक ही बरोध मजुन्य इन (महत्मा तुलसीदास) क संगों ही पर अन्न धर्म तथा गराबार के लनों को रचावित किये हुए हैं हम सामान्य गणना से बहुत ही कम अंक



गुणदासी धार उसे धार की रष्टि से बखनेबाझे पहले कामरुष ही निकलें यह जन की विद्वता तथा बुद्धिमान प्रमाणिक करता है एवम् हमारे लिये साधारण ध्यानम् और कल्प-धार की बात नहीं है ।

सम्मुख यह प्रथम साहित्यमापर का एक सम्मुख रत्न है । कवि-कुल-भूषण बाहरी तथा साहित्यवेद्य के महाराज विद्याभार्य्य ही इस की वास्तविक गुणपरिमा परखने और बर्णन करने की समर्थ हो सकते हैं । इसकी संबोधित प्रशंसा का प्रयत्न हमारे लिये —

“साध्यनिक मनि गन-गुन जैसे ।”

की बात है । इसकी अद्भुत प्रमा देख पित बद्धि और बुद्धि बद्धि हो जाती है । जिस प्रथम के पद पद में वाक्य वाक्य में शब्द शब्द में अक्षर अक्षर में गुणगण कलाकिक भाव विचारकर्षक लालित्य एवम् मनमोहिनी कविता कूट कूट कर मरी हुई है उस का वास्तविक गुणकथन हमारे समान अशक्त मनुष्य से कब सम्भव है ! इस प्रश्न का अद्भुत गुण कथन यह प्रश्न धार ही कर रहा है । धार यदि इस अगत पर कृपा कर गोस्वामीजी की गुण इस भूमण्डल को पवित्र करें तो ये ही कर सकें । यों तो इस के शब्दों का रस भूम २ का अर्थ और भाव निकालनेवालों की कमी नहीं है । हमारी संतुष्टि तो अपनी अक्षमता अनुभव कर दादात में मु ह दिने बहुरूप मकथन शिबिल हो जाती है, किंतु तक हिनान का साहस नहीं करती । बलात्कार बलायमान करने से मु ह बोधा कर दीमता पूर्वक दाग दिखान लगती है और गले पर कुरी बहाने पर निर बिगडर मानों नहीं कथन लगती है कि इस प्रश्न रत्न की तथा इस के रचयिता की उमुचिन प्रशंसा करने की मरी शक्ति नहीं । कागज भी साफ साफ संकेत करता है कि जब बोध्य प्रशंसा की सम्भावना ही नहीं तो खेरा ही रहना उत्तम है । बोध भी स्पष्ट उत्तर देता है कि मरे शब्दमन्डार में वेगा उपयुक्त शब्द ही नहीं बिन से इस का गुण कथन में सहायता प्रदान कर एह । अतएव हम इस महाकाम्य की प्रशंसा करन में अपने को सर्वथा असमर्थ बरा मीम ही धारण करना उत्तम समझते हैं ।

है ! यहाँ पर इतना कवरय कर देने हैं कि इस प्रश्न रत्न के गुणों ही पर मोहित हो कर प्रथम साहस न हमका गप में अचर्येयी अनुवाद किया है उनक पूर्व पोर्टे विद्विक्म कास्तेर कलकला के एक मुन्गी अशालतयो म भवोष्वा बाण्ड का अनुवाद किया था जो १८७१ में मुद्रित हुआ था । लगनरु के मुन्गी शारका प्रमाण (उत्क) न उर् में इस प्रथम का अनुवाद किया है । यह प्रथम उर् तथा बंगला अक्षर में अविडन भी मुद्रित हुआ है एवम् उर्दिया तथा बंगलाया धारि में भी अर्धदिन हुआ है । १

१ उरुक्त भाग में इस के धार अनुवाद है । गोविन्द मार जेमी कून गोविन्द रामाबन , मन्वतनूर विजामी पार राम प्रसाद बाटीदार पी० एन० सी० टी० के अलेख धारा प्रशंसा परी के एक अन्य मुद्रन कून एवम् धारिया प्रसाद का मैबार धरावा एक अनुवाद ।

प्रियर्सन साहब ने कई प्रबन्धों में इन की प्रशंसा की है। अथ साहब लोग भी इस का गुण मान करत गये हैं। भीषुत जानन्द्र मोहनदास न 'प्रवासी मा० ११ खंड २' में लिखा है कि 'इस पुस्तक में भर्म्मनाथ मिश्र हुए से ज्ञात है तथा भर्म्मनाथ समन्वित कृती और कोई पुस्तक नहीं देखी जाती।' कलकत्ता हाइकोर्ट के स्वर्गीय जज धीमान् शाहदावरस मिश्र ने एक लेख में रामानन्ध का कुछ पद उद्धृत करते हुए मोसाई जी को 'भक्ति भावम मातृकधेष्ट कवीरवर' तथा भारतवर्षीय अधिगण में अग्रणी लिखा है।

बंग भारत में श्री भद्रनाथजी की भी। ए०० पुराहिता के बर्द्धस का लैवार किया हुआ अनुवाद है और ए०० कृष्ण अनुवाद तुलसी परदास के नाम से क्यात है।

साहब राज्ज अमादा जार्जिया जोगपुर महाल में इन का सराठी भाषा में उभाषा किया है।

ए०० पसमद्र द्वारा प्रकाशित संस्कृत रामचरित नामक है। इनके सम्बन्ध में एक रहस्यमयी कथा है। इनके ए०० पर यह बात उदाह गई थी कि गोसाई जी प्रणीत रामचरित मानस हमी या अनुवाद है। अब यह लाना सीताराम जी० ए० के मातृगी में प्रकाशित एक छाप पर हटाया के श्री रामानन्ध अनुबेदा ने एक मोर लिया है जिस में बिदित होता है कि उनके कुछ परिचाराह महाश विद्वान श्री मन्नातारण जो न अरज शिष्यी के आग्रह से गोसाईजी बिचिन रामानन्ध का संस्कृत में अनुदित किया। ए०० उन के अथा के पत्नीर तथा उन के पिता के प्रयाग चल जाने पर इन के पत्नीरों सेबागम न इन के अथा अचरे भाई से उम अनुवाद की हस्तगत करके उम ए०० दिया। और पुस्तक को प्रणीत धारित करने के अभिप्राय से जिस पंक्ति में अग्रक नाम था ये लपट कर दी गई। बद कदा है कि संस्कृत पुस्तक में प्रार्थना ही है और न गोसाई जी की रामानन्ध उम का अनुवाद ही है। परत बरी इन का उलवा है।

इन के कासी भाग में कई एक अनुवादों का हाल मा० १२२३ ई० के 'कलकत्ता रिप्यु' से ज्ञात होता है।

जहाँगीर के समय में पानीपत के मुत्तामगीद न इन का पदानुवाद किया एवं दिग्गी के गिरिपरशम कावस्य न कृष्ण पदानुवाद परक जहाँगीर का समय में किया।

अन्तमा 'चरित' में एक गद्य में और नगिन्नात नाम से कृष्ण ए०० में अनुवाद किया। इन के पदानुवाद की कई प्रणिया की जारी है। अतः एक मिश्र के आग्रह से मन् १६३६ ई० में ६० पान की अरण्या में अन्तेन बद काम किया था।

मालपुर (संपुन्यपाल) निवासी अमान्त इन एक अनुवाद है। उम के लवार काम में लगभग २५ वर लाग थी और अरुण रंजनी में १८१२ में अरुणी समाप्ति हुई।

अन्तर इतिहासकारों में अज्ञान नाम का एक पवनक अनुवाद और एक पदानुवाद है।

एवम् सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता विन्स्टन प्प रिमन ने स्वरचित The Onfard History of India के १९२३ ई. के संस्करण पृ. १७२ में हिन्दीभाषा के कवि तुलसी दास को अक्षर के समक का प्रमाण प्रबंधकर्ता होना लिखा है, यद्यपि पाश्चात् इन्हें रचय नहीं जानते थे। किन्तु इन के महोद्यम प्र. ब. 'रामचरित मानस' का पश्चिमीय भारत में सर्वप्र प्रचार है।

देशीय विदेशीय विद्वाने महानुभावों ने इस ग्रंथ की प्रशंसा में खोजनी प्रकाशित की है उन की नामावली ही देनी कठिन है। प्रत्येक का लेख उल्लेख करने के लिये तो समय और स्थान चाहिये।

---

एक नमूना गद्यानुवाद भी तर विचित्रम अदसले के संग्रह में है।

गुणिक पुस्तकालय में गद्यानुवाद की एक प्रति है।

प्रिण्टिग मुद्रितम में देवीदास बाबरक हून एक गद्यानुवाद है।

बोड—महाँ कद मऊने हि दीनी गमनबाये अनुवाद एवम् इतिहास प्रीतिमवाका गद्यानुवाद नीन विहारा २ अनुवाद है अथवा एक ही की तीन प्रतियाँ हैं।

## चतुर्दश परिच्छेद

### क्षेपक श्रीर काट छाट

गोलाई जी न तो हमलोगों के जगकार्ष वेण मुन्दर सोहाबन घोरेर निमाण किया जिस की प्रशंसा सदाय मुख से भी नहीं हो सकती परन्तु सदा महागद् इस बात का हाता है कि कतिपय महाशय इस की अनुपम शोभा विनष्ट करने में सतार हो गये हैं। कितने तो कवि के मनोभाव की यथाय विवेचना नहीं कर क इन की रचना कागिरी में प्रुति समक कर ऐनक द्वारा तस की पूर्ति करते गये हैं और कितनों ने इस कदावत के अनुसार—

“सोदा कपनी करे बड़ाई, हमरूं राम्नुनाय क माई।”

इन की समता करने की मनसा से इनकी कविता में कपनी कविताएँ मिय्य हो हैं। परन्तु इन दोनों में से किसी छोटी के महाशयों ने कपना नाम प्रगट करन का साहस नहीं किया है। नाम केश प्रगट करे तस से ता उन का काम ही विनष्ट जाता। योग्यकारों न केवल गोलाई जी निर्मित छोगनों में ही त्यों त्यों घरक काई ब पचर नहीं रच दिया है, परन्तु ये लोग काई रंग चार भाग भी बड़ गये हैं।

१ कपना नाम किरा २ का चरम प्रसिद्ध खेलों की रचनाओं में कपनी रचना सुमाने वालों तथा रचयित्त प्रेमी को मुक्तिदान महाशुभाओं के नाम से प्रशंसित करने वालों क विरक में चारन कण (Dr. hem) ने एक उदाहरण के प्रबंध में माग्ध में बटा है कि “किसी मन्व्य के मजिस्त से उर-ए हुआ कदाय इमी कर्णिक का मान है हम भावना से ये लोग कर्णिक भावनावासी अनविद्य थे, जो मानना कि वाग्दत्त में यम दासगारत परिमाण का पहुँच गई है। उन मानों को मुझर जा दूरो घोरे का चोर हुई दुमाग्यभा यह समय की कविता दाविदारक है।”

The notion of the productions of a man's mind being his property, a notion carried to such a ridiculous extent in Europe was unknown to them. Unhappy the opposite extreme they fell into is much more pernicious. Rajendra Lal's 'Indo-Aryan' Vol II P 212



गोसाईं जी ने तो इस सरोवर में सात घोषान बनावा और अब लोग इस में एक और घोषान जाकर आच्छादक की रामायण प्रकाशित करने लग हैं। इस कायद में सब बुद्ध का चरित्र समावेशित किया गया है। परन्तु सप्त प्रबंध मुमय घोषाना को भी बदलकर यदि सप्त प्रबंध मुमय घोषाना कर देते तो मला बुद्ध इत्यत्र भी रह जाती। जो तो पूर्वोक्त सप्त घोषाई उन्हे सप्त ही विचारार्थ बना रही है। 'सबकुछ चरित्र यदि गोसाईं जी का ही रचा हुआ हो तो भी वह रामचरितमानस (रामायण) का अर्थ नहीं है। राम क्या कह सके ही हो। यदि हमारे गोसाईं जी को 'सबकुछ' की कथा रामायण में सम्मिश्रित करने की इच्छा होनी तो क्या कोई इन का हाथ रोके-हुये-या कि वे 'सप्तघोषान' क रचान में 'सप्त घोषान' नहीं लिख देते? यह काम तो किसी प्राचीन हस्त-लिखित या प्रकाशित पुस्तक में समावेशित भी नहीं होगा। जो प्रकाशक लोग अपने साम के लिये न जाने गोसाईं जी के इस अपूर्ण रचना-सूत्र की सामा का तब सप्त कर द्यो। मात्र एक ही ही ओरी गै कम्ह हो फिर न जाने किसने मीड़िका बनती आयी। हूँ तो इस का आश्चर्य इला है कि भी गोरखामी तुमही दास इन सब का कायद यह सबका मित्रदारात देके धर्ममय में लिखते और आपने लोगों को बुद्ध भी दिखक कर लखा नहीं होनी।

इस रचना एक कह सफत है कि निरवय कर के गोसाईं जी को यह क्या लिखनी सम्मिश्रित नहीं की क्योंकि बुद्ध से लोग स्रोतानिर्माण की बुद्ध समालोचना करते हैं और गोसाईं जी अपनी लेखनी से कोई गयी बात कदापि नहीं लिख सफत वे जिस से भी रामायण क सम्मिश्रण में कोई दृष्टा प्रकाशक माय निरवय सके। रामायण में उन के विषय में नहीं कही किसी के मुन से काइ धर्म का तब निरवय नहीं है नहीं उनी हम इन्हो ने किसी न किसी से उठे अप करवा दिया है। तब क्या न सबकु एक लेना बाण ही निमाय कर देने जिस में रामायणग्रन्थ कीतन की मुख्य विषय का ताकाहा हित था। और दूसरे लोगों ने ररचित य जो में यह क्या बर्णन की है तो उनका जो न के गमन रामायण में आयना नहीं की है साग हम के गरा रामायण क नाम मरन नहीं वे यह बात निमनवय से कही या सफनी है।

बुद्ध गोरखर मद्र भी ररचित रामायण की रीका में एक के विषय में लेना करते बालों को कि यदि उन को आश्चर्यकता होनी या गोसाईं जी सबकु लिखत यह ठहर बते है कि माकई की सबकु वह भाती शिक्षण से और जो गे शिक्षण दाग है वे एषी पुराणान्तों की कथाओं को जिस का रचना में बुद्धा प्रकार होना है जिस कर करते प्रय को रचा नहीं बड़ात क्योंकि बीच २ में अन्य कथाओं के लिखने से उन के लग प्रय में लिख। पदता है उगा कि "बात यन रहा है मग की ल बडे गनियान की" गो गनडीररर लेग कदापि नहीं करत। य सबकु धाईक विमान दाते के कारण नमम मंग है कि सबकु क्या तो प्रसिद्ध है इस से सब जानत है यानु जानत तो वे ही जिन्हो ने सगन दिया है— और जो सब शक्ति है और यह भी नहीं जानत कि पुराण दिन बिदिवा का नाम है तो सम्मिश्रित कि बिना सप्त और प्रयोजन इतिहास क उन को जिस प्रकार सम्पूर्ण क्या जान हो सफनी है।

पंडितजी के कथन का उत्तर हम पहले एक पंडित ही द्वारा लिखा उत्तर समझते हैं।  
 देखिये 'सुभाषिता' ग्रंथ के रचयिता पं० बरगदा प्रसाद अग्निहोत्री इस विषय में क्या  
 लिखते हैं —

'प्रथमतः हम उन प्रबंध पंडित प्रवर्तों का नामोल्लेख करते हैं कि त्रिम सोमों में  
 महाकाव्यसप्तशतिका काव्य से कहीं बड़े हुए माया के अतिशय काव्यरस धीमद् गोरबाभी बाबा  
 तुलसीदासजी हन बीबाई रामायण को कान्ही द्वारा कथित करने ही में अपने समस्त पश्चिम्य  
 का शय किया है।

"न जान इन उपकृतक काव्य विचारों न इन बात को कहीं नहीं विचार कि आज  
 त्रिम हम त्रिम कथाओं को बिलुप्त करते हैं उन्हें स्वयम् गोसाईंजी न बिलुप्त क्यों नहीं  
 किया ! क्या ये उन्हें बिलुप्त नहीं कर सकते थे ! गोसाईं जी न उन्हें बिलुप्त नहीं किया है तो  
 इन का कहीं गुणतर कारण अबतक होगा। हमें मरोमा है कि हमारे अंध-विषयक लोग यदि  
 इस बात को ध्यान विचार अत्रमें ध्यान प्रदान करते तो वे कबल कथाय लोगों की मोषी प्रसंगा के  
 मोह में डूबकर उक्त काव्य में घाट प्रकृत कर उग रस-विषयक दोष से कथित नहीं करते।  
 सारांश इस प्रबंध हासि का कारण उनलोगों की विचारशिथिलता ही कही जा सकती है।  
 अपने मोह में यह भी लिखा है कि 'माया कि अज्ञेय एवं कबल कथाप्रियलोग इस  
 बात को नहीं जान सकते कि गोरबाभी जी का प्रपाद अभिप्राय भी रामकृष्ण जी के  
 अर्थ निगने का था गा अपने अभिप्राय की पुष्टि के हेतु बिलुप्त गीत कथा  
 अनीत को उतनी ही गोसाईं जी ने लिखी है गीत कथा के विस्तार द्वारा पाठकों को प्रपाद  
 विषय की विस्तृत नहीं देने दी है। पर इन बात का विचार हमारे अंध लिखन वाले पण्डितों  
 का कर्तव्य था।

और अब मद्र की महाराज स्वयम् कहते हैं कि बीच बीच में कथ्य कथाओं के लिखन से  
 सारा प्रसंग में विध्वंस करना है और यन्त्रीयक रमा कथानि नहीं करते कि 'बात बन रही है  
 गन की और ता वन गतिमान की एवम् अब मायाई जी न लगभग में विषय कालना तथा  
 अत्राभीक वनों त्रिम कर ध्यान प्रथ का भादय मत्त करना उचित नहीं समझता तब कथ्य  
 लोग क्यों उन को पुनः कथित करिता कामिनी के गलागम तथा उग्रमगत हुये अर्थात् बगल  
 में खेपड़ों का पक्षक उल्लेख कर उन की सुन्दरता मत्त करन करते हैं। एवम् इन की रचना कथि  
 में निरा विचार का वृथा लदा अनाकरमत्त लपर वरें शेष २ का शोभासय सुषो को काव्य रित  
 करन पर उदात्त हुये है। गोसाईं जी की रचना के अर्थ ईदी यह बेगना और जानना  
 कहते हैं कि गोसाईं जी की लक्ष्मी से क्या मिलत हुआ है और यह बात उपर्युक्त प्रयोगों के  
 प्रकाशन न नहीं हो सकती। यदि कहीं कथ्या है कि अनभिन्न मंग प्रमदीयित इतिहासों और  
 बातों का पूरा रीति न बन जायें तो कथा पूर्वक पाठकों का कथाने मत्त का पद ही में पुनः  
 या पक्ष के अर्थ में दे दिना कीजिये। इस से भी तो आप का अर्थात् मित्र हो जायगा। अत्र  
 उग शोभासय पाठक न इन उपर्युक्त कथनों का अर्थ तोर दीजिये और गोसाईं जी  
 की लिखित रचना में पाया न ज्ञातिये। अर्थ अत्रिम पक्षों में खेपड़ पुनः का वरा अर्थात्

फल होता है। यह खेपककारकों की करनी ही का फल है कि वास्मीश्रीय रामायण तथा महाभारत बर्णित कथाओं की सखता में एषम् उक्त क निर्माय काल में नाग प्रकार का तर्क विवरण विरचाल से उक्त रहा है।

इस वह जानते हैं कि किसी २ खेपककार में अन्धी जारीगी दिखलाई है और स्वरचित खेपक में सुन्दर कविता भी थी है। परन्तु खेपक कितना ही सुन्दर क्यों न हो है वह खेपक ही, और मोसाई जी की खजनी से निर्यात नहीं हुआ है। अतएव खेपक बेचा हो हो उस का रामायण में रहना उचित नहीं।

इसका ता खेपक के बिन्दे जाके जाते हैं, और सोपानों में खेपकों की नवी २ ई. में कहाँ तहाँ ज्ञायी जाती हैं उभर रत्नशाही मैनपुरी निवासी सु सुखदेव साह जी का यह मत है कि प्रत्येक काण्ड के प्रति प्रस्ताव की शीपाइयों की संख्या का क्रम इस प्रकार उतार बढ़ान से होना चाहिये उस शीपाइयों का हाना है क्योंकि यह मानस (सर) है और उन्होंने अपनी तकला से शीपाइयों का प्रमाण भांड २ शीपाइयों मानकर शेष शीपाइयों को तथा अनेक शेषों और शब्दों को उठाकर रामचरित-मानस की जमी ज्ञायी ई. टों को खसका दिया है।

इतना ही नहीं बल्कि एक सोपान के कुछ भाग को मंग कर आपने उसे दूसरे सोपान में मिला दिया है। अर्थात् आरवण काण्ड के—'खड़ेराम त्वाग बन सोऊ' से लेकर अन्त पर्यन्त सर्वांश उठाकर किष्किन्धा काण्ड में रख दिया है।

बनारस आलेख के मूलपूर्व परिचित थी रामचरण जीने भी मोसाई जी के राम चरित मानस के सोपानों की ई. टों क उघाड़ने में हाथ भी अन्धी सफाई दिखलाई है।

इस नहीं समझते कि किन शीपाइयों और दोहों को इन महाराजों ने उठा दिया है उनके सबसुख खेपक होने का अनुभव इन्हें क्ये हुआ। क्या मोसाई जी की आत्मा आप के कानों में बजती गई कि वे सब उभरी रचनाएँ नहीं थीं। सम्भव है कि मोसाई जी के वास्तविक रचे पर उक्त दिये गये हो और खेपक ही श्यों का त्यों रह गया हो। इस अन्त छान्द में जैसे परिष्कृत किया है जैसे हा प्राचीन प्रतियों के इत्यन्त करने का यदि मूल किया जाता तो ऐसी बात नहीं होना पाती। यह बात छान्द उर्धवा टीक नहीं होने का प्रमाण तो रामायण के इन संस्करणों में जो म. क. बाबू रामदीन गिह जी ने रात्रापुर वाली तथा भीमारीनरेशवासी सं. १७०४ की लिखी हुई प्रतियों के अनुसार एषम् अन्धी नागरी प्रचारिणी उमा ने रात्रापुर वासी काशीनरेशवासी तथा अन्याय्य प्राचीन प्रतियों को मिलाकर प्रकाशित किये हैं। वर्तमान पावा जाता है।

इन संस्करणों का अन्य कारणों को विसंग रचिये- क्योंकि वे सब बेहत अनेक प्राचीन प्रतियों को देखकर तैयार किये गये हैं और सम्भव है कि उन प्राचीन प्रतियों में भी गणवद हो

१. प्रतीत होता है कि रामायण की टीका तैयार करने के लिये १७०० सं. (अर्थात् मोसाई जी के स्वयंशाम से २ वर्ष पूर्व) की लिखी हुई तुलसीजी मोसाई जी के रवान से बाबा सत्यना राम जी से मंग कर लाई गई थी, उनी स पर प्रति लिखा भी गई।

या घेनक वा पुमा हो । आरानोग केवल अशोभा काण्ड की ओर दृष्टि कीजिये । दोनों संस्करणों में यह काण्ड गोसाईं जी का रामानुर बानी प्रति के अनुसार होना बोध होता है । यद्यपि इन दोनों के भी अशोभाकाण्ड में कुछ परस्पर प्रमेद है (जैसा कि पाठकों को आगे के परिच्छेद में विदित होगा) तथापि इन दोनों ही क = १४ १०३ तथा १०५ अंक के दोहों में केवल साठ २ शीपाइयाँ एवम् २६ तथा २०२ अंक के दोहों में तो २ शीपाइयाँ हैं । और मुग्गी जी की रामायण में २६ तथा २०२ के अंक के दोहों में से एक २ शीपाईं उठाकर और रोप में नीचे लिखी हुई शीपाइयाँ जोड़कर आगे की संख्या पूरी की गई है ।

८ वां दोहा—घार घार गनपतिहिं निहोरा । कीमै रूपल मनोरथ मोरा ॥

६४ वां ,, —यहिं पिपि मिय सामुहिं समुम्माइ । कहत पतिहिं पर यिनय सुनाइ ॥

१७३ वां ,, —सोचिय सोमनिरत अति कामी । सुर मुनि निन्दक परपन स्वामी ॥

१८५ वां ,, —कहिं न माय मिय लजमग रागु । मय कट प्रिय हृदय सदा सकामु ॥

छद्मविनाय प्रेम वाले संस्करण में २२६ अंक वाले दोहे की शीपाइयाँ केवल छ हैं । उस में से एक शीपाईं यह है—

“सकृपदं ताल कइत इक पागा । म प्रमोद परिपूरन गात ॥”

मुग्गी जी की शीघ्र में मरुचउ बाता क बाद का तत्रहिं रुप गर्ग जाता यह नया चरण जोड़ा गया है ।

तब “शुभ कानन गयनहुं दोउ भाइ । पट्टरहिं लयन मीय रघुराइ ॥”

यह नई शीपाईं रगी गई है ।

द्वि “मुनि सो मयन हरप दोउ धाता ।”

इस नवी अर्थ शीपाईं के अन्तर्गत पूर्वोक्त शीपाईं का उल्लेख “मे प्रमो” परि पूरन गाता रखा गया है । इस रीति से इस दोहे की शीपाइयाँ की संख्या आगे की गई है । बानी नागरी प्रचारिणी मन्ना बानी प्रति में ये नये चारो चरण जोड़कर कर दिये गये हैं किंग से एक शिराग होता है कि रामानुर बानी प्रति में भी २२६ अंक वाले दोहे की शीपाइयाँ मन्मुब दा हैं ।

उपसंहार में यह शीपाइयाँ जो मिरपय मुग्गी जी का द्विती अन्व पुण्य की रची हुई होती । इन के विनाय इन संस्करणों की प्रतियों से मुग्गीजी की शीघ्र बानी रामायण की मिलाने से शब्दों तथा अनुस्य चरणों का अन्वय पाठान्त एवम् बही २ शीपाइयाँ के स्थान अन्व में भेद होने बात है ।

१ आरानोग रोगने के लिये इन दोनों के अशोभा काण्ड क १४, ३८, ४२, ४४

६० ६३ ७३ ८३ ११२ १२५ १५०, १५३ २०० २३१, तथा २४० अंक वाले दोहों की क्रमांक: ३ ३ ५, १ ५, ५, १ ४, २ ३ ४ २ ५, ३, ० और ० शीपाइयाँ का मिलान कीजिये ।

राजापुर वाली प्रति में भी चौपाइयों की संख्या में न्यूनमाधिक देखा कर यह कहा जा सकता है कि गोसाईं जी ने चाट ही चाट चौपाइयों का क्रम नहीं रखा है। और जब मुंशी जी की रामायण के अनोभ्या काण्ड में गङ्गबद देखा जाता है तथा वह राजापुर वाली प्रति से सर्वत्र नहीं मिलता तो यह नि संशय कहा जा सकता है कि जैसे मुंशी जी ने अपने गङ्गबद तथा काट छंट से इस अक्षर में गङ्गबद कर दिया है वैसे ही अन्य काण्डों में भी इनके काट छंट से अक्षर गङ्गबद हुआ हुआ और वह काट छंट सर्वथा ठीक नहीं माना जा सकता है। यदि वह ठीक है तो राजापुर वाली प्रति को गोसाईं जी की हस्त लिखित मानना उचित नहीं होगा। पाठक जैसा उचित समझें वैसा करें।

पूर्वोक्त पंक्ति श्री ने साहस पूर्वक और भी परिवर्तन दिखावाई है। उग्रेनि प्रन्वकार की भाषा ही बदल ही है अर्थात् उस समय की प्रचलित भाषा के शब्दों के स्थानों में संस्कृत म्नाकारण की रीति से शोधका शब्द रख दिया है। मुंशी जी ने भी शब्दों को प्रायः संस्कृत ही के रंग से लिखा है और अन्य प्रकाशक भी पंक्ति की का अनुकरण करते शब्दों का रूपान्तर कर प्रथम प्रकाश करने लगे हैं।

गोसाईं जी अपनी रचनाओं में शब्दों को जरी हथ से लिखते थे जैसे वे उस समय बोल बाल में प्रयोग किये जाते थे। उन की रचनाओं में ए ए रा ऐसे या तुम के स्थानों में सर्वत्र प १ न स असे आ तुम्ह पाये जाते हैं। न, स, उच्चारण में मधुर होता है। मधुरता की ओर ध्यान रखना कवि का परमावश्यक कर्तव्य है। गोसाईं जी क्विक्टुड मोहदसू, पठाऊ, मुञ्जिनी जागबलिङ्ग, बरारम बंदत मगनी ऐसे शब्द भी प्रयोग करते थे परन्तु अब के प्रथम प्रकाशकों ने उन्हें नवीन भाषा की रीति पर संस्कृत के सत्र से और पाणिनीय म्नाकारण के अनुसार शोध कर क्विक्त्तुड, मोहदसू प्रसाद मुञ्जिनी जागबलिङ्ग बन्दो मङ्गि बना दिया करते हैं। हमारी समझ में ऐसा परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं। उनके लिखे शब्दों को जो का त्यों ही लिखना उत्तम और आवश्यक है। इस से उन के प्रथम के पाठकों को यह ज्ञात हो जायगा कि उस समय विशेष २ शब्द कसे लिखे जाते थे और उस समय की भाषा कैसी थी। यदि उनकी भाषा वा जेष्ठनराही आधुनिक लक्षप्रवाही तथा भाषा के समान हो जाये संस्कृत भाषा के विरुद्ध हो तो औरें किता नहीं। भाषा एक ही नहीं रहती—यह परिवर्तन शीला है।

हम को हाल ही में एम. ए. ई. का तथा रेवेण्डे टबन्नु. डिप्लोमा बालिगत (Rev. W. Lucas Collins) एम. ए. इन होमर, की इन्विज्ड (Homers The Illiad) नामक पुस्तक देखने का सुभाग्य मिला है। उस में उन्होंने 'होमर' इन 'इन्विज्ड' नामक प्रथम की एक प्रकार की मनाओबना की है और प्राचीन भवरेवी प्रथमों के वर्णों का कुछ उल्लेख किया है परन्तु उन वर्णों के उल्लेख करने में उन्होंने जो शब्दों को बम ही गहन किया है वह उन

१. गङ्गबलिगत प्रथम द्वारा मुद्रित रामायण के अष्टाव्या काण्ड में मध्यम 'न' देखा जाता है और बागी बागी प्रचारिणी मया पानी प्रति में 'न' और 'न' वर्णों ही पाये जाते हैं।

राजों के रक्षिता के समय में वे मर गिने जात थे । पाउल पुस्तक काग लोगों के व्यवहाराथ हम भी उन पदों को यहाँ पर उद्धृत कर दत हैं ।

And when Priam in full thirsty wayse  
 Performed hath as ye have heard devyse,  
 Ordained eke, as Guide can you tell,  
 A certain Nombre of priestes for to dwell  
 In the temple in their devotions  
 Continually with devout ansons,  
 For the Soule of Hector for to pray

x x x

To which priestes the kyng gave mansyons,  
 There to abide, and possessyons,  
 The which he hath to them Martyted  
 Perpetually, as ye have heard devyted,  
 And while they kneel pray and wake  
 I Caste fully me an end to make  
 Finally of this my thirde booke,  
 On my rude manner as I undertooke

*(The closing Lines of I ydyate s thurd book)*

इस पद द्वैवराज की सम्पत्ति क्रिया के सम्बन्ध में है । मोर (More) गदक के युरोपिया (Utopia) पुस्तक १२१९ ई० में मोरसामी गी के नाम समय के लक्षण लिखी थी । उस का पादरी जे रासन लम्बी (J Raucson Lumb) द्वारा सम्पादित १८१७ ई० का एक संस्करण हमें देखने में आया है । काग की यह पीढ़े ध्यान पर भी इस में शब्द बने ही दिने गये हैं जस १२१९ ई० में लिखे गये थे । हम उग में से भी कुछ शायी को यहाँ उद्धृत कर देत हैं ।

Sometyme vertue cleare angelicale againe, realire tudie  
 Occupie Sonne, knowinge, hime partt sett type remembrance  
 of c.

पात्र एम ए होकर निद्रुस्य गदक तथा पादरी रासन न उद्युक्त शब्दों को सम्पन्न करने वाली शक्ति । यहि है एका कर्मता आत्र हमें अपने आत्मा हाथ दि उग समय से शब्द अपने विभे जात थे ।

राजापुर बासी प्रति में भी बीपाइयो की संख्या में न्यूनाधिक देख कर यह कहा जा सकता है कि गोसाईं की भी आठ ही आठ बीपाइयो का क्रम नहीं रखा है। और जब मुड़ी की भी रामानस के अनोपना काव्य में गढ़बढ़ देखा जाता है तथा वह राजापुर बासी प्रति से सर्वत्र नहीं मिलता तो यह निःसंशय कहा जा सकता है कि उसे मुड़ी की भी अपनी रचयिता तथा आठ छंद से इस काव्य में गढ़बढ़ कर दिया है जैसे ही अन्य काव्यों में भी इनके आठ छंद से अनवरत गढ़बढ़ हुआ होना और वह आठ छंद सर्वथा ठीक नहीं माना जा सकता है। यदि वह ठीक है तो राजापुर बासी प्रति को गोसाईं की भी हस्त लिखित मानना उचित नहीं होगा। पाठक जैसा उचित समझे वैसा करें।

पूर्वोक्त पंक्ति की ने साहस पूर्वक और भी पंक्तिवाई दिखलाई है। उन्होंने प्रत्यकार की माया ही बहल ही है अर्थात् उस समय की प्रचलित माया के शब्दों के स्थानों में संस्कृत व्याकरण की रीति से शोबच्छ शब्द रख दिया है। मुड़ी की ने भी शब्दों को प्रायः संस्कृत ही के रूप से लिखा है और अन्य प्रचलित भी पंक्ति की का अनुकरण करके शब्दों का रूपांतर कर प्रय प्रचारा करने लगे हैं।

गोसाईं की अपनी रचनाओं में शब्दों को उची ढंग से लिखते थे जैसे वे उस समय बोलना में प्रयोग किये जाते थे। उन की रचनाओं में ख, ण, श ऐसे, या मुन के स्थानों में सर्वत्र प, न, स जैसे आ तुम्ह पाये जाते हैं। न, स उच्चारण में मधुर होता है। मधुरता की ओर प्यान रखना कवि का परमावश्यक कर्तव्य है। गोसाईं की कृपिच्छु मोहपल्लु, पछाळ, मुचरिनी बागबस्किरु, इसरन बंदत भगती ऐसे शब्द भी प्रयोग करते थे परन्तु अब के प्रय प्रचाराओं ने उन्हें लचीन माया की रीति पर संस्कृत के छद्म से और पाणिनीय व्याकरण के अनुसार शोब कर करिच्छु, मोहदल प्रसाद मुचरिनी बागबस्किरु बाहों मक्ति बना दिया करते हैं। हमारी समझ में ऐसा परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं। उनके लिखे शब्दों को ज्यों का त्यों ही स्थापना उत्तम और आवश्यक है। इस से उन के प्रय के पाठकों को यह ज्ञात हो जायगा कि उस समय विशेष २ शब्द कैसे लिखे जाते थे और उस समय की माया कैसी थी। यदि उनकी माया वा लेखनीयै व्याजुनिक लेखप्रणाली तथा माया के समान हो वा वे संस्कृत माया के विरुद्ध हों तो कोई किन्ता नहीं। माया एक ही नहीं रहती—वह परिवर्तन शीघ्र है।

हम को हास ही में १८८८ ई का ज्वा रेवेरेण्ड टचस्यु सिमुण्ड कल्लिंस (Rev W Lucas Collins) एम ए इल होमर, की इलियड (Homer The Illud) नामक ग्रन्थ देखने का सुमनस्य मिलता है। उस में उन्होंने 'होमर' इल इलियड' नामक ग्रन्थ की एक प्रश्न की समालोचना की है और प्राचीन अंगरेजी प्रयोगों का कुछ उल्लेख किया है परन्तु उन प्रयोगों के उल्लेख करने में उन्होंने ने शब्दों को जैसे ही रहने दिया है जैसे उन

१ 'शब्दविज्ञान' ग्रन्थ द्वारा सुरित रामायण के अनोपना वाक्य में सर्वत्र 'प' देखा जाता है और काशी कागरी प्रचारिणी समाज काशी प्रति में 'प' और 'ख' दोनों ही पाये जाते हैं।





किर देखिये शोकसवियर के समय की माया आधुनिक अंगरैजी माया से बहुत भिन्न पाई जाती है। शोकसवियर की रचनाओं में व्याकरण का ऐसा उत्कृष्ट केंद्र है कि लोगों को हार कर उन की रचनाओं के समझने के लिये एक नूतन व्याकरण ही बनाना पडा है जिसे 'शोकसवीरियन ग्रामर' कहते हैं। उनके पीछे विशास्यत में बहुत से नामी विद्वान हुये और उन लोगों के प्रबों का सेककों संस्करण हुआ परन्तु किसी विद्याचार्य ने उन लोगों की रचनाओं पर खेसमी नहीं कहाई उगई ज्यों की त्यों छापते गये। सोचनी करते कहामें ? वे जानते थे कि इस परिवर्तन से कवि के आशयों में भेद पक जायगा एकम् परिवर्तित व्यवस्था में उन के कथन का यथार्थ आशय प्रयत्न नहीं होगा और सबसे यथार्थ स्वाद भी नहीं मिलेगा। परन्तु 'राम चरित मानस' के अधिकांश प्रकाशकों का ध्यान इन विचारों की ओर नहीं जाता। वे लोग अपनी ही पंक्तिवाही तथा विद्वता दिखलाने के लिये मरे जाते हैं। गोपाई की ही की रचनाओं पर समाप्ति नहीं है। उन प्राचीन प्रबों के प्रकाशक प्राय प्राचीन पुस्तकों में लिखे हुये शब्दों को संस्कृत के ब्रह्म पर शोक २ कर धारने लागे हैं। ऐसा करना बडा ही अनुचित है। ऐसा करने से किस समय कैसी खोजन-रीति तथा कैसी माया प्रकलित वी व्याकरण का क्लृप्तता और कैसा अनुसरण किना जाता वा इन बातों का पता लगना तथा निर्णय होना आसानीतर में कठिन हो जायगा।

## पञ्चदश परिच्छेद

### रामचरित मानस के संस्करण तथा टीकाए

आज से कई वर्ष पूर्व हिन्दीभाषा के प्रसिद्ध प्रचारक तथा रामचरित मानस के परम प्रेमी म. कु० बाबू रामदीन सिंह जी ने स्वसम्पादित रामायण में टिप्पणियाँ कीं कि उक्त समय तक मुद्रकों के द्वारा इस ग्रंथ का १२९ संस्करण हुआ था। इस बीच में और भी अनेक संस्करण प्रकाश हुए हैं क्योंकि कोई ऐसा किरता ही प्रेष है किन्तु गोमाई जी इन रामायण को म प्रकाशित किया हो। किन्ती २ में तो इस का कई संस्करण प्रकाश कर के कमिमत रूप प्राप्त किया है।

इन संस्करणों में किन्तों में तो केवल मूल ही छपा है एकम् किन्तों में टीका सहित मूल छपा है। किन्तु अण्डरों तथा शब्दों के परिवर्तित करने और अंग्रेजों के पुस्तक के विषय प्रकाशकों ने प्रायः मूल पाठ में अक्षमा-बोध्य गड़बड़ कर लिया है। इसमें गन्देह नहीं कि प्राचीन रचनाओं की मुद्रित तथा हस्त लिखित प्रतियों में प्रायः पाण्डित्य पाया जाता है। इसी देश के प्रथम में नहीं बल्कि अन्य देशों के ग्रंथों में भी यह बात दृष्टी जाती है। परन्तु इस की भी तो कोई सीमा होनी चाहिये। वहाँ तो इस पुस्तक के प्रकाशकों ने अपनी २ मुद्रिकों की ऐसी राह ली है कि जहाँ ने एक नई ही रचना गयी कर दी है और एक पुस्तक के दूसरी पुस्तक से मिलाने में विशेष अन्तर शीघ्रता है। और वहीं रामायणियों में शिरोप का कारण हा गया है। कई एक रामायण का पाठ टीका बनात हैं और कोई दूसरे का। कार निज रूप सम्पन्न में बहुत से लोग विज्ञान की सीमा से उन्मत्त बन कर निज भी अन्तर बगल गये हो जात हैं। वहीं पाण्डित्य देना भी देगने में आता है किम से अन्य कर्तों के माये कर्मों की टीका करने का भी सम्भावना हो जाती है।

संस्करणों की तो यह दशा और टीकाकारों ने कुछ और ही मुल विनाया है। किम की मुद्रि म उन्नी राह रिचलई है उजने बड़ी ही टीका रचने ली है। अपनी मुद्रि की रचनाकी विधान में लोगों ने मुद्रि नहीं की है। परन्तु इस बात का कम लोगों को ध्यान रहा है कि कवि का मनुष्य क्या कारण था और अन्य के कारण तथा भाव के समझने में रामायण के पाठकों को बननी टीकाओं से बड़ा तक शहादता मिल गयी है। टीकाकारों का मुख्य कामिय यह होना चाहता था कि कठिना एकम् कर्तों का निवारण करे। किन्तु उन में से किन्तों ने

अपनी पवित्राई तथा निरुद्धाई दिखाने के लिये ऐसी अनेक नई २ कल्पनाएँ की हैं और छोटे छोटे पदों तथा शब्दों को तोड़ मोड़ कर उन का ऐसा गूढ़ आशय बराम किया है जिस की ओर कवि का कदापि कभी ध्यान भी नहीं गया होगा। रामचरितमानस का विचार अशेष पाठक टीकाओं के सहारे प्रथम का मूल तात्पर्य जानने के बदले टीकाकारों के पाण्डित्य के भँवरजात में पड़ कर बका सठठा है।

आज इस प्रश्न की पचासों टीकाएँ प्रचलित हैं। किसी में भाषार्थ, कहीं में शुद्धासमाधान एवम् किसी में अलंकारों की कृता दिखलाई गई है और किसी २ में साधारण सरल शब्दों का एक शब्द ९ कर मनमाना अर्थ निकाला गया है।

धीमईय रामचरण दास जी, धी महात्मा काण्डबिहारी (देव) स्वामी व शिवदास पाठक, महाराजशेखर (कनीस) दत्त शर्मन व किर्तरी दत्त भी अल्प दत्त श्री रामप्रसाद श्री परमईस, महात्मा भाइ सन्त सिंह (पद्मारी) महाराज काशीराज श्री इस्वरी प्रसाद नारायण सिंह बहादुर, महाराज पोपाठ शरण सिंहजी (बन्सर) महात्मा जानकी दास जी महामुण्ड हरिहरप्रसाद जी व राम बन्धु पाण्डेय व-चन्द्रन पाठक श्री महात्मा खुनाय दास जी, श्रीका केशव दास जी व पद्मादा प्रसाद, व रामेश्वरमठ श्री बैरनाथ दास श्री इत्यादि श्री गंगागा मुखर टीकाकारों में होती है। परन्तु इन में सब महाशुभाओं की टीकाएँ मुद्रित नहीं हुई हैं। हम यहाँ पर कई एक टीकाओं की संक्षेप समालोचना करनी अनुमत्त नहीं समझते।

“३” ‘रामचरित मानस’ के वेबल मूल ही के कितने संस्करण हुए हैं उनमें से ‘सङ्ग्रहास प्रेस द्वारा प्रकाशित संस्करण तथा ‘काशी मागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, इलाहाबाद इन्डियन प्रेस का सभा संस्करण प्रायः शुद्ध तथा गोस्वामी जी के लेख नियम के अनुसार जापे सके हैं। यद्यपि इन दोनों में भी यहाँ-तहाँ परस्पर प्रमेय है तथापि वे दोनों अन्य प्रम्भों की अपेक्षा निस्सन्देह प्रामाणिक हैं।

पहले-पहल म ३ नाम् रामदीन सिंह जी ने मियर्सन साहब के लघुग से रावापुर के अमोष्या काण्ड की प्रतिलिपि तथा काशीनरेशवाली रामायण के सार्थ काण्डों की लच्छ प्रस्तुत करके मोसाई जी के लेखानुसार कश्च मूल ही १८८६ ई में प्रकाशित किया। उस में मोसाई जी के हस्त लिखित १ पत्रों का, काशीनरेशवाली रामायण के चार पत्रों का एवम् एक जन टोडर की सन्तति के रूपमें से मोसाई जी के दिये अथवा पत्र (पंथनामा वा कैछठा) के छोटे भी दिये गये हैं। अपनी लिखी हुई भूमिका तो है ही मियर्सन साहब लिखित संक्षिप्त श्रीवती कोई महापुरुष हूत पञ्चद बीजण चरित् एवम् साहित्यकार्य पवित्रत अम्बिका दत्त अम्बोस तथा अन्य लोगों की बनाई मानसप्रसंभा की कविताएँ भी ज्ञानी गये हैं।

म ३ रामदीन सिंह हमसोगों के हार्दिक अन्वयाद के मागी हैं क्योंकि उन्होंने मोसाई जी हूत रामायण की शुद्ध प्रति सब लोगों के लिये मुक्तम करने के हेतु उस समय यत्न किया जब कि अन्य लोगों का ध्यान भी उधर नहीं गया था एवम् इस के मुख का सर्वथा मार करने ही असर दिया। इसमें उष्क किरी ने हाथ नहीं बटाया।

१९०३ ई० में 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने भी रात्रापुर वाले अयोध्या काण्ड, काशीनरेशवासी रामायण, तथा एक ही अन्य प्राचीन इसल जितिन प्रतियों को अपने पाँच सदस्यों क द्वारा विद्यता कर तथा शोधकार्य सुन्दर अक्षरों में और अन्त में कागज पर 'इन्डियन प्रेस' इलाहाबाद में छपाकर बेहत मूल ही प्रकाशित किया है।

इस में भी गोरबामी श्री श्री श्रीबनी लगी है। काशी नरेश के पास जो एक सचिव रामायण है जिस की तमारी में कदाचिन् १९ ००० ध्यम हुआ था उस के बहुत से बिजों के इस में फोटो भी किये गये हैं। अन्त में क्या भाग है जिस में उन पौराणिक बातों का विमला गोरबामी श्री ने रामायण में शक्तिरिक्त वर्णन किया है पूरा विवरण दिया हुआ है। यह गोरबामी प्रेम वाले संस्करण क १२ वर्ष पीछे यह संस्करण तयार होने से इस के सम्पादकों को कुछ अधिक सावधानी से काम करने का अर्थकार्य मिला है और पाँच सम्पादकों की सम्मति से काम करने एवम् इस सभा के राजी महरारों के सहायक होने से इस में कमर दमक कुछ बिरुप देती जाती है।

इस इन दोनों संस्करणों में प्रमेद की बात अभी बह चुके हैं। हम यहाँ पर अन्य कारणों का विचार नहीं करते और न हम ने शब्दों के वाक्यान्तरों पर बिरुप ध्यान दिया है। हमारा ध्यान दोनों संस्करणों में अयोध्या काण्ड क प्रथम प्रमेदों की ओर आकर्षित हुआ है। 'यत्र विनाम प्रेम' संस्करण में २२६ अंक के दोहे की बीपाइयाँ १ और २ ३ = २० ११ १०३ १०४ १०५, २१०, २०६ तथा २६१ अंक बाल दोहों की बीपाइयाँ मात-मात एवम् १८ तथा २०२ अंक वाले दोहों की बीपाइयाँ जो भी हैं और काशी नागरी प्रचारिणीसभा द्वारा प्रकाशित रामायण में बेहत = १४ १०३ और १०५ दोहों की बीपाइयाँ छत छत एवम् २६ तथा २ २ दोहों की बीपाइयाँ भी भी हैं। २२६ अंक क दोहे की बीपाइयाँ हैं तो आठ परन्तु उन में बार बार कोउपद हैं जैसा कि गण परिच्छेद में दिग्गताया गया है। इन दोनों संस्करणों क अयोध्या काण्ड में एका प्रमेद होना बड़े आश्चर्य की बात है। क्योंकि इन दोनों के सम्पादक लोग पुराने सम्पादन के समय यह काण्ड रात्रापुर से प्राप्त होना बताते हैं और गोमाई श्री के हाथ की निम्नी हुई रामायण की विमल करी जानी है। गोरबामी वाली प्रति के अन्त्य में लिखा है कि हम (रात्रापुर वाली) प्रति क निय बहुत सन्ध दिया आर बड़ा शक्तिता से उग का बीरोप्राक किया और उगी बहार क कागज और लिपि में उनके निगने में बहुत गा इत्य ध्यम करके हमको निगना दिया क। एवम् 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' वाली रामायण क सम्पादकगत निगत है। इस में स परन्तु आर दुगरी (अर्थात् रात्रापुर का अयोध्या काण्ड की) प्रतियों के प्रथम करने का सम्भव सभा क सम्पादक पात्र रात्रापुर प्रवाद का प्रथ है।

परन्तु इस प्रमेद स तो यह निभीक भाव से अनुमान दिया जा सकता है कि इन दोनों में से कोई एक रात्रापुर वाली रामायण के अनुसार नहीं है या रात्रापुर के अधिवासी जग भिन्न २ अक्षरों की भिन्न २ प्रति गोमाई श्री निमित्त बह बर निरुप्राय सम्भव दिग्गता दिया बात है किमय यहाँ सवसुध गोमाई श्री निमित्त रामायण होने की बात एक श्रुति ही प्रतीत हांग है या सम्पादक सदस्यों से आने २ संस्करण के प्रकाशन में अन्ती बुद्धि स भी काम किया है। किन्तु

बा रामदीन सिंह जी ने तो यह स्पष्ट कहा है कि 'इस राम चरित मानस में प्रत्यकार के लेखा दुष्टार मर्दि या स्थाने मर्दिका रक्खी गई है। कल्पना से काम नहीं किया गया है।'

अब मित्रवर बाबू रामदीन सिंह जी इस ससार में नहीं हैं और करीबी समाजवादी रामानन्द के सम्पादन में से केवल सुदृश्य स्वामसुन्दर दास वर्तमान हैं। उन्होंने मे हमारे पत्र के छतर में यथार्थ लिखा है कि अब फिर राजापुरवासी प्रति देखे बिना कुछ कहें कहा जा सकता है। परन्तु हम को तो वहाँ जाकर यह रामानन्द देखने का समय और अवकाश नहीं है। नया उस प्रान्त के कोई साहित्यानुसारी अपने ऊपर कष्ट उठाकर इसक निखय करने का उद्योग करेंगे।

राजापुर वासी रामानन्द में तापस की बेजोड़ कथा रहने में भी उस प्रति के विषय में हमारे मन में बड़ा असमंजस उत्पन्न होता है, क्योंकि पोवाई जी ने रामानन्द में और कहीं कुछ असाधारण रीति से नहीं लिखा है।

रोमान शासक कुल टीका—टीकाकार ने लिखा है कि "भीमव पंडित रामकृष्ण पति रामानन्दी की उदात्तता से किन्हीं ने भीरु बर्ष से बहतर बर्ष पर्यन्त इसी रामानन्द के पाने और उत्सव में सारी अवस्था स्वतीत की यह टीका निर्मित होकर मूल के सहित बड़ी दुष्टता के साथ छपी गयी।' १८४० ई. की कपी हुई इस टीका की शिरीनायति हमारे सामने इस समन उपरिबत है। यह टीका नूतन अवसार' मन्नास्य आगरा में छपी थी। यह टीका बहुत सरल रीति से अंगरेजी भाषा की पुस्तकों के मोटे के ढंग पर बनी है। वहाँ कहीं किसी बीपाई में एक ही उल्लेख कठिन समझ्य गया है वहाँ उसी का अर्थ लिख दिया गया है। कहीं आवश्यकता दुष्टार बीपाइयों और दोहों की उचिततर व्याख्या भी हुई है। कहीं किसी विषय का दो एक भाग भी लिखलाया गया है। मूल के संचितिक पीरायिक कथाओं का उचित बयान भी कर दिया गया है। इस के अन्त में रामानन्द के शब्दों का कोप भी दिया हुआ है। टीका अच्छी है।

भीरामकृष्ण पाण्डेजी भीमन्महाराज्जा ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंहजी करीबीनेरेश के रामानन्द के एक मुख्य पंडितों में से थे। आप रामानन्द के अच्छे ज्ञाता थे। आपने रामानन्द की एक टीका भी बनायी है जो भीरुश्रीनेरेश के पुस्तकालय में वर्तमान है और उस टीका के बाकबंद का उतारा बांशीपुर के काविकितास मन्नास्यन में भी है। प्रवाद है कि रामकृष्ण जी की कथा में सु रोमान शासक सदैव उपस्थित रहते थे और जो कथा में सुनते थे उसे लिख लिया करते थे। उसी से उन्होंने अपनी टीका बनाकर अग्रप्रतिष्ठ की जो बाक कदाचित् पंडित जी को कुछ पुरी भी लगी थी। परन्तु मूमिका के कपलाखे उद्युतांत से इस प्रवाद की पुष्टि नहीं होती।

रामानन्द परिचर्या परिशिष्ट प्रकारा—पहले व्याकरण केराय्य म्नावादि के महान पंडित करीबीवासी भी काव्यविज्ञा स्वामी ने 'रामचरित मानस' की संक्षिप्त टीका करके उसका नाम 'मानस परिचर्या' रखा था। उसी को श्री मन्महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण

१ रामचरित मानस की टीका चाहे पहले किसी ने बनाई हो परन्तु बोध होता है कि पही रीतय शासक कपयत्य की बनाई टीका पहले पहल अग्रप्रतिष्ठ हुई।

विद्वान् ने परिबर्दिन कर उसका नाम मानस परिचर्या परिशिष्ट' रखा। उस के प्रकाशन के समय उस में जो कुछ अर्थों देखा गया वह भीमान् क पुकेरे भाई द्वारा शिक्षान्तगत बर्गार-निवासी महात्मा हरिहरप्रसाद भी द्वारा पूर्ण होकर उसका नाम 'मानसपरिचर्या परिशिष्ट प्रकाश' रखा गया एषम् बगी नाम से तीनों महाशुभाओं की टीकार् सम्मिलित होकर संवत् १८३५ ४० के मध्य काशी आनन्दप्रान्त तथा लाहौर में मुद्रित हुई थी। फिर बही टीकार् उपयुक्त नाम से काशीपुर गङ्गविनास यन्त्रालय से १८६० ई० में प्रकाशित हुई।

भी गोस्वामीजी के रचान स संवत् १७०० की तिथि रामायण प्राप्त कर सं० १८६४ में धोकाप्रतिहारवामी ने यह टीका लिखना आरम्भ किया था।

इस ग्रन्थ का पाठ शुद्ध माना जाता है। टीका अच्छी है। अर्थ सुन्दर स्पष्ट भावप्रदर्शन मनोहर, सुगम तथा बोधगम्य है। इस में संस्कृत शब्दों का एक भी प्रमाण उद्धृत नहीं पाया जाता। भाषा बर्णमान शैली की नहीं है। लौमी अर्थ विषय भाव सब मनीमाति समझ में आ जाता है। कही २ शंका समाधान की भी बहार बनी जाती है। भूमिका की भाषा अर्थ है। आशङ्क के लोगों को उसे पढ़ते अवश्य हींणी ध्यान लगती है।

"मैनपुरी निवासि सु० सुसुन्दर शाल सखसेना कायस्थ हून टीका"—इस की रचना सं० १८२३ में हुई और १८६१ ई० में लगनउ के सु० नरनक्षिणोर के छापेघाने में इस की पांचवीं आवृत्ति हुई जो हमारे सामने इस समय उपस्थित है। इसका पहला संस्करण कर प्रकाशित हुआ यह हम टीका नहीं कह सकत। लगभग दसवर्ष पहले हुआ होगा। मुन्शी जी ने सर्वत्र आठ ही आठ पीपाइयां रगकर एषम् शेष पीपाइयों को प्रति दोह से निम्नल कर टीका की है। शेष पीपाइयों को आपन खेरक माना है। इस की समाप्तोपमा पहले हो चुकी है। आप ने पीपाइयों के निष्काट देने का कारण भी दिखताया है और उमहा अर्थात् होना सम्मान भी हो सक्ता है। परन्तु आप को यह कहे अनुभव हुआ कि अनुक ही अनुक पीपाइयों निष्काट देने के योग्य है। यह बात आपने पाठकों का नहीं उताई है।

यह काम इनका रत्नापनीय न हो परन्तु टीका बहुत गरल शब्द सुन्दर तथा सराहनीय है। सब के पढ़न और समझन के योग्य है। टीका बाह्याम्बर स ग्रन्थ है। संस्कृत शब्दों की भरनार नहीं है। तथापि संस्कृत प्रमाणों का अभाव भी नहीं है। इस टीका के पढ़न से रामायण का माध्याय ज्ञान हा गहना है।

भीरामानन्दसहरी टीका—धी अयोध्या निवासी महात्मा रामचरण दामजी १ हून यह टीका महाराज सुगनामन्द रामी द्वारा संस्कीत होकर महाराज रघुनाथ दाम प्रवृत्ति के

१ काव्यकुञ्ज कुल में उदार अक्षरार सेके बाट ही ने सीतारूप पद अनुगतो है। कोई देव भूरति की आकरी काल नहीं हृष्ट देव महा जाग धूम ही में गले है। एक दिन शायब की मेरा में भुमान उन्हीं को आ पारि आनु हरि जाग है। जानी उह काल अह दामिन गान तत्रि जगन के नाथ रघुनाथ जोर लागे हैं। 'शिवक प्रकाश अष्टमान' पर ४० काव्यदेवनाय हून टीका भाग १, २१४—२७ वरिणों का हैविय।

आज्ञानुसार मु० रघुवरदास की सम्मति से लखनऊ के मु० नवरत्नचिह्नोर के यशस्वय में १८८१ ई० में प्रथमवार पत्रा के आकार में कपी थी। उस में प्रति कायद के आरम्भ में टीकाकार कुछ कल्पवृक्ष वन्दनादि देखी जाती है। बाह्यकायद क आदि में लिखा है :—

‘गुरु कहिं हुलसी कृत समुक्त, सकल शास्त्र सुठि ज्ञान।  
मम विचार यह आइ हिय, हुलसि दास को ध्यान ॥  
तब अनुमतिव सुमन्द मो, पहर बढ़ दिन पाठ।  
अनघपुरी दिन विजय विधि पैसठि सत दस आठ ॥’

इस से मान होता है कि इस टीका की रचना १८९२ में आरम्भ हुई। यद्यपि इस दोहा से यह ज्ञात नहीं होता कि यह विक्रमी संवत् है या अन्व कोई सन है परन्तु चिराम बिला-धारण के महन्व श्री श्रीवाराम (बुगल प्रिया) जी कृत ‘रसिकप्रकाश मङ्गलाक्षर में इन के साकेतवास का समय सं० १८८८ १ लिखा हुआ है— ‘संवत् अठार सै अठसी भाष शुक्ल नौमी पुठ पिय पास गये बुबिधा विचारिके ॥’ इस से १८९२ २ के मी संवत् ही होन की सम्भावना है।

इस में पुराणों शास्त्रों उपनिषदों तथा वेदों के वाक्यों का यथा जोम्न दृष्टान्त देकर आप ने माषाकविन भावों की पुष्टि की है। कहीं २ नौपाइयों तथा दोहों का अर्थ संक्षेपत कहा गया है और कहीं कहीं श्रुतों तक बसा गया है जिस से कभी २ साधारण पाठश्रे का मन फलने से कुछ उबट भी जाता है। प्रमाणवाले श्लोकों का अर्थ वा आशय नहीं दिया गया है। और एक ही श्लोक अनेक स्थानों में उद्धृत हुआ है। आप ने अनेक कायद के विषयों को, (यथा अन्तस्वभाव, बहस्वभाव इत्यादि) उक्तों में विमल किया है और अनेक तरह के अन्त में आप कोई कन्द् देते गये हैं। कहीं २ अलङ्कार भी लिखलाया गया है।

इस टीका में उपासना मन्ती भांति इकाइ गई है और इस के सिन्हे यह बहुत उत्तम टीका है एवम् छापु महारामाओं के बड़े काम की है। रामनाम की महिमा अनेक कर्णों से निरूपित हुई है। इसकी गणना प्रामाणिक तथा उत्तम टीकाओं में है। इस की भाषा में कहीं २ ब्रजभाषा की झलक आ जाती है।

इसका एक संस्करण १८८८ ई में मु० रघुवर दास ही की सम्मति से हुआ था। फिर १८९२ में इसकी सुदीपाद्युति हुई। उस में सुन्दरीजी का नाम नहीं देखा जाता। इन दोनों संस्करणों में अनेक कायद के आदि में प्रथमाक्षति वाली कल्पवृक्ष वन्दना भी नहीं देखी जाती। इस क पीछे की कोई आक्षति हमें देखने में नहीं आई।

इस टीका की प्रशंसा में पूर्वीक मङ्गलाक्षर भाग १ में यह लिखा है — मानस रामायण प्रथिम पाठ अर्थ करि आगम निगम और पुरान मठ भावैगो। अलङ्कार कन्द् क प्रथम हाव भाव मेर रसन के मेर बहाँ तहाँ हरसावयो। कर्म ज्ञान भक्ति योग अर्थ धर्म काम मोक्ष तत्त्ववाद संमत परम्प घरसावैगो। सिरी रामपरन तिलक विगु देखे बीष वृषति उपासना की रीति अहाँ पावैगो।

१ रसिकप्रकाश मङ्गलाक्षर अंकित १९१ देखिये।  
२ न जाने प्रथम सादर ने सं० १८९९ कैसे लिखा है।





बने छोड़ने परन्तु सुन्दर इत्यादि मंगाने ।' महीं मालूम टीकाकार भोजा प्रदाना कमफर्टर शिरबानी कोट, फल्लून गंभी इत्यादि मंगाना बन्ने मूल गये । और देखिये—  
 "भीष उद्वह पर के सब करिहो । अर्थात् दुस्ता दृष्टि करावना उबटन लगावना, रमान करावना मपस बचन पहिरावना गंभ लगावना बिहौना बिहानना पंभ फतोदना इत्यादि भीष उद्वह । ये सब ठिकाना निग्रमोक्तीन था । इन सब बातों का बिन्दे १२ १४ वर्ष का वातक भी जान सकता है इतना बिस्तार करना और शास्त्र तथा पौराण्यिक के वाक्यों को उद्वह कर उनका भाषा में सारांश भी नहीं जानना नही टीका की परिपाटी भिन्नाली गई है । इहो महाशय को हम नहीं च्छते । प्रायः सभी लोग संस्कृत का पाणिपुत्र विद्यमान को धार्य प्रकों के वाक्य तो उल्लेखित कर देते हैं परन्तु पाठक को उमका सारांश भी नहीं बताते माने नह राजा मोबादि का समन हो बन कि सर्वसाधारण कुञ्ज न कुञ्ज संस्कृत ही पाने वात के । टीकाकार ने स्वरबिड बहिर्वाएँ भी च्छी च्छी समावेशित की हैं, रमान २ में अनेक भाषा भी बरसाना है नहां वहां अक्षरार भी दिखलाना है और ऐसे रमानों में उन अक्षरार्थों का सङ्ग्रह भी लिखा है । ये बातें उचम हैं । अठिन बातों को स्पष्ट करना ही टीका का मुख्य धर्मिप्राय होगा चाहिये । टीका बहुत सरल और सर्वबोधम है । इस टीका को लोग पसन् भी करत हैं । यदि संस्कृत प्रमायों का कुछ आशय भी लिख दिया गया होता एवम् अनावरक्य बातें च्छा की गई होती तो यह टीका और भी उपयोगी हो जाती ।

संक्षोपनी टीका—  
 यन्मातय से स १२४४ (१८६१) में प्रकाशित हुई थी और १८९१ ई तक इस की बारह आवृत्तियाँ हो गई ।

इस में मंगलाचरण के परन्तर कई एक सुत्र् बातें लिख कर गोस्वामी जी का पदबद्ध जीवन बरिन दिया गया है । फिर रामायणमाहात्म्य तथा तिलक सहित रामायण अणुशुद्धयः भारतीय मन्त्र रामचन्द्र के अनुपरा बर्न बनवास का विवरित और रामायण कोप है । पदबद्ध जीवनचरित निरवय रीतिविधि भीम-महाराज एतुरावदिह ईवम् इत मन्त्रमाहा राम रसिकानली से अविच्छन्न उद्वह किया गया है । पवित्रतमी महाराज को च्छी पर नह सिप्लसी कर देनी चाहिये थी । ऐसा नही करना बहुत अशुभित और महा दोष है ।

नह तिलक केसा है एवम् इस में अधीन २ बियन समावेशित हुए हैं नह वात हम स्वमूर् टीकाकार के ही शब्दों में पाठकों को सुना देते हैं । "इस रामायण के तिलक में वेदशास्त्र का अर्थ जो आशय आता है नह सम्प्रदाय अस्तुत वाक्य लिख कर लिखा है और अनेक शोपाई का तिलक उस के नीचे ही लिखा है—अनेक शोपाई का अक्षरार्थ और नहां भावार्थ की आवरणरूपता देखी है नहां भावार्थ भी लिख दिया है—अतने रामों के नाम या चरितों के संकेत रामायण में आये हैं उन के इतिहास इस अर्थ में बर्णन किये हैं और अम्पूर्ण अर्थक्य का जो कि वाक्यमीचीन आदि रामायणों में विद्यमान है, इस में नहां बर्णित जाना है नहां भिन्नित थी है । नह प्रथमावृत्ति की मूर्धिका में लिखा है । दूसरी आवृत्ति में आने रामायणपरम्परा, रामकृतेशा महासंछर बहिष्करी का लेख रामों का इतिहास च्छना जानकी जी का महाभीरवी से परवाचाप रावस की समा में विचार पूमासादि का मरण मेफनाह की शक्ति और मुखोचना

मिलने की क्या तथा लवणुशकाण्ड, माहात्म्य की शोभा कोय, रामशलाका प्ररत सगारवृष्ट महावीर की समग्र मूर्ति मिला कर 'इस की शोभा हुजुनी बढ़ा दी है । पंडितजी ने लिखा है कि 'इस रामायण के पाठक महाशयो न हमारे पास बहुत स प्रशंसापत्र भेजे हैं । पंचमी आशुति में 'दो बार क्या वास्मीकीय से निवास कर मिला दी है ।' एवम् वगी में 'कह राज का भरत-शत्रुघ्न को घर से जाने आर घरमुख वैनु का उन के हाथ से बप करान की क्या अधिक है ।'

पाण्डुरन्द समझ गये होंगे कि पंडित जी का धुपक पर चिना अनुराम है । प्रथ में धेनक मरने से आप की मूर्ति ही नहीं होती । अब नई आशुति हुई कि आप म दस पंच धेनक की क्यार् पदबद्ध कर क गोमार् जी की ललित रचना में पुसेइकर पाठम्बर पर मूत्र की बछिया छी बना दी आर अपने ज्ञानठ उस की हुजुनी शोभा बढ़ा दी । पंडित जी चाहे जसा समझें; उन के पर चाहे प्रशंसापत्रों की टपी लग गई हो धेनकानुरागी चाहे उन से भिन्नता प्रसन्न रहत हों एवम् प्रकाशक की कोय इति करत हों परन्तु धेनको की लमी भरमार से कासागतर में मूत्र मंत्र की क्या बुर्भुति होगी! वह मनोहर बुभुमित तथा महामपुर गरसकल से पूरित मुन्दर ओहावन प्रणयण धेनको की अनिबिग्नूत बैर लताओं से आशुतिदिन होते २ क्या एक दिन आना सहजकींश्य हो न बटगा ? क्या हमारे अगरेओ पत्रे पाठको को यह बात दखिइर होगी कि शम्भुदियर तथा अग्यान्य कवियों की रचनाओं में नहीं कही ललितामिक का पामिक क्या का मकितिक निम्नान हुआ है कहा पर या अग्यान्य रचानों ही में, कोई दिव्यगीकार (note writer) उमका पणबद्ध सदिम्बर बगुन कर क उसे मन्धन्य में समावेशित कर दे । परन्तु धेनकानुरागियों को इस से क्या ! पाद मून प्रय का भीदय्य विन्द हो चाहे कुछ हो परन्तु गैरों में धेनकवृत्त रामायण का प्रचार कर आना कायगचन करन में श्रुति नहीं होनी चाहिय । हम भी निर्भीकमात्र से कह सकत हैं कि बुद्धिमान पाठक शक्य रामायणानुरागी श्रेय धरक न इस प्रचार का अनुराम करारि नहीं रगत ।

पंडित जी उसे कविगानि को नहीं नहीं पुटनाट में दल गये हैं मनि से धरतों को भी कोइ अन्य रचान प्रशान करतें तो उन का काम भी हाता और 'मानव की शोभा भी नहीं बिगड़नी ।

धुपक की बात दूर रखन पर निरक निम्नरह बहुत मुन्दर शक्य मुग्म कीर उदासी हुआ है । रामायण क नये पुरान मर पाठको को मबनुन उचार पदु वा मरना है । इसा से प्रामाणिक तथा प्रनिष्ठि टीकाओं में इन की गणना हागी है ।

मय प्रचार क अनुष्ठी के निने मुग्म बनान क कविशय स आप में करनी शोभा का पाठे टाप में गुटका क आकार में भी प्रकाशित कराना है उस में पाण्डु जी का जीवन कवि रामायण मारम्भादि दिना गया है ।

"मानव भाव प्रकाश" — विराग सन्ददान क एक मुग्म रामायण भीकामर गुर दरबार के प्रणयकर्ता मर्ये भाई शशी मन्त मिह १ जी ने इस टीका की रचना की है ।

१. इनका मीथिस जीपनवृत्ताण भी उमी टीका में लिखा हुआ है ।

बने सोहाने अत्यन्त सुन्दर इत्यादि मंगाने । नहीं मालूम, टीकाकार मोबा इरताना कमर्टर शिरवानी फ्रेट, पतलून, धंभी इत्यादि मंगाना कनी मूल फने १ आर देखिये—  
 “नीच टहल यह कै सब करिहो । अर्पात् कुस्ता दग्नि करारना उबटन लयावना, स्नान करारना भयस्य बसम पहिरावना रंघ स्नावना विज्ञीना विज्ञावना पंघ फशोटना इत्यादि नीच टहल ।” वे सब लिखना निम्नयोगनीय वा । इन सब बातों का कि— १२ १४ वर्ष का बालक भी जान सकता है इतना विस्तार करना और शास्त्र तथा पौराण्य के वाक्यों को उद्धृत कर बगला मापा में छारांछ भी नहीं जानना यही टीका की परिपाटी निकाली गई है । इन्हीं महाराज को हम नहीं कहते । प्रायः सभी लोग संस्कृत का पाठिजन विद्वत्ताने को आर्य प्रभों के वाक्य तो उल्लेखित कर देते हैं परन्तु पाठक को उसका सारांश भी नहीं बताते मानो वह रामा मोक्षि का समक हो जब कि सर्वसाधारण कुल न कुल संस्कृत ही पाने जाते थे ।

टीकाकार ने स्वरचित कविताएँ भी कहीं कहीं समावेशित की हैं— स्नान २ में अनेक भाव भी बरसाना है जहाँ तहाँ अलङ्कार भी दिखताया है और ऐसे स्वानों में उन अलङ्कारों का लक्ष्यदि भी लिखा है । ये बातें उत्तम हैं । अठिन बातों की स्पष्ट करना ही टीका का मुख्य कामिप्राय होना चाहिये । टीका बहुत सरल और सर्वबोधगम है । इस टीका को खेग पद्य भी करते हैं । यदि संस्कृत प्रमाणों का कुल आश्रम भी लिख दिया गया होता पद्य अनावश्यक बातें फटा ही गई होती तो वह टीका और भी उपयोगी हो जाती ।

सखीवनी टीका—यं आकाशप्रसाह मिष इत वह टीका प्रथम बार भी बेंकयेश्वर बालक्य से स १२४० (१=२१ ई ) में प्रकाशित हुई थी और १२१३ ई तक इस की बाह्य आवृत्तियाँ हो गई ।

इस में मंगलाचरण्य के अन्तर कई एक सुगु बातें लिख कर गोस्वामी जी का पयबद्ध जीवन परिच दिया गया है । फिर रामायणमाहात्म्य एवं तिसक सहित रामायण लघुपुराणय आरती भवन रामचन्द्र के अद्दश वर्ष वनवास का विविरण और रामायण कोष है । पयबद्ध जीवनपरिच निरुचय रीवापिय भीमम्माहाएज खुराकसिंह वैष्णू इत भक्तमाहा राम रसिकावली से अकिण्ड उद्धृत किया गया है । परिश्रुती महाएज को कहीं पर वह लिप्ययी कर बेनी चाहिये थी । ऐसा नहीं करना बहुत अनुचित और महा शेष है ।

वह तिसक कैसा है एवम् इस में कौन २ विषय समावेशित हुए हैं यह बात हम स्वयम् टीकाकार के ही शर्षों में पाठकों को सुना देते हैं । “इस रामायण के तिसक में वेवशास्त्र का अर्ध जो आशय आया है वह सप्रमाण संस्कृत वाक्य लिख कर लिखा है और अनेक बीपाई का तिसक उस के नीचे ही लिखा है—अनेक बीपाई का अन्वयार्थ और अर्धो भावार्थ की आचरण्यना बेची है वहाँ भाषण भी लिख दिया है—अठिन रामों के नाम वा चरित्रों के संकेत रामायण में आये हैं उन के इतिहास इस ग्रन्थ में वर्णन किये हैं और सम्पूर्ण खेक कथा जो कि वाक्यनीय आदि रामायणों में विद्यमान है, इस में जहाँ उचित जाना है वहाँ मिथित की है ।” यह प्रबन्धावृत्ति भी सूचिका में लिखा है । दूसरी आवृत्ति में आने रावणवाकाङ्गुरम्नाय, रामकण्ठेवा महासंक्षय बरिष्कनी का उरह रामों का इतिहास अहना जानकी जी का महावीरकी से परवाचाप रावण की समा में विचार, पूसाधादि का मरख भेवनाद की शक्ति और दुसोचन

मिलने की कथा तथा सबकुछकापड, माहात्म्य की टीका, कोप, रामरक्षाका प्रथम, सप्ताहप महाबीर की समग्र मूर्ति मिला कर 'इस की शोभा दुगुनी बढ़ा दी है'। पंडितजी ने लिखा है कि 'इस रामायण क पाठक महाराजों ने हमारे पास बहुत से प्रशंसापत्र भेजे हैं। पंचवीं आहुति में 'दो बार कथा वास्तीश्रीय से निकाल कर मिला दी है।' एवम् बड़ी में 'कह रात्र का भरत-शत्रुघ्न को घर से जाने और खरमुख केतु का जन के हाथ से बच कराने की कथा अचिंत है।

पद्मदत्त समझ मये होंगे कि पंडित जी का उपक पर कितना अनुराग है। प्रथ में खेचक मरने से आप की मूर्ति ही नहीं होती। अब नई आहुति हुई कि आप ने इस पंच खेचक की कथाएँ पदबद्ध कर क गोमाई जी की ललित रचना में सुतेकर पाठम्बर पर मूक की बखिया सी बला दी बार अपन जानते 'उस की दुगुनी शोभा बढ़ा दी। पंडित जी चाहे जैसा समझें; उन क घर चाहे प्रशंसापत्रों की टरी लग गई हो, खेचकानुरागी चाहे उन से कितना प्रसन्न रहते हों एवम् प्रकारक की कोप हृदि करते हों परन्तु खेचकों की ऐसी भरमार से काहागतर में मूल ग्रंथ की क्या दुर्भिति होगी? वह मनोहर कुसुमित तथा महामपुर सरसच्छल से पूरित सुन्दर सोहावन प्रायश्चर खेचकों की अतिविरतून बँबर लताओं से आच्छादित होते २ क्या एक दिन करना सहृदसीदर्श्यों को न बठया। क्या हमारे अंगरेजी पठे पाठकों को यह बात खिचकर होगी कि शकसुधियर तथा अश्वान्य कविनों की रचनाओं में जहाँ कहीं एतिहासिक वा पार्थिक कथा का संचिदिक निदशन हुआ है वहाँ पर या अश्वान्य रचनाओं ही में, कोई टिप्पणीकार (note writer) उमका पदबद्ध छविस्तर बगल कर के उस मूलग्रन्थ में समावेशित कर रे! परन्तु खेचकानुरागियों को इस से क्या? चाहे मूल ग्रन्थ का और्द्व्य किनय हो चाहे कुल हो परन्तु यँहारों में खेचकपूर्ण रामायण का प्रचार कर अश्वान्य कार्यशासन करने में कृति नहीं हानी चाहिये। हम भी निभीकभाव से कह सचन है कि कुदिमान पाठक, सचन रामायणानुरागी लोप खेचक पर इस प्रकार का अनुराग करारि नहीं रखत।

पंडित जी जैसे कविनादि को जहाँ जहाँ पुटनोट में बल गये हैं यदि वे खेचकों को भी कोई अन्य स्थान प्रदान करत तो उन का काम भी होता और 'मानस' की शोभा भी नहीं बिगड़ती।

पुनक की बात दूर रखन पर तिलक निस्कांड पदुन सुन्दर सरल सुगन और उरयागी हुआ है। रामादत्त क मने पुरान तब पाण्डों को सपनुष उच्छर पडु या सचता है। इन्ही से प्रामाणिक तथा प्रतिष्ठित टीकाओं में इस की गरुता शानी है।

सब प्रकार के मनुष्यों के निर सुप्रम बनान क अविशय स आप ने कानी टीका को छोटे टाप में सुदवा क आक्षर में भी प्रकाशित कराया है उस में गोमाई जी का जीवन चरित्र रामादत्त मारम्भादि दिया गया है।

"मानस भाग प्रकारा" — विवतत अण्दाय के एक सुदधामरदान भीष्मदत्तर गुर दरवार के प्रकपणों मईय भाई शानी सन्त विह १ की न इस टीका की रचना की है।

१ इनका संचित जीवनवृत्तांत भी अभी टीका में दिया हुआ है।

वेम शुक्ल भीमी सम्मत १८७२ (१८१८ ई) में इस का लिखना आरम्भ हुआ था। सम्मत होने पर श्री पंडित खुनाथदास जी के द्वारा मानस के परम प्रेमी साधुजी श्रीमहाराजा उदित नारायण सिंहजी की सेवा में कारी मेची गयी थी। वहाँ आरमास पर्यन्त राखयमा में इस का पाठ हुआ और सबों ने इस लिखक की बड़ी प्रशंसा की।

यह टीका उत्तम है। आबरवकटा से अधिक इस में कहीं कुछ नहीं लिखा गया है। कहीं १ बार २ कः २ पदों का अर्थ एक ही पंक्तियों में लिखा है और कहीं २ एक ही दोहा वा चौपाई के माशार्थ इत्यादि से पूछ कर पूछ मूयिग है। अर्थ सहज और सुन्दर है। भावों की बिलहसता पाठक को मनोमुग्ध कर देती है। इस विषय में इन से उद्धर लगाने वाला कदाचित् कोई विरथा ही टीकाकार इष्टियेत्तर होगा। जहाँ तहाँ ग्रंथ प्रत्य साहज और शास्त्रपुराणादि के वाक्य भी अर्थ सहित उल्लेखित होते गये हैं। टीकाकार कहीं २ पाठान्तर भी दिखलाते गये हैं और कथा बरनक शंका समाधान भी करते गये हैं। आपने मानुप्रताप की कथा को खेत्क माना है। टीका में पंचाशी भाषा की पूरी मूलक दिखलाई देती है। इस में बाबू राम शीन सिंह जी तथा बाबू महाशय प्रसाद जी की टिप्पणियों भी यथोचित स्थानों में समावेशित हुई हैं। टिप्पणियों में 'मानस प्रचारिका तथा मु० रोमशास की टीकाओं से बहुत सी बातें ली गई हैं।

एक पञ्चाशदशक का कित्त देश में आज भी हिन्दी भाषा का इतना प्रचार नहीं है, उस समय जब कि उस प्रान्त में सर्वदा लड़ाई मिहार्द की घटनाएँ देखी जाती थीं और जब आज क समाज समाज की टीकाएँ और संस्कारों की मरमार भी न थी तब से उन्हें कित्ती प्रचार की सहायता की सम्मानना होती पेशा सुन्दर सर्वबोधयम और साज ही सा-न गूढाशनों से सम्पन्न लिखक बनाना उन की शिद्धता तथा बोधता का पूरा परिकर बता है।

बाबू रामदीप सिंह ने श्री १ न बाबा सुमेर सिंह साहज साहजबादे महेश्वर श्री हरिमन्दिर प्रना की सहायता से इस की एक प्रति हिन्दी में तयार करा कर एप्र १८२८ ई० में निज जंगल में मुद्रित कर लोगों को इस के इस्तगत होने का सुखबसर दिना है। इस टीका के सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध व्यास कवि ने यह कविता की है —

“श्री तुलसी जन कीह रसायन हैं सुखदाइन अद्यपि ही का ।  
 तद्यपि बाल औ सुन्दर लुभान के लायक हीं न दिख्वा इक टीका ॥  
 हाँ मिसरी के कुमा सम ग्वाह सो संत मिहै हैं कर्यो रस नीका ।  
 मछ विलासिनी प्रेम प्रकासिनी भासनी माव विलासिनी टीका ॥”  
 और पूर्णक बाबा सुमेर सिंह जी ने कहा है —

“मानस मज्जु मराक्षन के हित मुक्त की खान प्रमान प्रमासिनी ।  
 त्यों सुमेरेस सिषावर के शुन प्रन्धन की मनिमाल विकासिनी ॥  
 संतमिरोमनि संतमृगेस (सिंह) की टीका बन्यु ब्यज्ञान प्रनासिनी ।  
 नीतिनिवासिनी प्रीतविलासिनी मच्छिहृतासिमी मावप्रकासिनी ॥”

नियुक्तबारा की टीका आगरा निवासी श्री पं रामेश्वरभट्ट हन—यह टीका संवत् १६५६ में तदार हुई और उसी साल बम्बई के निष्ठादमागल्वंशालय में प्रकाशित हुई। इस टीका की रचना के सम्बन्ध में टीकाकार न लिखा है:—

“रामचरित्र महात्म यह, मादर मन्तन लेहू।  
 सुलामीदास प्रमन्न है, मा पर करहु मनहु ॥  
 गुगामंडित गोधुक्तपुरा, अकथरनगर मफार।  
 पंडित घालमुकुन्द पर, तहं द्विज युज अवनार ॥  
 तिन फे तनय यिवारि मे, रामदया मनिमन्द।  
 रामकथा माहात्म्य यह, पूरन आदम्बकन्द ॥  
 मम्यत मृतु मर रम मही, माम अमादृहि पाय।  
 मित मानै पूरन कर्यौ, रामचरन धित जाय ॥”

इस पुस्तक के आदि में भूमिका गोसाईं जी की श्रीपत्नी रामश्यामाश्रम प्रमानी सार्वभौमी रामायण प्रसंगा की कविता रामायण माहात्म्य कार एक श्लोकी रामायण ६ पर एक टीका प्रारम्भ की गई है। तदनन्तर लखनऊ के श्रीगणेश के पत्रकार का निधिपत्र बरामगद्दीमिनी हनुमान खानीया गृण्य चिन्तामणि रूप में गये हैं। फिर संय गमासि में टीकाकार ने आत्म परिचय लिखा है। टीकाकार और उल्लेख है। कानों अर्थ बनाए नहो गई हैं। मूल के अन्वय या भावार्थ टीका के अतिरिक्त जो जो अर्थ बाने ही ग दिये गए दिवानी द्वारा प्रस्तुत की गई हैं। यह अस्वाभाविक है। अर्थ टीकाओं के भाग संस्कृत अर्थों के बारे बावय ही स्याथरक उद्धृत नहीं किये गये हैं बल्कि अर्थों का अर्थ भी भाष्य के दिवा गया है। दिवानी में ऐतिहासिक तथा पाठानुक्त अर्थों भी प्रसंगानुगत अर्थ की गई हैं। जहां जहां अर्थकार भी प्रस्तुत कर दिवा गया है और वहीं २ भाग समायान भी है। टीका निगी भी अन्वी रीति में गई है और अर्थ मनाहर देग म ली भी है। अर्थ म देगन बाकों को सब आर करने की उपाय दानी है।

टीका में उल्लेख और लखनऊ भी है। मय है। इस की समालोचना हम ने अन्वय की है। इस कविता में पुनरुक्ति की वृत्त अस्वाभाविक मरी। यदि अर्थकार पर भी दिवानी ही में या जहो अन्वय इस भाग का अन्वी अर्थ होय और यह टीका एक प्रकाश के मरवा लोपहित हो गली।

१६९ ई में इस की पाठों अन्वि हुई है।

'मानसमयक'—यं शिवद्वारा पाठक १ विरचित। यह भी 'रामचरित मानस' का एक प्रकार का सन्दर्भ तिलक है। परन्तु उस का साक्ष्यपात्र तिलक नहीं है। उस के मुख्य १ पदों का कहीं मात्र कहीं सन्दर्भ कहीं धुमि और कहीं अभिप्राय यथावरयक कथन कर के मन्त्रित तत्त्व इस में प्रतिपादन किया गया है। त्रिन पदों का तिलक पं किशोरीदासदास 'मानस सुबोधिनी श्री योगीन्द्रसम्पन्नत कृत 'मानसचक्रकोशिनी एवम् भी रामप्रसादजी कृत 'मानसरसविहारिणी' में लिखा गया है उन पर आज श्रद्धा कर तिलक नहीं किया गया है।

इस 'मानस मयक के टीकाकार बाबू इन्द्रदेव नारायण भी लिखते हैं कि 'मानस मयक श्रीराम चरित मानस का सारतत्त्व प्रकाश है। इस की विमल चन्द्रिका में रामचरितमानस यथार्थ वर्णित होता है। यह अलङ्कार मयक तत्त्वदर्शी को रामतत्त्व सुभाषण कराने हृदय पुष्ट करता है।——— जैसे रामचरितमानस मन्त्रों का परम श्रिय है वैसे ही यह मयक मन्त्रों को परम श्रिय है। इस मयक की परम सांकेतिक स्तम्भ रचना है।

यद्यपि 'रामचरित मानस' के गूढ़ तत्त्वों का यह एक प्रकार का तिलक है और उस के तत्त्वों के प्रकाश के हेतु इस की एक रचना हुई है तथापि सहज सरल सर्वाभिम और सर्वाहित कर 'रामचरितमानस' की अपेक्षा इस की रचना महाकल्पित हुई है। तिलक और मूल से भी कठिन ! इस का यथार्थ कारण और अभिप्राय सर्वज्ञकार ही जानें। हाँ ! मयक के तिलककार का अनुमान है कि "इस महान का अधिकारी सब को न समझ कर के ऐसा कठिन किना कि मन्त्र हाथ में रहते भी अनधिकारी की बुद्धि शिक्षा बल की नार्थ भेद न करे। हमारे सुयोग किञ्च पाठक इस विचार से केवल जगतोपकार विचारों नह धरि लोग विचारों। मूल रामचरितमानस के रचयिता को अधिकारी तथा अनधिकारी का विचार कदाचित् नहीं था अतएव उन्होंने ने अपनी पुस्तक को 'सरल ज्ञानोपकारी बनाना और उस के तत्त्व प्रकाशक तिलककार मयक के रचयिता ने अपनी रचना को सरल तर बनाने के बड़े अधिकारी अनधिकारी के विचार से तिलक रची ऐसा मयक उद्यम किना कि उस की विमल चन्द्रिका के रहते साधारण अधिकारी भी 'रामचरित मानस' के तत्त्वों की सुन्दर सक्ति क्षति अनहोचन से बंजित ही रहते यदि मयक के तिलककार द्वारापूर्वक उस की सरल बार्तिक टीका कर के जगत का यथार्थ उपकार नहीं करते।

यह मानस मयक १२ ४ ई में बाबूपुर का-विलास यन्त्रालय से सुन्दर पुष्ट अक्षरों में मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ है और निस्तन्वैह आनन्ददासक तथा सत्यनरक प्रथ होने के कारण देखने योग्य है। बार्तिक तिलक की सहायता से एवम् विहित बुद्धि को प्रकाशित करने से अब इस के समझने में भी उलझी कठिनाई नहीं होगी।

अब 'मानस मयक की कुछ टीका का समूचा देखिये —

'अम कस कहहु मानि मन ऊना। सुख सोहाग सुम क्यँ दिन वृना।'

अर्थ—साथ दिन में दो दिन नहीं अर्थात् पाँचही दिन सोहाग रहेगा।

'पूछेऊँ गुनिन्ह देख तिन्ह साँधी। मरत मुझासत होंहि यह साँधी॥'

१ इन्होंने मानस 'अभिप्राय दीपक' और वाङ्मयीक शमाचय पर 'माध्यरात' नामक संस्कृत भाष्य भी लिखा है।





कन्नोगत अस्तकारों का भी उल्लेख कर दिया है। वही इस की विरोधता है और कुछ नहीं।

हा टीकाकार ने यह दावा किया है कि इस टीका के लिखन में हम ने कवि के उद्देश्यनुसार ही कथन करने की श्रम की है। यह कथन कहाँ तक ठीक हो सकता है उसे पाठक हृदय स्वयं विचार करेंगे। हम तो वही कहेंगे कि कोई टीकाकार मूल अक्षर के भावों तक पूणरु से नहीं पहुँच सकता। इसी से कहा है कि 'तसनीक रामो सच्चिद नीचे कुनए र्मा।' अर्थात् किसी रचना के रचयिता ही सुन्दर रीति से व्याख्या कर सकता है।

मानस प्रियूप—प्रकाशक बाबू सम्मन खाल भी ए० एल एल बी। यह बालकण्ड के १० से २० दोहे तक की टीका है। इस में भावार्थ संक्षेपनामान टिप्पणी आदि बहुत कथनी खूब ही पुष्टी की गई है। इसमें बहुत ज्ञानवीम की गड़ है। सम्भवतः आगे इसके और भी भाग प्रकाशित हों।

मानस-मंजूषा—(बालकण्ड, प्रथम भाग)—लेखक शोभाराम मेमुदेवक। इसमें आदि कण्ड की रचना की कृषियाँ विस्तारपूर्वक हैं। कवि के गूढ भावों का रहस्योद्घाटन कवितागत रसों का विश्लेषण तथा उदाहरणों के साथ अस्तकारों का वर्गीकरण करने में लेखक ने मुक्ति और परिभ्रम से काम लिया है। बहुत सी संज्ञाओं का समाधान भी किया है। बहुत सी अर्थ की संज्ञाएँ हैं। जिन लोगों ने मानस राखणली मानसर्षण आदि पुस्तकें देखी हैं उन के लिये इस में कुछ विरोध नवीनता नहीं है।

कविता की भाषा में अन्य भाषाओं के शब्द भी बड़े निकाले गये हैं। अरबी और फारसी के ही नहीं अंगरेजी के शब्द भी दिखताये गये हैं। यथा 'फतन्ति जो भवार्थि' में जो No और 'वर्षि अक्षर मूमि भिबराए' में Near आए = निकल आकर। इन शब्दों के निकालने में टीकाकार को यह बात न सुझे कि मोसाई की क समय न भारत में अंगरेजों का ऐसा मरमार ही था और न इस देश में अंगरेजी का ऐसा प्रचार। तब सर्वसाधारण के मुँह में और सन्त कवियों की रचनाओं में यह भाषा के शब्द कैसे और कहाँ से आकर चुसत।

तुलसी-सूक्ति-सुधाकर-माध्य—लेखक तथा प्रकाशक पं बाबू राम शुक्ल। इसमें आपने—

“सब कर मत सग नायक पूजा।

करिय राम-पद-पंकज नेहा ॥”

का १९०२, १९०६ अर्थ किया है। उसमें विस्तार से सूक्ति २१२ और संक्षेप से १९०४ १९११ हैं। पद्यतापी का परिष्कृत संस्करण ही सकता है। पर इस अर्थ विस्तार की अपयोगिता में संशय ही नहीं है। वरन् यह सर्वथा अर्थ कहा जायगा। इस के अर्थात् एता अर्थ में ही बीपाई का गौरव है।

गन्धर्व्य माण्य—बहुगर्वा पित्रा राम बरठी (अवय) क पं० राधेन्द्र दा सुम्न  
 द्य क लेखक हैं। किष्किन्मा का पर यह टीका लिखी गई है। भाग्य शरत् श्रीर विचार मुक्ति-  
 मुक्त तथा उपासन है। दृष्ट समय २६ है। इसी शीर्ष की बाघेश्वर क बाघ विद्याय देव शाय  
 प्रकाशित टीका २६६ पृष्ठों का है।

पालकीर्ण का नया जन्म—उत्कृष्ट बाघ स्थान प्राप्त। ज्ञान से अरहित शीर्ष  
 प्रकाशित करने का धन दिया है। यह गा अष्टमी बाग है। परंतु ज्ञान न सिखा दे कि प्रकाशित  
 से श्रेष्ठ क विचार बहुत सा एसा विषय है वा गोशरी जी का सिद्धा माना ना बाधा है पर  
 अज्ञान में है नहीं। रामानन्द क उक्ति और सुभाषण भगवा बाघेश्वर की उक्त में सुलभीभाव  
 इन नहीं हैं। ए/को क साक ज्ञान क उन्मत्त में मुक्ति उक्ति को मुक्ति-मुक्ति ज्ञान न मूल और  
 शाखाओं पर बसाई है। बाघि का प्रयोग तथा वह एक श्रेष्ठ मोक्ष कर देकर दिय गये हैं।

ज्ञान क पूर प्राप्ति मु० सुखरथ प्राप्त की न भी ज्ञान संस्कार में बाध २ बीषाईकी  
 रत्न कर बहुत सी का शक्ति कर सी है। किन्तु उन्हें भी कुलपारी क प्रकरण पर कदम-बुद्धार  
 बहान का साहस नहीं हुआ है। प्रभुन उक्त विवागनुसार सब प्रथम वही श्रेष्ठ सिद्धा था।  
 और उक्त कवन क समर्थन में उन्हींने मो श्रेष्ठ प्रभुन का है। मुक्ति वत्त स ज्ञान को इतनी  
 और इतनी को ज्ञान मनुष्य को पनु सिद्ध किया जा सकता है। तो क्या मनुष्य नहीं यथाथ  
 समझ बायगा। हम उक्त विज्ञान रामानन्द ज्ञानय चाहते हैं पर लक्ष्मण शून्य नहीं  
 चाहते। इस वत्त में बहुत-सा लोग हमारे साथ सहनत है। काशी नाम्नी प्रचारिणी समा की  
 दृष्टि में भी यह प्रामाणिक नहीं है।

रामानन्द तथा अन्यार्थ एतनाओं की टीका टिप्पण के विचार आशुत पोसाइकी के  
 महत्त्व प्रस्थान में सब एक शक्तिधर्मों में ज्ञान लक्ष निरूपण कार्य है। और ज्ञान की सुन्दर  
 सुकृष्ण पद्यों क उक्त प्रस्तुत करता है ता और मनोरञ्जक उपायों और श्रेष्ठों का पुनस्त  
 पेश करता है। यह ज्ञान क सुखरथों को सुनाता है और और ज्ञान की रचनाओं क पात्र शाय  
 प्रथम सब सिद्धाओं की बातें करता है। एवम् और और क अनाशरीनि आदि के सिद्धांतों की  
 आलोचना प्रकाशना कर ज्ञानम् अत्रुमत्र करता है। और भी विविध दृष्टिकोण से लोग  
 इसे देखते हैं। यह गोस्वामीजी और वन के प्रयोगों का अनाशरीना की दृष्टि से कवनवाले का  
 के सुखरथों तथा विशुद्धों का का सं है। इन सब वचनों और विचारों स ज्ञान-ज्ञान-श्रीरत्न,  
 अरहित वाचन का अर्थ वत्त और उक्त की परम महत्ता पूर्ण रूपेण प्रतिपादन होती है।

## षोडश परिच्छेद

### कवित्त रामायण या कवित्तावली

इस प्रश्न के उत्तर काण्ड में नीचे लिखी हुई एक कविता है —

“एक तो कराल कलिकाल सुखमूल तामें कोढ़ में की पाशु सी सनीचरी है  
मीन की। कल्पमं वृ गये मूप खोर ” मूप मप साधु सिद्ध मान अन विय पाप  
पीन की ॥ वृखरे को वृखरो न द्वार राम दयाधाम राखोई गति वल विभव-विहीन  
की। क्षागैगी पै क्षाज या विराजमान विखड़ी महाराज आशु जो न पैत दाव दीन  
की ॥” (नं० १७१)

अर्थात् एक तो दुःखदायक काल कल्पना प्रबल प्रभाव देखाही रहा है वृखरे मीनराजि  
के शनीचर होने से और भी उत्पात की इच्छा हो रही है। इत्यादि।

महामहोपाध्याय पं सुधाकर द्विवेदी जी ने सूर्यसिद्धान्त के अनुसार गणना करके  
प्रियर्सन साहब को बतलाया है कि जोस्वामी जी के समय दो बार मीन के शनीचर हुए थे।  
एक बार २ छरी बैत स १६४ (= १२०३ ई०) से ज्येष्ठ सं १६४२ (= १२०३ ई )  
तक और दूसरी बार २ छरी बैत स १६६६ (= १६१२ ई ) से ज्येष्ठ सं १६७१  
(= १६१४ ई०) तक। संवत् सारिकपति में तीन बीसियां होती हैं अर्थात् ब्रह्मबीसी  
विष्णुबीसी तथा शनीसी। शनीसी सं १६३४ (= १२३० ई०) में आरम्भ हुई और बन रस  
में सुखसुमानों का अधिष्ठार उत्पात जहांगीर बादशाह के समय अर्थात् १६०३ ई० के कुछ काल  
पीछे आरम्भ हुआ। इस से लोगों का अनुमान है कि इस ग्रन्थ की रचना सं० १६६६-७१  
(= १६१२-१६१४ ई ) के मीतर वृखरे बार मीन के शनीचर होने के समय हुई।

पूर्वोक्त कविता एवम् अन्य कविताएँ जो इस प्रकार के उत्पातों के बख्त में हैं १६१२-  
१६१४ ई के मीतर की बनी कही जा सकती हैं परन्तु ऊपर के अनुमान के आधार पर  
समुच्चय प्रश्न की रचना १६१२-१४ ई० के मध्य माननी निरन्तर्य मूल होगी। इस समय की  
सह कविताएँ किसी विशेष समय में कर्नात नहीं बनाई गईं। मग में जब जैसा उर्ध्व बढता गया

१ परिशाहवर्दी बादशाह के बंद करमे से मूरखोर का कल्प श्रीरंगजेव पर है  
जैसा कि काला ना प्र समा द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है तो इस कवित्त  
को अक्षर्य चेषक मानना पड़ेगा। परन्तु रीत्राकारों ने मूप खोर का कुछ अन्य अल्प अर्थ  
लिखा है। श्रीरंगजेव गोसाईं जी से पकृत पीछे बादशाह हुये।

गोसाईं जी कविता करते गये और पीछे वे सब पुस्तकालय में संग्रहीत हुईं जाईं उन्हें स्वयम् गोसाईं जी संग्रह किये हों जाये उन के किसी प्रेमी ने संग्रह किया हो ।

इस ग्रन्थ कालदास के कवित्त नं २ तथा उत्तर काण्ड के कवित्त नं १२७ में गोस्वामी जी का नाम नहीं है, बरन 'रूप' का नाम है । कोइ २ कहत हैं कि गोस्वामी जी के यही रूप शिष्य न इन के स्वयंदास के अनन्तर इन की कविता संग्रह कर कवितावली गीतावली बोधावली नाम रखा है और उमी स छिद्र पण्डित रामगुनाम जी तथा प शुकलजी म उक्त पत्र कर काम लगाया है ।

गोस्वामीजी ने कोई ग्रन्थ प्रणयन के अन्तिमप्रय स इन कवित्तों की रचना नहीं की । इस का एक प्रमाण यह भी है कि कई एक कविताएं संग्रह में बिन प्रकरणों में रखी गई हैं उन प्रकरणों से पूरा सम्बन्ध नहीं रखती बरन सांकेतिक सम्बन्ध रखती हैं और बिना प्रकरणविरोध के वे दूसरे स्थानों में भी रखी जा सकती हैं । पद्यतन्त्री तन्त्री भी है जिन्हें इन बरन अनुमानकी की स्तुति मानें तो कोई शक्ति नहीं हो सकती । इसी स संग्रहकता न शिष्य कवित्तों का किसी विशेष काण्ड से कुछ भी सम्बन्ध बचा है उन्हें काण्ड में सनादेशित किया है और शय कवित्तों को उत्तरकाण्ड में रख दिया है ।

छिद्र शिष्य कविताओं में 'तुलसी' के स्थान पर रामबोना लिखा है य तो अक्षरम इन के तुलसीदास होन के पूर्व ही रची यकी होगी शिष्य से यह भी अनुमान किया जा सकता है कि य विरक्त होन के पूर्व भी कविता किया करत थे ।

भार खेमचंदी बापू कविता यह कि इन्हों न मृत्यु के समय गंगातट पर एक वीर को बेल कर बनाई की शैला कि बहुत से लोग मान रहे हैं १ अर यह कवित्त भी इस ग्रन्थ में रखा गया है तब यह उभे हो सकता है कि अनुभव कवितावली की रचना सं० १९६२—२१ के ग्रन्थ में हुई ।

इस में बहुत सी कविताएं समस्यावृत्ति के बरु की हैं यथा —

“अप्ययम क वातक भार सदा तुलसी मनमन्त्रि मं दिहैं ।”

“होइ मले को मलोइ मसाइ ।”

“गुमान गोविन्दहिं भाषन नाहीं ।”

“राजिय लोचन राम अपने तजि याप को राज यन्त्र की नाइ ॥”

छिद्र यदि गाथाइ जी पुस्तक बनान के अन्तिमप्रय से इन कवित्तों की रचना करत था शिष्य अरु और रासक के सम्वाद का इन्हों ने रामचरितमानस में लडा लम्बा बीडा तथा ललित बनाया है उसे क्या इस ग्रन्थ में लक्षा पीडा कर बंस कि लक्षाकाण्ड के २ स १९ तक के

१ 'शिबसिंह सराव' में मृत का सं० १७ ८ में शिष्य कर यही १२७वां कवित्त उनके नाम स दिया हुआ है । बरुन का उनके ठम समय प्रथमान रहने स तात्पर्य है । यह मृत का अन्तमबन्ध नहीं होगा ।

२ इस विषय में इसी परिच्छेद में आगे भी लिखा गया है ।

कवियों में तो अत्रद के मुह से रामचन्द्र का सुमरा वर्णन करात और रावण के मुह से एक अक्षर भी नहीं उच्चारण कराते केकेयी सपनबा सीताहरणादि की बातें भी नहीं लिखते । और तब उत्तरकाण्ड में मोरी उद्धव सम्बाद धीप्रह्लाद पद्मादि विषयक कविताएँ भी नहीं लिखी जाती । इस से तो पुस्तक प्रकाशन के अभिप्राय से इन कवियों की रचना हुए रहे इन्हें स्वयम् संघट्ट कर इन के पुस्तकाकार बनाने में भी सन्देह है क्योंकि गोसाईं जी ऐश नहीं थे कि कवियों को संकलित करने में अनमित्त विषयों की कविताओं को ग्रन्थ में स्थान दत्त और प्रायः क आदि में बन्दना का एक अर्थ भी नहीं रखते । अत एव अत्रद भी किसी दूसरे का किमा हुआ है चाहे वे स ग कवि हों चाहे कोई अन्य व्यक्ति ।

यह ग्रन्थ ब्रजभाषा मिथित कवित्त सबैसा घनाक्षरी भूलना तथा कर्प्य कन्दों में है एवम् वात अयोध्यादि सात काण्डों में विनवत है ।

इस के अन्त बड़े उत्तम मयुर तथा प्रभावशाली हैं । इस में प्राकृतिक वर्णन मनोहर है । इस में कवि ने मित्र की भी बहुत-सी बातें लिखी हैं । वातशीला उद्वाहनादि प्रकरण बड़ा ही उत्तम ढंग से बखान किये गये हैं ।

### कथित रामायण का विषय

वातकाण्ड—इस में २२ अर्थ हैं । १-४ तक वातशीला का विराट वर्णन है । ५-११ अद्युपमह १२-१७ विवाहानन्द १८-२२ सुगुनन्दन का आना और अना अद्युप राम को देख कर वनप्रसन्न करना है ।

इस में १०वें कवित्त को लोग खेपक बताते हैं ।

अयोध्या काण्ड—२० अर्थ । १-२ वनवासा । ३-४ कौशल्या और सुमित्रा-सम्बाद ५-१ केवट से वातपीत तथा गंगावार होना ११-२० विन्ध तक पञ्चना । २६-२७ में अत्रेद केतना लिखा है । यह वात रामायण में नहीं दखी जाती ।

“विष के वासी बदामी तपो प्रतभारो महा त्रितु नारी हुसारे ।

गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा मुनि म मुनिवृन्द सुखारे ॥

हैं हैं सिखा मय चन्दमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे ।

कीन्ह मझी रघुनायक जू करुना करि कानन को पगु घारे ॥”

यह देख कर बड़ा आश्चर्य होता है कि गोसाईं जी ने ऐसी अत्युत्तम कविता क्यों लिखी । क्या मगवान के विष पर पढ़ने से बड़ा क उदासी तपी तथा प्रतभारी को इसी बात का आनन्द होना चाहता था कि प्रभु के बड़ा पदार्थ से सब शिक्षार्थ बमनीम रमणी बम जायगी और वे लोग सब मय कारियों के चहवास का सुख लूटेंगे । या प्रभुदशन तथा प्रभुपना से अपना अन्न एकल कर अक्षय हुए सुक्ति भरित की आशा तथा कष्टा करनी उचित था । यदि रबीवियोग से ऐसी स्वाभुलता थी तो अथी तपी तथा प्रतभारी क्यों बने थे उन्हें जर ही लीज्य चाते कौन मना करता था । इस कविता के खेपक होने का हमें बड़ा सन्देह है यद्यपि बड़ा तक

हमारी जानकारी है अभी तक किसी न इसे नहीं माना है। पोसाई की एसी कविता इस व्यवहार में कभी नहीं कहेंगे।

बैजनाथ दास न लिखा है कि गोसाईं की ने हारवरस में यह कविता की है। यह पो बैरस्त की शब्दाई हुई। अगर यह हासप्रमोद किय के साथ है। रामचन्द्र के प्रति या विष्णु बायीं मुनिवों के प्रति। गोसाईंकी ऐसे बेजोड़ हंसी करनेवाले नहीं य जिस में यमनाथ की बमक शीघ्र पड़े।

अगर यदि आप न निवाद क मुह से परसे पगपूरि तरै तरनी भरनी भर कसो समुझाई हीं न कहलवाना है तो इसमें भी धम्म का लय रखा है। निपाण किसी उपाय से रामचन्द्र का पदचक्र प्रशालन करना चाहता था और तरनी क तरली होन की सम्भावना से काण्डित नहीं होता था बरन् उस से भयभीत तथा क्लिप्तचित्त ही हो रहा था।

आरययकायड—इस में एक ही छन्द पञ्चबटी की डुटी से कुरङ्ग के पीछे जाने की है।  
किटिकन्याकायड—इस में भी एक ही छन्द हनुमानकी के लडा की ओर कृप करने का है।

सुन्दरकायड—२० छन्द। २१ वें तक में हनुमानकी का लडाप्रवेश लंकादहन तथा समुद्र में कूद कर लूम कुम्भना है। २१-२७ जानकी की से विदा होना २८-३१ समुद्र इस पार लौट आना एवम् सब बातों के संग मिस्रहल कर नहीं से चलना और ३२ वें में रामबाग्दि का तीन दिन उपवास करत हुये सागरतट पर पहुंचना वहां विभीषण का मिलना तथा संकष्ट बनाना जाना।

लंकादहन का वचन बहुत सुन्दर हुआ है। लंका निवासियों का नीर-बस्तु धरो स मिथानने क लिय इपर-उपर लौकना, पानी क लिये बिरलाना धरो में कबकडाइट अग्निज्वाला की बटबटाइए पुरत्रनों की पबकाइए इन विषयों का एसा विराद वर्णन हुआ है एवम् एसा सभा विप्र कीबा गया है कि पाठकों को यही प्रतीत होता है कि न छोय समुप नहीं खड़े होकर इन घटनाओं को देख रहे हैं और इन बातों को सुन रहे हैं।

बक्षिप 'लंका में आग लगी है। कैसी पबकाइए कसी म्यप्रता कैसी निराशा पुरवासियों क मुलाहृति, कर्ष्य तथा बागों स प्रकट हा रही है।

“अहाँ लहाँ धुधुकि विलोकि धुधुकारी वंत, जरत निकेत धाम्रो धाम्रो लागी आगि रे। कहां सात, मात, भात, मगिना, मामिनी, मामी, दाटा, छोट छोहरा अमाने माइ भागि रे ॥ हायी छोरा घोरा छोगे महिप वृषम छोरो, छरी छोरो मोव मो जगावो, आगि जागि रे। तुलसी विलोकि अकुस्तानि जाहु धानि कट्टे पार वार कछों पिय कपि सों न जागि रे।

पानी पानी, मथरानी अकुस्तानी कहीं जानि है परानी गत जानी गज चालि है। यमन विसारे मनि भूयन संभारत न, आनन सुपान, कहीं क्योइ कोऊ पासि है ॥

। तुलसी मंदोवे मीज हाय घुनि माथ करै फरु कान कियो न मैं बड़ो केतौ कासिहै ।  
वापुरो विमीपन पुकार धार धार कछो धानर वही वलाइ घनेपर भासि है ॥

जागि जागि भाग भागि भागि बले जहाँ सहाँ पीय को न माय थाप पूठ न  
सँभारही । छूटे धार बसन उषारे धूम ध्रुव अंध कहीं धारे क्युं धारि धार धारि धारही ॥  
इय हिहिनात भागे जाव पहरात गज भारी मीर ठेसि पेलि रौंदि पौंदि डारही ।  
माम जै यिज्ञात यिज्ञात अकुज्ञात अति वात वात तोसियत भौंसियत मारही ॥”

बच नमूने के छिड़े इतना बहुत है । यदि अधिक पढ़ने की इच्छा हो तो पुस्तक पाठकर  
आनन्द उठाइये ।

लंकाकाण्ड—इस में ३८ अंश हैं । १ सखि उष आगामी दशा सोच कर कहते हैं  
कि अब प्राणरक्षा की आशा नहीं २-३ अश्वि और शीता उष ४ ५ पुरबमों की परस्पर  
बातचीत ६-७ सेतु-बन्धन = सुकुमारम का रावण से रामसेना का हाल कहना ८-१६  
अज्ञ का रावण की समा में श्रीरामवश बर्णन करना और पाँच रोजना १७-२६ मन्वोदरी का  
रावण को समझाना २-३ सुह बर्णन जिस में ३३ से ४० कवित तक हनुमानजी का सुह  
और शत्रु बिसद्वेष से बर्णन किया गया है, ४१ रामरावण युद्ध ४२-६६ सरमणकी को शक्ति  
कमाना सबीवनमुरि का आना और उन का फिर बैगन्य होना ६७ रावण और कुम्भकरण बध  
६८ देवताओं का पूछ परधाना ।

उत्तरकाण्ड—इस में १७७ अंश हैं । यह काण्ड प्रथम के अर्ध रा से भी अधिक है ।  
इस में बहुत से ऐसे कवित हैं जिन से काशी में करास कसिकास कवित उपास महामारी प्रयोग  
कुर्मिदादि केरा दशा तथा कवि की निज जीवन दशा की बहुत कुछ बातें ज्ञात होती हैं ।  
महामारी आदि का बर्णन बहुत सुन्दर हुआ है । श्री रामचन्द्र की महिमा मक्ति तथा कृपा का  
इस में अधिक बर्णन है ।

४१-४३ में यही बर्णन है कि समयातना से जाननेवाले केवल ईश्वर ही हैं ८० ८१-  
८३ और ८७ आदि अनेक कवितों में काशी में कसिकास की करासता का बर्णन है ४१ में दशा  
दशा का अच्छा चित्र खींचा गया है ११२-१२४ में प्रज्ञादा कथा बर्णन १२६-१२६ में  
श्रीकृष्ण एवम् मोपी उद्यमसम्बाध है १४३-६० शिवचन्द्रना १४३-६२ तक शिक्षाशिव से  
काशी में कसिकास की विद्रोसता रोकने की विनयी १६७-७ में काशी में महामारी होने का  
बर्णन एवम् श्री पार्वती तथा हनुमानजी से उस के निवारण की प्रार्थना है ।

१७१ मीन के शनीवर के विषय में है, १७२ में कहते हैं कि राम नाम ही मेरा सब  
कुस है । १७३ में यह कहा गया है कि जो बटोही और माण्डव को बध करके मा अन्व चन्वाय  
से लोमों को हुए बिबर धन सपह करेगा वह मोक्षामात्र क भोग से शीघ्र ही पाश होगा ।  
करावित काशी में उस समय रावणपक्ष होने से यह कविता की धरै की ।

१७४ में एक खेमकरी की बखर इन्हीं ने कहा है 'येतु सरेम पवान समय सब सोच  
विमोचन छ मरती है । बच हती पयान समय क लिखने से लोच इसे इन की अन्त समय की  
कविता बताते हैं ।

१७२-७६ में काशी में कविमालाप्रतिष्ठ उल्लास के निवारण के लिये हनुमानजी से प्रार्थना की गई है और १७७ में कहते हैं कि रामचन्द्र न समझ बेशक बुद्ध बुर कर दिया ।

इन सब बातों के अतिरिक्त भी काशी अन्वेषणदि विप्रवृत्त प्रयागराज धीमञ्ज इत्यादि की भी बन्दना है ।

'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में कवितावली की समासोचना १७४में कवित्त पर समाप्त हुई है क्योंकि महामहोपाध्याय पं. दुष्यन्त द्विवेदीजी ने इसे घोसाइ जी के अन्त समय की कविता मानी है । वैष्णव दास के अनुसार घोसाइजी ने कभी मात्रा के समय चोमकरी (नीरव) को बेल कर उस की प्रशंसा की है । निखिलरात्रनिष्क्यातस्वामी बासुरामजी तथा भक्तभूषण बाबा टीकम दास जी ने इस कविता का रामचन्द्र के ब्याह से सम्बन्ध मिलाया है जैसा कि म. कु. रामवीर सिंह ने लिखा है । इन बातों से तो इस ग्रन्थ के किसी विशेष समय में रचे जाने में और भी सन्देह होता है ।

महात्मा हरिहरप्रसाद जी ने अपनी टीका में १७२-७७ कवित्तों को भी इसी रूप में दिया है । इन में से दो अन्त की कवित्तों को काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने अपनी समासोचना में बाहुक में रखा है और पं. रामगुलाम द्विवेदी जी ने भी १७२-१७७ नम्बर की कवित्तों को बाहुक ही में दिया है । हमारी समझ में इन तीनों कवित्तों को प्रसन्नानुसार कवित्त रामायण ही में रचना चाहिये । न उस ग्रन्थ के अन्त में रचना चाहिये और न बाहुक में ।

इस ग्रन्थ की टीका महात्मा हरिहरप्रसाद जी ने की है जो बन्धीपुर के स्वर्णविराससेस में १८६७ ई० में छपी है उसी को बेल कर हम ने ऊपर की समासोचना लिखी है ।

वैष्णव दास ने भी इस की अच्छी टीका बनाई है ।

### हनुमान बाहुक

कहते हैं कि बांह में पीड़ा होने से घोसाइजी न उस की निश्चित के लिये हनुमानजी से प्रार्थना की थी और पीड़ा छूट गई । इसी से इस पुस्तक का नाम बाहुक रखा गया ।<sup>१</sup>

इस का सब अंश नहीं किन्तु यह अंश जिस में बांह की पीड़ा का बयान है मिस्सन्नेह किसी विशेष समय में लिखा गया है । और यदि उसी बांह पीड़ा से इन्होंने शरीर त्याग किया चाहे यह भिषग्जन साहब के लेखानुसार प्लेगजनित हो चाहे पिरकी के कारण हो तो उस अंश की रचना वर्ष १९८ में हुई । परन्तु इस बार की पीड़ा से उन के स्वर्गपनाम का कोई रस प्रमाण नहीं मिलता ।

यदि सब अंश एक ही समय रचा गया तो यह निश्चय है कि इस की रचना बांह में पीड़ा आरम्भ होने के पूर्व ही आरम्भ हुई थी, क्योंकि १६वां कवित्त अन्त पीड़ा की कुछ बात नहीं है । इस से इस का सारा एक समय रचे जाने में सम्बन्ध है—चाहे

१ पं. जगन्नाथ प्रसादजी ने लिखा है कि हनुमानचरित्त में इसका च. दिन पाठ करने से शरीर की पीड़ा तथा प्रेतपाशा छूट जाती है ।



पं० सुभाकर जी से उनके पूज्यपाद पिता जी बड़े हों कि इस की सर्वांग रचना बार दिन में हुई जाहे मुसलिह रामायणी पं रामगुलाम द्विकरी बड़े हों।

बस्तुतः जो हो, इस 'बाहुक' में ज्यै भूखना बनावरी और सबेसा लंद हैं। इस की माया कवित रामायण के सहाय है और इसके इन् उन के कन्दों से बड़े बड़े हैं। इस में गोस्वामी जी न अपनी ही बाहें लिखी हैं तथा स्तुति प्रार्थना की है। यह एक बल्लभ तथा सराहनीय पुस्तक है।

१२वें कवित एक हनुमान जी की सुन्दर बन्ना है, १९वें में कवि ब्रह्मते हैं कि 'हम तो तुम्हारे हैं, किसी का बिगाड़ते नहीं तब हम से सोप क्यों छट रहते हैं? बताइये तो प्राणों से सायबान हो आर्य। १०वें में कहते हैं कि आप ने इतने गरीबों का नेनासा है क्या मेरे ही बार बड़े हो गये? १०वें में बुद्धबायक जनों के दमन की प्रार्थना है १९वें में ब्रह्मते हैं कि 'पाप ताप तथा साप तीनों से हम मरी रखा करने बाख हो।

२०वें कवित से २३वें तक बाह पीडा का वर्णन है एवम् उस के निवारणार्थ श्री हनुमान मूनाप खुनाप आदि से प्रार्थना की गई है। एक प्रकार से इस का सविस्तार वर्णन स्वर्णम्बान के प्रकरण में हो चुका है। यहां पर विष्टियेय की आवरणका नहीं।

अन्त में यह कविता है —

“कहाँ हनुमान सों सुमान रामाय सों ज्ञानिपान संकर सों सायबान सुनिये। हरप विपाद राग रोप गुन दोष मई विरची विरपि सब देपियत तुनिये ॥ माया जीम कास के करम को सुभाय के करैया राम बेद करै सांघी मन गुनिये। तुम ते कहा न होय हाहा सो मुकैये मोहि हौई रहौं मौन ही बयो सो जानि लुनिये ॥

अर्थात् तीनों बैराघों को सम्बोधन करते ब्रह्मते हैं कि 'माया जीम कास कर्म, सुभाय सब के कराने बाखे तो राम है, सो हे राम। तुम से क्या नहीं हो सख्ता सो तुम्हारे कर बड़े कि हम की तुप पैठ बाबं। और आप ईश्वर पर मरोसा कर तुप बैठ भी गये हैं।

प्रतीय होता है कि गोसाई जी की बाह में प्राना पीडा हो जाता करती की। महाका हरिहर प्रसाद की कृत बाहुक की टीका क अन्त में, जिसे बाबू रामवीर सिंह जी ने निष्पत्ती सहित ज्ञाप है लिखा है कि एक बार बाह में पीडा हुई तो कवितरामायण उत्तर करार है १२६, १९ १२१ और १६२ बार कवित बनाये गये और पीडा सूट गयी। परन्तु १२६वें और १६१वें कवितों की पीडा से क्या सम्बन्ध है सो हम नहीं समझ सकते। और स्पष्ट बाह पीडा तो सो रूप कवितों में भी नहीं पायी जाती। यदि किसी को इन कवितों में बाहपीडा प्रत्यक्ष ही होती हो तो कौन जाने ये कवितार्थ भी बाहुक ही के हों और संस्कृतों में भूख से कवितरामायण में इन्हें समावेष्टित कर दिया हो। बाहुक को कवितारथी का

अंश मानते हैं तो कवियों के उलझ फेर हो जाने में क्या आश्चर्य है ? इधर उधर हो जाने की बात अन्य कवियों के सम्बन्ध में करी भी जाती है ।

एक बार पीडा होने से कदाचित् इन्होंने न दोहावली के २२६—२२९ दोहों का बाहुकाष्टक बनाया था । उनमें २२६—२२७ तक भी हनुमान जी की प्रशंसा है, पीडा की बात नहीं । शेष दोहों में अवरय पीडा की बात है ।

“सुलसी तनमर सुपञ्जलज, मुञ्जरज गम यर जोर ।  
दस्तत दयान्तिवि दस्त्रिण, कपि केसरी किसोर ॥२३४॥  
मुज तर फोटर रोग अहि, यरधर कियो प्रवस ।  
विहंग राज थाहन सुरत, फाडिण मिते फजस ॥२३५॥  
याहु मितप मुख विहंग बल, लागी कुयीर कुभागि ।  
राम छया अल सीबिण, लगी दीन हित जागि ॥२३६॥”

इन दोहों के विषय में कोई २ यह भी कहत हैं कि एक बार पीडा हुई तो २२६—२२७ की रचना हुई, दूसरी बार पीडा के कारण २२२वाँ दोहा बना और तीसरी बार पीडा के कारण २३६वाँ दोहा बना । न जाने बाहुक वाला पीडा सम्बन्धी प्रत्येक छन्द की रचना भी विशेष २ समय की क्यों नहीं करे जाती ।

बाबू रामदीन सिंह जी लिखत हैं कि गोसाईं जी के ग्रन्थों के ज्ञाता बहुत से साधु ऐसा कहते हैं कि एक बार बाह में पीडा होने से गोसाईं जी दोहावली के १७ ३२—३६ ३१—३२ ३३—३४, ३६ ३७ १४६—१४७, १७६—१७७ इन २३ दोहों की रचना की थी । परन्तु पठकचन्द्र दोहावली पाठ कर स्वयम् देख सकते हैं कि यह कहाँ तक ठीक है ।

बाह में पीडा होने पर बराबर श्रीरामचन्द्र भी विरवमात्र तथा भी हनुमान जी की प्रार्थना करने से विदित होता है कि गोस्वामी जी औपधि प्रयोग से बेबस्तुति अपिबतर पलयायक मानते थे एवम् अपने सच्चे विरवास का प्रकट भी पाते थे ।

कोई २ इसे एक स्वतन्त्र पुस्तक मानते हैं और कोई इसे कवितावली का अंश बताते हैं । हमारी समझ में यह एक स्वतंत्र पुस्तक है । कवितावली से इसे कुछ सम्बन्ध नहीं । इसमें कवि ने केवल बेबस्तुति तथा निम्न बाह-पीडा का वर्णन किया है । अतएव कवितावली का अंश मानने से ही उक्त यह बात होगी कि उक्त ग्रन्थ में जो कविताएँ बाहपीडा सम्बन्धी मान जाते हैं वे तथा पीडा सम्बन्धी बोधे भी उठकर इन्हीं बाहुक में समावेशित कर दिये जायँ । दोनों ग्रन्थ साथ रहने के कारण हमने एक ही परिच्छेद में दोनों की समावेशना की है ।

१८८३ ई० फरवरी में जो 'हनुमान बाहुक' सु मन्डलफिओर के द्वापेयाने से प्रकाशित हुआ है उसमें 'बाहुक' के आदि का यह छन्द 'सिय तरन, सिय खोब हरन रविवाशवरण तनु' नहीं देकर तीन बोधे तीन सवैये तथा एक मूलना छन्द दिये हुए हैं । निम्न सिंह सरोवर में भी वह मूलना अर्थात् कुछ अन्तर उलझ फेर कर दिया हुआ है । लघनरवारी

पुस्तक में ६ से लेकर २२ तक जो कविताएँ छपी हुई हैं उनमें कम से माथा झोल कागद्वत्त सब की पोका की बातें लिखी हुई हैं। तब यह 'बाहुक' क्यों? इस का नाम 'नख शिप पीडा' रखना चाहता था। पूर्वोक्त कविताएँ भी सर्वथा मंदा हैं। यह लेखकारों तथा लेखक-प्रेमियों की हत्या है कि यह पुस्तक इस दुरवस्था को प्राप्त हुई है।

## सप्तदश परिच्छेद

### गीतावली

रामचरित मानस के समान इस ग्रन्थ का ग्रन्थ क्रम से बनना प्रतीत होता है। शीलाओं की लकी तथा विषयों का शृङ्खलापथ क्रम मिथता है। क्या भाग तो रामायण ही सरल है। परन्तु बाह्यशीला हिंसोसा होधी आदि का वर्णन कृष्णशीला श्री ज्ञाना पर लिखी गई है। इस से अनुमान होता है कि जब में कृष्णशीला अश्लोकन के अनन्तर एवम् रामायण के प्रथम के पीछे इस की रचना हुई है। यह ग्रन्थ विनयपत्रिका से टकर कर जाता है। इस में माधु-र्य शीला का विशेष वर्णन होने से यह ग्रन्थ माधुप्य रस में पगा हुआ मोदक के समान मन को संतुष्ट करता है। इस की माया बनी ही ललित सरल सराहनीय मधुर तथा मर्मवेधिनी है। यदि इस ग्रन्थ पर किसी रामप्रेमी धर्मिय हिन्दू का मन मोहित हुआ तो क्या? हिन्दू-रसिक विदेशीय भी इस की रचना देख अस्वस्त आह्लाहित हो जाते हैं। प्रियर्सन साहब ने लिखा है कि 'योसाह' जी ने श्रीरामजी के बालपन के बचन में श्रीर बचपान के समस्त दुःखजनक मार्ग बचने और सुगति रहने के बचन में श्रीर प्रामीण विषयों के बोझ बाल में जो अनेक भाव दिखलाना है उस से अधिक मनोहर और क्या बचन कोई कवि कर सकता है।'<sup>1</sup>

परन्तु दो बार हमानी में ऐसा देखा जाता है कि एक पद में एक विषय का वर्णन हो जाने पर फिर भी आगे के पदों में बड़ी बटमा या उस बटमा के पीछे श्री बल्लो वर्णन की गई हैं। जैसे मुनि के संग जाने के समय २२वें पद के अन्त में कहा है —

“एक तीर तकि हूती साङ्गका विद्या विप्र पढ़ाई। रास्यो यह जीव रजनीचर  
मह मग विदित बड़ाई। परन कमल रज परसि धहिल्या निज पति लोके पठार्।  
तुप्तसीदास प्रसु क बूझ मुनि सुरसरि क्या सुनार् ॥”<sup>२</sup>

१. अज्ञानसास बन्ध्यास्य हा। प्रकाशित 'रामचरित मानस' में प्रियर्सन साहब के लेख का पृ० ११ देखिये।

२. पद वर्णन रामायण के समान है परन्तु, जो विद्या मुनि ने पढ़ाई उम का नाम व रानापथ में विद्या हुआ है श्रीर न इस प्रथ में। दासीकि तथा कासिदास ने उस का नाम बसा प्रतिपत्ता दिया है। उस के आने से बूझ प्यास का श्लेष नहीं होता। मही में उसका नाम बधा और विद्या विद्या हुआ है। रामचरित मानस, बाह्यशीला रामायण तथा मही के अनुसार यह विद्या केवल रामचन्द्र को सिखाई गई। १८वें पद स दोनो माधु-र्य का यह विद्या पाना चर्चित होता है।

पुस्तक में ६ से लेकर १२ तक जो अधिताएँ दूनी हुई हैं, उनमें क्रम से माया शैल काल वन्त सब की पोशा की बातें लिखी हुई हैं। तब यह 'बाहुक' क्यों? इस का नाम 'मज शिप पीका' रखना चाहता था। एतच्छ अधिताएँ भी सर्वथा गरी हुई। यह चेषककारों तथा चेषक प्रेमियों की शृषा है कि यह पुस्तक इस दुरवस्था को प्राप्त हुई है।

## सप्तदश परिच्छेद

### गीतावली

रामचरित मानस के समान इस ग्रन्थ का प्रत्येक क्रम से बनना प्रतीत होता है। लीलाओं की लकी तथा विषयों का श्रुततावद्ध क्रम मिश्रता है। कथा भाग तो रामायण ही सरल है। परन्तु बाह्यलीला दिव्योत्पत्ति होकी आदि का बणन कृष्णलीला की कथा पर लिखी गई है। इस से अनुमान होता है कि जब में कृष्णलीला अथस्तोत्र के अनन्तर एवम् रामायण के प्रणयन के पीछे इस की रचना हुई है। वह प्रायः विमलपत्रिका से टकरकर समानता है। इस में माधुर्ष्य लीला का विशेष वर्णन होने से वह मन्व्य माधुर्ष्य रस में पगा हुआ मोक्ष के समान मन को संतुष्ट करता है। इस की माया बही ही शक्ति सरल सराहनीय मयुर तथा मर्मभेषिनी है। यदि इस ग्रन्थ पर किसी रामप्रेमी धर्मिष्ठ हिन्दू का मन मोहित हुआ तो क्या? हिन्दू-रिषि विद्वान् भी इस की रचना देव अत्यन्त आश्चर्यित हो जाते हैं। प्रियदर्शन साहब न लिखा है कि 'मोक्षार्थ' जी मे श्रीरामजी के बाह्यपन के बखान में और बनवाना के समय दुःखजनक मार्ग चलने कीर सुपासित रहने के बखान में श्रीरामजी के रिषियों के बोध प्राप्त में जो अनेक मातृ विस्तारणा है उस से अधिक मनोहर और क्या बखान कोई कवि कर सकता है।'

परन्तु जो बार स्थानों में ऐसा देखा जाता है कि एक पद में एक विषय का वर्णन हो जाने पर फिर भी आगे के पदों में वही पदमा या उच पदमा के पीछे की बातें वर्णन की गई हैं। जैसे मुनि के वर्ण जाने के समय ५२वें पद के अन्त में कहा है :—

“एक सीर तकि हती ताड़का विद्या विप्र पढ़ाइ। राख्यो बहू जीत रजनीबर  
मह जग विदित पढ़ाइ। बरन कमल रज परसि अश्लिया निज पति लोक पठार्इ।  
हृत्सदीदास प्रमु क भूम मुनि मुरसरि कथा सुनार्इ ॥” २

१ अज्ञविज्ञान सम्बन्धित है। प्रकाशित रामचरित मानस में प्रियदर्शन साहब के लेख का पृ० ११ देखिये।

२ यह वर्णन रामायण के समान है परन्तु, जो विद्या मुनि ने पढ़ाई उस का नाम व जानाबूध में विद्या हुआ है और न इस प्रथम में। दाक्षिणिक तथा काश्मिरि म उम का नाम बसा प्रतिपत्ता विद्या है। उस के जानने से मूल ज्ञान का बखर नहीं होता। मही में बसकर नाम बसा और विप्रया विद्या हुआ है। रामचरित मानस, बाह्यलीला रामचरित तथा मही के अनुसार यह विद्या केवल रामचन्द्र का सिखाई गई। रघुबंध स दार्शनिकों का यह विद्या पाना अनिष्ट होता है।

फिर २१ और २४ में मुनि के संग जाने की बात लिखकर २३वें पद में लिखा है —

“बयासहि बखी साङ्गिका वैखि रिप दैत असीस अप्पाई ॥

भूमत प्रमु सुरसहि प्रसंग कहि निज कुक्ष 'कया सुनाई ॥”

और अहिश्वाहचान्त २७ २८ और २९वें पदों में फिर बर्णन किया गया है ।

बोच होना है कि जो बार स्थानों में जो पद बेबोच पावे बाते हैं वे पीछे बोच दिये गये हैं । नहीं तो पूर्वापर का पूर्ण प्यान रखने वाली गाथाई जी केवल दो बार स्थानों में इस प्रकार बेबोच पदों को रख कर विषयक्रम को नहीं बिगाड़ते । या पीछे पुस्तक मरुल करने वाली से लिखने में इधर उधर हो गये हैं ।

यह प्रथम राग रागिनियों में रचा गया है और यह भी साठ काण्डों में विभक्त है ।

बासुकायद—इसमें ११ पद हैं । अत्रि पुस्तक<sup>२</sup> को देख कर हम इस की समालोचना कर रहे हैं । उस में टीकाकार हृत् एक श्लोक एक सौरठा तथा एक बोहा क अनन्तर गोस्वामी को ३१ नोशाम्बुत्तरबामलकामसाङ्गम् श्लोक है और तब पीतामबी के पद हैं ।

बारों माइयों का बन्धोस्वय क्वी नामकरण (१-६ पद), राबा तथा रागिनियों का पाठे शिशुओं का साध प्यार, गीद में केलाभा; कब बंधे होंगे कब बरुने लमेंगे इत्यादि<sup>३</sup> बारों की अभिसाया करना उबन्ना टेल लगाना स्नान करना एवं शैशवावरबा का शौंकर्य (७-११); रामचन्द्र का अमरस (प्रस्वरण) होना माता का दूध न पीना अपिराज बधिद्वी के संभ पद कर रामचन्द्र के माथे पर हाथ फेरने से उन का स्वस्थ होना छप लोमों का आपत्त मनाना एवम् अग्नि का प्रमुख बर्णन करना (१२-१६) फिर शंकर जी का काममी बन कर राबा के अन्तःपुर में जाना एवम् बारों माइयों को देख कर उम लोमों के सम्बन्ध में भविष्यत् बाणी कहाना (१७) ।

[नरोदा के चर शंकर आप्मन की लीला रासवारी सब भी किया करते हैं ।]

कवि करते हैं :—“हो अमात अलसात तात तेरी धानि जानि मैं पाई ।  
गाई गाइ इसराइ दोखिहौं सुप नौदरी सुहाई ॥”

इस में तथा रामचरित मानस में अहिष्वा के पछिल्लो क जाने की बात है । वास्मीकीय रामायण में गौतम जी अहिष्वा के तारमोचन का समचार सुनकर वहीं पहुँचे हैं ।

१ रामायण में बिल्वामित्र ने इन ठिकाने नेत्र हस्त की कथा नहीं सुनाई है । वास्मीकी जी सुबाना बताते हैं ।

२ भी महात्मा हरिहर मसाद जी हृत् टीका, 'अत्रिबिधास वेस' द्वारा प्रभावित ।

३ भी हृत् के सम्बन्ध में सुदाम जी ने भी इन सब बातों का बर्णन किया है ।

पुन —“पासने रघुपतिहिं झुझावै । लौलै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल  
कोरति गावै ॥ केकिकंठ दुति स्याम धरन वपु बाल विभूषण विरधि वनाए । झलकै  
कुटिला कलित जटकन भू नीलनक्षिन दोठ नहन सुहाए ॥ सिंसु सुमाय सोहत जव  
कर गहि वदन निकट पद पल्लव स्याण । मनहु सुभग जुग भुभग जलज मरि जेत  
सुभा ससि सौं ससुपाए ॥”

सुरदासजी कहत हैं :—

“चरोदा हरि पासने झुझावै । हसरावै दुसराइ मल्हावै जोइ सोई कहुगावै ॥  
मरे क्षाल को भाइ निररिया काहे न भाइ सुयावै । तू काह न वेग सी भावै तो को  
कान्ह सुलावै ॥ कवहुं पलक हरि मूद लेत हैं कवहुं अधर फरकावै । सोषत जानि  
मौन हौं ही रहि कर करि सैन पतावै । इहि अन्तर अकुलाइ उठै हरि असुमति  
मधुरे गावै । जो मुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नन्द मामिनि पावै ॥”

एक पत्ता पर जग हुए शिशु की शोभा और उस के काव्य का चित्र दिखलाया गया है  
एक दूसरे पर निद्रावरीभूत शिशु की कृषि तथा उस के सुलाने वाले का स्वामाधिक काव्य  
दिखाया गया है । इन पाठों की अनुमति देगे कि वे इस ग्रन्थ के शिशु स्तीतावचन को  
सुरदासवर्णित भी शृण्व की शिशुस्तीतावर्णन के साथ मिलाकर पढ़ें और दोनों में तुलना करें ।  
इस में उन्हें बहुत आनन्द मिलेगा ।

पत्ता पर टोक टोक कर सुलाना तथा उस अबसर की शोभा का वर्णन (२४ फर्कन्त) ।  
वाल्मीकीयशोभा के विषय में गोसाईं जी कहते हैं —

“बाल यिनोद मोद मंहुल मति किलकनि पानि पुलावौं । यह अनुराग साग  
गुहिय कहुं मतिभृगनयनि पुलावौं ॥ तुलसी मनिव मझी मामिनी हर सो पहिराइ  
कुलावौं । बाद अरित रघुधर तर तेहि मिसी गाइ धरन धित लावौं ॥”

२२—४४ तक के पदों में शिशुस्तीता का सुन्दर स्वामाधिक चित्र खींचा गया है ।

४४वें तथा ४६वें पदों में छप भाइयों के बीयाग खेलन का वर्णन है अर्थात् उस प्रकार  
से गेद खेलन का बखान है जैसे आज कल साइब लोग प्रकृषा १ टटा हाथों में छहर बाणों पर  
सवार हो मैदानों में खेला करत हैं और जो खेल पेलो के नाम से प्रसिद्ध है । उसका बखान  
सुनिये ।

“राम लपन हक और भरत रिपुदमन लास हक और मये । सरजू सीर सम-  
सुखद भूमि धल गनि २ गोइंआ धांटे लाण ॥ कंदुक कलि कुसल ह्य वडि ० मन  
कस कसि ठोकि ० पए । कर कमलनि विचित्र बीगाने पलन लगे पल रिमए ॥

एक छै वदत एक फरत सब प्रेमप्रमोद यिनोद मए । एक कहत मइ हार राम तु की  
एक कहत मइया मरत जए ॥”



केतवदासजी ने 'रामचरित्रिका' में श्रीगान का यों वर्णन किया है—

“यहि विधि गये राम श्रीगान । सायकास सय भूमि समान ॥  
 सोमत् एक कोस परिमान । रचो कृषिर तापर श्रीगान ॥  
 एक कोद रघुनाथ उदार । मरत दूसरे कोद विचार ॥  
 सोइत हाथे लीन्हें छुरी । क्यारी पारी राती इरी ॥  
 गोस्ता जाय अहां जहँ जयै । होत वही तितही तित सवै ॥  
 गोस्ता आके आगे जाय । सोई ताहि चल अपनाय ॥  
 सत से इत इत से इत होइ । नेकहु डील न पावै सोई ॥”

श्रीरामचन्द्र के समय इस रीति से गेँद खेलने का निरक्षय प्रमाण नहीं पाना जाता । इस से हम कवियों के इन वर्णनों को लोग असामयिकवर्णन (anachronism) कह कर हसपीन करेंगे । परंतु ऐसा असामयिक वस्तुओं का वर्णन विदेशीय कवियों की रचनाओं में भी देखा जाता है । सुप्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर के नाटकों में भी उस समय कई एक वस्तुओं का वर्णन पाना जाता है जब कि उन वस्तुओं का व्यवहार मुश्किल देर में नहीं था ।<sup>१</sup>

श्रीरामचन्द्र के समय श्रीगान का प्रचार हो ना न हो परंतु मोसलै जी के समय में भारतवर्ष में श्रीगान अथर्वन केसा जाता था और भारतवर्ष ही से यह खेल जोरवरेर में पना । कर्नल मेकसल हट अकबर" नामक पुस्तक में यह स्पष्ट लिखी हुई है ।<sup>२</sup>

१ 'इतिहास सीखर नाटक में चार्ल्स षष्ठी, 'हेनरी षष्ठवा' (Henry the Sixth) में—कागज़ बमबे का कारखाना और जापाना, 'किंगडियर' के अंक १ पृष्ठ १ में—चरमा का व्यवहार, 'किंगडियर' के समय जिन का वर्तमान होता इतिहासवेत्तायण ईस्वी शताब्दी के नी ली बर्य पूर्व बताते हैं । बेम्बुकिहम स्वतात का वर्णन है जिसकी नीच १२२० ई. तक भी नहीं पकी थी (पृष्ठ २) । इसी नाटक में 'प्रांस राज आया है जिस का प्रयोग ५वीं शताब्दी में आरम्भ हुआ । हैमसेट्ट में—बिजबर्ग के बिरबिद्विपाहव में उस के संस्वारण के कई ली बर्य पूव ही वह भेजा गया है । 'किंग आर के अंक २ पृष्ठ १ में लीप का वर्णन आया है ।

२. The native historians record that in those times of peace his (Akbar's) great delight was to spend the evening in the game of *Chaugan*. *Chaugan* is the modern polo, which was carried to Europe from India. But Akbar whilst playing it in the day time in the manner in which it is now played all over the world devised a method of playing it in the dark nights which supervene so quickly on the day light in India.

धीहिस्वामिप्रागमन उत का स्वागत बशिष्ठ जी के समझने से रामा का रामलक्ष्मण को उन के साथ जाने देना ठाढ़काबद्ध तथा बहुरथा (४७-३६)।

कहि ने दोनों माइयों के राह चलते समय बातवने की बपलठा तथा बचितकित पदाओं के देखने का क्या सच्चा और मनोहर चित्र खींचा है

“यैठल सरनि सिसलन चङ्कि चितवत पग मृग वन रुधिराइ ।

सादर समय सप्रेम पलकि मुनि पुनि पुनि जेत बोलाई ॥”

पुन.—“पञ्जत वञ्जत करत मग कौतुक बिलमत सरित सरोवर तीर ।

तोरत जता, मुमन, सरसीरह, पियत मुषा सम नीर ॥

यैठल विमल सिसलनि यिटपनि तर पुनि पुनि धरनत छाड़ि समीर ।

दखत नटस ककि कल गावत मधुप मराल कोकिला कीर ॥”

आहिस्ना शप मोचन, दोनों माइयों को शैशिक के दग जाते देख मयवासियों का आनन्दित होना; जनकपुर पहुँचन पर जनकराज का शैशिक का दशन करना भीराम और लक्ष्मण का परिचय पाना, पुरवासियों का इन के रूप पर मोहित होना उत की प्रशंसा करना, और शैशिक के निमित्त बाप में फूल बीजने के समय भी राम और श्री बानधी जी का परस्पर दशन (३७—७१)।

जोसाई जी ने गीतावली में भी गिरजापूजन के समय गिरजा जी से स्पष्ट बरदान दिलवाया है।

‘मूरति कृपाक्ष मंजु माक्ष ३ वीक्षत मह, पूजो मन कामना भावतो बह वरि कै ।

राम काम तह पाय बलि ज्यों बोडी यनाइ मांग कोपि पोपि फेस फुसि करि कै ।

रहोगी कहोगी तत्र सांथी कही कर्वा सिय गहे पांय है उठाय माय हाथ धरि कै ॥”(७२)

जो लोग गिरिबामूर्ति की मुस्कवागही पर नागा प्रकार का प्रश्न उठाते हैं वे प्रतिमा की बातें करने पर क्यों नहीं उठाते ?

रंगमूमि में जाना दोनों माइयों के देखने के लिये वहाँ पर नारियों की भीड़ होनी उत लोगों का परस्पर कबोचकपन, श्री बानधी जी का रङ्गमूमि में लावा जाना बन्दी का श्री जनकराज का प्रश्न सुनाना सफल रात्राओं का बहुत सोचन धन का बिफल होना भी राम का अनुपमत्र करना (७३—१२)।

जनकराज और पुरवासियों का आनन्द, भूरात्राओं का निरबक पास बजाना, बानधी जी का रामबद्ध को बयमाल देना और सबों का आनन्द मनाना (१३—६८)।

For this purpose, he had balls made a *palas* wood—a wood which is very light and which burns for a long time and set them on fire. He had the credit of being the keenest Chaugan player of his time Clonel Malleson's Akbar, P 102

श्री रामलखन के घर नहीं रहने के कारण श्रीशिव्या तथा सुमित्रा का विवाह  
(११६-११७) ।

“मूप पियास सीत खम सकुचनि क्यों कौसिकहि कहिगे ॥ को मोरहि उपति  
बान्हवे है काढ़ि कलक देहै । को मूपन पहिराई निछायरि करि लोचन मुख जैहै ॥”

इसी विवाह के समय श्री भरत जी का छात्रव्रत कागल में बाहर जनकपुर  
का समाचार सुनना सबों का आनन्द मनामा जनकपुर बारात जाता नहीं विवाहोत्सव का  
परमानन्द और बरहत्या के अन्त आने पर मातृमर्ष तथा परिजनों को अरुचनीय आनन्द  
प्राप्त होमा (११-११) ।

गीताबली के ११ वें पद के इसी शान्त में ‘सुखहरोप मूर्ति मृगुपति कतिश्रुति निरु  
पबकारी । क्यों सीप्यो सारंग हारि हिन करिहै बहुप मनुहारी ॥’ परशुराम जी श्री कृष्ण का  
आमासमात्र पाना जाता है और श्री कृष्ण नहीं आता है ।

अयोध्याकाण्ड—इसमें ८६ पद हैं । मत्स्यपुराण में टीकाकार-रूप चार दोहे हैं ।  
पहिले पद में राजा का भी रामचन्द्र को सुबरात्र पद देने का विचार तथा डैकेनी जी  
काण्ड श्री रामचन्द्र का बलबाध कौशल्या जी का रामचन्द्र के रहने के लिये विनती करनी श्री  
परस्पर समझाने बुझाने के अन्तर श्रीराम जानकी तथा लखन लाठ का सब से विदा होना  
बनगमन ।

श्री राम जानकी और लखन का बनगमन में बलना उसका कष्ट मगवावियों का इन  
लोगों की सुन्दरता सुन्दरता शोभा तथा अस्तवा शेष बहित होना मोहित होना माना प्रकार  
का संकल्प निरूपण करना एवम् इन लोगों के बनगमन पर खेद प्रकाश करना फिर इन लोगों का  
विनम्र में बाहर नहीं डुटी पना कर रहना (१-४१) ।

विनम्रनिवासिनी किरातिनिनों का इन लोगों की अस्तवा श्री समाशोचना करनी और  
कवि का विनम्र श्री शोभा तथा महिमा कथन (४१-४२) ।

४० वें पद में मोघाई जी ने चाग के रूप में विनम्र के शोभाविषय में अन्धी  
बनस्यारी दिखलाई है—

“लापनलास कइइ रघुनन्दन वेपिय विपिन समाज । मानहुँ अयन मयनपुर  
आयइ प्रिय रितुराज ॥ विनम्र पणराठर जानि अधिक आनुराग । ससा सहिष  
जनु रितुवति आयइ देसन फाग ॥ मिस्ली म्नामि मरना डफ पयन सूर्युं निसान ।  
मरि बर्षण सृङ्ग रय ताल और कल गान ॥ ईस कपोत कसूतर वोसत लक लकोर ।  
गायत मनहुँ नारि नर सुदित नगर लहुँ छोरे ॥ विश्र विविध्र पिदिष मृग जोसत जोमर

१ कथन प्रति पणोदा के इन शब्दों से तुलना कीजिये :— मात समथ उठि  
माथन रोटी को मति किन दीहै । ‘अब यह घूर मोहि बिसुवासर बको रहत हिन सोचू ।  
मेरे अस्तित्व बड़ीसे लायन है करत संकोचू ॥

डांग । अनु पुरभीयिन्ह विहरत छैस संघार स्वांग ॥ नटहिं मोर पिक गावहिं सुखर  
राग र्वधान । निक्षम तरुन तरुनि अनु पक्षहिं समय समान । मरि २ स्युह करनि  
सय अर्ह तर्ह डारहिं वारि । भरत परसपर पिचकनि मनहुं मुदित नर नारि ॥ पीठ  
पडाइ सिमुन्ह कपि फूदत डारहिंकार । अनु मुह जाइ रत्नसि भये परनि भयसार ॥  
क्षिपर पराग सुमन रस डोखत मलय समीर । मनहुं अरगजा छिरकत भरत गुलाक्ष  
अपीर ॥”

२ वें पद में चित्रकूट में वर्षा ऋतु की शोभा भी सुन्दर उपमाओं के साथ वर्णन की गई है ।

कौशल्या का रामविरहजनित परिताप—(२१-२५) सुमत्र प्रश्याममन दरारथ का शोक तथा प्राणत्याग (२६-२६) भरतजी का कैंकेजी को चिक्कारना कौशल्या का आरवासन भरतजी का रागमय्यह प्रहस्य करना अस्वीकार कर चित्रकूट की ओर प्रस्थान (१-६५) शुक्रसारिका सम्बाद (६६-६७) शृगबेरपुर में निषाद से मेट चित्रकूट में रामचन्द्र जानकी की तथा लक्ष्मण से मेट और रामचन्द्र के वन से नहीं लौटने के कारण वन का चरणपाशुका खेकर भरत जी का अक्षय आना और वही को सिंहासनासीन कर स्वयम् मुनिव्रतवारी हो मन्त्रीग्राम में निवास करना (७१-७६) भरतजी की प्रस्ता (८०-८२), कौशल्या विज्ञाप (८३-८४); ८८वें में रामचन्द्र के चित्रकूट से अन्त जाने का समाचार तथा ८६वें में रेवा और बिच के मध्य में बेरा अमाने का हाल गुह के पत्र से ज्ञात होना । यह बात रामायण में नहीं है ।

८६वें धार ८७वें में कौशल्या रामचन्द्र के घोड़ों को देख विज्ञाप करती है ।

आरययकायह—इस में १७ पद हैं । टीकाअर-कृत मङ्गलाचरण एक बरवा अन्ध ।

विपिन शोभा तथा राम आयेत (१-२); कष्ट बुरह बष और छीताहरण (३-६) सीता के खोचते छमय अटायु से मेट सीता हरण समाचार पाना अटायु का शरीरसंस्कार; शबरी मेट (१-१७) ।

किष्किन्त्याकायह—इस में केवल दो पदों में दुषीब का रामचन्द्र को सीता जी का बसन भूषण दिखाना एवम् वर्षा विगत होने पर सीता की खोच में अतुलिक बानरों के पिठाने का हाल वर्णित हुआ है ।

सुन्दरकायह—इस में २१ पद हैं । टीकाकार के मङ्गलाचरण का कोइ अन्ध नहीं है ।

मुद्रिका पाकर आमवत आदि के संग हनुमान का आना; संघाठी मेट सीता दर्शन; सीता का मुद्रिका से प्ररन तथा उस का उत्तर देना (३-४) हनुमान सीतासम्बाद (५-११) रावण प्रति हनुमान वाक्य सीता जी को समतोप देकर हनुमान का संका से विदा होना (१०-१५) । इस में हनुमान जी का अशोक वाटिका में पहुँचने पर वहाँ रावण नहीं गया है ।

१७वें पद के इस वाक्य में संका दाह घर आनिबो सोच राम सेवक को कहियो संकादहन का आभासमान है । कवि ने कवितावली में संकादहन का अण्डा विप्र दिखलाना है ।

श्री रामचन्द्र का रामचन्द्र को हनुमान के आग्रहम का समाचार बनाना, हनुमान की का लीला की दशा बर्णन करना (१९-२०), रामचन्द्र का शोकान्तर होना, लंकावाधा सेतु बनवानादि (२१-२२)।

अब श्रीरामचन्द्र सर्वत्र संका की ओर पनात करते हैं :—

अब रजुवीर पवानो कीन्हो ।

कुमित सिधु डगमगत महीधर मजि सारंग कर सीन्हो ॥

सुनि कठोर टह्यार पोर अति पाँके विधि त्रिपुरारी ।

अनापन्न से बन्नी सुरसरि सकत न संसु संमारि ॥

मय विकल दिगपात सकल भव भरे मुधन इस चारि ॥

पर भर लंक-संसंक दसानम गम स्यहिं अरिनारि ॥

पसन पंगु पायक पतंग ससि दुरि गये बके विमान ॥

गण पूरि सर धूरि मूरि मय अग बल अलधि-समान ॥

बन्नी बमू बहू ओर सोर कहु वनै न वरनत भीर ।

किलकिसाय कसमसत कुलाहल होत नीर नीधिरी ॥” (२२)

श्रीरामसेना के आग्रहम का समाचार रावण को पाना मन्दोदरी आदि का बड़े समझना तथा विभीषण का उस से सात याअर श्रीरामचन्द्र की सेवा में आना (२३-४६)।

इस में विभीषण के रामचन्द्र के पास आने की कथा इस प्रकार से लिखी हुई है कि रावण के पदप्रहार का अनन्तर उन्होंने ने अपनी माता के पास जाकर अपनी कथा सुनाई जिस पर तब की माता बोली ‘बड़ा मनो ठग्य सात माँ के बचो भाई है’ ‘सखि पितृ समान बालुबान को मिलाइ ताँक अयमान लेटी बहीये बकाई है। और ‘रोव किये होय सहे छमये मलाई है’ तथा ‘इहाँ से निमुब मये राम की सरन गये भला’ है तो लड़ी परन्तु ‘तेहु लोक राये निपट निकारै है’। तब माता को सीस तथा कर तथा बन से आशीर्वाद पाकर वे लुके से सम्मति लेने गये हैं और वहीं शिवजी ने उन्हें उपदेश दिया है कि राम की शरण में आने में सुदिन इन्होंने की आबरवकटा नहीं। तब लंका लिय आसिय पाइ कै मन में अनेक लालसा करते हुने से यविय के यह रामजी की सेवा में जुंके हैं।

इस वर्णन से प्रतीत होता है कि विभीषण ने कुम्भकर में अपने माई ही को लड़ी ल्याग किया परन्तु अपनी माता की सम्मति का भी उपलक्षण किया। अतः कित् गोसाईं की ने लड़ी कसक मित्रमे के लिये शिवजी के उपदेश से इन का आना कहा है।

श्रीसीता की का विज्या से बर्तालाप इत्यादि (४७-४९)।

लंकाकायड —इसमें २३ पर है। टीकाअर इत महासाधारण का एक दोहा है।

मन्दोदरी की रावण के प्रति पिशा तथा प्रार्थना अरु उषस सम्वाद (१-४);

रावण की का मेलनाह के शक्तिप्रहार से आहत हो भूलायी होना, हनुमानकी का लंकागत आना, रास्ता में भलेकी से भेंट, बर्तालाप लक्ष्मणकी का फिर कैरवकता खाम करना (५-१३)।

भीरामचन्द्र रघु को भीतर सानुत तथा स्नेह्य रखने में शोभायमान हो रहे हैं। इस समय उन की मूर्ति का दर्शन कीजिये।

“राजत राम कामसत सुन्दर। रिपुरनजीत अनुज संग सोमित फेरत चाप  
यिसिप बनरुद्ध कर ॥ स्याम सरীর शशिर छमसीकर सोनितकन यिष धीच मनोहर।  
मनु पद्योतनिकर हरि हित गन भ्राजत मरकत सैल सिपर पर ॥ धायस धीर यिराजत  
चहुँदिस हरपित सकल रीछ अरु वनचर। कुमुमित किंसुक तरु समूह मई सरुन  
तमास विसास विटप घर ॥ राधियनपन विलोकि कृपा करि किये अमय मुनिनाग  
विबुध घर। सुकसि दास यह रूप अनूपम हृदिसरोज वस दुसह त्रिपतिहर ॥”

कीर्त्या का रामचन्द्र का शुभागमन सोचना काम तथा चेमकरी से शयन पढ़ना रामचन्द्र के मिच्छागमन का समाचार सुनने से नगर में सबत्र आनन्दकोलाहल, रामचन्द्र का आना, नवानेय सबों से मिलना एक दिवस पाकर सिंहासन पर विराजमान होना (१९-२२)।

इस ग्रन्थ में कुछ कथन विरोध नहीं है। और जब श्रेष्ठ पर्वत सारथे समत्र भरत जी के सौक बाध लगने से हनुमान जी भूतल में गिरे हैं तब सुमित्राजी ने लक्ष्मण जी के मुखसे न में धायस हो अचेत पड़ने का समाचार सुन कर सख्त भाव से आँखों में जल भर हनुमान से कहा है कि ‘अद्यपि रामचन्द्र का दूरा सहायक बन का अनुप है तथापि शोक इसी बात का है कि वे बड़े कुम्भधर में बन्धुहीन हो गये’ और यह कह कर उन्होंने अपने दूरे पुत्र रघुसुन्दर को हनुमान जी के संव जाने की आज्ञा की है। वे सानन्द उठ खड़े हुए हैं। हनुमान जी तथा भरतादि को सुमित्रा जी और शत्रुघ्न का यह का र्य देख बहुत आनन्द हुई है और भरत जी ने समग्रशत्रुघ्नकर सुमित्राजी का परितोष किया है तथा शत्रुघ्न जी भी घर रहे गये हैं।

महा! सुमित्रा जी आप धन्य हैं। विमाता होकर रामचन्द्र के हितार्थ अपने एक पुत्र के मुखसे न बलिप्रदान होने पर आप अपने दूरै पुत्र को भी उसी बलिस्थल में सानन्द भेज रही हैं और धन्य २ शत्रुघ्न। जो सानन्द जाने से उचल हैं।

सूरदास जी के अनुसार इस कब्र में कीर्त्या को दुःखित देख सुमित्रा ने उगड़े इस प्रकार समझा है —

“अन मननी जो सुमटहि आवै। मीर परै रघु को दक्ष दक्षि मक्षि कौतुक कर  
दिसरारै ॥ कौसल्या सों कह्य सुमित्रा जिनि स्वामिनि १ सुख पावै। लक्ष्मण अनि  
हौं मई सपूती राम काज ओ आवै ॥ जीवै तो सुख विलसै अग मों कीरति लोगन  
गावै। मरै तो मंडल मदि मानु को सुरपुर जाइ वसावै ॥ शोह गहै लासल करि  
भिय को औरो सुमट सजावै। सूरदास प्रभु जीत शत्रु को कुरास लोम घर आवै ॥”

भरत जी के समीप बस समय सुमित्रा के रहने के कारण यह कहा जाता है कि लक्ष्मण जी को शक्ति लगने पर सुमित्रा जी ने स्वयं देखा या कि शत्रुघ्न को सर्व शील गया और

श्री रामचन्द्र का रामचन्द्र को हनुमान के आयमन का समाचार जानना; हनुमान श्री का सीता श्री द्वारा बर्षन करना (१५-१) रामचन्द्र का शोकानुर होना लंकायात्रा से दुःखनादि (२१-२२)।

आव धीरामचन्द्र ससेन लंका श्री ओर पवान करते हैं —

अव रकुवीर पवानो कीन्हो।

सुमित सिधु उगमगत महीधर सञ्जि सारंग कर सीन्हो ॥

सुनि कठोर टह्लार मोर अति थौंक यिधि त्रिपुरारी।

अटापटल से बखी मुरसरि सकत न संसु संमारि ॥

मये विकल दिग्याप्त सकल मय भरे मुवन दस चारि ॥

पर भर लंक-ससंक दसानन गम क्षमहि अरिमारि ॥

पवन पंगु पाभक फलंग ससि दुरि गये थक बिमान ॥

गय पूरि सर पूरि मूरि मय अग बल अलधि समान ॥

बखी धमू बहु ओर सोर कहु यनै न यरनत मीर।

किंकिंसात कसमसत कुलाइल होस नीर नीधितीर ॥” (२०)

धीरामसेना के आयमन का समाचार रावण को जाना मन्वोदरी आदि का उसे समझना तथा विनीपल का वस से कृत जाकर धीरामचन्द्र की सेवा में जाना (२३-२६)।

इस में विनीपल के रामचन्द्र के पास जाने की कथा इस प्रकार है कि श्री रावण के पदप्रहार के अनन्तर उन्होंने अपनी माता के पास जाकर अपनी कथा सुनाई जिस पर उन की माता बोली क्या मने ताप सात मारे बने माई है हाइव सिधु समान बाहुपाव को तिसइ ताके अपमान ठेरी बनीये बजाई है। और 'रोप किने रोप सई धममे मसाई है' तथा 'इहांते विमुक्त मने राम की धाम गये महा है ती सही परम्पु 'नेकु कोक रावे निष्प निकारी है' तब माता को सीध तथा कर तथा उन से आशीर्वाद पाकर वे कुबेर से सम्मति लेने गये हैं और वहीं शिवजी ने उन्हें उपदेश दिया है कि राम की शरणा में जाने में सुखि इंसने की आनन्दकटा गयी। तब 'संकर सिध आधिप पाद के' मन में अनेक साहसा करते हुये वे शिव के शर रामजी की सेवा में पहुँचे हैं।

इस वर्णन से प्रतीय होता है कि विनीपल ने कुम्भसर में अपने माई ही को लगी तथा किना परम्पु अपनी माता को सम्मति का भी उल्लंघन किया। कदाचित् पोसाई जी ने बही कर्तव्य मिटाने के लिये शिवजी के उपदेश से इन का जाना कहा है।

वीर्यता श्री का बिबटा से बर्तालाव इत्यादि (२७-२९)।

शंकाकारयइ — इसमें २३ पद हैं। तीकाकार इत मद्रतापरस का एक होता है।

मन्वोदरी श्री रावण के प्रति पिडा तथा प्राचना; आन् रावण सम्वाद (१-४), लक्ष्मण श्री का नेचनार के शक्तिप्रहार से आहत हो भूतानी होता, हनुमानजी का कवीचन जाना, रासा में भरतजी से भेंट, बार्तालाव लक्ष्मणजी का फिर वैतन्ता स्वयं करना (२-१३)।

श्रीरामचन्द्र रिपु को भीतर छातुज तथा सैन्य रखने में शोभायमान हो रहे हैं । इस समय हम की मूर्ति का दर्शन कीजिये ।

“गजत राम कामसत सुन्दर । रिपुरनभीत धनुज संग सोमित फेरत चाप  
विस्मिप बनरुह कर ॥ स्वाम सरीर रुधिर स्मसीकर सोनितकन विष वीच मनोहर ।  
जनु पद्योतनिकर हरि हित गल भ्राजत मरकत सैल सिपर पर ॥ पायस शीर विराजत  
बहु विस हरषित सकल रीछ भव बनवर । कुमुमित किंसुक तर समूह भई तरुन  
तमास विचाल विटप पर ॥ राजिपनयन विलोकि कृपा करि किये अमय मुनिनाग  
बिबुध वर । तुससि दास यह रूप अनूपम हृदिसरोज वस दुसह विपसिहर ॥”

श्रीरामका का रामचन्द्र का शुभागमन सोचना काग तथा दोमकरी से शयुन पुत्रना रामचन्द्र के मिच्छापमन का समाचार सुनने से मगर में सधन आनन्दभीलाइस, रामचन्द्र का आना, यथायोग्य सर्वों से मिलना एवम् तिरुक्क पाकर सिंहासन पर विराजमान होगा (१९-२३) ।

इस प्रश्न में कुछ बखान विरोध नहीं है । और जब प्रोथ पर्वत साठे समय मरत जी के लौक बाण लपने से इनुमान जी भूतल में विरे हैं तब सुमित्राजी ने लक्ष्मण जी के मुदचेन में पायस हो अचेत पाने का समाचार सुन कर सहाय मात्र से आंखों में जल मर इनुमान से कहा है कि 'यद्यपि रामचन्द्र का रूपरा सहायक वन का मनुष्य है तथापि शोक इसी बात का है कि वे बड़े वृषभसर में बन्पुत्रीन हो गये' और यह कह कर उन्होंने अपने दूसरे पुत्र रिपुसुरन को इनुमान जी के संग जाने की आज्ञा की है । वे सामन्द उठ खड़े हुए हैं । इनुमान जी तथा भरतादि को सुमित्रा जी और शत्रुह का यह का र्य देख बहुत खार्जि हुई है और मरत जी ने समस्तपुत्रगणकर सुमित्राजी का परितोष किया है तथा शत्रुहण जी भी पर रहे गये हैं ।

महा । सुमित्रा जी आप बन्ध हैं । विमाता होकर रामचन्द्र के हितार्थ अपने एक पुत्र के मुदयस में बलिपदान होने पर आप अपने दूसरे पुत्र को भी उसी बदरबल में सामन्द मेर रही हैं और बन्ध २ शत्रुहण । जो सामन्द जान को बरतन है ।

सूरदास जी के अनुसार इस अवसर में श्रीरामका को बु खित देख सुमित्रा ने उन्हें इस प्रकार सम्बोधना है —

“बन जननी जो सुभटहि जावै । भीर परै रिपु को दस दमि ममि कौतुक कर  
विकरावै ॥ कौसल्या सों कहइत सुमित्रा जिनि त्यागिनि १ दुख पावै । लक्ष्मण जनि  
हौं मई सपूती राम काज जो आवै ॥ जीवै लौ सुख विससै जग मों कीरवि सोगल  
गावै । मरै लो मंडल मदि मानु को सुरपुर जाइ यसावै ॥ लोह गई साक्षय करि  
जिय को धीरो सुभट जावै । सूरदास प्रभु जीत शत्रु को कुराल जेम पर आवै ॥”

मरत जी का समीप उस समय सुमित्रादि के रहने के कारण यह कहा जाता है कि लक्ष्मण जी को शक्ति लपने पर सुमित्रा जी ने स्वप्न देखा ना कि गुत्रा को सर्व तीत बना और

१ परमपु 'त्यागिनी' नहीं । बड़े होने के कारण सन्मान मूचना के विष ।



बशिष्ठजी ने कहा था कि वही लक्ष्मण जी को कुछ भरिष्ठ है उस की शान्ति क निमित्त यह होना चाहिये यदि भरत जी राष्ट्रों से इत की रक्षा करें। वही वन सम्पादन हेतु एवं लोग बन्दीनाम में आने से और भरत जी बिना माधी का बाध बहराचार्य पास परे हुये से। वही लक्ष्मण हनुमान जी पशुमे और राष्ट्र के घोके में भरत जी ने उन्हें बाण मारा जिस से वे मृत्यु में गिर पड़े।

अष्टाश्रयण—१० पद। धीरकार ह्य मञ्जुशरस्य का एक दाहा।

वन से झूट आने पर और रात्रिदिहासन पर बैठने पर श्री रामचन्द्र का ऐश्वर्य (१); श्रात का लघु रामचन्द्र के आगने पर मानबाद सुर्म स्नाम कर के पाट पर छोड़े रहन लक्ष्मण की सोमा के बर्षन भी रामचन्द्र के विहासन पर विराजमान रहने के समय की वृत्ति बलन राम रूप बर्षन (१-१७)।

१३वें पद में श्री रामचन्द्र की बाह का वधुना से रुचक बांधा मवा है, क्या—

“सुन्दर म्याम शरीर छैल तें बसि मनु ह्ये जमुना अथगाहै। अमित अम्भस अक्षयस परिपूरन मनु जनमी सिंगार सविता ह्ये। भारैं बान, मृक्षपनु, मृषय्य, लक्षधर भंवर सुगम सयवा ह्ये। विद्वसति वीथ विमै विरुधाधसि कर सरोज सोइत सुखमा ह्ये ॥

मूला की सोमा अयोध्या की प्रहारा सौं लक्ष्मण लक्ष्मण में वीरमालिका की सोमा का लक्ष्मण (१८-२२)। ये सब बर्षन बहुत उत्तम हुये हैं। इस प्रथ में मोहाई की ने शृंगार बलन अति विद्वहना से किया है और वह कहीं पर भी अरलीला से वृत्ति नहीं है।

मोहाई की के समय भी लोच गहनों पर बह कर स्वांग बनते से एवम् नरनारिणों पतर हास्वरण की माक्षिका बेती थी।

“बहुँ परनि विदूषक स्वांग साजि। करै मूट निपट गईं साज माजि ॥ नर नारि परसपर गारि हेत ॥”

अथ की वृत्ति समृद्धि (१३) श्री रामचन्द्र का म्बाव, स्वाम मोली तथा ब्राह्मण के वृत्तक बासक की कर्दारु (आमासमाज) और भी सीता जी का वास्मीकि जी के आश्रम में सेवा आना (२७-३२)। वास्मीकि जी के आश्रम में सीता जी का बाध लक्ष्मण लक्ष्मण इत्यादि (३३-३७) और अन्त के ३७वें पद में लक्ष्मण रामायण बर्षित है।

इस में लक्ष्मण जी सीता जी को लेकर मुनि को वीथ आये हैं। परन्तु वास्मीकीय रामायण तथा एवर्ष में वे सीता को गंगा पार उतार मुनि के आश्रम का मार्ग बता कर बसे आये हैं। वास्मीकीय में टिप्पों से समाचार पाकर वास्मीकि जी सीता को लपटे हैं और एवर्ष के अनुसार वास्मीकि जी सीता का स्वम रोचक सुन कर उन के बाध जा कर उन्हें ले गये हैं।

इस पीठावली में मोहाई की ने अथवा वास्मीकि जी, काश्मिरास मन्त्रुक्ति विगी ने लक्ष्मण के बुद्ध का इत्त नहीं किया है। केशव दास के रामचन्द्रिका में अथव्य किया है।

जब सस्मय जी सीता जी को बाल्मीकि मुनि के पास रख के बले हैं उस समय कुछ से कातर सीता जी का बचन सुन कर सब व्याकुल हो गये हैं महां तक कि 'मुनि भ्याकुल मयेत तव कष्टु कर्त्री न जाह ।

कवि श्री सार्वभौमिक-सहायमुनि-स्वभाव जगद्भ्यापी प्रेमसत्त्व को उस के नेत्रों के धामने खड़ा कर देता है । विद्याय की सारी अवस्थाएँ तथा भ्रष्टियाँ जिन के द्वारा प्रभुस्वप्ना प्रसूत तथा अनुमूल होती है एकता के बचन में बंधे रहने के कारण यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है यदि कवि की सूक्ष्म दृष्टि में ब गुण सिद्ध २ भ्रष्टियाँ सर्वथा एक अन्तर्निहित परार्थ-सी दीवती हैं एवम् वह जन सबों में ठीक वसा ही प्रेमसम्बन्ध पाता है जैसा किसी चतस्य जीव के अंग प्रत्यंग में हो । उसी से इन की दृष्टि में जनस्वतियाँ तथा छुड़बीब अस्तु भी मनुष्य के कुछ मुक्त में सहायमुनि प्रदर्शित करते हैं ।

इसी से यहाँ मोसाह जी ने तद्वरों की वि सता एवं मुक्त सारिका का नातोत्पाप कहा है और रामायण में सुमत ३ श्रु पदेरपुर ३ रव लेकर चलने पर 'रव इकिउ हय राम तन हेरि हेरि विदिनाहि । और इसी से भी कृप्या जी क मसुरा मनन पर, सुरदास जी के अनुसार 'बिनु नहीं पय सबहि ठबिर मुख बरत नहीं तुल कन्द तथा 'प्रभु न मिले भेनु दुबल मई स्पाम बिरह की प्राधी ॥' और कालिदास ने कहा है :—

'सृगममदमाहकुरन्निर्व्यपिशास्तयागसिद्धं समपोषयन् माम् ।

क्यापारय त्यौ दिशि दक्षिणास्याम् उत्पन्नराजीनि यिक्तोषनानि ॥"

—रघुपरा सर्ग १३ श्लोक २३ ।

यह पुस्तक 'डिग्री ऑफ ऑनर' (Degree of Honour) की परीक्षा की पाठ्य-पुरतर्षों में सम्मिलित है जिस का पारितोषिक इन्वार ठप्या है ।

## अष्टदश परिच्छेद

### विनयपत्रिका

कोई श्री रामचन्द्र जी की माधुर्यभीला पर मोहित हो उसी के गान में मस्त रहते हैं कोई उन क ऐश्वर्य ही के बणन में आमन्य पाते हैं कोई माधुर्य तथा ऐश्वर्य में मिश्रित गुण कपन का सुख उठाते हैं एवम् कोई कविन होकर उन का गुणगान किया करते हैं। गोसाईं जी ने चारों रीतियों से श्री रामगुणगान किया है। वीताबली में माधुर्य का विशेष उल्लेख रखा है और कविताबली में ऐश्वर्य का। रामचरित मानस में उन का मिश्रित गुणगान किया गया है एवम् विनयपत्रिका में आप ने कविन होकर ईश्वर का मगन किया है जैसा कि इस की रचना की कथा से विदित होता है।

कहते हैं कि एक गोसाईं जी ने दरबारे ब्राह्मण को अपने साब धिसावा और सच के ह्रास का प्रसाद भी बिरबनाच जी के नामों को बिलखा कर सच का पापरहित होना काशी के पंडितों पर सिद्ध कर दिया तब यह देख कर उन्होंने मनुष्य हरिमक्ति के रंग में रंग कर हरिमगन में निरन्तर मगन रहने लगे। इस से कलियुग को बचा अपेक्ष हुआ और यह प्रत्यक्षरूप से गोसाईं जी का उपासक करने को बमकाने लगा। गोसाईं जी ने श्री हनुमान जी से कलियुग के पमझी देने का हाल निवेदन किया। हनुमान जी ने कहा कि आबकल कलियुग का अभिकार है बिना प्रभु की आज्ञा के उसे दण्ड देना उचित नहीं। तुम एक विनय की पत्रिका लिखो उसे श्रीरामचन्द्र जी से माँ में उपस्थित कर श्री प्रभु से कलियुग के दण्ड देने की आज्ञा ले ली जायगी। इसीसे इस ग्रन्थ की रचना हुई।

इस से प्रतीत होता है कि गोसाईं जी ने इसे प्रभु के ही रूप में रखा होया—बाड़े लगातार हो, बाड़े कमराः। तथापि इस में विशेष २ स्मन के रूपे हुए पर भी पाये जाते हैं जैसे महावीर जी की स्तुति क ये पद भिन का दिवली में इन के कारामार में रखे जाने के समन बनना कहा जाता है।

सोच करते हैं कि इस ग्रन्थ का सब अंश नहीं तो कुछ अंश काशी के गोपाल मन्दिर के परिचय दक्षिण बाई कोने की कोठी में जो तुलसीदास जी बैठक के नाम से प्रसिद्ध है आररप बना है क्योंकि इस ग्रन्थ में विष्णुमाचन, बिरबनाच काशी दण्डपाणि मैरब बिसोचन मणिअर्चिका पञ्चगजा पञ्चकोश अक्षरार्णविका विशेष बर्णन है। पूर्वोक्त कोठी की बाहरी दिवाल में एक पत्ती लगाई गई है और उसपर अंग्रेजी में अंकित है। "Here Goswami Tulsi Das composed his Vinay Patrika" अर्थात् वहाँ पर गोसाईं जी ने विनयपत्रिका की रचना की।

वह विनय का एक उत्कृष्ट मान है और कवि ने इस में मारी कविता शक्ति दिखलाई है। बहुत लोगों का तो यह मत है कि ऐसी कवित्वशक्ति तथा ऐसा पाण्डित्य इन्होंने अपने अन्य ग्रन्थों में नहीं दिखलाया है। इस के अति के कतिपय पदों की भाषा कठिण है एवम् वे संस्कृत के बहु के पद हैं। सर्वसाधारण उन्हें सहज ही नहीं समझ सकते और न उस का मान ही कर सकते। परन्तु शेष पदों की भाषा सरल तथा मनोहारिणी है। इस में ब्रजभाषा के शब्द का भी बहुत प्रयोग किया गया है, कवियों की भी अच्छी छटा देखी जाती है और विनय के बड़े उत्तम २ हूबसयाही पद वर्तमान हैं। इस में मातृ की पुनरुक्ति भी बहुत है जिस से पढ़ने के समय कभी २ मन आइता है कि शीघ्र अपने बड़ते से कदाचित्त नये भाष का आनन्द लिखता। वह ग्रन्थ बड़ाही प्रभावशाली है। इस के पाठ से मन को बड़ी शान्ति प्राप्त होती है। इस में भक्ति तथा नाम साहाय्य एवम् नाम पर भरोसा रखना पूर्ण रीति से इकाया गया है। सब बातों के विचार करने से यह कहना अनुचित नहीं होगा कि ऐसा उत्तम विनय का प्रथम कदाचित् बिरसाही पामा आयागा।

इस ग्रन्थ से मोघाई जी की अपनी बातें भी बहुत ही जानी जाती हैं। इस ग्रन्थ के आरम्भ में भी मधेश जी की बन्दना है और उन से यही प्रार्थना है 'भाग्य दुःखविदास कर जोरे। बसहु राम धिय भागस मोरे। इसी मनोरथ से इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना के लिये लेखनी छडाई है और इसी के सफल होने से कठिनाल कृत अत्यातों का शमन की रव आया है।

किर पंचशैवों में से सूर्य की बन्दना है जिन के बंश को कवि के सपास्य देव न अन्य धारण कर पवित्र किया है।

किर कमला भी शिव की भैरव कासी की मन्ना, मनुगा की स्तुति करी तथा विमल्लूट महिमा बखान एवम् हनुमानजी की स्तुति है। [इस में से ३२, ३३ और ३४वें पदों की रचना दिल्ली की छटना के समय कही जाती है।]

किर श्री जानकी, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न जी की बन्दना है। सबसोगों की बन्दना केवल रामजी के पाठे हुई है और सब से प्राण यही प्रार्थना है जिस में भीराम की कवि पर कृपा हो।

४३वें पद में संक्षेप रामचरित बखान है। ४७वें में भीरामचन्द्र की आरती है। मिस्केन्द्रे सब किसी को निज इच्छैव ही ऐसी ही आरती करनी चाहिए।

“ऐसी आरती राम रघुवीर की करहि मन। हरनि दुःखद्वन्द गोविन्द आनन्द धन ॥ टेक ॥ अक्षरक्षर रूप हनि सर्वगत सर्वदा धसत इति यासनाद्युप दीजे। दीप निजशोभ गतकोपमदमोहकम प्रौढभ्रमिमान निश्चलिति छीजे ॥ भाव अतिसय यिसद प्रथमनेवैष सुम भीरमन परमसन्तोषकारी। प्रेम साम्भूल गवसूल संसय सकल विपुल मयवासना शोभहारी ॥ अमुम सुम कर्म भूतपूर्व दसर्पासिका रयागपायक सख्युन प्रकास। भक्तिवैराग्य विद्यान दीपावली अर्पि नीराजन अगनियास ॥ विमल इदि

भयनहृत् सान्तिपर्यन्तं सुमसयन यिल्लाम रामराया । छमाकरुणा प्रमुल तत्र  
परिचारिका यत्र हरि तत्र नहि मेद माया ॥ एहि भारती निरस सनफादि श्रुति सेप  
सिध देवभूपि अपिलमुनि तत्वदरसी । जोइ करै सोइ वरै परिहरै काम सब यदत  
इति विमल मति दास तुलसी ॥” १

१८वें में श्रीहरिहर की बन्धना और ५ वें में सातो काहनों की कथा संक्षेप से सूचित  
की गई है । फिर १ पदों में श्री रामस्तुति तथा विष्णुमाधव कृति षण्ण न इत्यादि के अनन्तर  
२०६ पद पर्यन्त कविने मन की मुक्तता जिस की बचलता इन्द्रियों की दुष्प्रता, क्लिष्ट की  
कुटिलता बर्णन करते परचाठाप करते मन को बिहार हैते एवं उपदेश करते अत्यन्त नम्रता  
दीनता तथा अनन्यता के साथ प्रेमपूर्ण हृदय से अपने प्रभु श्रीरामचन्द्र को कहीं बेरस कहीं  
माधव कहीं हरि, कहीं मुरारी नाम से सम्बोधन कर के उन की बहीरी विशाल स्तुति शीलाबर्णन  
तथा मण्योर्त्तन किया है और उन की कृपादृष्टि तथा मित्र उद्धार के लिये विद्वल हित से  
प्रार्थना की है । इन बन्धनाओं में इन्होंने कहीं २ वृत्तक और प्रामः एक ही पद में  
श्री रामावतार तथा श्री कृष्णावतार की शीलाओं का यान किया है । सब पदों का माध प्रमत्त  
करना तो दुष्कर है ती भी वहां पर कुछ कहने की चेष्टा की जाती है ।

राम नाम का प्रभाव बताते और उस के जपन का उपदेश करते कवि कहते हैं कि  
“मुलसिदास अतदान ज्ञान तप मुद्दि हेतु श्रुति गाबै । रामधरन भनुरागनीर विनु  
मस्त अति मास न पाबै ॥”

आगे बच कर कवि प्रभु के शरणापक होते हैं और यह विनती करते हैं कि  
“निज मबन द्वार प्रभु दीसै रहन पर्यो ।” यदि घोसाई जी के समान शुद्ध हृदय से  
हमयोग भी देखी विनती करें तो निस्सन्देह प्रभु की कृपा के माी हों ।

इसिये घोसाई जी ऐसा अचल गक्त अपने को महा कुङ्कुमी मान कर क्या कर रहे हैं —  
“तब न मरे अथ औगुन गनिहैं । जौ यमराज काज सय परिहरि यई स्यास ठर  
अनिहैं ॥ अकिहैं सृष्टि पुंज पापिन के अममंजस भिय गनिहैं ।” इत्यादि ।

फिर कवि कहते हैं कि —

“विरययारि मनमीन मित्र महि होत कयहुं पल एक । तहि सौं सहुँ विपति  
असि दाप्त मनमि कुञ्जोनि अनेक ॥” अतएव “हृना डोरि धनसी पदअंहुस परम  
प्रेम धनु चारो । एहि विधि वधि हरहु मरो मन कौतुक नाय तुम्हारो ॥” इतनाही नहीं  
बल् “कुटिल कर्म से मोहि जाइ नैह नैह अपनी बरिआई । तहैं ० अनि छिम छोइ  
छाड़िये कमठअंइ की नाइ ॥”

और शक्य यह प्रण करते हैं कि "अवस्था नसानी अम ना नसैहों। राम कृपा मय निसा सिरानी जागेठ फिर ना हसैहों ॥ पायो नाम धार चिन्तामनि उर कर से न पसैहों। श्यामरूप मुचि कविर कसौटी पित कवन हि कसैहो ॥ परवस जानि हस्यो इह इन्द्रिन निजपस ह्वै न हसैहों ॥ मन मधुपहि पन कै तुलसी रघुपति पद कमल यसैहों ॥"

आगे बलहर गोसाईं जी एक अग्य पेनी के समान जो बहता है कि

"थैठ हूँ तेर दर पै सो कुछ करके ठठेगे।

या धरखही हो आयगा या मर क ठठेगे ॥"

हठपूर्वक ईश्वर के द्वार पर बैठे हैं।

"पन करि हौं हठि आमु तें राम द्वार परयो हौं। तुम मरे यह विनु कबै उठिहों न जनम मरि प्रमु की सोह करि निवरयो हौं ॥ वै बफा यममठ बकै टारै टरयो हौं। उदर दुसह सांसखि नहि यहु वार जनमि जग निदरी निकरयोहों ॥ हौं माबल लै छुटिहों जेहि लागि परयो हौं। प्रगट कहत जो सकुबिये अपराध मरयो हौं। तो मन में अपनाइये तुलसिहि कृपा करि कलि विलोकि हहरयो हौं ॥"

इसी प्रकार अनक माषों से श्रीरामचन्द्र जी की किम्पनी कर के २७६ पद के अन्त में गोसाईं जी कहत हैं — 'दशरथ के समरथ तुहीं त्रिभुवन जस गायो। तुलसी नमस अवसोकि, वशि वाह द्योक्त वै विरदावली घोसायो।' अर्थात् आप की विरदावली बाह का खारा दे क हमें साईं दे, हम आप के बरस कमलों पर सीस नभाते हैं। हे प्रभो आप कृपावष्टि कीजिये।

२७७ में अपनी 'विनयपत्रिका' प्रभु की सेवा में उपरिबत कर उस पर सही करने के शिष्य भी प्रभु को सविनय निवेदन करते हैं "विनय पत्रिका दीन के थाप आप ही पाँचो। शिष्य हर तुलसी शिखी मो सुभाय सही करि यहुरि पूछिये पाँचो।"

जैसे कोई कनहरी में हाकिम के पास दरखास्त देकर और अपना हाल सुना कर वहाँ के अमलों से भी कह रहता है कि सुबसर पा कर मेरी दरखास्त पेश कर दीजियेगा जैसे ही गोसाईं जी ने भी प्रभु की सेवा में 'विनयपत्रिका' उपरिबत कर एवम् अपनी प्रार्थना सुना कर एक पद में श्री प्रभु के दरबार क लोगों से भी विनय किना है कि मित्र २ अक्षर में कवनातिपि को ह्य शीन की सुधि दिखायेगा।

समय पाकर मास्तनन्द तथा भरत जी की इषि विश्व लक्षण सात के गोसाईं जी इत 'विनयपत्रिका' के विषय में भी रामचन्द्र से निवेदन करन पर सन शोग उद्य का अनुमोदन करते हैं आर भी प्रभु विहँसि कर कहते हैं कि 'हो मुझे उसकी खबर है' एवम् उस पर सही कर देते हैं और गोसाईं जी का अर्घ्य सिद्ध होता है।

"भाकवि मन, कवि भरत की क्षपि क्षपन कही है। कलिकाल हुं नाथ नाम सों प्रसीति प्रीति एक किंकर की निवही है ॥ सकल समा सुनि जे बढी जानि

रीति रही है। कृपा गरीबनवाज की सपत्त गरीय को सहसा वाह गयी है ॥  
विहसि राम कछो सत्य है सुधि मैं हूँ सही है। मुदित माय नावत बनी दुलसी  
अनाय की, परी रघुनाय सही है ॥”

पं० ज्वाला प्रसाद के अठार विद्वनाय जी के मन्दिर में ‘विनयविद्या रत्ने जाने  
पर जब उस पर उन की सही दुह बस समय का यह पद है ‘दुलसी अनाय की परी रघुनाय  
धरी है’ परन्तु इस पद के ऊपर के प्रसंग से यह कथन ठीक नहीं लगता। इस ग्रन्थ में  
२८ पद हैं। महात्मा हरिहरप्रसाद जी ने अपनी टीका में इसका जो माग करके ३९वां  
पर इस ग्रन्थ का पूर्वार्ध समाप्त किया है। बहुत से महात्माओं ने इस ग्रन्थ के विषय को  
चीनता मानमपेक्ष भयदर्शन, भर्त्सन आदिवाचन मनोराज्य तथा विचार इन सब मायों में  
विभक्त किया है।

महामहोपाध्याय पं दुबाकर त्रिपेयीजी ने इस विषय का संस्कृत गीत बनाया है। महात्मा  
हरिहर प्रसाद जी ने हिन्दी में इस की बहुत उत्तम टीका की है। सुनते हैं कि जूनारम्भासी  
पं भाग्य प्रताप तिवारी इस का अंग्रेजी अनुवाद कर रहे हैं।

पं० लक्ष्मणराज जी ने इस ग्रन्थ को कलकत्ता ‘प्रोर्टे विजियम कॉलेज’ के छात्रों के हिते  
पहले पहल १८९६ ई में मुद्रित किया था।

## ऊनविंशति परिच्छेद

### दोहावली

यह ग्रन्थ मोरशामी जी ने पुस्तकालय किसी विशेष समय में नहीं लिखा था। यह गोसाईं जी इन्त दोहों का संग्रहनाम है। संकलन इन के समय में हुआ था पीछे इन के किसी प्रेमी ने किया था इन्होंने स्वयम् किया यह बात ठीक बात नहीं होती। हाँ। यह कथा अक्षरय प्रसिद्ध है कि इन्होंने राजा टोडरमल्ल के अनुरोध से अपने पूर्वलिखित पुस्तक के दोहों को एकत्रित कर तथा कुछ नवीन दोहों की रचना करके यह धर्म और नीतिपूर्ण संग्रह तैयार किया था। परन्तु इसमें 'रामाज्ञा' के कई एक शब्द पाये जाने से राजा टोडरमल्ल के अनुरोध से यह संग्रह तैयार होने में भिन्नसंनसाहब को संदेह हुआ है क्योंकि सुकृष्ण शाल के अनुरोध 'रामाज्ञा' की रचना सं० १६२२ में हुई थीर वहाँ सं० १६४६ में राजा टोडरमल्ल का स्वर्ग पवान हो गया था।

परन्तु अब कोई २ महाशय सं० १६२२ रामाज्ञा के प्रथमन का नहीं बरन् उस प्रति के लिखे जाने का समय मानते हैं जिस से मुकृष्ण शाल ने मकल की थी और अब दोहावली की इस्तिकिखित एक प्राचीन पुस्तक में जो स्वयम् भिन्नसंन साहब को प्राप्त हुई थी रामाज्ञा का एक भी दोहा नहीं था तो दोहावली का राजा टोडरमल्ल के समय सञ्चित होना अवश्य नहीं दीखता। प्रत्युत इस से यह बात सिद्ध होती है कि दोहावली में रामाज्ञा के दोहे पीछे सम्मिश्रित किये गये हैं।

और हमारा तो यह अनुमान है कि मोरशामी जी ने राजा टोडरमल्ल के अनुरोध से नहीं बरन् अपने भिन्न कारीगिवासी टोडर के अनुरोध से जिस का ऊपर वर्णन हो चुका है, दोहावली का संग्रह तयार किया होगा। यह अनुमान स्वीकार करने से सब व्योरा ठीक हो जाता है। क्योंकि टोडर के स्वर्गवास के अनन्तर आप सं० १६६२ में उन के लकड़े और पेटे के मगड़े में पंथ हुये थे। तब निरन्तर उन की मृत्यु भी उस के बोहे ही दिन पहले हुई होगी क्योंकि किसी भी सम्पत्ति बंटने के शिघे उस के उत्तराधिकारियों में प्रायः उस की मृत्यु के कुछ ही फाल पीछे भयङ्ग उठ जाता होता है। तब यदि रामाज्ञा का प्रथमन सं० १६६२ में भी हुआ हो तो दोहावली के टोडर के अनुरोध से संग्रहित होने की कहानी अक्षरय प्रतीत नहीं होती और उसके संग्रह का समय चाहे १६२२ के पहले या पीछे माना जाय इस से भी कुछ शक्ति नहीं।

हाँ! इससे राजा टोडरमल्ल कारीगिवासे टोडर अक्षरय हो जायगे। परन्तु हम मानते हैं कि इन्तकथा एवं किसी २ की खोजनी ऐसा गहनक अक्षर कर देती है और मुख्य प्राची को छोड़ कर



किसी सुप्रसिद्ध व्यक्ति के साथ किसी ब्रह्मा का सम्बन्ध जोड़ने में प्रवृत्ति नहीं करती। सिद्ध गुरुओं की कीर्तियों के प्राचीन लेखकों ने भी मिर्झा रामा अबसिंह के बचसे सवाई अबसिंह का नाम एवम् रामा रामसिंह के स्थान में विष्णुसिंह का नाम लिख दिया है। मिर्चरंज साहब बराबर दोनों दोहर को एक मान कर भ्रम में पड़ते गये हैं। दोनों दोहर एक ही व्यक्ति नहीं वे यह बात धम्मत्र दिखलाई जा चुकी है। जो हो, इस संप्रदाह को दोहर नामक व्यक्ति से व्यवहार सम्भव है, चाहे वे काशीवाले दोहर हों चाहे दिल्लीवाले हों। दोनों ही का होना सम्भव है जैसा कि ऊपर दिखताया गया है। बस्तुतः लोग ने ऐसा कहने की कोई सम्मती नहीं है।

3.

परन्तु प्राचीन संप्रदाह में दोहरे लोगों से और दोहादि जोड़ दिया है ऐसा अनुमान करने का प्रयास पाया जाता है। एक तो मिर्चरंज साहब का एक प्राचीन प्रति में रामासा का कोई दोहा नहीं पाया है। दूसरे 'हरिबाबरी कपूर को उचित व पिय तिब स्वाग। कै हरिबा मोहि मेहि कै विमल विनेह विराग ॥' इस का इस प्रथ में होया है। यह दोहा पोस्त्वामी जी की जी का रचा क्या जाता है और 'मनि मानिक मेंहनी किये सङ्गो तुन अठ नाब। दुखयो चारो जागिने, राम गरीबनिबात्र ॥' इस दोहे को शोय रहीम खानखाना के नाम से भी सुनना बताते हैं। इस के सम्बन्ध में तो यह कहा जा सकता है कि इन दोनों महम्मदाओं में परस्पर स्नेहभाव रहने के कारण सम्भव है कि उन्होंने ने इसे बनाकर गोसाईं जी के पास भेजा हो और इन के रचनाओं के साथ रहने से यह भी संभव हो गया हो वा गोसाईं जी ही से यह सग को प्राप्त हुआ हो वार सग के नाम से प्रसिद्ध हो गया हो। परन्तु इन की जी के नाम से प्रसिद्ध दोहा के विषय में ऐसी बात भी नहीं कही जा सकती क्योंकि उन्होंने न आप से मेट होने पर यह दोहा प्रकाश किया था। शोय ऐसा ही करते हैं। फिर प्रथ में कहा तहाँ सोटा का भाग है जो 'दाहाबली नाम में धम्मा लगा रहा है। यह अनिवारपूर्वक कारन गोसाईं जी वा प्राचीन किसी संमहकर्ता का होही नहीं सकता। यह करनी हमारे प्रसीध अणकगुरामिओं ही की होनी किन्हीं गोसाईं जी की रचनाओं में इपर उपर से निरर्थक जोड़ लगाने बिना सम्तीय ही नहीं होता।

वर्तमान दोहाबली में १७१ शब्द हैं जिन में से ५३ चाहे रामायण में ९ बैराह-मन्त्रीपत्नी में, ३३ रामासा में तथा १११ सतसुरे में पाये जाते हैं और शोय नये दोहे हैं।<sup>१</sup> इस में सब मिहाकर ११ चोरटे हैं। दोहे तथा चोरटे सग नाममाहात्म्य मक्ति नीति के उपदेश एवम् अनेक विषयों के वर्णन में हैं और मक्ति का खर रटाते हैं। इन बाहों से गोत्वामी जी के समय की अवस्था तथा बैराह्या की बहुत कुछ अव्यक्त लग सकती है।

१ मिर्चरंज साहब ने बाबू रामजीब सिंह की सहायता से पृष्ठ सूची इस बात की सेवा कराई थी कि गोसाईं जी कृत किस १ प्रथ के कीन २ दोहे दोहाबली में पाये जाते हैं। उसी से ये जोड़ संभवान् यहाँ पर लिखी गई है।

दोहावली के कई एक ऐसे दोहे जो गोसाईं जी के अम्य प्रश्नों में नहीं पाये जाते, नीचे उद्धृत किये जाते हैं ।

“मोर मोर सब कई कईसि, तू को कई निज नाम ।  
 कै शुप साधहि सुनु समुक्त, कै तुलसी अप राम ॥१८॥  
 विगरी अन्न अनेक की, सुघरे अन्न ही आज ।  
 होइ राम को राम अप, तुलसी तजि कुसमाज ॥२२॥  
 जे जन रूप विषय रस, धिकने राम सनेह ।  
 तुलसी ते प्रिय राम क, कानन यसहि कि रोह ॥६१॥  
 तुलसी जो पै राम सों, नाहिन सहज सनेह ।  
 मूढ़ मुझायो यादही, माह मयो धमि रोह ॥६३॥  
 तुलसी परिहरि हरि हरहि, पावर पूजहि मृत ।  
 अंत फभीहत होहिगे, ज्यों गनिका क पूत ॥६५॥  
 साहव सीता नाथ सों, अय धटिहैं अतुराग ।  
 तुलसी तब हीं माल तें, ममरि मागिहैं माग ॥७०॥  
 मुख मीठ मानस मलिन, कोकिल मोर अकोर ।  
 सुजस अयल अतक नवल, रखो मुयन मरि तोर ॥२६६॥  
 तुलसी जे कीरति अहहि, पर की कीरति पोय ।  
 तिन क मुख मसि अगिहैं, मिटहि न मरिहैं पोय ॥३८८॥  
 तुलसी पावस क समय, परि कोकिलन मौन ।  
 अन्न तो दादुर बोसिहैं, हमैं पूछिहैं कौन ॥५६४॥”

इसके कुछ दोहे 'बाहुक' की समाप्तिना में उद्धृत हुए हैं ।

## विंशति परिच्छेद

### रामाज्ञा

वह पुस्तक ७ अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में ४२ श्लोक हैं। उन्हें सात भागों में बांटने से सात २ श्लोकों के सात २ स्तक होते हैं। इस पुस्तक में रामाज्ञा की कथा कही गई है परन्तु उस क्रम से नहीं। पहले तथा चौथे अध्यायों में नासनाश की कथा है, दूसरे में अयोध्याकाण्ड एवम् कुछ आरण्यकाण्ड की कथा तीसरे में आरण्य आर क्विच्छन्वा, पाँचवें में छन्दर तथा रुद्रा, छठवें में राक्षसनिबन्ध, सप्तमासक, बह उरुगुफ, मति-स्वान, और सीता परिव्रजागादि की बातें एवम् सातवें में स्फुट कवितार्य हैं।

कहते हैं कि इस ग्रन्थ को गोसाईं जी ने अपने एक मित्र प्रह्लादनाथनिवासी संन्यास ब्रह्मचरि का प्राण संकट में पड़ने से शत्रुण विचारने के लिये बनाना था। कथा ऐसी है कि काशी में रामनाथ के रामा गणेशारवरीय एक क्षत्रिय के बिल के बंशपर जब माँवा और कठित में राम करते हैं। एक बार उन का कुमार अक्षर केसवे गया। उस के एक साथी को बाध पकड़ ले गया। रामा को खबर मिली कि उसके पुत्र ही को बाध था पना। इस से पनबा कर रामा ने पूर्वाह्न बोटिबी को बुलाया और अपने पुत्र के विषय में प्रश्न कर कहा कि 'यदि आप की बात सच होगी तो एक लाख पारितोषिक पाइयेया, नहीं तो आप का सिर काट दिया जायगा। बोटिबी की उत्तर देने के लिये एक दिन का समय मंग्य भर आकर बचाव पक रहे। वे पिरय सानकाह में गोसाईं जी के संग गङ्गा पार सन्त्याबन्धन को जाना करते थे। उस दिन उन के साथ जाना अस्वीकार करने पर तथा उस का कारण जानने पर गोसाईं जी ने उन्हें भै संप्रदान किया। निदान दोनों मित्रों के गङ्गा पार से लौट जाने पर कलमहाबाह के अभाव में गोसाईं जी ने पानडिका से कन्य निबन्ध और बोल कर एक सरई के टुकड़े से ६ बटि में वह पुस्तक लिखकर बोटिबी जी के हाथों किया। गोसाईं जी के आदेशाशुसार शत्रुण विचार उन्होंने में प्राण काह था कर राम पुत्र के अनुग्रह लौटने का समय बता दिया। रामा ने उस समय तक उन्हें बन्धीशुद्धि में रहने की आज्ञा दी। ठीक बताये समय पर रामकुमार भर आ बसक्य। आनन्द भिमण रामा बोटिबी जी के समय दिखाने पर उन्हें मुक्त किया और उन के अस्वीकार करने पर भी शत्रुण विषय पारितोषिक से कर उन्हें दिया किया। वे लिये गोसाईं जी की सेवा में उपस्थित हो सब अपना इन के चरणों में अर्पण करते लगे और इन के लेने में सहमत नहीं होने पर उन्होंने आमहर्षक गोसाईं जी को दण्ड हजार कन्या दिया। उस दण्ड से गोसाईं जी ने हनुमान जी का दण्ड मन्दिर बनवा दिया, जिन में दक्षिणामुख स्थापित मूर्तियाँ अभी तक बरामाव हैं।

यह क्या म कु रामजीन सिंह ने प्रियर्सन साहब से कही थी और उन्होंने न इसे अपने प्रयोग में सन्निवेशित किया है। परन्तु उन्होंने ने पाद नोट में यह भी लिखा है कि 'पं० सुभाकर त्रिवेदी कहते हैं कि इस आख्यायिका में ठीक समय बतलाया जाना ही इस की सत्यता में बड़ा सहायक है। रामाज्ञा से ठीक समय निराय नहीं होता। इस से तो कोइ नया अर्थ्य आरम्भ करने के लिये शुभाशुभ शयुन का विचार होता है। अन्तिम अक्षर के १-२ दोहों यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है।'

इस पुस्तक की एक प्राचीन प्रति गोसाईं जी के हाथ की लिखी हुई कारी के प्रस्ताव पाठ में एक माझख के पास थी जिससे मिरजापुर निवासी भू० लक्ष्मण शाह ने अपने लिये एक प्रति तैयार की थी। उन्होंने न लिखा है कि श्री संवत् १९२५ ज्येष्ठ सुदी १० रविवार की लिखी पुस्तक धी गोसाईं जी के हस्तकर्म की प्रस्तावपाठ थी करी में रही। उस पुस्तक पर से श्री पं० रामगुलाम जी के सन्तपी लक्ष्मण शाह कायरथ रामायणी मिरजापुर ने अपने हाथ से संवत् १९०४ में लिखा।'

पं० सुभाकर जी के कथनानुसार उक्त ब्राह्मण महाशय का नाम रामकृष्ण था और उन के क्या बचने के लिये कही जान के समय अन्त पुस्तकों के साथ वह भी रस से जोरी करी गई।<sup>१</sup>

उनके घर गोसाईं जी का चित्र भी वर्तमान होना और उन के स्वर्गपदान की लिखि को सर्वसाधारण को उस का दर्शन कराया जाना कहा जाता है। कदाचित वह चित्र स्वामी ने अक्षर पाठ्याह के निमित्त तैयार कराया था।<sup>२</sup> तब वह ब्राह्मण महाशय को कैसे हाथ गया ?

'कारी नायरी प्रचारिणी समा' द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि 'इच्छा थी कि इस का कोइो टिपा काम परन्तु इसके माणिक के मर जाने से अब नहीं जानते कि किस के अधिकार में है।'

उस में यह भी लिखा है कि 'उस समय (संगाराम जी के समय) रामपाठ का कितार्कश हो चुका था, महम्मूद गज़नवी के सेनानायक सन्त साहब मसऊर (या जू मिया) की सहाई में यह किता दूट चुका था। मुसलमानी समय में यहाँ के बक़्तेश्वर मुसलमान होत थे। अन्तिम अक्षरेश्वर मीर खतम अली थे जो दरारबमेय के पास मीर पाठ पर रहते थे तिनको बतमान

१ Vide Indian Antiquary—Notes on Tulsi Das p. 27 28

२ पुनार के पं० धानुप्रताप निचारी ने प्रवस साहब को लखर की बीडि गाथाई जी की हाथ की लिखी हुई एक प्रति करी में गोसाईं जी संस्थापित सीधाराम के मन्दिर में विद्योद के समय तक थी फिर चोरी हो गई। और सं० १९०० की लिखी हुई प्रति की उनके पास एक नकल है।

इसी पुस्तक की हर जगह म चोरी क्यों ?

३ Notes on Tulsi Das, by Grierson, p. 8-9 note.

अरीराजर्षय के संस्वापक मनधारण ने मग्न कर नहीं की राखी थी भी ।' अर्थात् उस समय नहीं कोई हिन्दू राजा नहीं था ।

इस से पुस्तक लिखे जाने का कारण निःसार सिद्ध होता है । और गोसाईं की कृपा आश्रम के छात्रों के बावों तथा अन्य शीश्रीन बाबूजों के समान रहा अपने पाकेट—नहीं नहीं अपनी गांठी वा ग्लोबी में—गान का डिब्बा लिने फिरते थे या आधुनिक संवसुसंभ मर्दों के खरम मर्दी मखनद्विस्तारी भाव बिमेटरामिहायी तथा बिलासप्रिय ने कि किरा अंश के समन सम्भावम्भन के समन मी पाम का डिब्बा साव नहीं छोड़ता था ! निरुचय उची प्रकार की किष्ठी सियाही से वह पुस्तक लिखी गई होगी । ऐसा करने का हम साहस करते हैं और इस का कारण है । हमारे पास लगभग छौ बर्ष की सिष्ठी हुई पुस्तुकी अक्षर में एक पंजरणी है । अपने बार भाइयों में सबसे बड़े हमारे पुत्रपाप काका मुन्गी हरिबंरा खहान की निरुच इस का पाठ किया करते थे किन को स्वर्णपत्रान किने आन ५० बर्ष हुआ होगा । इस रंग की सिष्ठी का रंग मी करने के रंग बैसा है ।

पं मुबाकर जी ने १९२२ सं को रामाज्ञा के प्रथमन का समय नहीं बरन उस प्रति के लिखे जाने का समय माना है, जिस से मुन्गी अक्षर लाल ने नकल उठारी थी । उन का यह कथन ठीक प्रतीत होता है क्योंकि इस पुस्तक की कविता साधारण है इस में गोसाईं जी की प्रौढ़ खेखनी की अलक नहीं देखी जाती । यदि इसे गोसाईं जी ने बनाई हो तो इस की रचना किष्ठी ऐसे समय हुई होगी जब उन की खेखनी पूर्ण बरलती नहीं हुई थी ।

हमारी समझ में यह बात भी नहीं आती कि गोसाईं जी ऐसा कोई भुरन्बर कवि प्रथम अध्याय में बालकाण्ड की कथा कह कर फिर दूरत ही चौथे अध्याय में उची काण्ड की बातें लिख कर इतनी बड़ी खनी चौकी पुनरुक्ति का शेष अपने ऊपर क्यों आने लगा और दोनों बर्षों में प्रमेद मी क्यों होत होगा ? प्रथम अध्याय में परशुराम की बारात लौटती समय आने हैं और चौथे में उस का आगमन ही नवारद, परन्दु बालकी की की उत्पति की बात है । रामचरितमानस में मी कई स्थानों में सनुवन रामकृपा सचित रूप से बर्णित हुई है । परन्दु उस का कारण नहीं पर स्पष्ट विदित हो जाता है । इस में तो हूँ होने पर मी नहीं मिलता । यदि कहिये कि सात अध्याय पूरा करने के लिये ऐसा किया गया तब दो दो कारणों की कथाएँ एक अध्याय में बने की कृपा आवश्यकता थी । उन्हीं का कुछ बिरतार करने से सात अध्याय हो जाता । और एक अध्याय में तो स्पष्ट कविता भी देखी जाती है । ये सब बातें निरसम्भेह अन्वैह-वत्पाविनी हैं । परन्दु रामाज्ञा से ख्युन विचार काया करता है अतएव हम उस की टीतियां नीचे लिख देते हैं ।

एक टीति यह है कि एक मुट्ठी कमलपद्मा लेकर सात ७ करके गिनता जान शेष संख्या अध्याय की संख्या होगी फिर दूसरी मुट्ठी लेकर उची रीति से छतक की संख्या एवं तीसरी से चोथे की संख्या स्थिर करके शयुन का विचार करे । गिनन में यदि कुछ भी शेष नहीं रहे तो सात माना जायगा और उची के अनुसार अध्याय छतक वा दोहा देख कर शयुन विचार जायगा ।

दूसरी रीति यह है कि एक सात परों का और दूसरा ४२ बरों का हो चक्र बना हो । पहले में उंगली रखने से जिस अंक पर उंगली पड़ेगी वही अन्वय की और दूसरे चक्र की जिस चक्र्या पर उंगली पड़ेगी वही दोहा की, सम्झा होगी । वय उस अन्वय के उस दोहे को पढ़ कर हानि क्षाम जान लेना होगा ।

शुद्ध विचारने की रीति ७वें अन्वय के ४३ ४४ दोहों में भी बताई गई है :—

“मुदिन सांक्र पोधी नेवति, पूजि प्रयात सप्रेम ।  
सकुन विचारव चारुमति, साधर सत्य सनेम ॥  
मुनि गनि, दिन गनि, धातु गनि, दोहा देखि विपारि ।  
देस करम करता यचन, सगुन समय अनुहारि ॥”

परन्तु धातु तो आठ (अष्ट हस्त) प्रसिद्ध हैं । तब कैसे बनेगा ? और शुद्ध विचारने के समय यदि इन्हीं दोहों में से कोई एक निश्चल भावे तब क्या फलप्राप्त निकलेगा ? गोसाईं की इतना आवश्यक सोच सकते थे । वे तथा इस के आगे के दोहे भी सम्बेहजनक ही हैं ।

नोट—यह भीमनी कृपानने क बोके ही दिन पहले हम का कारी की 'नामरी प्रचारिणी पत्रिका' में रखे हुए साठ अक्षरों का एक लेख देने में आया । आप अपने को पं० मधु राम उद्योतिपी का बचपन बताते हैं और लिखते हैं कि गंगागामिनी दो माई ने । दूसरे का नाम शौमल राम था । उन के बचपों में पं० गिरिवर अक्षर हुए । इन के पास ही प्रियदर्शन साहब ने गोसाईं की की तसबीर देखी थी । मैं उन का माता हूँ । अक्षर में 'रामाज्ञा नहीं किन्तु 'रामशलाका' की जो रामचन्द्र (मेरे बहनोई के माई) और गंगाधर (मेरी मा के पुत्र के पुत्र) के हाथ से सं० १९२०-२२ के करीब सुदेरों में श्रीनामजी की बच्चा के समय उदयपुर के निष्कल जूट ली थी । उस रामशलाका की नकल मिरजापुरनिवासी पं० रामगुलाम की त्रिकेरी के भोला-कमन सात जी के पास है । तसबीर मेरे पास सुरक्षित है । रामाज्ञा की रचना के सम्बन्ध में जो बातें प्रियदर्शन साहब ने लिखी है उन्हीं का सारांश इन्होंने 'राम शलाका के विषय में लिखा है ।

अक्षरों सुष्टि हुई । 'रामाज्ञा की सब बातें इना हो गई । उस की बचपन 'राम-शलाका' विराजमान कराई गई । परन्तु प्रियदर्शन साहब ऐसा खात्री पुरष में क्या बिना निश्चय किये ही कल्पन सात लिखित नकल सम्बन्धी बाबन को 'रामाज्ञा के विवरण में जोड़ दिया है । जो हो इन सम्बन्ध बातों से तो यह अनुमान करना अनुचित नहीं होगा कि अक्षर प्राचीन काल से लोगों ने रामाज्ञा का सम्बन्ध गोसाईं की से जोड़ रखा है, जैसा कि आज लोग बहुत से प्रश्नों को जहाँ की रचना में सम्मिश्रित करते आ रहे हैं । परन्तु वस्तुतः यह उन का रचा प्रश्न नहीं है । इन आगे 'रामशलाका' की भी समालोचना किये ही देते हैं ।

किन्तु इस के पूर्व बिच के विषय में कुछ कहना आवश्यक समझते हैं । लोगों का कथन है कि प्रह्लादवाटवाले दिन को प्रियदर्शन साहब ने जाकर स्वयम् रखा था । परन्तु कर्मों में

वह बात कही स्पष्टरूप से नहीं कही है। 'तद्विलास' वाली रामायण में जो चित्र दिया गया है (और भिन्न पुस्तक के प्रकाशन में उन्होंने ने सहानुता भी थी) उस क सम्बन्ध में केवल यही लिखा हुआ है 'हाथ के लिये हुये प्रति प्राचीन और प्रमाणिक चित्र से लिया गया है। वह कहा से और कैसे हस्तगत हुआ उस का कुछ हाल नहीं लिखा है।

पूर्वोक्त पं० रणछोड़ साहब म्यास आरी दुलसी-रमारु की सहानुता के लिये प्रस्ताव वाटवाला चित्र (जो वे अपने पाठ सुरक्षित होना बताते हैं) कृपाकर भ्रम बँचाने लगे हैं। काशी नईबली के रहनेवाले सुप्रसिद्ध ज्योतिषी पं० रत्नाचार्य जी ने एक बार भाव रामसीन सिंह से कहा था कि 'बाँधीका से मोक्षामी भी का हाथ एक गया था, उसी समय प्रस्ताव वाटवाला चित्र उतारा गया और उसमें एक हाथ सूखा है। पीछे वह हाथ दुस्त हो गया था। म्यास जी जो चित्र बँच रहे हैं उस में एक ही बाँहु नहीं बरतू दोनों हाथ और दोनों पैर सूखे हैं। ईशने से प्रतीत होगा है कि 'प्लीहा रोग' प्रस्त किन्ती प्राची क चित्र हो। उभयुक्त दोनों चित्रों में तमिः भी सादर्य नहीं पाया जाता।'

### रामशलाका

म्यास रणछोड़ साहब के कथनानुसार जो रामशलाका पुस्तक बोरी हो गई वह कैसी भी सो तो नहीं कह सकते, परन्तु प्रचलित रामशलाका बस्तुतः कोई विशेष पुस्तक मटीत नहीं होती। रामचरित मानस की कई एक बीपाइनों को लेकर लोगों ने शकुन विचारने का एक बर रिचर किया है। प० रामेश्वर मह ने स्वसम्पादित रामायण में इसे चर्चित किया है। और एक बर के कर शकुन विचारने की रीति भी बताई है। उस में शुभाशुभकृत नामने के लिये नीचे की बीपाइयाँ दी हुई हैं।

- १ सुनु मिय सत्य असीस हमारी। पूजहिं मनकामना हुम्हारी ॥
- २ प्रथिसि नगर कीजे सब काजा। हृदय रापि कोसल-पुर-राजा ॥
- ३ उपरे अंत न होइ निवाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू ॥
- ४ विधि वस सुजन कुसंगति परहीं। फनि मनि संम निम गुन कानुसखीं ॥
- ५ होइहैं सोइ जो राम रचि राया। को करि तर्क बढ़ावहिं सापा ॥
- ६ सुख संगल मय संत समाजू। भिमि जग जंगम वीरयराजू ॥

१ श्री रामदास गीढ़ ने भी एक जेक में लिखा है कि यह चित्र उस समय का है जब वह रावण ग्रीहा या बह्व के किसी रोग से पीड़ित होंगे।

उन्होंने रावणरूप दास के बही के एक चित्र का भी हाल लिखा है और कहा है कि इस चित्र में 'रोगी का सा रूप भी नहीं है तो भी बाई बाँह सूखी हुई है। जब वह दोनों चित्र संतकाल के बही हैं तब उनका बाँह का सूखना संतकाल की भयना नहीं हो सकता।'

- ७ गरज सुपा रिपु करै निवाइ । गोपद सिंधु अनस सितसार्ह ॥  
 ८ वहन कुनर सुरेस समीरा । रन सनमुप धरि काहु न घीरा ॥  
 ९ सफल मनोरथ होहि तुम्हारे । राम लपन सुन मये सुपारे ॥”  
 और मैनेजर मार्गद पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित रामायण में १-८ बीपार्हों के बदले निम्नलिखित बीपार्हों देवी जाती हैं —

‘आयत इहि सर अस्ति कठिनाइ । राम कृपा विनु आइ न जाई ॥  
 सठ मुचरहि सतसंगति पाइ । पारस परिस कु घासु सुहाइ ॥  
 कठिन कुसंग कुपय करासा । तिन क यमन व्याघ्र हरि ब्यासा ॥  
 जपहि नाम जन भारत मारी । मिटहि कुसंकट होहि सुपारी ॥”  
 शिवसिंह सरोवर में रामायणका का जो छन्द उद्धृत किया गया है वह उन्सु क दोहों  
 महायज्ञों में से किसी भी रामायणका में नहीं देखा जाता —

पं० अशोकप्रसादादि जी रामायण में कबल एक बेकर यह लिखा हुआ है कि नियमा  
 अनुसार इस कोष्ठ के अक्षरों को सेने से वा बीपार्ह बनेगी उस क अर्थ के अनुसार शुभाष्टमकल  
 समझना होगा ।  
 इन सब बातों से स्पष्ट विदित होता है कि ‘रामायणका’ गोपार्ह जी हय कोरे विद्यप  
 पुस्तक नहीं है ।



## एकविंशति परिच्छेद

### जानकीमङ्गल

रामचन्द्र तथा अन्य तीनों माइनों के विवाह का इतिहास इस पुस्तक में वर्णन किया गया है। इसमें १६२ अक्षरों का अक्षर और २४ हरिवीतिकी कन्द हैं। आठ २ अक्षर अक्षर के पीछे एक हरिवीतिकी है।

इस का मङ्गलाचरण देखिये :—

“गुरु गनपति गिरजापति गौरि गिरापति ।  
सारथ सेस सुकवि क्षुति संस सरथ मति ॥  
हाम जोर करि बिनय सखि सिर भावों ।  
सिय रघुवीर विवाह यथा मति गावों ॥  
सुम दिन रघुयो स्वयंवर मंगलदायक ।  
सुनत सखन हिय सखि सिय रघुनायक ॥”

इस पुस्तक से ना किसी अन्य रीति से इस का रचना का काल ज्ञात नहीं होता।

इस में राम अथवा कुलवासी में नहीं बने हैं। नन्दराजा में ही राम सीता का परस्पर संवर्तन हुआ है। कवि कहते हैं—

“राम बीस जब सीय सीय रघुनायक ।

दोष तन तकि तकि मैन सुपारत सायक ॥”

अन्य रामायणों के बहुत नहीं होने पर विरवामित्र ने कहा है कि रामचन्द्र को बहुत होने की आज्ञा दी गयी और उन की अनुमति के विचार से जनक के कुछ संकोच करते और विरवामित्र ने रामचन्द्र की महिमा वर्णन की है। तब जनक भी से बहुत होने की आज्ञा पाकर रामचन्द्र ने बहुत उठाकर दोष काहा है।

कोहबर में एसा कहने की विधि हुई है। इस में विवाह के अनन्तर परशुराम की का आगमन हुआ है और लक्ष्मण की से कुछ बातचीत नहीं हुई है।

इन बातों के सिवाय अन्य कथाएँ रामायणवर्षित कथाओं से मिलती हैं। परन्तु इस के कई अर्थों के कारण भी सर्वथा वा अंशमात्र रामायण के दोहे और शीपाइनों के कारणों से मिलते हैं। रामायण के समान अर्थ तथा पुष्पवृद्धि भी होती गई है।

१ यह अक्षर २० अक्षर का होता है। श्री बाबा रामदास कृत गद्यमस्तारक मन्त्रालयाया देखिये।

अब इस की कुछ कविता अबलोकन कीजिये । देखिये मुनि के छय दोनों माई अक्षय से बस कर राह में कैसे जा रहे हैं ।—

“गिरतठ वेक्षि सरित सर यिपुल विसोक्छि ।  
षाषहिं धाक्षसुभाष विहंग मृग रोक्छि ॥  
सकुचहिं मुनिहिं समीत बहुरि फिर भाषहिं ।  
छोरि पृल फल किससय माल घनाषहिं ॥”

रामायण में गोसाईं जी इस सुन्दरता के साथ दोनों माइयों को मुनि के छय नहीं ले गये हैं । हाँ ! गीतावली में यह कवि अल्छी रीति से दिखताह गई है ।

जनकपुर में दोनों माइयों को देख जनक जी को महानन्द प्राप्त हुआ है । कवि करते हैं ।—

“वेक्षि मनोहर मुरति मन धनुरागेठ ।  
बैन्यो सनेह विदह विदेह विरागेठ ॥  
प्रमुवित हृदय सराहत मल मक्सागर ।  
अहँ अपजहिं अस मानिक विधि बङ्गनागर ॥  
पुन्य पयोधि मातु पितु ए सिंसु सुरतठ ।  
रूप सुधा मुद्व देत नयन अमरनि षठ ॥  
केहि मुकृति के कुंभर कहिये मुनिनायक ।  
गौर रयाम ह्ययिषाम धरे धनुसायक ॥  
विषय विमुल मन मोर सेह परमारय ।  
इनहिं वेक्षि मयो मगन जानि यद्द स्वारय ॥”

इस पुस्तक में गोसाईं जी की दोहनी की छी कहीं २ अक्षरी देखी जाती है ।—

“कहस मचन रद क्षसहिं दमक अनु दामिनि ।”

“होति विरहसर मगन देखि रघुनाथहिं ।

फरकि वाम मुज नयन देहिं अनु हाषहिं ॥”

अन्त में कवि करते हैं ।—

“ठपवीत घ्याह बहाह जे सियराम मंगल गामही ।

हुससी सकल कस्यान त नर नारि अनुदिन पायही ॥”

‘धीरैकदेशर’ झापाखाना द्वारा प्रकाशित दोबश रामायण देख कर शोहाबली रामाज्ञा जालधीमज्ञह, पार्वतीमज्ञह, कृष्ण गीतावली, ज्यौरामायण श्रीर संवद मोचन की समालोचना की गई है ।

## द्वाविंशति परिच्छेद

### पार्वतीमङ्गल

इस पुस्तक के आदि में ये कई छंद दिये गये हैं जिन से इस की रचना का कारण तथा काल ज्ञात होता है।

“विनय गुरुहिं गुनगनहिं गिरिहिं गननाथहिं ।  
इदय आनि सियराम धरे धनु माथहिं ॥  
गायठ गौरि गिरिस विघाह सुहायन ।  
पापनसायन पावन मुनि-मन-माषन ॥  
कवित रीति नहिं आनठ कवि न कहायठ ।  
संकर भरित सुसरित मनहिं अन्हवायठ ॥  
पर अपवाद विवाद विवृप्ति धानिहिं ।  
पायन करौं सो गाह मधेस भवानिहिं ॥  
जय सम्बत् फागुन सुदि पांचय गुरुदिन ।  
अस्थिनि विरभेठ मङ्गल मुनि सुल छिनु छिनु ॥”

इस से स्पष्ट विहित होता है कि यह पुस्तक जय संवत् फागुन सुदि पंचमी वृहस्पतिवार को अरिबनी नद्य में बनी या उस दिन इस की रचना आरम्भ हुई। परन्तु यह नहीं जाना जाता कि जय संवत् कौन किसकी संवत् था। महामहोपाध्याय पं. दुवाकर जी ने यचना कर के बताया है कि जय संवत् १९४३ विक्रमी संवत् में चल रहा था। उस हिसाब से भिन्नर्जन साहू ने इस पुस्तक की रचना वृहस्पतिवार २ नवंबर १९०९ ई. लिखा है। उन्होंने 'मोक्ष औन तुलसी दास' टीपिक श्रेण में १-२३ ई० के इन्डियन ऐंटीक्यूरी के ५०-५० में इस यचना का विस्तारपूर्वक बखान किया है।

इस पुस्तक में १४० 'अक्षय' छन्द और १९ हरिगीतिका छन्द हैं। हरिगीतिका छन्द एक नियम से नहीं रखा गया है। एक स्थान में ९ एक स्थान में १० तीन स्थानों में १२, एक स्थान में १६ और शेष में ८ अक्षय छन्दों के बाद हरिगीतिका का वर्तन होता है।

इस पुस्तक में शिवाशिव विवाह की कथा बर्णित है। परन्तु जिस वज्र से गोसाईं जी ने यह कथा रामायण में लिखी है उस वज्र से इसमें नहीं बरी गई है। इस में महाशिव काठिन्यास इत श्रुमार सम्भव का अनुसरण किया गया है।

१ भिमी २ में इस पार्वतीमङ्गल के छन्द को छोड़र छन्द लिखा है। सोहर छन्द २२ कथा का बतलाया गया है, जैसा कि 'रामसदानन्द' में है।

मारु के इस उपदेश पर 'अबसि होई विष साहस फले सुसाधन । कोटिद्वन्द्वसक सरिस संसु अवरामन ॥ दुन्द्वरे आसम अबहि ईष तप साधहि । कहिये उमहि मनुसाइ आय अवरामहि ॥' मातापिता की सम्मति से सखियों के सह पार्वती शिवजी की सेवा में उपस्थित हो उन की सेवा आराधना करने लगी हैं । उसी समय देवता के भजे कर्णको मरम कर' उस की स्त्री को बर देकर उदासविध महादेव जी दूसरी बयह पढ़े गये हैं ।

इपर पार्वती की उम की प्राप्ति क अर्घ्य कठिन दुष्कर तप में प्रवृत्त हुई हैं । उसी उष तपोवन में इन के साथ ही थी । इन की तपस्या से प्रसन्न हो महादेव जी स्वयं ब्रह्मचारी का भेष धारण कर इन की प्रेमपरीक्षा को भाये हैं और इन की सखी के मुख से तप का कारण सुन कर वे आप अपनी निन्दा करने लगे हैं ।

“कहु काह सुनि रीमहु यर अछूतीनहि ।  
अगुन अमान अमालि मातु पिनु हीनहि ॥  
भीष मांगि मष पाहिं धिता नित सोषहिं ।  
माषहिं नगन पिसाच पिसाचिन जोषहिं ॥  
मांग घसूर अहार छार सपटाषहिं ।  
जोगी अटिक सरोष भोग नहिं माषहिं ॥  
एकहु हरहिं न वरगुन काटिक दूषन ।  
नरकपाल गअलात व्यात विष भूषन ॥  
कई रावर गुन सीष सरूप सुहायन ।  
कई अमङ्गल भप विरोष मयावन ॥”<sup>१</sup>

और यह २० कला का छन्द है । श्री बंभयवर-धन्वालय-मन्त्राशित 'पोषण रामायण में इस छन्द को 'बभौ लिला है । बभौ रामायण के छन्द से मिथ्याम्न देख लीजिये कि यह कहाँ तक ठीक है । पर अब कि इस छन्द के प्रकाशक ने पूरे छन्द का नाम जिस में पार्वतीमङ्गल तथा 'कृप्यगीतावली' सम्मिलित है गण्डवृ रीति से 'पोषण रामायण रखा है तो उन्हीं छन्द का अण्डवृ नाम मिल देने में क्या दिक्कत है ? गोसाईं जी ने किसी देवता के विषय में कविता की ही तो क्या सब रामायण ही कहलावेगी ?

१ कुमारसम्भव के अनुसार जब दावती जी महादेव जी के पास उम के पूजनार्थ उपस्थित थीं उसी समय काम मत्स किया गया है । सती होने के लिये उद्यत रती को आकाशवासी हुई है कि 'शरीर मत नष्ट करो तुम्हें निजपति का पुनः संग होगा ।

२ 'बयुधिरुपाकमसङ्घन्नता त्रिगन्धर्वत्वेन विवेदितं वसु ।

वैशु यद्वाचान्वाचि मूरपते तद्स्मि किञ्चन्ममपि किञ्चन ॥' —कुमार सं

इतना करने पर भी पार्वती को अपने प्रथम में अग्रत पाकर भी इन्होंने अपने यथार्थ स्वरूप का दर्शन वे वहाँ से किये गये हैं और पार्वती भी आनन्द से इष्टपुत्र्य शरीर हो सहेलियों के साथ बिना किसी के मुलावे पर बसी आई हैं ।

पीछे महारैव भी ने छत्राश्रयियों तथा अरुन्धती को मेत्र कर अपना विवाह ठीक कराया है । बारात आने पर जब शिव और शन के पशों के मेघमूषस का समाचार सुन कर मैना को सोच तथा परवाचाप हुआ है तब हिमवान ही ने ईशान मयनाम श्री महिमा बधाकर उन्हें छन्दुष्ट किया है । अगवाणी होने के अनन्तर ही वे अनवाधा में चले गये हैं । विवाह के समन छुन्दर रूप धारण कर मलय में आने पर परिष्कन हुआ है । और बेवनार विवाह के पीछे हुआ है । जानकीमण्डल के समान कोहर में चूषा श्री विधि भी हुई है । आकस्मिकायी, प्रसूनवृष्टि तथा शकुन भी होता गया है ।

नगर निकल आने पर हरि ने परिहास से कहा था कि अपना २ समान बिलन कर चले बायं —

“बिबुध वीक्ष्य हरि कहेठ निकट पुर आयहु ।  
 आपन आपन साज सबहिं बिलगावहु ॥  
 प्रसयनाथ के साथ प्रसयनन राजहिं ।  
 विविध मांति म्रुप बाहन बैप बिराजहिं ॥  
 मरकपात जल मनि २ पियहिं पियावहिं ।  
 कमठ खपर मढ़िं बाल निसान बजावहिं ॥  
 पर अनुहरस बरात यनी हरि ईसि कह ।  
 सुनि हिय ईसठ महेरा केसि कोनुक मह ॥”

इस हंसी के पद्ये में शिव जी ने अमरगाथा को बख ही बक़ाया है । नगर निवासियों को मनमोह देख आप ने अपना तथा अपने गणों का ऐसा सुन्दर नेप सवारा कि बस के सामने सब का सब फीका पड़ गया । कवि करते हैं :—

“क्षत्रि क्षौत्रिक गति सभु जानि वड़ सोहर ।  
 मय सुन्दर सतकोटि मनोज मनोहर ॥  
 नीक्ष निबोक्ष छास मई फनि मनि म्रुपन ।  
 रोम २ पर उदित रूपमय पूपन ॥  
 गन मय मङ्गल मय मदनमनमोहन ।  
 सुनत बजे हिय हरपि मारिमर मोहन ॥

संसु सरद राकस नपतगन सुरगन ।

जनु भकोर बहु भोर यिराजहि पुरजन ॥”

कदाचित् इसी से कास्मिन्नास ने कहा है कि यदि बाइने के बोम्ब रूपवाले इस जोड़े (शिकारिण) को (मद्गा नहीं मिलावे तो मद्गा का इस जोड़े में रूप बनाने का परिश्रम व्यर्थ हो जाता ।

“परस्परेण सूहृयीयशोभं न भविद्दं द्वन्द्वमयोजयिष्यत् ।

अस्मिन् द्वये रूपविभानयत्न पत्यु प्रजानां यिफसोऽभविष्यत्”

कवि न इस प्रन्थ के अन्त में कहा है —

“कल्याण काज उछाह व्याह मनेह सहित जो गाइहैं ।

सुखसी वमा स कर प्रसाद प्रमोद मन भिया पाइहैं ॥”

इस का रङ्ग बङ्ग और नाम सब जानकीमङ्गल के समान है । इन दोनों पुस्तकों की कबार्दे भी रामायण बसित जानकीविवाह तथा पार्वतीविवाह से मिल पाई जाती है और प्रमेद अविच्छर पार्वतीमङ्गल में देखा जाता है । दोनों एक ही छन्द में लिखे गये हैं और दोनों की कविता में भी उतना अन्तर नहीं है । इस से अनुमान किया जा सकता है कि इन दोनों की रचना एक ही कवि द्वारा एक ही समय कुछ दिन आगे पीछे हुई और पहल पार्वतीमङ्गल का प्रथमन हुआ क्योंकि जानकीमङ्गल की कविता अपेक्षाकृत कुछ अधिक उत्तम है । अर्थात् इन दोनों की रचना सं १९४३ में रामायण लिखे जाने के १२ वर्ष पीछे हुई । परन्तु आश्चर्य है कि रामायण की प्रौढ़ता इन के छन्दों में नहीं देखी जाती यद्यपि यहाँ २ उस के भावों की मङ्गल और उस का कन्दार्थ इन प्रबंधों में अचरम दृष्टिगोचर होता है ।

यदि यह कहे कि बयोद्वि के कारण इन प्रन्थों की कविता में शिथिलता आ गई तो भी नहीं हो सकता क्योंकि इस संबन्ध के पीछे की कवितायें जो कविनामनी में समावेशित हैं रामायण ही के समान उत्कृष्ट देखी जाती हैं । और क्या संबन्ध को जो हमारे लिये क्या हमारे समान हजारों क लिये एक नई वस्तु है खेपक मानने का भी हमें कोई कारण नहीं दीख सकता । एष प्णोतिर्विदुं पं सुपाकरनी की गणना के सामने उसे विक्रमिय संबन्ध १९४३ नहीं मानने का भी हमें साहस नहीं होता । तब यह अनुमान किया जा सकता है कि जानकीमङ्गल की रचना योसाइजी ने रामायण के पहल की आर उसी का अनुकरण कर क किसी अन्य तुलसी कवि ने पार्वतीमङ्गल बनाया अथवा किसी कवि की प्रभा सबकाल में समान ही देखीतमान नहीं रहती अतएव गोस्वामी की कृत होने पर भी इन प्रन्थों में शिथिलता आ गई । जोहो परन्तु पार्वतीमङ्गल के योसाइजी हत होने में बहुत से लोग सन्देह करत हैं ।

## त्रयोविंशति परिच्छेद

### कृष्णगीतावली

यह ग्रन्थ गोसाईं जी ने प्रन्व के टंय से नहीं लिखा था इस में उल्लेख नहीं। इस के पद्य समय समय पर लिखे गये थे और पीछे से संकलित हुये। इन पदों की रचना गोसाईं जी ने प्रब्रह्ममन पर नहीं की थी ना वहाँ से लोटे आने पर या कुछ बड़ा और कुछ लोट आने पर या आने के पूर्व ही की थी ठीक नहीं कहा जा सकता। सब बातें सम्भव हैं। इस की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है।

इस प्रन्व में भिन्न २ रागों के ११ पदों में छीकृष्ण भक्तविहारी की कई एक लीलाएँ यथावधि बर्णन की गई हैं। प्रब्रह्मभाषा से यह ग्रन्थ होने के कारण कोई २ इस के गोस्वामी की कृता होने में सन्देह करते हैं। परन्तु यह केवल भ्रममात्र है। उस समय ब्रह्मभाषा का प्रचार था। कवि लोग प्रब्रह्मभाषा ही में कविता किया करते थे। गोस्वामी जो ब्रज भी पढ़ाये थे। कृष्णगीता का प्रब्रह्मभाषा में बर्णन करना उपयुक्त समझ कर कवि इहाँ ने उसी भाषा में इन पदों की रचना की तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। इन की कवितावली भी प्रब्रह्मभाषा में लिखी है। और कृष्णगीता बर्णन भी आश्चर्यजनक नहीं क्योंकि कवितावली तथा विनय पत्रिका में भी कृष्ण सम्बन्धी कविताएँ तथा पद्य देखे जाते हैं।

पहले पद्य में कृष्णचन्द्र मा की गोप्य में बैठे तोलती बातें कर रहे हैं; दूसरे में बिहारी सुखी कोठी मोठी रोधी जाने को मान रहे हैं और बस मैया को नहीं देने का विचार कर रहे हैं; तीसरे में एक गोपी उलहना दे रही है; चौथे में कृष्ण कह रहे हैं कि 'यह सुनने मूठे ही रोय लगा रही है; पाँचवें में बहोदा कहती है कि यह तो अपने घर ही जाता करता है दूसरे के घर क्या जाता है! १३वें तक इसी प्रकार की बातें हैं। १४-१० में बहोदा रोय तथा कलती बचन है। मरता के हाथ में ताड़ना के विमित लकड़ी देव कर भाव रो रहे हैं। कवि करते हैं —

“भंजु बंजन सहित सदाकल सुखत लोचन बाढ।  
स्वामसारम भग मनो समि स्रक्त सुधा सिंगाह॥

१ प्रियमन साहब का कथन है कि इस की भाषा गोसाईं की कृत कृत पुस्तकों की भाषा से भिन्न होने के कारण बहुत से विद्वान् इसे गोसाईं की कृत ही भाषा स्वीकार नहीं करते। (Indian Antiquary P 45 1893 A D) और मैं समझता हूँ कि यह पुस्तक अगर बर्लिन स्थित गये तुलसीदास की बनवाई न होती। (The Modern Vernacular Literature of Hindustan)

मुमग ठर दधि बिन्दु मुन्दर क्षपि अपनपो बाह ।

मनहुं मरकत सृदु सिसर पर लसत धिसव मुपारु ॥”

१८वें में अपनी पूजा न पाने से इन्द्र का क्रोध देखिये । ऋषि ने इसे राग महार में वर्णन किया है ।

“ब्रज पर घन घर्मह कर धायो ।

अति अपमान विचार आपनो कोपि सुरेश पठायो ॥

दमकसि दुसह दसहुं दिसि वामिनि मयो धम गरान गैमीर ।

गरमत घोर धारिधर धायत प्रेरित प्रवल समीर ॥

वार वार पयिपात षपल धन धरसत बृद विसाल ।

सोत समीव पुकारत ध्यारत गोमुत गोपी ग्वाल ॥

रापहु रामकान्ह यहि धवसर दुसह दसा मइ धाई ।

मन्द धिरोध क्रियो सुरपति सों सो तुम्हरो वसत पाई ॥

सुनि हैंसि ठळ्यो नन्द को नाहृ क्षियो कर कुधर ठठाइ ।

तुलसिदाम मभवा अपने सों करि गयो गब गँवाइ ॥”

२४वें तक गोवर्द्धन धारण, गोधारण शोभावर्णन इत्यादि के अनन्तर २५ से मधुरागमन जनिष्ठ गोपीगण विरह बहुत उत्तम रीति से वर्णन किया गया है । २२ से उद्भव तथा एक भ्रमर को सम्बोधन कर के गोपियों का निज प्रेम तथा प्रेमभ्यषा कथन एवम् कृष्ण कृपरी, उद्भव और भ्रमर पर भ्रंग की बौद्धार है—

“ऋषो या ब्रज की दसा विचारो । ता पीछे यह सिद्धि आपनी जोग कथा विस्तारो ॥ आ कारण पठये तुय माधय मो सोचह मन माहीं । फतिक धीष धिरह परमारय जानत हो किषों नाहीं ॥ परमचतुर निज दास स्याम के संवत निकट रहत हो । जसबृहसत अमलंघ फलु को फिर फिर कहा गइत हो ॥ ध अति क्षणित मनोहर ध्यानन कौने जवन विसारों । जोग जगुति धर मुकुति विविध विष या मुरखो पर धारों ॥ जिहि ठर यसत स्याम मुन्दर धन तिहि निर्गुन किन धावे । तुलसीदास सो मजन वहावै जाहि दूसरो भावै ॥”

“ऋषो जू ऋषो तिहरो कीयो । नीकै जिय की जानि अपनपो समुक्ति सिन्धायन दोयो ॥ स्याम धियोगिनि ब्रज के क्षोगनि जोग जोग जो जानो । सों संकोष परिहरि पा क्षागो परमारय ही धपानो ॥ गोपी ग्वाल गाइ गोमुत सब रहत रूप अतुरागे । दीन मल्लीन छीन तनु दोक्षत मीन मजा सों लागे ॥



तुलसी है स्नेह दुपदायक नहीं जानत अस को है। उऊ म होत कान्ह को सो मन सबै साहिबी सोई ॥”

अपनी विरहबन्धा बर्णन करते २ एक गोमी कह उठ्यी है—

“गये कर तें पर तें भागन तें अज हू तें अजनाय । तुलसी प्रभु गयो बहस मनहु तें सो सो मेरो हाथ ॥” अर्थात् मैं मन से कैसे जाने दूगी !

और उधो आप जो योग २ कह रहे हैं वो—

“सगुन शीरनिधि शीर बसत अज तिहुँपुर विदित बढाई । आकतुइन तुम्ह कह्यो सो परिहरि मोहि यह मति नहीं माई ॥”

और नहि कोई कहे कि ऐसा प्रवृत्त प्रेम है तो उन के विबोग में तुम्हारा प्राण क्यों नहीं प्रयाण करता तो उस का कारण छुमिये —

“ज्ञान ज्ञान समान लगत हर बिहरस छिन छिन होव निनारे ।

अवधि जरा जोरति इठि पुन पुन या तें रहत सहत तुल मारे ॥

पायक विरह समीर स्वांस तनु तुल मिलै तुम्ह मारनिहारे ।

किन्हहि निदरि अपने हित कारन रापत नयनन जुगल रपवारे ॥”<sup>१</sup>

पुनः—“बिनु अजनाय आप नयनन को कौन हरे ?” अर्थात् कोई नहीं हर सकता । क्योंकि—

“कन जुंम मरि-मरि पियूपजल बरपत सक छल्य सस हारे ।

कदली सीप चातक को कारज स्वाति धारि बिनु कोठ न संवारे ॥

सब भ्रोग दनिर किसोर स्याम घन जेहि हृदमज्ज असत हरि प्यारे ।

तेहि हर किमि समाप्त विराटबपु सोमिव सहित सिंधु गिरि मारे ॥

बहयो अति प्रेम प्रलय के घट ज्या विपुस्त जोगजल बोरि न पावे ।

तुलसि दास अज वनितन को अत को समरय करि मदन निवारे ॥”

इसी प्रकार योग पर प्रेम की प्रभावता प्रतिपादन करते अपने परम पुनीत प्रेम प्रकाश से विमोहित कर पोषियों ने छल्लब ऐस प्रीण ज्ञानी को भी प्रेम प्रवाह में मसा दिया है । घोषीयण आप बन्ध हैं । आपका प्रेम बन्ध है । आप प्रेम-यन्त्र-वर्षियों के शिरोमणि, पत्रप्रदर्शक तथा परम पूजनीय हैं । आप के बरणों में बारम्बार नमस्कार है ।

इस के अन्तर होपदिबीर सम्बन्धी दो पद हैं ।

१ हमे रामदास के विरह अगिन तन तुल समीर हाहादि से मिच्छाहये ।

इस ग्रन्थ में विशुद्ध शृंगार तथा प्रेम बहुत विशदरूप से वर्णन किया गया है। कविता बड़ी ही सरस, रुचिकर तथा मनोहर है। सुन्दर भावों का भी समाव नहीं है।

अब हम यहाँ पर केवल एक बात कह कर आगे बढ़ते हैं। ऊपर उल्लिखित पदों में से यह पद 'ऊबो का म्रम की दसा विचारो ह्रीं सु० कवच कियोर के यत्रात्म का क्षपा 'सूरसागर' में सूरदास जी के नाम से देखने में आया है। यह समालोचना हम वीबेस्टेरकर सम्पादित 'पोडशरामायण' देख कर लिख रहे हैं। दोनों ग्रन्थों में दोनों महाकवियों के नाम से एकही कविता यह अस्मि की बात है तथा प्रथमप्रकाशकण्य पुरातन महानुभावों की रचनाओं के संग्रह में कैसा गड़बड़ कर देत हैं और कर रहे हैं उस का यह एक प्रथम प्रमाण है। इन दोनों ग्रन्थों में से किस का लेख ठीक माना जाय ? हम तो कहेंगे कि प्रकाशक ने उसका सूरसागर नाम ही स्पर्ध रखा है क्योंकि उस में सूरदास जी के अतिरिक्त मन्वदास, लीतवामी बनुसु'बदास आदि के भी पद वर्तमान हैं। उस का नाम अष्टद्वाप पदावली संग्रह, 'अष्टद्वाप मण्डितामण्डार' जैसा धाई रखा जाता तो ठीक होता और यह 'सूरसागर' नाम पड़ा तो उस प्र-म में कवच सूरदास जी ही के पद संग्रह किये जात। परन्तु ऐसा रूप 'पोडश रामायण' में भी है जो कि पार्श्वतीमण्ड की समालोचना में दिखसाया गया है।

## चतुर्निशति परिच्छेद वैराग्य सन्दीपिनी

इस के प्रथम का समय नहीं जाना जाता। लोगों का अनुमान है कि श्रीरामायी होने पर कवि ने इसकी रचना की है। इसका तात्पर्य यही होगा कि बिरह होने के बोध ही दिन बीचे इस की रचना हुई। नहीं तो बिरह होने पर तो इन्होंने सब मन्त्रों ही की रचना की है।

इस पुस्तक में ४६ दोहे २ सोरठ और १४ बीपादवा हैं। इस के पहले दोहे में श्री सीताराम की मुख मूर्ति का ध्यान है; दूसरे दोहे का यह भाव है कि बिना राम के ध्यान के सदा सुखानन्द से विच प्रकुम्भित नहीं जाता। तीसरे दोहे में रामस्मरण का प्रयोजन वर्णन हुआ है। इस के अनन्तर एक सोरठ में धर्म ब्यक्त अनामादि गुण विराट ईश्वर के नर तन धारण करने का वेद कहा गया है। इस के अनन्तर नीचे लिखे हुये दो दोहे हैं —

“तुलसी यह तन तथा है, तपत सदा मैठाप।  
माति होइ अथ साति पद, पावै राम प्रसाप ॥  
तुलसी यह तन पेत है, मन वष कर्म किसाम।  
पाप पुण्य टै बीज है, कबे सो जखे निवान ॥”

यह वैराग्य सन्दीपिनी क्या है इसे कवि ने इस दोहे में बताया है —

“तुलसी वेद पुरान मत, पूरन साक विचार।  
यह वैराग्यसन्दीपिनी, अपिल ज्ञान को सार ॥”

यह ग्रन्थ तीन प्रकाशों में विभक्त हुआ है। पहले में २६ (२२ दो० + ४ व) इन्द्रों में समस्तसमाप्त वर्णन किया गया है। दूसरे प्रकाश में ६ (५ दो + १ छो + १ व०) इन्द्रों में समस्त महिमा कही गई है। तीसरे में १२ दोहे तथा ४ बीपादवा में शान्ति का वर्णन है।

मुद्ररिक्त बन्धनाटक में इस की टीका की है। यही इस समय हमारे सामने उपलब्ध है। बाबू महादेव प्रसाद ने १८८६ ई० में यह टीका सम्पादकीय लिपिकों के साथ प्रकाशित की है। मैगपुरीनिवासी बेजनाथ दास ने भी इस की टीका की है। पाली टीका काशीपुर ‘अङ्गविलास’ प्रेस में एचम् ब्रह्मरी लखनऊ के सु० नरहरिचोर के प्रेस में मुद्रित हुई है। ‘अङ्गविलास’ प्रेस में एचम् ब्रह्मरी लखनऊ के सु० नरहरिचोर के प्रेस में मुद्रित हुई है। ‘अङ्गविलास’ प्रेस में एचम् ब्रह्मरी लखनऊ के सु० नरहरिचोर के प्रेस में मुद्रित हुई है। ‘अङ्गविलास’ प्रेस में एचम् ब्रह्मरी लखनऊ के सु० नरहरिचोर के प्रेस में मुद्रित हुई है।

संत महिमा के विषय में गोसाईं जी ने कहा है —

“को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा संत की ।  
जिनके विमल विवेक, सेस महेश न कहि सकत ॥”  
महि पत्री करि सिंगु मसि, तह देखनी घनाइ ।  
तुलसी गनपति सो सदपि, महिमा लिखी न आइ ॥  
तुलसी भगत स्वपच मसो, मजै रैन दिन राम ।  
ऊंचो कुत केहि काम को, अहां न हरि को नाम ॥<sup>१२</sup>

‘शान्ति प्रकरण का सारांश यह है कि भक्ति भूपित वास यदि ज्ञानवान हो और सर्वस्वापी हो कर ईश्वर प्यान में मग्न रह शान्ति प्राप्त कर एवम् सहजरील हो तो वह महानन्द अनुभव करेगा । शान्ति क सम्मान कही कोई दुख नहीं । शान्ति प्राप्त करने से उस मन्त्र के हृदय में राम की बोधार्थ फिर जाती है । कामक्रोधादि भाग जाते हैं एवम् वह काममा हीन, अईश्वरशून्य वेदसम्पन्न हो जाता है । मित्र की ऐसी व्यवस्था हो जाती है वही ज्ञानी है, वही प्यापी है, वही गुणी है, वही सर्वश्रेष्ठ है और वही ऐसा कह सकता है :— न मत्तम है मलाई से न यह आदिष्ट कि शाही हो । इलाही हो नहीं ओ दुःख कि मर्बाये इलाही हो ॥”

१ गोसाईं जी के कथन की नीचे किले कथनों से तुलना कीजिये —

“संत की महिमा वेद न जानहि ।  
“नामक संत प्रभु भेद न भाई ।” } सुकमधि साहब, महारजा ५

२ “राम नाम संग मन नहीं हैता । जो कष्ट कीनी साह अयेता ।  
जा तें उत्तम गनिये चैदाका । नामक चेहि मन बसहि गोपाका ॥”

## पञ्चविंशति परिच्छेद

### वरवै वा वरवा रामायण

यह बोधी-सी पुस्तक वरवा रूप में है। इस बंद का प्रति वरवा १६ कला का होता है एवम् १२ और छिद्र ७ कला पर अति (Cesura) होता है। प्रवाद है कि गोस्वामी जी ने अपने मित्र रहिम खानखाना के अशुभ से वरवै रूप में इस पुस्तक की रचना की थी। उन के एक मुसीबत छेकर अपने घर अपना विवाह करने पमे थे। छुट्टी पूरी होने पर घर से आने के समय पहले उन की रानी ने उन्हें उधाराने का मन्त्र किया परन्तु उन के राक्षी नहीं होने पर उस ने यह वरवा 'मिम प्रीति कै बिरवा बलेठ स्याव। सीवन की सुधि सीवो, सुरमि न जाव' लिख कर उन्हें खानखाना की सेवा में उपस्थित करने को दिया। खानखाना उसे देख कर ऐसे प्रसन्न हुवे कि जन्हों ने उस मुसीबत को दूर कर लौट आने की आज्ञा दी और उस बंद में जन्हों ने स्वयम् भी बहुत-सी कविताएँ कीं एवम् अपने इष्ट मित्रों को भी उस बंद में कविता करन का अशुभ किया।<sup>१</sup>

रामचरितमानस के सुप्रसिद्ध बक्ता धीमन्धन पाठक जी ने वरवै रामायण की 'स्नेह प्रकाशिका' टीका लिखी है। उसे भीरामदीन सिंह जी ने १७६३ ई. में प्रकाशित किया है। बैरनाथ दास मगपुरी ने भी इस की टीका की है जो लखनऊ के मु. लखचिटोर के आपेखाने में रखी है। दोनों टीकाएँ अच्छी हैं। परन्तु इन में बहुत से अर्थों के रत्नान कर्म में प्रमेय है। हम प्रथम टीका को आगे रखकर यह समाधोषना लिख रहे हैं।

वरवै रामायण में सब मिलाकर ६६ बंद हैं। और देवी ७ काव्यों में विभक्त किये गये हैं। परन्तु उन में रामकथा आमासमाप्त ही पाई जाती है।

पुस्तक के आदि में रामचरितमानस प्रवृत्ति के समान महासापरण नहीं है।

वाक्याकारण—में १६ बंद हैं। १-७ तक में भी रामचन्द्र का एवं ८-१३ तक में भी कामधी जी का हीरान्य वर्णन है। पाठक जी ने 'बने नवन कृति सुकृति मात विद्याल। तुलसी मोहत मनहि मनोहर बास ॥' को आदि में रखकर 'बास शब्द का अर्थ बाहराज्यमार भीराम किया है। और बैरनाथ दास ने पाठक जी के ८-१३ तक के अर्थों को क्रम से १, २, ३ और अर्था एवम् पूर्ण प्रथम वरवा को उवा लिख कर 'बास का अर्थ ही अलकधी लिखा है और तदनन्तर अर्थों ने पाठक जी के प्रबंधाला ७ तथा ९-६ वरवा दिया है। कदाचित्त इन महात्माओं ने अपनी ३ उपासना के अनुसार इन अर्थों का रत्नान कर्म लिख

१ परन्तु मु. देवी प्रसाद कृत लखनखाना की जीवनी में इस का वर्णन नहीं है यद्यपि इस प्रकार की बहुत-सी दूसरी बातें उस में देखी जाती हैं।

किन्ना है। परन्तु न मालूम प्रियर्सन साहब ने कौन सी पुरतक बेखबर लिखा है कि 'सीम' कन्दों में श्री सीता विविधर्षण के अनन्तर रामायण की कथा सुप्तरीति से कही गई है। क्योंकि उपर्युक्त दोनों पुस्तकों में युगल मुर्तियों की विविधर्षण के अनन्तर रामायण की कथा—धनुषमग्न १ कन्दों में तथा विवाह १ कन्दों में—आमासमात्र देखी जाती है।

अयोध्याकाण्ड—में = कन्द १ कैकेयी कोप (आमासमात्र), और बनयात्रा दो कन्दों में मार्पस्व प्रामवासियों का वार्तात्पाप; गङ्गा माहात्म्य तथा पद्मप्रज्ञासन फिर प्रामवासियों का वचन। बारमीकि वचन एक कन्द।

आरक्ष्यकाण्ड—'विदनाम कवि, अंगुरिण पंक्ति अकास। पठयो सुप्तया ही, लपक पास।' इस में कूट का बड़ा देखा जाता है। गोसाईं जी को और कहीं तो कूट कहते नहीं पाते।<sup>१</sup> क्या यहाँ सुप्तया के आने ही से इन के मन में कूट का उमङ्ग हुआ। दो कन्दों में कंचन मय प्रसङ्ग और शेष सीम में जानकीविरहजनित रामचन्द्र का सन्ताप।

किष्किन्धा—दो कन्दों में हनुमान तथा सुभीष से रामचन्द्र का परिचय और वार्तात्पाप जैसा कि टीकाकारों ने लिखना है।

सुन्दरकाण्ड—६ कन्दों में श्री जानकी जी का हनुमान से राम विरहजनित सन्ताप (आमासमात्र) वर्णन और हनुमान जी का जम की बरसा रामचन्द्र से निवेदन करना।

सर्षकाण्ड—में एक ही कन्द विविधवाहिनी विरहसत संहित अनन्त। अलवि सरिस को कही राम मगवंत। टीकाकार कहते हैं कि विविध वाहिनी = नागा प्रकार की सेना लिखते—किन्ना से शत्रुविजय, जानकी प्राप्ति विभीषणराज्य कवि ने लकाया है। यदि इस रीति से कन्दों को काण्डों में विभक्त करके रामायण बनाई जाय तो केवल रामचरित मानस ही में से अनेक रामायण बन सकती हैं, गोसाईं जी की अन्य रचनाओं की बात पूर रहे।

उत्तरकाण्ड—२७ कन्द। दो में विजकूट महिमा और शेष में श्रीराम जी के पादपद्म में नेह तथा रामनाम अपने अर्थात् ईश्वर मक्ति का आदेश और माहात्म्य है। इन कन्दों में रामायण के नाम माहात्म्य का बहुत सा भाग ज्यों का त्यों आ गया है। बरन् कुछ अक्षर इधर उधर कर देने से ये बरबै भी चौपाइयों के समान हो जायेंगे।

इस पुस्तक के एक विहारी कन्ध मृ गाररस के होंगे। यद्यपि वह मृ गार-वर्णन रूप्यीम नहीं है, तथापि हनुमान जी का यह वाक्य "सिय विभोय कुछ केहि निधि कहतं यपानि। फूलवान ते मगसिब देवत आनि।" सीता जी का रामविभोगजनित दुःख नहीं बरन् कामजनित दुःख जताता है जो गोसाईं जी की लोकाजी तथा हनुमान जी के मुख के बोध नहीं। कूट भी काम में बटकता है। अतएव यदि हम इस पुस्तक के गोसाईं जी हस्त होने में सबह करें तो इस धनुषि नहीं होगा। परन्तु लोगों के कथनानुसार जब प्रकथित—'बरबा

१। रामसप्तसई का तीसरा सर्ग कूट ही में कहा गया है। परन्तु इस ग्रन्थ को भी बहुत से माननीय पुरुष गोस्वामी जी कृत होना नहीं मानते और न मानने का एक कारण बही कूट का होना बताते हैं।

पयाबल' अर्थात् है तब अर्थात् पुस्तक को देखकर पूरी सम्मति देनी सतम नहीं। हों। वर्तमानावस्था में हम इतना अवरुध कहते कि मोसाई की ने नियमपूर्वक इस नाम का कोई प्रयुक्त नहीं रहा है। मम के उमर में उन्होंने कुछ कुछ बरबाद करने की रचना की होगी और उनके संग्रह के समय अन्यविरहित बरबाद भी उमर में सम्मिलित हो गये होंगे या कर दिये होंगे और वे ही कालों में घटफटे हैं एकसूत्र में अन्वेष उत्पन्न करत हैं। पूर्णतः दोनों दोषकारों की पुस्तकों में अन्वेष के स्थानक में प्रवेश होना भी इसे संग्रहमात्र ही सिद्ध करता है।

## पद्मविंशति परिच्छेद

### रामलला नहछू

यह पुस्तक एक ग्राम ग्रन्थ में लिखी गई है। इस का प्रतिवरण २२ कला का है एकम् १२ और १० पर यत्रि है। इस का नाम लोग सोहर ग्रन्थ कहते हैं। 'काशी ना प्र० समा द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि 'इपर का पास ग्राम काह सोहर है जो कि रिन्नो पुन्नोसव और विवाहोसव आदि ग्राम शोसव पर गाठी है विहारप्रांत में पुन अमोसव ही के समय के गीत को सोहर कहते हैं अन्य समय के गीतों को नहीं।

बारात जाने के पूर्व नहछू श्री विधि होती है। वर को माता मोद में लेकर बैठती है और माइन वर के केसल पैरों का मल बाटती है और नखों को महावर से रंग देती है। बिच समय तक नहछू नहीं होता पैर के नखों को नई श्री नहरनी से नहीं कटते।

सुनते हैं कि संतुक्त प्रवेश तथा मित्रिणादि प्रवेशों में यज्ञोपवीत के समय भी नहछू श्री विधि होती है। प रामयुक्ताम रिनेरी श्री के कपलानुसार यह नहछू पारों भाइयों के यज्ञोपवीत के समय का है। इसके टीकाकार प 'बन्धन पाठक' इसे मुन्धम का नहछू कहते हैं। सुपन्न प्रायः यज्ञोपवीत के समय हुआ करता है। परन्तु इसमें अन्य तीनों भाइयों के नहछू होने का वर्णन संकेतमात्र भी नहीं है। यद्यपि रामायण में भी सनहोगों के यज्ञोपवीत तथा विवाह का संविस्तार वर्णन नहीं है तथापि गोसाईं श्री ने दो बार ग्रन्थों ही में उक्तता हात पाठकों को बना दिया है।

इसमें अथवपुरी ही में रिन्नो रामचन्द्र को स्पष्ट गाथी दे रही हैं। रामायण तथा बानकीमंडल में क्वि बनकपुरवासियों का गाथी देना संकेत द्वारा बताया है। यदि हम इन गाथियों को समयानुसार सचित परिहास मान भी लें तो भी हम इस वाक्य को 'अहिरिन हाम हहेदिया सगुन लेह आयड हो। उनरत योयन द्धि नृपति मन मावड हो ॥' दशरथ श्री तथा गोसाईं श्री के बोध परिहास नहीं मान सकते। यह दशरथजी को दुराचारी बना रहा है। बेचारी अहिरिन तो शगुन श्री वहेवी लेकर आये और आप उसके बोधन पर मोहित होकर उसे पसन्द करने लगे। गोसाईं श्री ऐसा क्वापि नहीं कह सकते।

इन बातों के विचार से इस पुरतक को गोसाईं श्री क्त होना मानने में हमको हिचक होती है।

यह पुस्तक २० तुको में समाप्त हुई है और इसकी मापा प्रायः ग्राम्य मापा है। इसका कुल नमूना देखिये।



"नयन बिखास नचनियाँ मोंह बसकावइ हो ।  
 वइ गारि रनिवासहिँ प्रमुदित गावइ हो ॥  
 फाड़े राम जिठ सौवर सखुमन गोर हो ।  
 की हुँ रानि कौसिलहीँ परिगा मोर हो ॥  
 राम अहिँ बसरप के सखुमन आनक हो ।  
 भरत सखुहन माइ तौ भी रघुनाथक हो ॥  
 गोद सिये कौसल्या यैठी रामहिँ घर हो ।  
 सोमिव पूजाइ राम सीस पर आचर हो ॥"

[ मुच्यन्त और यज्ञोपवीत के समय भी विवाह ही का गीत गाया जाता है । ]

यह कहखु किसी का रत्ना हुआ हो हम अपने पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वे अपने घर की स्त्रियों में उपयुक्त समय पर इसके गाने का प्रचार करेंगे क्योंकि इससे पाल का आनन्द और रामनामोच्चारण दोनों ही होगा और इसका फल तो प्रबकर्ता ने स्वयम् ही सिद्ध दिया है, 'जे यह नइहूँ गावइ गाइ सुनावइ हो । रिद्ध सिद्ध कल्याण सुखि मर पावइ हो ॥'

मत्ता इसके बड़कर और बना चाहिये ।

## सप्तविंशति परिच्छेद

### सतसई वा रामसतसई

इस प्रथम क गोसाईं जी हृत होने में बिरकाल से सन्देह हो रहा है। आप की शिष्य परम्परा में व रामगुहाम द्विदरी तथा प० शेषरत्न जी को बिक्रमाठ पुरव हो गये हैं। प्रथम महात्मा मे इसे गोसाईं जी हृत प्रभावकी में परिगणित नहीं किया है। दूसरे मे इसे गोसाईं जी बिरमित होना मानकर इसकी टीका भी बनाई है। प्रथम क शिष्य सु० सुहृन्लाल भिन से प० सुभाकर जी के पिता रामायण पढ़ते थे सब लोगों से रक्षतापूर्वक कहा करते थे कि सतसई गोसाईं जी हृत नहीं है। यह बात रत्नम् प० सुभाकर जी ने भिन्नसेन साहब से कही थी। आर दूसरे के पुत्र के शिष्य ओदोराम ने एक ऋष्ये<sup>१</sup> में सतसई के भिन्न २ वर्णों की भी जानकी की के भिन्न २ वर्णों से तुलना की है। लोगों का कथन है कि प० शेषरत्न जी का टीका लिखना कोई प्रमाद्य नहीं हो सकता क्योंकि उन्होंने यह काम उस समय किया था जब किसी को इन प्रथम के गोस्वामी की हृत होने में सन्देह नहीं हुआ था तब ऋष्ये की बात कौन पताये।

लोगों का यह कहना कि रामगुहाम की कथित 'दोहाबद' से सतसई का ही तात्पर्य है सबका निःसार है। सतसई प्रथम के ही एक बहों से यह बात स्पष्ट प्रगट है कि इसका नाम सतसई है। तब यदि वे इसे गोसाईं जी हृत होना मानते तो इसका वास्तविक नाम न लेकर उसके शिष्ये एक अनोखापद शब्द क्यों लिख बैठे ? दोहाबद शब्द दोहाबदी ही के लिये प्रयोग हुआ है।

इस पुस्तक के प्रथम सर्ग क २१वें दोहे से विन्तित होता है कि बैशाख शुक्ल नवमी गुम्फार १६४२ में हमकी रचना हुई "अहिरसना बन येनुरस यमपति द्विज गुदवार। मायक सिल धियब्रम्भतिथि सतसईना अचठार। सम्बन् १६४२ में तो गोसाईं जी अवरय वर्तमान थे परन्तु यह १६४२ कथा है जो ज्ञात नहीं होता। प० सुभाकर जी ने भिन्नसेन साहब से कहा था कि यदि निधि टीका है तो इसे अवरय विष्णुवीय संज्ञा मानना पड़ेगा। साहब ने कई रीतियों से गणना करके देखा है। वह कहते हैं कि 'यदि तिथि टीका है तो इस के लिखने में गोसाईं'

१ श्री कृ. प्रेमा पाव संक अति गौर परा है। अक्रकति है कदुर रामरस अमिय भरा है ॥ इदया आत्म बोध कर्म सिद्धांत गछा है। आत्म गाम सिधौत कहीं है अक्ष हका है ॥ राजनीति है सीससिब यह बिधि तुलसी दास दिय। आदि अंत सी दक्षिये सतसईया है सत्यसिय ॥

भी ने विमल सम्पत् (जैन मन्दि) नहीं बल्कि प्रकलित सम्पत् (कार्तिक मन्दि) प्रयोग किया है जिस के प्रयोग की बात उस के समय में उस प्रान्त में नहीं थी और जैसा कि उन्होंने अन्य किसी ग्रंथ में नहीं किया है। एवम् इसे शाक्य स्म मानने से दिन मिलता है किन्तु इस का रचनाकाल गोसाईं जी के शरीर रजाग के १ वर्ष पीछे हो जाता है। इन कारणों से लोगों को इस बोधा के खेपक होने का सम्बेह होता है। प सुभाकर जी ने निम्नवत् उपयुक्त दोहे के आधार पर 'तुलसी सुभाकर' पृ १६ में सप्तमई की रचना का समय वशाक शुक्ल २ पुनवार सं १७७७ लिखा है किन्तु १७७७ किस गणना से हुआ यह बात समझ में नहीं आती।

इस के रचना काल में जो सम्बेह हो परन्तु इस के २६४वें वाहे से मान होता है कि इस के रचयिता क्राशी में वास करते थे। 'रविन्दरब अरु मप्रथम बीच सुवास विचारि। तुलसीदास आसन करै अचभिद्युता उर बारि १३ एक और दोहे से भी नहीं भक्ति निकलती है। परन्तु जब इस पुस्तक में ७ से ४७ दोहे अधिक हैं तो इन दोहों का भी किसी के द्वारा इसमें सुझाना माना क्या असम्भव है ?

प सुभाकर जी इस ग्रंथ को गाजीपुरनिवासी तुलसी नामक कामरुच का बनाया इन कारणों से मानते हैं कि इसमें मकरा के लिये 'कना' शब्द प्रयोग किया गया है। जैसा कि गाजीपुर प्रान्त में होता है इस के १६२ ६३ दोहों में ऐन गैम की कल्पनाएं की गई हैं एवम् कुछ गणित जाननेवाले कायस्थों का १३६—१३८वें दोहों में कुछ गणित सम्बन्धी कल्पनाएं भी हैं।

केवल इन्हीं कारणों से हम इसे गाजीपुरी तुलसी विरचित होना मानने को तैयार नहीं हैं। गोसाईं जी ने रामायण में लिखा है 'जुआं बेवि परवृषन केरी। तो कना जिस प्रान्त में जुआं मृतक शरीर को बहते हैं वही के कोई तुलसीदास रामायण के कर्ता माने जायगे। क्राशी के उन शब्दों के प्रयोग का विचार नहीं करने पर भी जो परिचित भी क कल्पनानुसार हिन्दीभाषा में मिल जाने के कारण गोसाईं जी के मातृभाषा के शब्द हो गये थे, उनके लिये ऐन गैम की कल्पना कोई बात नहीं थी जब कि हम लोग रामायण में देखते हैं कि उन्होंने क्राशी के पद का ज्यों का त्यों अनुवाद कर दिया है। तथा 'पूखै फूखै प बैठ यवपि सुधा बर्बहि अक्षय।

'और गर आये जिन्यगी वारद। इरगिम् अम् शाल्ये वेद वर न लोभेरी।'

इसे दोहों में जो कुछ गणित की कल्पनाएं हुई हैं वे भी ऐसी कठिन नहीं हैं कि गोसाईं जी के समान बिलकुल पुरव उन्हें नहीं कर सके। वे अत्यन्त साधारण हैं। केवल भी का पढ़ाया जानने ही से बड़ी कल्पनाएं हो सकती हैं। और कायस्थ कुछ ही गणित क्यों जानने लगे ? जब

१. पैर-मन्दि के अनुसार गणना करने से १५८५ ई० के १८ अप्रैल बुध को सुबोधक के दूरत ही पाद गवामी समाप्त हुई थी और कार्तिक मन्दि के अनुसार एक रीति से १५८६ ई के १७ अप्रैल रविवार को एवम् दूसरी रीति से १५८४ ई के ६ अप्रैल बुधस्थिति को सुबोधक के १ बड़ी ७ पका वाद गवामी समाप्त हुई।

२. हम इसी पुस्तक को देख कर यह समाशोधना सिद्ध रहे हैं।

३. रविचन्द्रक = सोलारक, अट्टवृष्य = गङ्गा। क्राशी में गङ्गा और अस्ती के बीच में कोलारक पाए हैं। वहां प्रति वर्ष भारो ठरु पत्थों को रात भर सेना होता है और उसी से इस नगर में कज्जी नामा बन्द किया जाता है।

तो मानो उन के बन्धि ही पड़ा है। आज भी अधिकांश काव्य रचने में गणितमय परिवर्तनों से ही रंग आगे ही निकल आती।

परन्तु पूर्वोक्त कारणों के सिवाय इस में और भी सम्बन्धितादिनी बातें देखी जाती हैं। गोसाई जी के अन्य ग्रन्थों के दाहों के समान इस के दोहे सरल नहीं हैं। इसी पुस्तक में जो लयमय सवा सा दोहे दोहावली के पाये जाते हैं उन से अन्य दोहों को मिला कर देख लीजिये। लोप करते हैं कि विषय के गूढ़त्व से दोहे स्मिष्ट हो गये हैं। ऐसा मान लेने पर भी कृत्रिम एक सर्प की आबरवकता नहीं खिलती। मूलतः ही गोसाई जी कृत्रिमता के विरोधी थे। उन के विरोधी होने में संदेह नहीं। कृत्रिम सर्पसाधारण की क्रमिक संवाहक होता है और उन्हें इस तरह से कुछ सिखाना अभिप्रेत नहीं था जिससे मनसतह लय नहीं उठाने।

इस के अधिकांश दोहे अपना अर्थ स्वयम् व्यक्त नहीं करत। अतएव टीकाकार और शिष्य को उनका अर्थ बोधगम बनाने के लिये अपनी ओर से बहुत से शब्दों के जोड़न की आवश्यकता होती है। रामायणदि के दोहे कम से कम एक अर्थ स्वयम् सूचित कर बैठे हैं। उनका गुणार्थ इत्यादि अर्थान के लिये कोई बाह्य उन के शब्दों को छिना ही ठोड़ा मरोड़ा करे या अपनी ओर से उन में शब्दों को जोड़ा करे।

इस में बहुत से शब्द भी ऐसे प्रयोग हुये हैं जो गोसाई जी के अन्य पुस्तकों में नहीं देखे जाते। जैसे, वाय (बाहि) मारि, (गदन) परिवरा तोहरो (दुम्हार), रासन (गन्हा), बसम (पति) अगत्र (अगत, अग) अमान (सेना), मामिना, बाह (इच्छा) इतिन (दुःख) इत्यादि।

इस की बन्दना भी गोसाई जी के अन्य ग्रन्थों के समान नहीं है। इस में भी रामचन्द्र की अवेका धी जानकी जी की उपासना का अधिक उल्लेख है। कदाचित इसी से कोदोराम ने भी इस के सर्गों को भी छोटा जी के दाहों से तुलना की है। और यदि प्रथम सर्ग का २१वाँ दोहा टीका हो तो इसी से इसका अवनार भी जानकी जी की अन्मतिधि को बताना गया है।

किर यदि गोसाई जी न सतसों की रचना की और दोहावली के दोहों को उस में समावेशित किया अथवा वे दोहे पहले इसी पुस्तक में थे और नहीं से उठाकर दोहावली में रखे गये तो एकही प्रथम में एक कल्प के गुण शेष बचन वाले दो दोहों में परस्पर विरोध नहीं देखा जाता जैसा कि नीच के दोहों में देखा जाता है। 'हूँ' अपीन जावन नहीं सीस माइ नहीं खेत' और 'जातक बन तकि दूसरो किमत न माई मारि। प्रथम दोहा दोहावली में भी है। ये दोनों एक ही कवि के रच नहीं हो सकते। यदि हों भी तो यह स्वयम् दोनों को एक प्रथम में पास ही पास नहीं रख सकता। पावतीमहल की कथा में तथा रामायणवर्णित शिष्यविवाह में भी प्रमेद है। परन्तु वे दो भिन्न २ प्रथमों में हैं। तो भी इसी कारण से प्रथम पुस्तक के गोसाई जी हल हाने में लाग सम्बन्ध करत है।

इन कारणों से हमें भी सतसों के गोसाई जी विरचित होने में संदेह होता है। जो हो यह प्रथम बहुत आनन्दप्रद और आनोत्पादक है। यदि सप्तश्लोक यह तुलसी नामक किसी

अनस्य का बनाया हुआ है तो इसकी हमें महाममता है और हम उसकी बनी प्रशंसा करते हैं कि उन्होंने ने एक ऐसी उत्तम पुस्तक की रचना की जो गोस्वामी जी की प्रभावशाली में परिपक्व होने लगी।

इस के साथ सर्गों में क्रमशः प्रेमाभक्ति परामर्शिता उपासना (कृतद्वारा), आत्मज्ञान कर्मसिद्धान्त ज्ञानसिद्धान्त तथा राजनीति का ऐतिहासिक मतानुसार उपदेश दिया गया है। शिक्षा तथा सिद्धान्त गोस्वामी जी के मत से मिलता है। इस पुस्तक का गुण केवल इस पौष शोही के उद्यत कर देने से नहीं बाना जायगा। अतएव इसका कोई अन्य उल्लेख नहीं करके हम पाठकों को परामर्श देंगे कि वे इसे स्वयम् पढ़कर शान लें।

पूर्वोक्त वैकुण्ठदासकृत इस पुस्तक की टीका मी लखनऊ के मु० लक्ष्मणदास के छात्रद्वारे में १८८६ ई. में प्रकाशित हुई है। टीका निस्सन्देह उत्तम है।

येही कई एक पुस्तकें पुरातन काल से गोसाइ जी की बनाई कही जाती हैं। अतएव हम की विस्तार पूर्वक समालोचना की गई है। इतर लोग बहुत से और भी प्रन्थ गोसाइ जी के माथे मढ़ते गये हैं और मन्त्रे जा रहे हैं। जहाँ तक कि उनकी संख्या कर ३२ तक पहुच गई है। किन्तु इतर बाधे म जो में से किसी को कोई मोसाई की कृत होना मानता है और किसी को कोई। इसका विवरण इस पुस्तक के पृ १६१ में दिया गया है। इन में से जो बार के विषय हमें ग्रन्थ पुस्तकों के देखने का सौभाग्य नहीं हुआ है। जिन्हे देखा है वे निरन्तर गोसाई जी विरक्ति प्रतीत नहीं होती। यथा रामराजाका। इस की समालोचना पृ ३२४ में हो चुकी है।

छप्पै रामायण—हनुमानकाहुक तथा कवितावली के छप्पै से इस के छप्पै का मिश्रण कीजिये। उनके ३३ तथा ६४ चरणों में अष्टादश २ मात्राएँ हैं एवम् १२ तथा १३ अक्षरों पर गति है जैसा कि त्रिपदानुसार होना चाहिये। इस पुस्तक के प्रत्येक छप्पै के छठे चरण में २६ मात्राएँ हैं एवम् १४ और १२ अक्षरों पर गति है और ३३ चरण में तेरह २ मात्राएँ पर गति है। गोसाई जीकृत छप्पै में ऐसा होने की सम्भावना नहीं। कई रचानों में लिखाहि में मी गणक है। यथा 'निसरेउ कर से धीर जाय संधानहि मारी', 'सुधि क्याचा विकसाने', 'मण्डि वेहु राम आपना।' कई एक शब्द भी विभिन्न हैं। तथा इतिहासना (इतिहास) विधि (बद, दिया)।

संस्कृतमोचन वा हनुमानाष्टक—भी हनुमान जी की स्तुति में आठ उपनामों की यह एक छोटी सी पुरिष्का संस्कृत विवरण के हेतु बनाई गई है, क्योंकि अन्त की छप्पैया में क्या है 'जिमी इरो हनुमान महा प्रभु जो कहु संकट होय हमारो' और इसके अन्त में क्या है "यह अष्टक हनुमान को, विरचित तुलसी दास। गंगा वास सु प्रेम सर्ग, पढ़े होय तुल नास।" यह गङ्गादास कीन हैं। और जब किसी छप्पैया में गोसाई जी का नाम नहीं है तो इन्होंने इसे तुलसीदासविरचित कहे क्या यह काल नहीं होता।

हनुमानघोषा—इस के आदि में रामायण वाला दोहा "भी गुरु धरन धरनो रघुपर विमल मस- -" है। परन्तु इस में रघुवर बच नहीं बरन् हनुमान बच

बर्णन किया गया है। यह दोहा क्या चीजे बोका गया। इस में ४० चौपाइयों और आदि अन्त में एक २ दोहा है। अन्त क चौपाइयों में कहा गया है "यह सत बार पाठ कर जोइ। छूटे बन्दि महा सुख होइ ॥ जो यह पढ़ हनुमान बलीसा। होइ सिद्ध सापी गौरीसा ॥" इसी से कमल ईश्वरी गोसाईं जी के दिल्ली के बन्दिपुष्टि में रखवाने के समय इस की रचना बटाती है और बहुत से शोष सिद्धिप्राप्ति के लिये इसका निम्न पाठ भी करते हैं।

हमारी समझ में गोस्वामी जी के सिर पर पुस्तकों का भारी बोझ देने की आवश्यकता नहीं। यदि लोगों का यह यत्नाल हो कि रचना का बाहुक्य ही गोसाईं जी की सुख्याति का कारण है और होगा तो हम इसे महामूल और भ्रम कहेंगे। कई एक प्रामाणिक द्रवों के सिवाय यदि अन्य सब ही प्रथम अन्वय कवियों के बनाने सिद्ध हो जाय तब भी इन महामा जी सुख्याति में कदापि घटना नहीं लग सकता। कमल एक रामचरित मानस ही के कारण इन का मस्तक जगत् में सर्वथा उन्नत रहेगा और साहित्यसंसार में ये सदा पूज्य तथा उपासक का भण्डारी रहेंगे।

## अष्टाविंशति परिच्छेद

### गोसाईं जी की संस्कृतज्ञता

गोसाईं जी केवल हिन्दी भाषा ही के प्रवीण परिष्कृत नहीं थे; आप संस्कृतभाषा के भी पूरे ज्ञाता थे और आप ने संस्कृत प्रश्नों का पूर्ण रूप से परिशीलन किया था जिसके प्रभाव से संस्कृत प्रश्नों के विषय आशय और भाव इन के चित्त पर मझी भाँति लक्षित हो गये थे। इसी से ये संस्कृत रसोंक भी बना सके हैं और इसी से वेद शास्त्र पुराण तथा अन्त्याय प्रश्नों की बातें अपनी रचनाओं में ऐसी अनुपम रीति से समावेशित करने में इन्होंने ऐसी सफलता पाई है। संस्कृत प्रश्नों के बहुत से उत्तम भाव तथा शक्ति उपमाओं भी कहीं ज्यों की त्यों और कहीं रूपान्तरावस्था में इन की पुस्तकों में पाई जाती हैं। इस परिच्छेद में उसी के कुछ उदाहरण दिखावाये जाते हैं।

वाल्मीकियम् ।

- १ मूक होइ वाचास्य पंगु अहं गिरिभर पहन ।  
बाहु कृपा सो वसाल, इवठ सङ्घट कस्मिन्स्य दहन ॥  
“मूकं करोति वाचास्य पङ्गुं लह्ययते गिरिम् ।  
पत्कृपा तमई धन्वं परमानन्दमाघमम् ॥”
- २ बंदरें मुनिपद अहं रामावन भेदि निरमवेठ ।  
धर सभेमह मंसु होय रहित बृजन सहित ॥  
“नमस्तस्मै कृता येन पुण्या रामायणी कथा ।  
सवूपयाऽपि निर्दोषा सखराऽपि सक्रोमस्ता ॥”
- ३ धोइ जस अमल अनिस संवाता ।  
“धूमश्रयोति-सक्षिप्तमरुतां सन्निपातं ऋष मेघ ॥”—नेपथ्य
- ४ एक अत्र एक मुकुट्यनि एव वरननि पर बोठ ।  
तुलसी रघुवर माम के वरन विराजत दोठ ।  
“निबर्ष्य रामनामैव कवर्षं च स्फुराधिकम् ।  
सर्वेषां मुकुटं एव मकारो रेफव्यञ्जनम् ॥”

५. शक नी शक प्रथम श्री पीर ।  
 "नहि वन्ध्या विमानाति शुर्वी प्रसववेदनाम् ।"
६. बिदु पद कउर सुनर बिदु कना ॥ इत्यादि ।  
 "अपायिपादो अवनो महीता  
 पस्पत्यपशु सग्योस्त्यकर्ण ।  
 स वति यद्य न तस्यास्ति वत्ता  
 तमाहुरम्यं पुर्यं पुरायाम् ॥"—उपनिषद् ।
७. अथ अथ होइ परम कै हाभी । बाइहि अमुर कथम अमिमाणी ॥ इत्यादि ।  
 "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।  
 अन्धुत्यानसधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥  
 परित्राणाय साधूनां दिनाशाय च दुष्टवाम् ।  
 धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥"—गीता ।
८. संमु बिर्बि बिप्या भयवामा । उपबहिं शमु भंत से नाता ॥  
 यस्यशेन समुद्रमूता ब्रह्मयिःशुमहस्परा ॥"—महाराजमण्य ।
९. ----- अद्भुत रूप विकारी । लोकम कमिराम-----खरारी ॥  
 "तमद्रमुर्न बाधकम्ममुजेष्यणं चतुर्मुर्न शङ्गावाद्मुदापुधम ।  
 श्रीयस्सज्जधर्मं गल्लशोमिधोरुमुं पीताम्बरं सान्द्रपथोदसोमग्गम् ॥"—माणवत ।
१. ब्रह्माण्ड विज्ञाया भिमत मान्या रोम रोम प्रति वेद क्खे ।  
 मम उरवासी म्हे उपहासी मुलन धीरमति पिर न रहे ॥  
 "जठरे तद्य दरयन्त ब्रह्मायहा परमायव ।  
 त्वं ममोदरसम्मूत इति लोकान् विदम्बसे ॥"—अप्पास ।  
 पुत्राः—"विमर्षिं सोऽयं मम गर्भगोऽमुदहो नृकोक्तस्य विदम्बनं हितम्—माणवत ।
१. प्रमु हंसि शैव मपुर मुसकानी ।  
 देवतावा मातर्हि नित्र - कोटि कोटि ब्रह्माण्ड ॥  
 अग्नित रवि सति सिध कतुरामन । बहुषिरी क्षरित सिधु महि कानन ॥  
 "सुखं लालपती राजन् नृम्मतो दृष्टा इदम् ।"  
 "खरोदम्नी श्योतिरनीकमारा सूर्येन्दुपक्षित्वसनामुषीरिष ॥  
 द्वीपान्तरगास्तद् दुहित्वर्नानि भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि ॥" माणवत ।



- ११ शिव को रही गावना खेरी । हरि मूरति देखी तिन तैसी ॥ इत्यादि ।  
 “मस्तानामश्रानिर्नृया नरवर स्त्रीयां स्मरो मूर्तिमाम् ।  
 गोपानां स्वन्नोऽसतां शक्तिमुजां शास्ता स्वपित्रो शिशुम् ।  
 सृत्यु मौञ्जपतेर्विराद् विदुषां तत्र परं योगिनां ।  
 वृष्णीनां परदक्षतेति विदतो रङ्गन्त साप्रभ ॥” — मग ।
- १२ रावण नाम महा म् भारे । इत्यादि ।  
 “शृणुत जनककल्याणश्रिया शुष्कमेते दशवदनमुजानां कुण्ठिता यत्र शक्तिः ।  
 नमयति धनुरैरां फस्तदारोप्येन त्रिभुवनस्यलक्ष्मीर्जानकी तस्य दारा ॥”  
 — इन्द्रवाटक ।
- १३ शीर शीप के मूरति नागा । शीर बिहीन मही में बागा ॥  
 “आग्नीपात्परतोन्वमी नृपतय सर्वे समम्यागता  
 कन्याया कक्षभौतकोमलरुचं कीर्त्तेश्व क्षाम पर ।  
 नाह्व्यं न च टङ्कितं न नमिषं नोत्थापितं स्यामव  
 केनापवमहो महद्गुरिदं नियोरमुर्षीतक्षम् ॥” — इन्द्रवाटक ।
- १४ दिव कुंवरु कमऽ अहि कोला । होतु सत्र्य सुनि आयसु मोरा ॥  
 “भूष्वी स्थिरा मव मुजङ्गम धारयैनां त्वं कुर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथा ।  
 दिक्कुञ्जरा कुन्द तस्त्रितये विधीर्षा राम करोति हरकामुक्माततज्यम् ॥”  
 — इन्द्रवाटक ।
- १५ हमहि तुम्हरी घरवर कस नाबा ।  
 देख एक गुन ज्युप हमारा । मव गुन परम पुनीत तुम्हारा ॥  
 “मो ब्रह्मन्मयता समं न फटते संप्रामषार्थापि नो  
 सर्वे हीनवला वष्यं वक्षयतां यूयं स्थिता मूढनि ।  
 यस्मात्कगुणां शरासनमिदं सुम्यत्सुर्वीमुजा-  
 मस्माकं मवतो यतो नक्षुर्यां यज्ञोपवीतं वक्षम् ॥” — इन्द्रवाटक ।  
 अयोध्याकाण्ड ।
- १ को न कुर्वगति पाइ नसाई । रहइ न नीच मते चतुराई ॥  
 “धीरोऽप्यन्तदयान्वितोऽपि सुगुणाचारान्वितो वाचवा  
 नीतिज्ञो विधिवादैरिशिकपरो विद्याविषेकोऽपवा ।  
 दुष्टानामतिपापमाविनधियां मङ्गं मदा पङ्कव—  
 चतुर्भुष्या परिभायितो प्रजति अस्ताम्ये ब्रह्मण्य स्फुटम् ॥” — अष्टाव ।

२. काङ्क न कोऽपि सुखं दुःखं कर दाता । निजं कृतं करम शोकं सप आता ॥ १
- “सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता स्वकर्मसूत्रमभितो हि लोकः ॥”
३. बरन कमल रज खई सप कहरै । मातुप करनि मूरि कहु बहरै ॥
- “मानुषीकरणरेणुरस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी ॥”
४. भारत काह न करइ कुकरम् ।
- “धुमुक्षित किं न करोति पापम् ॥”
५. अरप तत्रहिं बुध सरबस जाता ।
- “सखनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पयिद्धत ॥”

भारतयकायड

१. मातु पिता माता हितकारी ।—अमितरानि मर्ता बैरेणी ।
- “मिर्तं ददासि जनको मिर्तं भ्राता मिर्तं सुतः ।
- अमितस्य हि दातारं मर्तारं पूजयेत्सदा ॥”—शि० पुराण ।
२. बृद्ध रोग बस बह मन हीना । मंध बधिर श्रेपी अति बीना ॥
- पेठेहु पति कर किए बनमामा । मारि पाब अमपुर बुद्ध नामा ॥
- “कलीषं च दुरवस्थं या व्यापितं वृद्धमेव च ।
- सुखितं तु खिन्नं चापि पतिमेकं न क्षणभयेत् ॥”—शि० पु०

अन्यथा—“दुःखीलो दुर्मंगो वृद्धो अङ्गो रोग्यधनोऽपि वा ।

पतिः स्त्रीमित्रं हातुष्यो क्षोकेऽप्सुभिरपातकी ॥”—भागवत ॥

३. अय पतिव्रता भारि विधि बहरी । इत्यादि ।

“अतुषिभास्ताः कथिता नायौ देवि पतिव्रता ॥

स्वप्नेऽपि यन्मनो नित्यं स्वपतिं पश्यति ध्रुवम् ।

नान्यं परपतिं भद्रे वृत्तमा सा प्रकीर्त्तिता ॥

या पितृभ्रातृसुतयम् परं पश्यति संद्विधा ।

मथ्यमा सा हि कथिता शैक्षजे वै पतिव्रता ॥

बुद्ध्या स्वधर्ममनसा व्यविचारं करोति न ।

निहृष्टा कथिता सा हि सुपरिज्ञा च पार्वति ॥”—शिवपुराण ।

४ अग्रे राम अगुन पुनि पाछे । -अज्ञ नीच बिच माना जैवी ॥  
 “अग्रे यात्वाभ्यर्ह पश्चात्समन्वेहि धनुर्वर ।  
 ब्यावयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनो ॥” —अप्यात्म ।

५ पूङ्गव कछे लदा तब पाती । — तुम बयी धीदा नृग मैत्री ॥

“मो मो दृष्टा बहुकुसुमयुता घायुना गुह्यमानो  
 मो मो भ्रैययास्वगमृगगत्या दधदवीमरयया ।  
 मो मो सबे औवाशच महिजलेष्वरिनवायुर्नमरध  
 मो मो बिबिदिशि दिशि च दृष्टा प्राणप्रिया जानकी ॥”

६ साक सुचिन्तित पुनि पुनि बेधिये । मूष सुसेवित बस नहिं छेधिये ॥  
 राखिब नारि बहवि सर माही । कुनति साक नृपति बस नाही ॥

“शास्त्रं सुचिन्तितमपि प्रतिध्विन्तनीर्य  
 स्वाराबितोऽपि नृपतिं परिराङ्गनीय ।  
 अष्टे स्थिताऽपि युवतिं परिराङ्गनीया  
 शास्त्रे नृप च युवती च कुतो वशिस्त्वम् ॥”

७ फल मरि नम बिदप सब, रहे भूमि निपराब ।  
 “मबन्ति नम्रास्तरव फलोद्गमै ॥”

किञ्चिद्व्याकाशह

१ कुपय निगारि सुर्गब कलावा । गुन प्रयच्छ अमगुनविह इराका ॥  
 विपति काह कर सतगुन नैवा । सुति कह संत मित्र गुन पूवा ॥

“पापाभिचारयति योजयते द्विषाय, गुह्यानि गृहति गुह्यान्मकटीकरोति ।  
 अपानुगर्त म च अहाति ददाति काशे, सन्मित्रक्षयामिर्त्रं प्रकदन्ति सन्त ॥”

२ अग्रे कह मरु बचन बजाई । पाछे अमरित मरु कुटिलोई ॥ इत्यादि ।

“परोक्षे काप्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।  
 अत्रयिचाटशं मित्रं विपकुलम् पयोमुखम ॥”

३ अगुन बपू मयिनी सुत नापी । इत्यादि ।

“धुहिवा मरिनी अस्तुर्मायां शैव तथा स्तुपा ।  
 समा यो रमसे तासामेकामपि विमूढधी ॥”

पावकी स तु विद्येयः स यष्यो राजमिः सदा ।

एवं तु भ्रातुः कनिष्ठस्य मायां यो रमसे वक्षान् ॥ —अप्यात्म ।

- ४ शक्तिमन वैपुः मोरगन माषत बारिद पेपि ।  
 शुद्धि विरतिरत हरय अस विपुः मगत कर्ह देपि ॥  
 “मपागमोस्तस्ये इष्टा प्रत्यनन्दन् शिखरिहिन” ।  
 शुद्धे तु तादा निर्वियया यथाऽनुतमनागमे ॥” —भाग०
- ५ कामिनि दमकि रहन बन नाही । पत के मीति जया बिर नाही ॥  
 “क्षोकवन्धुपु मेघपु विष्णुतरषससौद्धदा” ।  
 स्वैर्ये न शत्रुः कामिन्य पुरपेपु गुणिविष ॥” —भाग०
- ६ इह अभाव सद्दहि विरि केपे । पत के बचन संत सद्द जेपे ॥  
 “गिरयो वर्षभारामिर्हन्यमाना न विश्यथु ।  
 कामिभूयमाना ह्यसनैर्यथाऽभोराजचेतस” ॥ —भाग
- ७ हुद गरी मरि बली तोरारि । जस बोरेहु मन बत इतरारि ॥  
 “आसन्नुत्पयबाहिन्य शुद्रनघोऽनुशुष्यती ।  
 पुंसो यथाऽश्वत्थस्य वैहद्रिययासम्पद ॥” —भाग०
- ८ बाहुर धुनि बरु विवा सोदरारि । वेद पदरि बरु बरु अमुदरारि ॥  
 “भुत्वा पर्जन्यनिनर्द्रं मण्डूका ह्यस्तृजम् गिर ।  
 तूष्णीं शयाना प्राग्यद्द प्राज्ञया नियमात्यये ॥” —भाग
- ९ नव फल्ल मे विद्य अनेका । पाषक मन त्रिभि मिसे विवेका ॥  
 “धीन्वाऽप पादपा पङ्क्तिरासन्नात्समूर्त्तय” ।  
 प्राक्क्षामास्तपसा भान्ता यथा कामानुसेयया ॥” —भाग०
- १० घघ संपत्त सोह महि केसी । उपकारी के संपति केसी ॥  
 “क्षेत्राणि सत्यसम्पत्तिः कर्षकार्या मुर्द्धं ददु ।  
 धनिनामुपवापश्च वैबाधोनमजानवाम् ॥” —भाग
- ११ सतिता सर निर्मल बरु सोहा । सत हृदय अस मरु मरु मोहा ॥  
 “शरदा नीरजोत्पत्या नीराणि प्रकृति ययु ।  
 भ्रष्टानामिष च्चतासि पुनर्योगनिषेयया ॥” —भाग०
- १२ मानु पीठि सेहन बरु भागी । स्वामिहि धर्ष भाव इत त्यापी ॥  
 “पुस्तक सेययेदर्कं जठरंग्य हुतारानम् ।  
 स्वामिन्नं सर्वभावेन परक्षोकममायया ॥”

## सुन्दरकाण्ड

- १ सायाम्ग श्री बनी मनुसाई । साया ते साया पर जाई ॥ इत्यादि  
 “शास्त्रामृगस्य शास्त्राया शास्त्रां गन्तु पराक्रम ।  
 पशुसर्पक्षितोऽम्भोषिः प्रमाथोऽर्धं प्रमो तद्य ॥” — इत्यु मा
- २ ओ चंचति शिव रावणहि, दीन्ह दिये दस भाष ।  
 सोइ धम्पदा विनीफनही सकुषि दीन्ह खुमान ॥  
 “या विमूर्तिर्दशमीवे शिरस्त्रेदेऽपि राक्षसात् ।  
 दर्शनाद्गामवैषस्य सा विमूर्तिर्विमीपयो ॥” — इत्यु० ना०

## लंकाकाण्ड

- १ शिवबागी से छुनहि से कहही । ऐसे जग निकाम नर कहही ॥  
 बचत परम दित छुनत कछेरे । छुनहि से कहहि ते नर प्रभु बोरे ॥  
 “सुसामाः पुरुषा रामन् सततं प्रियवादिनः ।  
 अप्रियस्य च पथ्यस्य वृक्षा मोक्षा च दुःखमा ॥”
- २ वर प्रह कठिन बचन सब सहळ । नीति धर्म में जानत कहळ ॥  
 “दे रे शास्त्रामृग स्वामर्हं धर्मशीलतया कटुप्रलापिनमपि न हन्मि सखं च—  
 पयोक्तमादी वृत्तं स्यात्त स पथ्यो महीमुखा ॥” — इत्यु० ना०
- ३ तब प्रभु मारि विरह बछहीना । अशुभ तासु रुप दुषी मलीना ॥  
 तुम्ह छुमीष कृतहुम होइ । अमर हमार मीष अति सोढ ॥ — इत्यादि ।  
 “रामस्त्रीकिरहेष्य हारितवपुस्तन्निपन्तया क्षपमयाः  
 सुमीषोऽङ्गवराण्यमेदकतया निमू क्षकूलद्रुम ।  
 गगय कस्य विमीपया स च रिपो कारुण्यवैन्यासिधि—  
 लोहातहृदिहृष्याकपदुवभ्यो ममेक कपि ॥” — इत्यु मा०
- ४ कहु रावण रावण जम कते । — इत्यादि ।  
 “दे रे रावण रावणा कति वधुनेतान्ययं शुभुम  
 प्रागेकं किञ्च कात्तवीर्यमृपते दोर्दयदपियडीकृतम् ।  
 एकं नचनदापितान्नकवर्षं दैत्येन्द्रदासीगणै  
 गन्यं वन्मुमपि त्रपामह इति त्वं तेषु कोन्वोऽयवा ॥” — इत्यु मा
- ५ राम मनुज जम रे छट बंया । पत्नी काम नरी पुनि गया ॥  
 “दे रे रावण हीनदीनकुमते रामोऽपि किं मानुष  
 किं गण्ठापि नदी — कामोऽपि घन्वी तु किम् ॥” — इत्यु मा०

१. बी पक्ष मर्षेव राम कर शोही । ब्रह्म च्छ सक रापि न तोही ॥

“रामकर्मो न शक्तः स्थात्रकितुं सुरसत्तमै ।

अक्षरं न्द्रसंज्ञैश्च सैतोक्थप्रमुमिस्त्रिभिः ॥”

उत्तरकाण्ड

१. नर घहस मई सुनहु पुरारी । कोठ इक होइ भरम ब्रतभारी ॥ इत्यादि ।

“मुग्धे शृणुष्व मनुजोऽपि सहस्रमभ्ये धर्मव्रती भवति सर्वसमानशील  
तेष्वेव कोटिषु भवद्विपये विरक्तः सदासक्तो भवति कोटिविरक्तमभ्ये ।

ज्ञानिषु कोटिषु वृगीयनकोऽपि मुक्तः कश्चित्सहस्रनरजीयनमुक्तमभ्ये

विज्ञानरूपधिमत्तोऽन्यथ प्रवृत्तीनस्तेष्वेव कोटिषु सङ्गुं सङ्गुं राममक्तः ॥”

—महारा० ।

२. जो ज्ञानिन्ह कर भिव अपहरई । बरिभाई बिमोह मन करई ॥

“ज्ञानिनामपि चेतांसि वृषी भगवती हि सा ।

वलादाह्वय मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥”—मार्क० पु ।

३. सो दासी खुबीर के समुझे मिष्मा सोपि ।

कूट न रामरुपा बिनु नाथ कहतं पद रोपि ॥

“वैधी ह्येषा गुणामयी मम माया दुरत्यया ।

मामेष ये प्रपद्यन्त मायामेतां तरन्ति ते ॥”—गीता ।

४. भिन्न सिद्धांत गुणाबतं ताहि । मुनि मन बरु सब तबि भन्नु मोही ॥

“सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।”—गीता ।

५. भगतिबंत अति नीचउ प्राणी । मोहि प्रानप्रिय मुदु मम बाणी ॥

“अपि चेत्सुदुराधारो भक्तो मामनन्यभाक् ।

साधुष्वेव स मन्तव्यः सम्यग्हन्यवसितो हि सः ॥”—गीता ।

६. जोइ तन धरतं तज्जतं पुनि अनायास हरिबान ॥

त्रिमि नूतन पद पहिरइ, नर परिहरइ पुरान ॥

“वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराधि ।

तथा शरीराणि विहाय जीयान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥”—गीता ।

७. ईरवर अंग जीव अविनासी ।

“ममैवाश्रो जीवलोके जीयभूतः सनातनः ।”—गीता ।

८. जे अक्ष भवति जानि परिहरही । कबत ज्ञान हेतु सम करही ॥

ते बह कावधेनु गृह त्यावी । पोषित आक फिरदि पत्र दाणी ॥

“ये राममष्टिममतां सुविहाय रम्यां ज्ञाने रता” प्रतिदिनं परिव्रज्यमाणैः ।  
 आरान्महेन्द्रसुरभीं परिव्रज्य मूर्खा अर्कं मजन्ति सुमगे सुखदुःखहेतुम् ॥”  
 —महा० रा०

१. सो तनु परि हरि मजहि न भे नर । हाहि बिपवरत मंद मंदतर ॥  
 अंब किरिय बद्धे त्रिभि छेही । करतें बारि परसमनि देही ॥  
 “जन्मेई ठपर्यता नीतं भवभोगोपस्तिन्सया ।  
 काचमूह्येन विक्रीतो हन्त भिन्वामयिर्मया ॥”

गीतायसी

१. खेळत खेळत करत नग कौदुक बिलगत छरित छरोबर तीर ।  
 तोरत छता सुमल छरसीसह पियत सुखा समगीर ।  
 बैळत विमल विस्मि विटपनि तर पुनि पुनि बरमत झाड समीर ॥  
 “सवालुपार्शं कुसुमान्यगृह्यात् स नशयत्कन्दमुपारूपाच्च ॥  
 कुतूहसाच्चारुशिक्षोपदेशं काकुत्स्थ ईपात् रमयमान आरत ॥”  
 —मट्टिकाव्य, सर्ग २ ।

२. गहि करतल मुनि पुलक छहित कौदुकहि उठाय तिवो ।  
 सुपगल मुपनि समेत नमित करि छकि सुप छबहि दिवो ॥  
 आकरणो विय मम समेत हरि हरण्यो बनक दिवो ।  
 मंष्यो मूपपति गर्ब छहित तिहुठोक विमोह दिवो ॥  
 “वृत्तिस्त सह कौशिकस्य पुस्तके सार्द्धं सुखैर्नामितं  
 भूपानां जनकस्य संशयधिया साकं समास्फाकितम् ।  
 वैदेही मनसा समं च सहसा कृष्टं सद्यो मार्गय—  
 प्रौढाहकृत्विदुर्मदेन सशितं तद्गगनमैशं घनु ॥” — हनुमन्नाटक ।

३. मंशाकनि मजठ अकरोकत विपाप जमठाप नछाई ।  
 “मन्दाकिनी समासाद्य सर्वपापप्रयाशिनीम् ॥” — महाभारत ।

४. दशरथ सो न प्रेम प्रतिपाख्यो हुतो छकठ अग छापी ।  
 बरकस हारत भिछाकरपति छे हठि न जानकी रापी ॥  
 मरत न भं एषुबीर बिलोख्यो तापुष वेप नभाए ।  
 चाहत खलत मान पांरर बिनु छिदमुपि प्रमुहि सुनाए ॥

- “न मैत्री निर्यूढा दशरथनृप राग्यविषया  
 न वैदेही प्राता इठहरय्यतो राक्षसपते ।  
 न रामस्यास्येन्दुर्नयनविषयोऽभूत्सुकृत्विनो  
 अटायोजन्मर्दं वितयममषङ्गाग्ररक्षितम् ॥” — हनुमन्नाटक ।

कवितावली

आपरो अभम अब जात्रो जरा जमम सुपर के साधक ठकाठकेला मग में ।  
 पिरुओ हिव हहरि हराम हो हराम हयो हाइ हाइ करत परीमा काल पग में ॥  
 दुसरो बिसोक ह्वे बिसोकपति सोक गयो नाम के पताप बात बिदित है जय में ।  
 सोइ राम नाम जो सनइ सों अपत जम ताकी किमि महिमा कही है बात अग में ॥

“वैयाचूकरशायकेन निहसो म्नेच्छ्रो जराअर्जरो ।

हारामति इतोऽस्मि भूमिपतितो जरुपरंतनु त्यक्तवान् ॥

सीर्यो गोपदयद्गधार्यायमहो नाम्न प्रभायान्पुन ।

किं चिन्न यदि रामनामरसिकास्त यान्ति रामास्पदम् ॥” — बाराहपुराण

वैराग्यसन्दीपिनी

महि पत्री करि सिधु मसि तर खेपनी बनाइ ।

दुसरो गनपति सो तदपि महिमा लिपी न जाइ ॥

“असितगिरिसर्म ह्यात् कङ्कर्ल सिन्धुपाषे ।

सुरतस्वरशास्त्रा लक्ष्मी पत्रमूर्ध्नि ॥

लिल्लवि यदि गृहीत्या शारदा सर्वकार्ण ।

तदपि तय गुणानामीश पारं न याति ॥”



## नवविंशति परिच्छेद

### गोसाईं जी का मत

गोसाईं जी सुप्रसिद्ध परमसंतोषक भी १ = स्वामी रामानन्दजी के सम्प्रदाय के वैष्णव थे और इन का मत विशिष्टाद्वैत था। श्री १०० शङ्कराचार्य्य जी एवम् श्री १०० रामानुज स्वामी जी के अद्वैत मत से और इन के मत से आचार व्यवहार आदि भी विभिन्नता के अतिरिक्त मुख्य भेद यह बसा जाता है कि श्री शङ्कराचार्य के ब्रह्म के स्थान में श्री रामानुज स्वामी ने विष्णु या नारायण को माना है जैसे ही गोसाईं जी ने दशरथ-नन्दन श्रीरामचन्द्र ही को परब्रह्म परोपिस्वरूप सर्वव्यापी आदिगुणविशिष्ट जगत का कारण एवम् ब्रह्मा विष्णु महेशादि का उत्पत्तिकर्ता माना है।

“विनु पग बसाइं मुनइ विनु काना । कर विनु करम करइ विधि माना ॥  
 भ्रानन रहित सकस रस भोगी । विनु वानो वकता बड़ भोगी ॥  
 वन विनु परस नयन विनु पला । गइइ भ्रान विनु यास असेपा ॥

मेहि इमि गाबहिं वेद बुध, जाहिं परहिं मुनि भ्रान ।

सोइ दशरथसुत भगत द्वित, कौसलपति भगवान ॥

पुन—जगत प्रकास प्रकासक रामू । मायापीश ज्ञान गुन धामू ॥

पुन—संमु विरंवि विष्णु भगवाना । उपजहिं जासु अंस में नाना ॥

ऐसेन प्रमु सेबक यस अइइ । भगत हेतु क्षीलावनु गइइ ॥”

और श्री सीता जी को इन्होंने ने आदि शक्ति का अवतार माना है—

“आदि शक्ति जो जग उपजाया । सीठ अवतारहिं मोर यह माया ॥”

और आप न कहा है कि श्री रामचन्द्र तथा सीता जी एवम् परब्रह्म तथा उप श्री शक्ति अथवा परमात्मा ही में निम्न है नहीं तो बलुतः दोनों एक ही हैं—वेद

“गिरा अर्थ अल धीचि सम, कहियत मिमम न मिम ॥”

वे वाक्यावस्था ही में वैष्णव होने से। यह बात 'बाहुक के ४०वें कवित 'बासपने सुने मन राम सगमुप भयो' से सिद्ध होती है।

ये शुद्ध रामापासक थे और अन्य देवता की बन्दना स्तुति केवल राम ही के नाते करते थे क्योंकि इन का मिर्दान यह था कि 'पूजनीय भिय परम अर्थां ते। मानिय सकस राम के नाते ॥ और सर्वो से इन्हीं की कृपा तथा भक्ति प्राप्ति के सिधे विनय करते थे। विनयपरिका इस बात की पूरी खाफी दे रही है। विद देवता तथा प्राणी को भी रामचन्द्र से भितना अधिक

प्रेम सम्बन्ध था ये भी उसे उलगा ही अधिक मानते थे । 'सेवक सदा स्वामि सिद्धिय के' तथा रामभक्तिवादा जानकर आप ने शिवजी को सब देवतों से घेष्ठ माना है । अब रामचन्द्र जी ही से कहा है 'संकर मन्त्र बिना नट, भगति न पावै मोर' तब ये जन का गुणगान तथा सम्मान क्यों नहीं करते और उन्हें सर्वश्रेष्ठ क्यों नहीं समझते ?

हा ! इन्होंने कहीं २ देवतों को हीन कहे, देवराज को भी कुत्रात्म्य कहा है । परन्तु यह बात केवल ऐसे अज्ञानों में देखी जाती है जब वे लोग किसी राममठ के प्रतिकूल कोई बात विचारने या करने पर उत्पन्न हुये हैं, अन्यथा नहीं । क्योंकि ये राम के दास को राम से अधिक समझते थे । नहीं तो इन्हें किसी बचता में द्वेषबुद्धि नहीं बी और होती कहे ? ये श्रीराम के अनन्यमठ के और अनन्य का लक्षण इन्होंने रामचन्द्र के मुख से यह कहासाया है 'तो अनन्य आ के अस नति न टर हनुमंत । हम सेवक सबराचर रूप राशि भगवंत ॥

अब देवतों के सम्बन्ध में ऐसी बात की तब राक्षसाण को जो लुके मैदान थी राम तथा राममठ के विरोधी और महान् अपकारक थे, ये कुत्रात्म्य कहने में क्यों सक्षोब करते, एवम् कोई अन्य मिन्दगीन पुरुष ही इन के शोभ और कुत्रात्म्य से कहे बचता ?

ये रामगुणमान में निर्गुण ब्रह्म को भी कियोप बर्णन और प्रतिपादन करते गये हैं । एसा करना उपयुक्त ही था क्योंकि मित्र का और सगुण बस्तुत दोनों अभिन्न हैं —

“सगुनहिं अगुनहिं नहिं कहु मदा । गार्वाहिं मुनि पुरान सुष वदा ।

अगुन अरुप अक्षय अज जोइ । भगत प्रेमवस सगुन सो होइ ॥”<sup>१</sup>

हमारी समझ में मित्र का सगुण का नामान्तर मानना भी असोम्य नहीं है । विज्ञान प्राप्ति जानते हैं कि पूर में जो उत्पत्ता दीक्षता है अनन्त रत्नों का सम्मेलन है । परन्तु अनेक रत्न सम्पन्न होने पर भी वह उत्तरहित अर्थात् उत्कृष्ट ही कहलाता है क्योंकि उसे कोई कियोप रत्न कहना योग्य नहीं जब तक किसी कारण कियोप से उस उत्कृष्ट पदार्थ का कोई कियोप रत्न वैशिष्ट्यमान हम लोगों को देखने में नहीं आवे । उसी प्रकार सर्वगुणसम्पन्न रहने अर्थात् सगुण रहने पर भी ब्रह्म मित्र का ही कहावेगा जब तक कोई कारणवश कोई कियोपगुण विशिष्ट हो वह मूलत में आविर्भूत होकर उसे पवित्र नहीं करे ।

अब सगुण और मित्र का एक ही बस्तु है तब जानयोग तथा भक्तिभोग समान ही फलदायक होया क्योंकि मठ अपने उपास्यदेव में मन लीन कर देता है और प्राणी निज आत्मा ही में मन को लीन रखता है यह बात भी योग्य ही मली मति जानत थे । इन्होंने न स्पष्ट ही कहा है कि ज्ञान और भक्ति में कुछ भेद नहीं है और दोनों भवजनित दुःख के नाशक हैं ।

“भगतिहिं ज्ञानहिं नहिं कहु मदा । उभय हरहिं भव संभय पदा ॥”

१ श्रीगुरु गानक ने भी कहा है :— निर्गुन आर सगुन भी कोही । कसाधार विमि सगले मोही ॥ निराकार आमार आप निर्गुन सर्गुन एक । पुरहिं एक कथानो, गानक एक अनेक ॥” (सुखमणि)

भवसंभव कसेरा के विनाश करने में तो ज्ञान और भक्ति में कुछ भेद नहीं, परन्तु ज्ञान दुष्कर तथा दुष्प्राप्य है और भक्ति सहज तथा सुगमप्राप्य है। क्योंकि सत्कार सर्वथा माया का बलीभूत हो रहा है। इस के पक्ष से निष्कलता और इसके पक्ष से बन्धना बंधे ही भीरवीर का काम है। मोछाई भी बन्दे हैं कि योग ज्ञान विराग में सब पुरुष हैं और माया तथा भक्ति स्त्रीस्वरूपिणी हैं। भक्ति और माया दोनों स्त्रीरूपिणी होने से माया भक्ति को नहीं मोह सकती क्योंकि नारी को नारी बना विमोहित करेगी। परन्तु ज्ञान के पुरुष रूप होने से विरक्त मोहिनी माया का प्रत्यक्ष शीघ्र वनावास उसे अपने जाल में फँसाने को समर्थ हो जाता है। अर्थात् ज्ञानप्राप्त होने पर भी माया के प्रभाव से ज्ञानी का ज्ञान भ्रष्ट हो जाने की सम्भावना है। और परमेस्वर की भक्ति पर धानुकूल रहने से ईश्वरवरावर्तिनी माया भक्ति के निष्कृत जाने का साहस नहीं करती तथा मग जाती है।

माया बना है उसी को बताव है कि 'गो गोचर अहं सगि मन आई। सो सब माया जानहु मारै ॥' उसी के बर में संसारमात्र है और वह दो प्रकार की है—विद्या और अविद्या। इन में से 'एक रथे अग गुन बस जाके। प्रसुप्तेरित नहिं निद्र बल ताके ॥ एक दुष्ट अतिसय बल रूपा। जा बस जीव परा मय कूपा ॥ सो प्रभु भूषिजास पगरासा। नाथ नटी इव सक्षिप्त समासा ॥' इसी से वह अविद्या रूपी माया प्रभु के भय पर प्रभाव विध्वंसने को समर्थ नहीं होती।

भक्त पर ईश्वर के धानुकूल रहने का कारण यह कहा गया है कि वे ज्ञानी को प्रीति दत्त के लक्षण और भक्त को अचोप शिष्य के समान समझते हैं, क्योंकि ज्ञानी को अपना बल रहता है और भक्त को ईश्वर का भरोसा होता है। अर्थात् ज्ञानमार्ग निराश्रय है और भक्ति पथ में सगुण उपासना का सहारा है। अतएव ज्ञानमार्ग दुष्प्राप्य और भक्तिपथ सगुण ब्रह्म के अक्षयम्बल से सुगम एवम् सुलभ है। 'रामचरित मानस' के उत्तरकाण्ड में 'ज्ञानवीर्य निरुपमा' प्रकरण में ज्ञानमार्ग की अठिनाई की रूपक द्वारा व्याख्या कर के इस गूढ़ विषय को इन्होंने सरल रीति से समझ दिया है और इन के तथा पीठा के मत से कोई वास्तविक विरोध नहीं रह गया है। इस मार्ग की अठिनाई के प्यान ही से इन्होंने 'ज्ञान पथ ज्ञान के धारा। परत पोष न क्षापहि धारा ॥ क्या है एवम् ज्ञान पर भक्ति की प्रभावता ही है और रामचन्द्र के मुख से भी ब्रह्मनाया है कि सुविचारी बुद्धिमान 'पापु ज्ञान मगति नहिं तबही' जिस में माया की बोधेबाजी से सुरक्षित रहे।

इन्होंने वे बहुतेरों के समान कैवल्य ज्ञान ही को मुक्ति का कारण और भक्ति को ज्ञान प्राप्ति का एक सुगम साधन नहीं माना है बल्कि भक्ति को ही मुक्ति माना है राम भक्ति सोई मुक्ति गोसायं । क्योंकि भक्ति करते १ अविद्याभक्ति अज्ञानान्धकार विनाश हो बित सुख हो जाता है और भिन्नप्रति प्रभु पादपद्म में वतारोत्तर प्रीति बद्ध २ अथाच्छुनीय होने पर भी भक्त को मुक्ति आप ही आप प्राप्त हो जाती है। इसी से जिस में भक्ति का प्राधान्य न हो ऐसी मुक्ति इन्होंने वे कभी नहीं मानी है। और इसी से इन्होंने वे कहा है 'जैहि भोजि जगों करमबस सिप राव पर अतुल्यमर्म । अन्य कोई भक्त भी ऐसी मुक्ति और ज्ञान नहीं चाहता।

पूर्वोक्त बातों से मोसाई की का यह सिद्धान्त प्रयत्न होता है कि प्रथम तो भक्ति बिना ज्ञान का होना ही असम्भव है और यदि हो भी तो भक्ति द्वारा पुष्टित नहीं रहने से मोसे ही में माया के फँसे में पड़ कर उस के नष्ट हो जाने का भय रहता है जैसा कि गुरु नामक की ने भी कहा है कि 'भक्ति बिना बहु हूँने सिवाने । भक्ति में इस का भय नहीं । क्योंकि जैसे माता-रिता छोटे बालकों की रक्षायी करते हैं वैसे ही प्रभु भक्त की रक्षायी करते रहते हैं । रामचन्द्र जी कह रहे हैं कि 'भक्त मुझे प्राणप्रिय है और भक्तिहीन पुरुष मुझे नहीं माता । भक्तिहीन बिरंभि किन होई । सब जीवन सम प्रिय मोहि छोई ॥' सब है, छोटा बालक किस को प्यारा नहीं होता ? और यदि वह ज्ञानवान हो तब तो वह और भी अधिक स्नेहपात्र होता है । इसी कारण से आर्त अर्थात् शिखा तथा ज्ञानी ये चार प्रकार के भक्तों में से मोसाई की ने 'ज्ञानी भक्त को प्रभु का विशेष प्यारा कहा है । बड़ी परामर्शिता का अधिकारी होता है । परामर्शिता ही को मोसाई की पूर्ण भक्ति मानते थे जिसका सचरा अपने नियमनिका के १९०वें पद में कहा है :—

“रघुपति भगति करत कठिनाई । कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि वनि आई ॥ जो जेहि कला कुसल ता कह सोइ सुखम सदा सुपकारी । सफरी सनमुप जल प्रवाह जल सुरसरि वई गम मारी ॥ ज्यों सर्करा मिले सिकता महु वल तें न कोठ विक्षगावै । भति रसज्ञ सुखम पपीलका विनु प्रयासहि पावै ॥ सकल ह्य निज हृदर मेखि कै सोवै तजि नित्रा ओगी । सोइ हरिपद अनुभवै परम सुप भविसय द्वैत वियोगी ॥ सोक मोह भय हरप दिक्स निसि वैस कास तह नही । हुससिदास यह दसा हीन संसय निरमूल न आही ॥”

उपर्युक्त चारों प्रकार के भक्तों को नाम ही का आधार होता है । परमेश्वर की प्रसन्नता के निमित्त भगवत्समर्पण और नामजाप ये दो मुख्य साधन हैं । प्रथम के विषय में आपने कहा है कि 'रामचन्द्र के सज्जन विनु जो यह पद निरवान । ज्ञानवंत अपि सोपि नर पशु विनु पूष समान ॥' तथा 'बिनु हरिसज्जन न भव तरहि, यह सिद्धान्त अपेक्षित और रामनाम का महात्म्यवर्णन में तो रामचरित्रमामस में आपने अपूर्व पाण्डित्य प्रदर्शन किया है अर्थात् रामनाम की अनेक सपमार्यों देकर आपने अपनी प्रबल कविताशक्ति का भी परिचय दिया है । 'बदत राम नाम तुबर के' वहाँ से प्रारम्भ कर कई बीषाइयों और दोहों में नाम महात्म्य वर्णन करते २ इन्होंने वहाँ तक कह दिया है 'राम न सकहि नाम गुण गाई इस नाममहिमा कथन में इन्होंने उपाधिपर तथा वैशान्त विषय की भी महा कविता और सरल रीति से बोधगम्य बना दिया है । इन्होंने न वह भी स्पष्ट कहा है कि कति में कमयोग एवम् ज्ञानयोग साधन मनुष्यों के लिये कठिन है, अतएव परमेश्वर का नाम अपने ही से जीव का कल्याण होगा ।

धी गुरु नामक की ने भी नाम की महिमा का बहुत बखान किया है और कहा है :—  
 “समी जप समी तप समी बतुराई । बमकी भमे राहि न पाई ॥

बिनु सूत्रों कोवे ना पाय । नाम विदुया महुँ पाय ॥” —महत् १ ।

“नाम विदुना मुक्ति न होइ ।” —महत् २ ।

प्राचीन तथा मध्य युग के इस्तानी जर्मपुस्तकों में भी ईसाइयों के प्रभु महात्मा ईशामसीह के नामोच्चारण की महिमा का वर्णन पाया जाता है । ओरिजेन क्हाता है कि ईशामसीह के नामोच्चारण में जो उन के जीवन-कथा-पाठ में हुआ करता है समस्तों के भगाने की शक्ति है । नाम रहस्य का भी गुण विज्ञान है, जो उसके शिष्यवर्ग को शक्ति प्रदान करता है । ईसा का नाम भी इसी नामविज्ञान के अन्तर्गत है ; दूसरे लोगों का रूपन सुनिये । टाम्पस ए केम्पिस—पवित्र नामोच्चारण पाठ में एतु स्मरण में एतज मनन में सुखद एवम् रक्षस में बलिष्ठ है । पी पेल्बर्ट—अपने महापवित्र नाम के प्रभाव से जो पांच ‘अक्षरों का है वह निरन्तर प्रति पापियों का उच्चार किना करता है । एस० बोनावेन्चुरा—ऐसा कोई नहीं है जो मन्त्रपूर्वक उस का नाम उच्चारण करे और उस से काम न उठाये । पुन—नाम प्रतापवान और अस्मृत है ; जो इसे धारण करेंगे उन्हें मरण अज्ञान में मग नहीं आयेगा । रिचार्डस सी० एस० स्कारन्शियो—रोगनिवृत्ति के निमित्त नाम ही धरम है क्योंकि कोई ऐसी महामारी नहीं जो नामप्रभाव से निरन्तर नाश न हो । एस० विमेट—नाम उच्चारण सुन कर मृत प्रेत ऐसा भागते हैं मानो धाम के सामने से भावते हों । सब मृत प्रेतादि इस नाम का सम्मान करते और इस से मग आते हैं । जिस बीम को वे अगुह में पकड़े रहते हैं उसे नाम-उच्चारण सुन कर वे परित्याग कर बैठे हैं । आनोरियस—नाम उच्चारण मरुत है और इसमें स्वर्गिय स्वार् मिलता है ।<sup>१</sup>

१ Jesus (जिसस) ।

१ *Origen himself says that the power of Exorcism lies in the name of Jesus, which is uttered as the stories of 'His life are being narrated' He talks of a 'Secret science of names which confers powers upon the initiated. The name of Jesus,' he adds 'comes under this science of names.' Thomas a Kempis—'The holy utterance, short to read, easy to retain, sweet to think upon, strong to protect.' P Pelbart—'By his most holy name, which consists of five letters He daily offers pardon to sinners' S Bonaventura "No one can devoutly utter Thy name without profit" and again "Glorious and wonderful is the name. Those who keep it will have no fear when at the point of death" Recardus de S Laurentio—'The name alone is sufficient for healing; for there is no plague so obstinate that does not*

1. 1. श्रीभूमिक कस्तुरी मन्त्रों में श्री नाम के आदर का बिन्दु देखा जाता है ।

2. 1. इन कवनों से स्पष्ट मान होता है कि हरिनामधीतन का बड़ा माहात्म्य है और इस बात को सब देश के बर्मेप्रवारक मानते आते हैं । परन्तु हरिनाम कीर्तन तथा ईश्वर में अनुराग बिना सत्संग के नहीं हो सकता और इस के बिना मक्ति भी प्राप्त नहीं हो सकती । "बिन सत्संग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग । मोह गए बिनु रामपद होइ न ह्य अनुराग ।" और 'भगति सुख सफल गुन पानी । बिनु सत्संग न पावहि प्राणी । इसी से मन्त्रा मक्ति में प्रथम मक्ति सत्संग ही बताई गई है ।

गोस्वामी जी में लक्ष्मी मक्ति वर्तमान थी । मित्र इष्ट वन में भड़ों की शृंगार दास वात्सल्यादि मित्र २ प्रकार की भावनाएं होती हैं । गोसाईं जी का श्री रामचन्द्र में दास्यभाव ज्ञात होता है और उस में कुछ वात्सल्य की भी झलक देखी जाती है ।

गोसाईं जी मक्तिरस के एक प्रधान पबिक तथा पपप्रदर्शक हुये हैं । इन की गक्ति पराक्रम्य थी थी । इसी से वे अपने शत्रुओं को ऐसा मक्तिपूण बनाने और उस में ऐसा मक्ति श्रोत बहाने को समर्थ हुए हैं कि उन के पाठ से पाठक मक्तिरस में निमग्न हो जाता है । इन की प्रत्येक पुरतक मक्तिरस में पयी हुई है । सुरदास जी के सिषाय अन्न कोइ इन के समान माया का भक्तप्रति इष्टिगोचर नहीं होता । वे सबदा भक्तिभाव में विमोर्धी रामचन्द्र के चरणकमलों में बिल लगाये प्रेमपूर्वक उन्हीं का गुणगाण करते मक्तिरीति रखाते प्रेमाभक्ति श्री प्रदानता तथा आदरकला दिखलाये और उठाये गये हैं । प्रेम की प्रधानता इन्होंने स्वयम् ही नहीं कही है बरन् शिष्यी के मुख से भी कहलवाना है — 'हरि म्यापक सर्वत्र उमाया । प्रेम से प्रसन्न होहि में जाना ॥ अगबग मय सब रहित विरागी । प्रेम तें मधु प्रयते बिमि आगी ।

वे निष्काम भक्त थे क्योंकि वे जानते थे कि संसार में मक्ति से बढ़ कर अन्य कोई फल नहीं उची श्री प्राप्ति में सब कुछ प्राप्त हो गया । अन्य कामना की क्या आवश्यकता । निष्काम मन्त्रानाम्नी के हृदय में भगवान सदा वास करते हैं जैसा कि कहा है :—

"वचन, कम, मन मोर गति, मजन करै निष्काम ।

ता के हिरदयकमल में, सदा करौं विसराम ॥"

inevitably yield to the name." *S. Bridget*—"Evil spirits flee, as if from fire when they hear the Name, and "all demons honor this Name and fear it. When they hear it, they at once release the soul which they have been holding in their talons. *Honarius*—"The Name is full of all sweetness and of divine relish" Vide "Gleanings from the Bhakta Mala." by G. A. Grierson and the Translation of Ramayan of Tulsī Das, by Growse, Bal Kandi, p 19 note,—edited by Ram Narayan Lal.

प्रिय पाठकों से हमारी प्रार्थना है कि वे किसी सम्प्रदाय का धर्म क अनुकारी क्यों न हो  
 निज इष्ट देव प्रभु के पादपद्मों में सदा सानुराग चित्त दिये प्रेमपूर्वक उम क भजन और  
 पुष्पकीर्तन में व्यस्त रहेंगे। इसी से ईश्वर के वसापन्न होने और उमन लोक में कल्याण की  
 आशा है। शेली (Shelly) के कवनानुसार सामान्य कीटानुकीट भी प्रेम और पूजन द्वारा  
 परमात्मा में लीन हो सकता है।

“The spirit of the worm beneath the sod,  
 By love and worship blends itself with God.

## त्रिशद् परिच्छेद

### वाल्मीकीय तथा अध्यात्म रामायण

इन रामायणों का विषय वर्णन करने के पूर्व हम वात्सीकीय रामायण के रचना कालादि के सम्बन्ध में कुछ कहना उचित समझते हैं। अम्य प्राचीन ग्रन्थों के समान इस के प्रकाशनकाल में भी मतभेद है। सर विलियम जोन्स इस का निर्माणकाल ई. सन् के १०१४ वर्ष पूर्व बताते हैं, डाड ११०, किट्टली १२० तथा प्रियमो १२ वर्ष ईसा के पहले मानते हैं।

श्री २ कहते हैं कि यूनानी लेखकों ने रामायण का उल्लेख नहीं किया है चीनी यात्री फाहियान भी जो ४००-६०० ई. में भारतवर्ष में आया था, अयोध्या का हाल नहीं लिखता है और रामायण में दो स्थानों में (एक बालकाण्ड और एक किष्किन्ध्या में) बरन शब्द आया है। इन कारणों से रामायण की रचना यूनानियों के भारतवर्ष में आने के बहुत दिन पीछे हुई होगी।

प्रेमियो का कथन है कि यूनानियों ने भारतवर्ष के केवल ब्रह्मसमु उपग्र बरन, रास्य रीति-रसम प्रवेशों, नदियों तथा पर्वतों का हाल लिखा है और कुछ नहीं और फाहियान ने भी केवल बौद्धमत बौद्धविहार भिक्षुक, गाथा तथा बौद्धनियमों का बणन किया है।

यवन राज्य प्रयोग के विषय में शोरेत्र कहते हैं कि पहले यह शब्द भारतवर्ष के परिवसरण प्रदेशों की जातियों के सम्बन्ध में प्रयोग होता था और पीछे यूनानियों के लिये प्रयोग होने लगा (पुर्नात रामायण वाले यवन शब्द को यूनानियों से सम्बन्ध नहीं है)।

थार्बर मेकडानेन प्रोफेसर बम्बेरी से सहमत होकर उसे खेपक मानते हैं और कहते हैं कि यह खेपक ई. सन् के १०० वर्ष पूर्व हुआ। आप कहते हैं कि बुद्ध का नाम जो रामायण के एक स्थान में आया है वह भी खेपक है।<sup>१</sup> पालीभाषा में जो 'ब्रह्मण्य आतक' पुस्तक है उस में कुछ उल्ट-केर कर रामकथा लिखी गई है और उसमें लंकाकाण्ड का १२ वाँ श्लोक पाली के ब्रह्म से मध में लिखा गया है। महाभारत में भी रामकथा तथा इन रामायण के कई एक श्लोक हैं। रामायण में पाटलीपुत्र का वर्णन नहीं है जो कि ई. सन् के पूर्व १८ में (मगध के राजा) चाक्षायिक के समय बसाया गया और मेगास्थनीज के समय

१ मेगास्थनीज का जिक्र हुआ प्रथम विद्यमान नहीं है। अम्य ग्रंथकारों ने उस के ग्रंथ से जा २ ग्रंथ उद्धार कर अपनी १ पुस्तकों में उद्धृत किया है वे ही सब श्वानबेक (Dr Schwanbeck) द्वारा संश्लिष्ट हो कर मेगास्थनीजकृत भारतवृत्तान्त के नाम से प्रचलित है।

२ खेपक प्रेमीगल ईशें कि मन्दिपल् में हम का सैसा अनिष्टकर परिणाम होता है। इन्हीं सबको के कारण बहुत से लोग वात्सीकीय को फूह का पना कहने पर तैवार हुये हैं।



भारतवर्ष की राजधानी हो गया था। यह सब बातें ब्रह्म कर आप रामायण का समय ईस्वी सन् १०० वष पूरा बताते हैं ५१

प्रेतियो ब्रह्मते हैं कि रामचन्द्र से छुट्टि फर्बन्त जो विक्रमादित्य के समस्तमविक्रमे १९ राजे हुने और प्रत्येक का शसित २४ वर्ष शासनकाल मानने से समग्र ११० वर्ष ईसा के पूर्व होता है। इन का यह भी कथन है कि रामायण का वर्णन राक्षसविनी में आया है। कस्मीर के राजा द्वितीय दामोदर को शापवश श्रेय हो गया था और रामायणग्रन्थ से उस शाप का मोचन कहा गया है। द्वितीय दामोदर शिरीष मोनई से जिस का समय राक्षसविनी के अनुवादक द्वारा से ईस्वी सन् के ११८ वर्ष पूर्व स्थित किया है, पांच पीढ़ी ऊपर से। प्रत्येक राजा का शासनकाल २४ वर्ष मानने से इस से भी रामायण का समय समग्र ११ वर्ष ईसा के पूर्व होता है।

अमेरिका के 'नासलेज नामक पत्र में वास्टर ब्राउड ने लिखा है कि रामायण के समय बिन बिन ग्रहों के बिन बिन राशियों में होने का रामायण में उल्लेख है कि सब ग्रह १ फरवरी को १०९१ वर्ष ई. सन् के पूर्व उन राशियों में थे। इस से प्रतीत होता है कि रामायण की रचना उसी समय के लगभग हुई होगी। अर्थात् साहब की राय में रामायण को बने कोई १९७ वर्ष हुए।" २

निरपेक्ष यह एक पुष्ट प्रमाण है। वास्मीकि जी को हम लोग रामचन्द्र जी का समकालीन पुरुष मानते हैं। वनवास के समय सीता जी बन्दी के आश्रम में ठहरी थी वही लवपुरा का नाम हुआ वही में लोग बड़े पड़े इत्यादि।

परन्तु जर्मनी पब्लिशर साडेन स हब तथा उनके अनुयायी कई एक देशीय महाराज भी वास्मीकि जी की रामायण का कर्ता होना स्वीकार करना नहीं चाहते और मेकबनेस साहब लवपुरा नामों को संस्कृत शब्द कुशिलव (मंड वा मण्डक केरनेवाला) की व्याख्या मानते हैं और झग नहीं। किन्तु हम नहीं समझते कि ऐसा होने पर भी इन के व्यक्ति विशेषों के नाम होने में क्या आपत्ति है। ३ हीन जाने रामायण बर्णित कुशलव बटना के कारण ही यह शब्द पीछे उक्त अर्थ में प्रयोग होने लगा हो।

वास्मीकीय रामायण का कई मायाओं में अनुवाद हुआ है। लवचरण से सुनते आते हैं कि अक्षर के संस्कृत अक्षरों की में भागवत वास्मीकीय रामायण मीता तथा अन्याय संस्कृत अर्थों का दूसरी माया में अनुवाद किया था।

हमारे द्वितीय विमुक्त एजबरेण्ड सु. जयदम्बा सहाय के हाथ की १८२० ई. की लिखी हुई भागवत की एक प्रति हमारे पुस्तकालय में है। एजबरेण्ड भी काशी सहाय को कई बार बंधन आयोग्यता पाठ करते देखा है। यह अनुवाद पत्र में है।

१ Vide A History of Sanskrit Literature by Arthur A. Macdonell, p.306-9

२ १२२ भारतवर्षी भाग १४, पृष्ठ २१७१-७२।

३ Hunter Fisher Hawker Falconer इत्यादि अन्य अर्थ जोषक शब्द होते हुए भी व्यक्ति विशेष के नामों के लिये प्रयोग हुआ करते हैं।

१९०१ ई० का बरैन्नीनिवासी मु० रोशनलाल बरिस्टर क भाङ्गानुसार प्रकाशित पद्यरत्न गीतानुवाद भी हमारे पास है। यह अनुवाद स्वर्तक है।

श्रीधर कायस्थ काङ्ग्रेस के समय जब हम परम प्रेमी काशीवासी स्वर्गीय पं० अम्बिकादास म्यास साहित्याचार्य के साथ स० १९४९ में लाहौर जा रह थे तब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अतिष्ठ प्राता बाबू गोकुलचन्द्र से मिलने गये थे। प्रसंगवश उन्होंने भी सीताजी की लम्बासीलिखा के बर्णन में खैजी का यह पद्य कहा था —

“तनशरा पैरहन उरियां न दीद।

बो जान अन्दर तनस्त धन जां न दीद।।”

अर्थात् परिधान बस्त्र न सीताजी को नग्न नहीं देखा उसे जान शरीर में है पर शरीर प्राण को नहीं देखता है।

अर्थात् अरुबरी' म्यास मन विश्व १ पृ० १०२ से ज्ञात होता है कि अक्षर ने पहले पहल संस्कृत रामायण का गद्यानुवाद करने का भार काँट्रि बयरा ददायूनी को सौंपा था। उस अनुवाद की बहुत प्रशंसा हुई थी। वह पुस्तक शायद अमेरिका मुक्त प्रान्त के कर्मस हवा के संग्रह में है।

इस रामायण का आनन्द र्या (लण्डनलुम खुरा) हल एक दूसरा आधुनिक और अपूर्ण गद्यानुवाद है। अज्ञ भाग का अनुवाद नहीं पाया जाता।

मीडिल साहब ने अंगरेजी में इस का पद्यरत्न अनुवाद किया है। अंगरेजी गद्य में एवम् इच्छित्वन तथा प्रेक्ष मापा में यह अनुवाद हुआ है। और क्यटिन मापा में भी इस क अंगानुवाद की बात सुनी धानी है। इस का हिन्दी अनुवाद भी धरा है और मूल के साथ इस की अनेक टीकाएँ भी लगी हैं।

अब आगे बास्मीधीय तथा अम्यात्म रामायण का विषय संचित्त बणन किया जाता है इस के पाठ से पाठकों को सहज ही मात हो जायगा कि रामचरित मानस तथा उपयुक्त उभय रामायणों क कथाप्रसंग में क्या कहा प्रमेद है।

याज्ञिकायट—बास्मीधीय रामायण के आरंभ में नारद जी बास्मीकिजी को रामकथा संक्षेप में सुना गये हैं। फिर रामायणरचना का कारण कहा गया है कि एक शीत पत्नी का बच होत बच कर बास्मीकिजी का हृदय पुत्र से महा संतप्त हुआ है तब प्रजा न सन के हृदय की शान्ति क निमित्त नारद से सुनी हुई रामकथा अभ्यस्य करने को उन्हें स्वप्न में आदेश किया है। फिर सूची समाप्त रामकथा बही यर है। इसके अनन्तर अयोध्या नगर का बणन दरारक के अरबमन्वन का इतान्त अधिष्ठय की कथा और टमकी सहायता से दरारक के पुष्पेद्रियस करने का हाल कहा गया है। फिर बानरों की उत्पत्ति एव बारी माइसों के जग्म नामकरणादि तथा सन के विवाह की विन्ता का हाल बणित हुआ है।

इस में गोरवायी की कृत रामायण के समाप्त रामायणतार राजराजतार तथा मदनबहन की कथाएँ मही हैं। इस में यह लिखा हुआ है कि विश्वामित्र क सग प्राप्ते समय गंदा सरयू के

संयम पर एक आश्रम में बहुत से श्रमियों को हमारों बर्षों से तपस्या करते आनकर रामचन्द्र के उस विषय में पूछने पर किरवाभिमित्र ने कहा है कि वह कामायम है यहाँ महादेव की पूर्वकाल में तपस्या करते थे और जब वे अपना विवाह करके सब देवतों के संग बहते जाते थे, उस काल में मन्मथ ने उन का मन मयम करना चाहा था तब शिवजी ने 'हुम' कहर उस की ओर देखा और वह मस्म हो गया। उस स्थान से मायते हुए कहा उस की हैह गिरी वह भाइय केत' कहलाता है।

अप्यात्म में नारद का महा से प्रश्न तब पार्वती शिव-सम्बाध है। सीता की म हनुमान की से रामायण की संक्षिप्त कथा कही है। और रामचन्द्र ने आत्म-अप्यात्म तत्व बर्णन किया है। अनन्तर महादेव की विस्तारपूर्वक रामकथा करने लगे हैं। गोकुल धारण कर सब देवतों के सम श्रीरसागर के तीर जा पृथ्वी ने मगधम की रत्नति की है। बशरथ न अपने कामाय श्रमिण्ड ग की सहायता से पुत्रेक्षियज्ञ किया है और रामचन्द्रादि का अचतार हुआ है।

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार सोमों भाइयों को घाब लेकर विदा होने पर<sup>१</sup> किरवाभिमित्र ने राम को 'वशाभ्रतिवला' विद्या सिखाई है जिस से मूय प्यास का क्लेश नहीं होता। पर कामायम सरयू उत्पत्ति गंगा के दक्षिणतटव मलय और कश्य देश<sup>२</sup> की एवम् ताकथ और मारीच की उत्पत्ति की कथाए कही गई हैं। मार्ग ही में ताकथकथ हुआ है। अनन्तर रामचन्द्र को माना प्रकार का वैवाच्य प्रदान कर मुनि ने उन्हें शस्त्रसंहार-विद्या भी सिखावाई है। फिर सिद्धाश्रम<sup>३</sup> तथा वाचन की भी कथाए और मारीच सुनातु आदि के संग कुछ का हास्य बर्णित है।

तब अनुपबन्ध देवने के शिष्य जनकपुर प्रस्थान की बात है। पहले शिव सीम को लोग सोन किनारे ठहरते हैं। रात को रामचन्द्र के पूछने पर कि 'वह कौन बश है मुनि ने कुरानाम राजा की कथा अर्थात् निज बंशावली एवम् रणक की उत्पत्ति सुनाई है। दूसरे दिन सोन पार हो अम्पाहकाल में लोग गंगा किनारे पहुँच कर वहीं ठहर गये हैं। मुनि ने वहाँ पर संघाठमा

१ अनुप देव को वतमानकाल का बसिया विद्या बताया है।

२ इस पुस्तक का पृ १५० नोट ५ देखिये।

३ यही पीछे ताकथकथ हो गया था। यह स्थान शाहाबाद में था।

४ सिद्धाश्रम को कोई २ हजारभाग के त्रिभुजे में बताते हैं। परन्तु वहाँ से मिलिजा जाते समय कोई शिववादी श्रुतगामी बर्षों न हो उड़ दिन में गंगा तट पर नहीं पहुँच सकता, और बाबेबाबे को सोन पार भी जाना नहीं पड़ेगा यदि बेगुजर साहब का यह कथन सहीकार भी कर लिया जाय कि रामचन्द्र के समय सोन नहीं दाऊदनगर से देरी होकर कपुदा के नाम गंगा में मिलती थी (Archaeological Survey of India, Vol. VIII, p 6-II) वरन् ताकथकथ के अनन्तर शाहाबाद में सिद्धाश्रम जाते समय वाल्मीकिजी लोगों को सोन पार कराते। अस्तु सिद्धाश्रम शाहाबाद में बगमर से दक्षिण पृथ्वी की ओर कही जा।

की उत्पत्ति बखान किया है। प्रातःकाश रंगमा पार हो निरास नगरी में पहुँच हैं। प्रम्भ में उस नगर का बहुत लम्बा बीड़ा बर्णन दिया हुआ है।

इस में अहिम्ना के शक्ति होने की कथा है, परन्तु सग के शिखा होम रामचन्द्र के उस शिखा को पद से स्पर्श करने तथा उन के पतिलोक यमन की बातें नहीं हैं। गौतम जी ने यह श्राप दिया है कि 'अह स्वाम सर्वथा निर्जम हो जावगा त् सब बीरों से अदरय निराहार वामुमच्छ करती मृशाविनी हो तपस्वा करती रहोमी राम के इस घोरबन में जाने पर त् पदिस होगी। रामचन्द्र के वहाँ पधारने पर अहिम्ना पूर्ववत् हो गई है। रामलक्ष्मण ने उनके चरणों की बन्दना की है और उन का उत्कार स्वीकार किया है। गौतम जी भी उस समय वहाँ आ गये हैं आर उन से सत्कारित तथा पूजित हो रामचन्द्रादि जनकपुर सिवारे हैं।

“व्यतमत्ता निराहारा तप्यन्ति मस्मशायिनी ।  
 अदश्या सबभूतानामाभयेऽस्मिन् वसिष्यसि ॥  
 यदा स्वेतद्वनं घोरं रामो दशरथात्मजः ।  
 आगमिष्यति दुर्घर्षस्तदा पूता मधिष्यसि ॥  
 विश्वामित्रपथ्य भ्रुत्या राघव सह क्षत्रमण्य ।  
 यिस्वमिर्ष्य पुरस्कृत्य आभर्म प्रथिवेश ह ॥  
 ददश ष महामागां तपसा शीतिसप्रभाम् ।  
 भूमेनामिपरीताङ्गी दीप्तामग्निशिखास्त्य ॥  
 शापस्यान्समुपागम्य तेषां दर्शनमागता ।  
 पादाभ्यर्ष्य तथा तीर्थं चकार सुसमाहिता ॥”

'अभ्यारम में मुनि के रंग जाने के अनन्तर ठाढ़का बच, कामाभमवास सिखाभम में सुबाहु आदि बच जनकपुर की ओर कूच और रंगमा के इषी पार अहिम्नावाली कटमा ' और नहीं मरुताह का रामचन्द्र का पैर भोना करा है।

उस में गौतम ने श्राप दिया है कि हे दुष्टे ! इस मेरे आभम में रात दिन निराहार ओर तप करती हुई शिखा के उपर शिष्य हो एवम् भाष, पवन बर्षा इन को छूती हुई पृष्ठापचित से तप करती रह। अब रामचन्द्र तेरे आभम की शिखा के उपर चरण रखेंगे तब त् पाप से छूट जावगी —

“दुष्टे त्वं तिष्ठ दुर्घृष्टे शिखायामाभमे मम ।  
 निराहारा दिवारात्र तप परममाश्रिता ॥  
 यदा तवाभमशिखा पादाभ्यामाकृमिष्यति ॥”

उस आश्रम में जाने पर म राम हूँ ऐसा कह कर राम ने ब्रह्मिण्या को प्रणाम किया है ।<sup>१</sup>  
 जनकपुर की पुत्रवारी की कथा इन दोनों ग्रन्थों में नहीं है । और अर्थात् में निरम  
 मित्र की कहे पर जनक न अथन मन्त्रियों को आमा इकर पटा तथा रत्नादिकों से भूषित  
 शिष्यपुत्र को २ मनुष्यों के द्वारा मँयवाजा है एवम् उभे सब राजों के सामने रामकर्म ने  
 तोका है ।

'ब्रह्ममीश्वर में जनकपुर पंजने पर निर पुरोहित गौतमतमय सतानन्द सहित जनक  
 का हम लोगों का आगत स्वागत करना सत्रानन्द का निरवामित्र के तप तेजादि का हाल कहना  
 मित्र माता के शपथोचन का इतान्त सुन कर प्रसन्न होना बर्णित है ।

दूसरे दिन जनक जी ने राम हरमल के सहित निरवामित्र को पुठा भेजा है और  
 मुनि को यह कहने पर कि 'ये दोनों बालक धनुष देखना चाहते हैं यदि दिवा शीशने तो ये  
 इगार्थ हों' जनक ने कहा है 'कि महादेव जी ने यह धनुष ब्रह्मरक्ष के समय<sup>१</sup> देवतों के वन  
 के निमित्त उठाया था परन्तु उनके विमम पर प्रसन्न हो यह धनुष देवतों ही को द दिया था  
 किन लोगों ने इसे हमारे पुत्र निमि के पुत्र दबराय को बराहर दिया । एक बार सीता जी के  
 इसे उठा लेने<sup>२</sup> से हम ने प्रण किया कि जो प्राणी इस धनुष को तोषेगा उमी से हम सीता का  
 विवाह कर लेंगे । देव<sup>३</sup> के राजा आये परन्तु कोई इसे तोषन को समझ नहीं दूये । अस्पृश  
 हम ने उन लोगों को बिदा कर दिया जिस से कुछ हो कर सब लोगों ने हमारा नगर नर कर  
 सीता को बहारकार लेना चाहा । बर्द दिन पूरा होने पर दुर्ग संरक्षण का कोई उपाय न देख  
 हम ने तपस्या द्वारा देवतों से बहुरिणी सेवा प्राप्त की जिस के मम से मे लोग भाग गये ।  
 अन्धका हम इन लोगों को धनुष दिखाता देते हैं यदि ये लोग रोदा भी पचा लेंगे तो हम

१ पद्मपुराण में लिखा होने की बात देखी जाती है - गच्छतस्तस्य रामस्य पाद  
 शरणात्महागिष्ठा । काशिकुपोपुत्रभवत्ससो विस्मितं मुनिरप्रवीच ॥ शपथपुत्रा पुत्रा भर्ता  
 राम शक्रापरामस । अहश्वापया शिवा अशे शतशिखी हतवरात् ॥ त्वर्भित्तर्षनाशस्यै  
 शपथमर्त्त माह सीतम । तस्मादिष्यं से पादात्तवराणां धनुषाजमवत्यमो ॥

रक्षुंश्च मी पला ही कहता है ।

२ 'हम पुराण में नहीं है । परन्तु महि काव्य में इस को यह धनुष होना लिखा है  
 जिस स शिवजी ने त्रिपुरा का नाश किया था । — अत्रिप्रदहन जनको धनुषात् वेना  
 दिवदैत्यपुरं शितात्री । यह अथन अरवाण तथा भारत से निकलता है ।

३ उठाम की पान कई रीति में कही जाती है—(क) सीता ने मन्त्रियों के संग  
 लक्षत समझ उठा लिया, (ख) लक्षत समय जबकी ओड़नी में लग कर हट गया, (ग) यह  
 समझ कर कि धनुष की पूजा के लिय शितात्री का दूर जाते कष्ट होता है सीता जी उसे  
 पर उठा आई, (घ) माता के माग्दश बर्दी रदन में धनुष के स्थान का पूजा क निमित्त  
 एक दिन जीगने गई और उन हटा कर उन्को ने चाकोर बीज खगा दिया ।

दशरथनन्दन के साथ कन्या का विवाह कर देंगे।' अन्ततः आठ पहियों के छद्म पर खीचकर १०० पीरों ने उन धनुष को मगर के बाहर लाया है और अमरु जी तथा मुनि भी आशा पाकर रामचन्द्र ने उस पर रोषा बड़ा उसे ठाक दिया है।

अमरु का मही भरत मुनि का खिला पत्र ब्रह्मण्य मया है। बारात आने पर दशरथ ही ने बलिष्ठ भी से कष्टना कर ध्यय हीनों भाइयों का विवाह यही करता है। विवाह हो जान पर विश्वामित्र जी उत्तर भी और तास्या करने बल्ल गये हैं। बारात लौटन पर भरत तथा कबूदर भी मामा उपार्जित के संग मानिहाल गये हैं।

वास्मीकि तथा अप्प्यात्म दोनों ही में बारात छांटती समय परशुराम जी ने मार्ग में आकर रामचन्द्र पर क्रोध किया है और उन्हीं से साधारण रीति से बातचीत भी हुई है। रामचन्द्र ने उन के वैषम्य धनुष पर रोषा बड़ा कर उन से पूछा है कि कहिये, इस ध आप की मति का निरोध करें या आप के तपोबल द्वारा उपार्जित सोमों का द्यय कर दें। मार्गव ने कहा है कि मेरी गति का निरोध न हो हम स्वर्गमुख भोगना नहीं चाहते और वे तब महेन्द्र पर्वत पर चले गये हैं।

अप्प्यात्म में दशरथ जी की राजिया तथा गुरुस्त्री भी बारात गई हैं। विवाहांतर सीता की उत्पत्ति की कथा तथा रामस्तुति है। परशुराम जी नित्र हतान्त बखन कर और रामचन्द्र की स्तुति कर महेन्द्रपर्वत पर गये हैं।

अयोध्याकाण्ड—रामचन्द्र के धनुषों के विचार से एवम् अपने शरीर में बरामभ तथा स्वर्ग में प्रह लक्ष्मणादि की आकृतियां विरुद्ध देखने से दशरथ ने नित्र मनिषों की सम्मति से रामचन्द्र को सुवरात्र बनाना ठिकर किया है एवम् उधची तैबारिया होने लगी हैं। उन्होंने ने समा में रामचन्द्र से यह बात कही है और अन्त-पुर में भी बुलाकर उन से एकांत में कहा है कि हम तुम्हें कत ही सुवरात्र बना देने की इच्छा करते हैं जिस में भरत के आने के पूर्व ही यह कार्य सम्पन्न हो जाय, नहीं तो उन के यहाँ रहने पर कर्णचित कोई विघ्न खड़ा हो जाय।<sup>१</sup>

१ रामचन्द्र के अनुसार रामचन्द्र को मातृक समस्त जनक की उन्हें धनुष दिखलाने में दिक्क हुआ था।—

‘धनवीर्य मगधन् मत्तन्मैर्बहुहतिरिपि कर्म बुद्धम् ।

तत्र माहमनुमन्नुमुसहे मोक्षवृत्ति कसमस्य वेधितम् ॥

सर्ग १२ श्लोक १३ ।

२ रामचन्द्र के यह की स्वयम् परीक्षा करने के लिये वैष्णवी धनुष दिया क्योंकि यह शिबधनु के समान ही कठिन था।

३ इस भाव्य ध धनुमान होता है कि दशरथ ने इसी विचार से भरत जी को नाथा के घर भेज दिया था। गासाई जी ने भी मयरा क मुख से यह बात कहलवाई है ‘भरत भू पठ्य बलिधरि । राम मानु मत्त जानद रदरे ।’ परन्तु भरत से राजा के भय करने का कोई कारण रामायण से विदित नहीं होता। हाँ भरत जी के मामा से हो तो हो, क्योंकि कौटिली से इसी प्रतिज्ञा पर विवाह हुआ था कि उन के बरत का पुत्र सिंहासन पर बैशया जायगा। परन्तु सब पूर्विये तो भरत के उपस्थित नहीं रहम ही से यह सब उत्पन्न हुआ।

यह सुसमाचार सुन कर औरास्ना इस कार्य की सफलता के निमित्त बेबख्श कर विष्णुभ्वाण में ऐसी निम्न हुई है कि माई तथा स्त्री के सहित रामचन्द्र के सम के निष्कट जाने पर सुमित्रा के कदने से जन्मों ने नेत्र खोला है और इन लोगों को देखा है। वहाँ से अपने मन्त्र में आकर बरारण तथा बशिष्ठ जी के उपदेशानुसार रामचन्द्र जी सीता जी के सहित समय में प्रकृत हुये हैं।

अप्यास में पहुँचे ब्रह्मा के भोजे हुये नारद जी रामचन्द्र के पास आकर रावण वष के निमित्त निवेदन कर गये हैं। तत्पश्चात् पुनरात्मपद प्रदान का विचार और उद्योग हुआ है। बुद्धिपायक सज्जनस केरा देखने अथवा नक्षत्रादि की विष्णु मूर्तियाँ इष्टिगोबर होने की कथा उस में नहीं है। उस के अनुसार रामचन्द्र ने अपनी माता को उस समय प्यानापरिबन्ध देखा है जब वे ब्रह्मगमन के लिये लन से बिदा होने गये हैं।

रामचरितमानस तथा अप्यास जैसा वास्मीकि भी ने घररक्तों द्वारा संभरा की बुद्धि प्रद नहीं कराई है। प्रातः कास कोठे से नगर की सभाबठ देख किसी पार्श्व से पहुँचने पर उसे यथार्थ बात ज्ञात हुई है और तब उस ने अपनी बुद्धिशाई से कैकेयी का मत फेर लम्बे हो कर मानने पर उद्यत किया है।

राजा ने कैकेयी को पहले बहुत कुछ समझाया हुआ था है, किन्तु उस का हठ देख कुछ से महा क्रुद्ध हो कोप में यह भी कहा है कि 'मेरे मरने पर तु मेरा शरीर म लूये तथा मरत मेरी अन्त्येष्टिकिया नहीं करे'।<sup>१</sup>

जब सुमन्त के सप रामचन्द्र कैकेयी के मन्त्र में गये तब लिये २ सज्जन भी वहाँ गये हैं। राजा ने रामचन्द्र से कहा है कि 'सुमन्त जीवशीमूल को आरागार में बाध कर तुम राज्य करो। इस पर सुमन्त म होकर जब रामचन्द्र अपनी माता से बिदा होने गये हैं तब उन्होंने ने तथा शरमरा ने इन्हें बन् जाने से रोकनी की बनी शेष की है एवम् रामचन्द्र को सिंहासनाह्व कराने को उद्यत हो कर शरमरा जी ने कहा है कि 'आप माग की प्रवृत्ता बखान रहे हैं और हम राजा को बन्ही करके-एवम् मरत शत्रुहृदय तथा सम क पक्षपातियों को जाहे ने वेवराज्य ही क्यों न हो रख्येत्र में भूशानी बनाकर संसार को आराम नह दिखला देंगे कि पौरुष के सामग माय की क्या मिलती है।'<sup>२</sup> और सीता जी ने अपना प्रेम अत्यन्त पाठिप्रत मायी विबोगपुन्त्र बनाते हुए यह भी कहा है कि 'आप हमें बन् दिखाने के लिये बहुत दिनों से कह रहे हैं हम ने अपने मयके में ज्योतिषियों से भी सुना है कि हम को बन् में रहना होगा अतएव हमको भी साथ छोटे बलिने। और इनी बाधाताप में उन्होंने ने यह भी कहा है कि आप हमें साथ छो जाने में मन्त्र करते हैं, आप निरचन आकार ही में पुरुष हैं आप के लज प्रताप की प्रसांसा व्यर्च ही है यदि हमारे

१ मरत पर हतना कोप करने और उन से हतना विरह होने का कारण विहित नहीं होता।

२ अप्यास में भी ये बातें पाई जाती हैं।

पिता आप को ऐसा जानते ता आप को आपना दामाद नहीं बनाते।<sup>१</sup> क्या कहने का अभिप्राय केवल यही था जिस में रामचन्द्र उन्हें बर न छोड़ जायें।

रामचन्द्र ने उगार प्रसुपर द्वारा सबों को शान्त कर सत्यमण तथा सीता के संग बन जाना स्थिर किया है। और बरण-यदत्त दो घटुप दो अमेद कचन तथा दो अचन निपंग को, जो अचन ने उन्हें दहेज में दिया था, गुरु के बर से मगबा मेजा है एवम् अपनी सारी बीज वस्तुओं को बशिष्ठ जी के पुत्र सुवह तथा अन्य ब्राह्मणों को और निज के तथा अपनी माता के हाथ दासियों को बंट दिया है। उनके आदेश से सीताजी ने भी अपना भूपसादि सुवह<sup>२</sup> की स्त्री को दे दिया है और तब सोम दशरथ जी से बिदा होने गये हैं।

उस समय उस स्थान में बशिष्ठ जी, सब राजिवां तथा नगरनिवासीयत् भी इकट्ठे हुए हैं। सुमंत न कैकेयी का सख्येय बिहारते हुए उनकी माता के हठी तथा बुदिल स्वभाव की भी बातें कही हैं। अब कैकेयी ने मुनिवह लालर तीनों आश्रमियों को बिदा है उस समय बशिष्ठ जी ने भी बहुत क्रुद्ध होकर कहा है कि सीता को क्यों मुनिपुत्र दिया जाता है? बर तो इन के बारे में नहीं है।<sup>३</sup> अन्य नर नारियों ने भी भिक्कारा है। फिर कौशल्या तथा सुमित्रा ने सीता तथा लक्ष्मण को उपदेश दिया है।

अन्ततः जानकी जी बलामूपस्य पारण कर और १५ गहनों को लेकर एवम् रामचन्द्र तथा सत्यमण जी पूर्वोक्त कचन, अरज शरभ कुदायल पिठारी इत्यादि लेकर रथासूत्र हो बन को रवाने हुए हैं। पुरबन, रामीगण तथा राबा उन के पीछे दौड़े हैं। सुमंत के समझाने बुझाने से रिजवां बर की ओर छोट गईं हैं। दशरथ कैकेयी पर कठिन कोप करते उन्हें अपना शरीर स्पर्श करने का निषेध करते हैं एवम् कौशल्या के मवन में पले जाते हैं। नगरनिवासी लोग रामचन्द्र के पीछे २ तमसा नहीं<sup>४</sup> तक गये हैं।

उस रात रहते ही रामचन्द्र बुपके वहां से रथ अस्ता देते हैं और धेरभृति<sup>५</sup> गोमती सवन्दिजा<sup>६</sup> नदी पार होने पर शत्रुघेत्पुर में मिपाद से मँद होती है। प्रातःकाळ गया पार होने पर भरद्वाजश्रुति का दर्शन होता है। वे इसलोगों को स्वागत ही में रक्षना चाहते हैं परन्तु वह स्वाम अयोध्या के निष्कटवर्ती होम के कारण रामचन्द्र के प्रस्ताव अस्वीकार करने पर उन्होंने निष्कटवाच की सम्मति ही है एवम् कुछ दूर जाकर निष्कट का मार्ग स्वयम् दिखा

१ हमारी समझ में इस प्रकार का बर्णन गोस्वामी जी ने अच्छा किया है। इन्होंने बालासागर में सब पात्रों के गौरव की रत्ना की है।

२ दशरथ में बशिष्ठ की स्त्री खिला है। गया एक ही घर में, मिसा हो चाहे सास को चाहे पताह को।

३ अयोध्या में यह बात है। परन्तु सत्यमण के विषय में भी बशिष्ठ जी ने यही बात बर्णन नहीं कही।

४ बलमान हों।

५ बलमान वेदसा।

६ बलमान सई।



रिखा है तथा उसका पूरा नष्टग भी कर दिया है जन्हीं के कहने क अनुसार बांस का जेहा बनाकर तथा जमुना पार बन कर इन लोगों ने वास्मीकि जी का दर्शन किया है। सप्तमक में शकरी कट कर कुटी का निर्माण किया है और एक सूया मार कर तथा यह करके पृथि-प्रवेश किया गया है। अन्वत्स के अनुसार कुटी बनाने में वास्मीकि जी के शिष्यों में भी सहायता थी है। यह बात बहुत सम्भव है।

वास्मीकीय में केवट के वेर जाने मरहाम के शिष्यों का रास्ता दिखाने, निपाद के संभ जाने तथा जमुना पार होने पर एक तपस्वी के इनलोपों के साथ हो जाने की बातें कही नहीं है और न वास्मीकि ने शिविभ भाषि का रामचन्द्र के रहने का ठीर ही बताया है। छीता की में गंगा तथा जमुना दोनों ही की प्रायना थी है कि पति तथा बेबर क साथ सपुशक वीटने पर श्य और मदिरा से पूजा कर्हेयी। जमुना पार श्वाभकट की प्ररक्षिता कर उस की भी शार्चना की है।<sup>१</sup>

अन्वत्स में मूत्रवेरपुर में सप्तमक का निपाद प्रति श्वाभोपदेश केवल गंगाकी की मन्ति, और वास्मीकि जी का रामचन्द्र के लिये मित्र २ निवासस्थान बताया तथा मित्र वृताग्य वर्तमान करना किया है।

निपाद के पास तीन दिन ठहर कर सुर्मक का अयोध्या ली-जाना पुरवासियों की उदायी-राधा की अनाकुठता कीशरना का वेद, सुयम का कथा वर्तन। छे दिन अशीरम में बराच का स्वर्नचान मरत जी का नाभिहाल<sup>२</sup> से पुलाका जाना और जाने के समय बिहाई में प्रधुर परार्थ हायी अन्धर, कुदा प्रादि पाता, कचय ज्ञान पर सब वृतान्त जानने से मित्र माता की बिदारना तथा कौरक्या दर्शन श्रयादि।

रामा के देहलकार के अनन्तर एक दिन कई वासियों के सय गंधरा को आभूषणों से भूयिभ वेद वरवान उसे शत्रुहण के पास कचक साबा है। ये उसे पीटने लगे हैं- कैकेयी उसे छोड़ने आई है; शत्रुहण से उन्हें भी बेतरह कटकारा है अन्ततः मरतजी ने उसकी रिहाई करा की है।

१ रामायण में रामकी जी के इन मन्त्रिणों का मार उतारने के लिये देवमरि प्रादि की पूजा करने का दाख कही नहीं किया हुआ है।

२ वाई २ गिरिमज अर्थात् बिहार प्रदेशात्कगत वर्तमान 'राजमूदि की मरत जी का नाभिहाल यथावे है। यह सर्वथा भूख है। वास्मीकीय रामायण में स्पष्ट कहा है कि अयोध्या स परिषद घोर अन्ध का इस्तिनाजुर हाथी और घोड़ी देर गिरिमज में सुखा का दृग भोग कही से फिर लीम उन के नाभिहाल गये। (अ० सर्ग ६८ श्लोक १२-१३ २१)। उत्तरकाण्ड के अग १० १ १ से भी इन का नाभिहाल परिषद ही प्राप्त में मित्र कही की और दोगा मित्र होता है। और गिरिमज के नाम के क्या हो खान कही हो सकेते। टाड तादक ने मूदि तथा मदक इन दोनों शक्यों को एक अर्थबोधक जान कर वर्तमान रामायण को राजमूदि बोला बताया है।

मरत जी के बन जाने के समय बहुत से शिष्यकार रास्ता दुस्त करके को आगे भेज पये हैं। मरत जी के मृ गबेरपुर पहुँचने पर निपाद ३०० नाचों पर सौ २ कैबर्क तथा सौ २ पीरों को बिठा बाटों को कड़ा कर मांस, मछली राह्य आदि लिये स्वयम् मरत जी से मिलन आना है और उन से स्पष्ट पूछा है कि आप किस मनसा से सर्वेभ्य रामचन्द्र के पास जा रहे हैं।

प्रयाप में मरदाह ने अपने तपोबल से श्रद्धि सिद्धि को आकाश दे मरत जी की पहुनाई करने के लिये अल्पकाल में अत्रुत सामगियां प्रस्तुत कराई हैं। अप्सराओं को भी नाचरङ्ग के लिये वहाँ बुलवा लिया है।

मरतजी के रामचन्द्र के निकट पहुंचने के बोधी ही देर पहले लक्ष्मण जी ने एक मृग मार कर उसका मांस रांपा है और उसी समय एक काक आकर सीताजी को बहुत पीड़ित किया है। इस काकक्या को लोग चोपक बताते हैं परन्तु सुन्दरकाण्ड में सीता जी ने भी इस कौआ की बात हनुमान जी से कही है। यदि चोपक है तो दोनों स्थानों का बर्णन। यहाँ पर और भी बहुत सी बातें चोपक प्रतीत होनी हैं। हमारी समझ में तो बाल में तथा राज्याभिषेक की बाद वाली बहुत सी कथाएँ भी चोपक हैं।

हम में लक्ष्मणचोप तथा मरतचोप की कथाएँ नहीं हैं। हाँ रामचन्द्र के सीटने पर सम्मत नहीं होने से मरत जी बुधासन बिद्धा कर प्राण परित्याग करने पर अचरय उद्यत हुये हैं।

मरत जी के सीट आने पर चित्रकूट के मुनिलोग रामचन्द्र से कुछ मय मान उस वन को खाग वहाँ से अन्वयत्र जाने लगे हैं तब रामचन्द्र ही स्वयम् वहाँ से बल लिये हैं। बलते समय अत्रिमुनि का दर्शन हुआ है। उन की स्त्री अनसूया जी ने बामनी जी को पातिव्रत धर्म का उपदेश दिया है और वो दिग्भ्रमाज्ञा धेष्ठ बस्त्राभूषण पहिनाकर तथा वन के अड्डों में रागादि सेवन कर उन्हें अपनी कुटी से बिदा किया है।

अपनात्म के अनुसार जब अक्षयवामीमण रामचन्द्र को बाहु तथा स्त्री सहित दरार के महल की ओर पाँच २ मात देख लेदित हुये हैं उस समय बामदेव ने उन के लक्ष्यः विष्णु, तथा शक्ति शय के अवतार होने एवम् रामचन्द्र के भाऊ पूषावतारों का हाल बयन किया है। और चित्रकूट में मरत के प्राण परित्याग करने के लिये उद्यत होने पर रामचन्द्र के संक्रान्तानुसार बशिष्ठ जी ने एकान्त में रामचन्द्र के विष्णु के अवतार होने का हाल मरत को बताया है और कैकेयी ने भी एकान्त में अपना आराधन समा कर कर भक्ति का बरदान लिया है। अनसूया न को कुंडल तथा सो दिव्यमूषण पहनाया है।

आरगयकाण्ड—इस रामावण में अत्रिमुनि से मेट अयोध्याकाण्ड के अन्त में हुई है और अयत ने चित्रकूट में सीता जी की छाती में बोंब तथा बंगुल मार कर उन्हें व्यस्त किया है।

दंडकवन के मुनियों के आश्रमों की गोमा मुनिगणमिलन, वनसुविदर्शन विराचवच, शरभंगमुनिदर्शन और उन का शरीरत्याग; मुनियों का शुकटा हो कर राक्षसों के बच के लिये

रामचन्द्र से प्रार्थना करनी एवम् उन का बरदान देना, फिर सुतीरथ की मेंट, ये सब बातें कथित हैं। सरभन्त मुनि तथा सुतीरथमुनि से मेंट होने पर उन लोगों ने स्तुतिबन्धना नहीं की है। सरभन्त मुनि ने कहा है कि 'इस ने अपने उमरप से ब्रह्मलोकादि जीत लिये हैं और इन्हें हमें ब्रह्मलोक से जाने को जाने से। इस अपने उमरप से जीते हुये सब लोक जाय को दे देते हैं।' उस के उत्तर में रामचन्द्र ने कहा है कि 'जदि आप करें तो आप के जीते हुये लोकों का हम नहीं गुला दें। सुतीरथ से भी इसी प्रकार की बातचीत हुई है।

सीताजी ने लक्ष्मणी मुनि की कथा कह कर इंद्रकवन में जाने तथा राक्षसों को बध करने से रामचन्द्र को निवेद्य किया है और रामचन्द्र ने उन्हें समझाना है। यहीं पर माण्डव्याय अथि ब्रह्म 'यथाप्सर' तथा ईश्वर-वासापी की भी कथाएं बखित हैं।

मेंट होने पर भगवत श्री ने वैश्वदेवाय, नाथ तथा दो भगवतवाल बाला निपुत्र रामचन्द्र को प्रदान किया है और गीच ने जीवों की उत्पत्ति की लक्ष्मी बीड़ी कथा सुनाई है।

पंचपदी में सुपनया अपने सख्त रूप में रामचन्द्र के पास आई है। कवि ने रामचन्द्र तथा उस के रूप में अष्टौ अक्षयता लिखाई है। उस समय दोनों भाइयों में अष्टौ दिक्कामी भी हुई है। रामचन्द्र ने कहा है कि 'सत्सय से विवाह करो तो 'विष्णुर्धरमा कथा योमा होमी' और सत्सय ने कहा है कि 'रामचन्द्र से विवाह करन में दोनों प्राणियों का मन में रज मिल जायगा।'

सुपनया के बिकया किये जाने पर घर में पहले केवल १४ राक्षसों की भंजा है और उन के मारे जाने पर तुलस बुद्ध हुआ है।

अक्षयन के मुख से पहले सरयुणादि के बध का वृत्तत सुनकर राक्षस मारीच क पास गया है और उस क समझाने से ज्योंही लौट कर घर आया है त्योंही सुपनया बहा पुरुष कर उसे निहाने लगी है और भीति को छांटने लगी है। यह फिर मारीच क पास आकर राक्षस न उसे मृग बनने पर बलत किया है। उस के मृग बन कर आने पर सत्सय ने कह दिया है कि वह छत्री मारीच है मृग नहीं है।

सीता जी ने बहुत कठुनवन कह कर सत्सय को रामचन्द्र के पास भेजा है और ने कह कह कर बजे हैं कि 'तुम्हारा दिनस्यसल उपरिबत हुआ है इसी से ऐसी बातें मुख से निहान रही हो। इस में सीता के अग्नि प्रवेश तथा सत्सय के रेया खींचने की बातें नहीं हैं।

राक्षस के बहिरूप धारण कर आने पर सीता जी ने उसे कुशासन पर बिगाया है, बार्तालय किया है और उतका अलक्ष अग्निप्राय जानने पर उसे घेर बिकार देने लगी है।

अशु को धारित करते तथा दास्ता मर जानकी द्वारा बिहारित होते, राक्षस ने पहले अपने महल में से जा कर उन्हें अत्या धारा घदन दिखलाना ट, प्रेमविनय किया है और घेर विलेख होने पर एक वर्ष का समय दे कर उन्हें अशोक बाणिका में ५ राक्षसों के पहरे में रगा है। वहाँ इन्हें ब्रह्मा का दिवा हुआ इन्हें बिलत गये हैं। सीता जी दास्ते में प्रमूण्य गिराती गई हैं।

प्रियाविरह से स्नातुष्ट माई के संग जानकी को बन में खोजते समय रामचन्द्र को मृत्यु से भेंट हुई है एवम् उही क्षीर के समय लक्ष्मण ने अयोमुखी एक दुसरी राक्षसी की भी नाक काट तथा कुच काट लिया है।<sup>१</sup>

फिर कबच बच उस का निर्र हतान्त बर्णन पम्पासर तथा सुमीव की कथा कह कर एवम् पम्पासर दिखा कर शबरी के भिन्न शरीर त्याग करने की बातें लिखी है। पम्पासर में मारवायमन नहीं हुआ है। परन्तु उस सर का शोभा-बर्णन बेला जाता है।

अप्यास में पहले अग्निमुनि के कई शिष्यों ने इन लोगों को एक भीष्म पर बिठा कर एक नदी पार किया है। तब विराधबच शरमहमुनि का बर्णन एवम् उन का शरीरत्याग हुआ है। बभ्रमण करते समय इन्द्रियों का डेर देखा उस ने सम्बन्ध में रामचन्द्र के मुनियों से पूछने पर उन लोगों ने कहा है कि जो अग्निहोम समाधि धर्म को त्याग कर विषयों में प्रवृत्त हुये थे उन्हें राक्षसों ने मार कर खा जाता है और ये सब उन की इन्द्रियां हैं, 'राक्षसैर्मक्षितानीश प्रमत्तानां समापित। अन्तरायं मुनीनां त पर्यंतोऽनुचरन्ति हि। तब रामचन्द्र ने राक्षसबच की प्रतिज्ञा की है। परन्तु धर्मभ्रष्ट विषयवत मुनियों के मारने में राक्षसों ने क्या अपराध किया।

इस के अनन्तर सुतीक्ष्ण भेंट, उन का रामचन्द्र की स्तुति करनी तथा घर पाना और अग्निहोत्रमुनि का व्रतन है। फिर अगस्त्य जी के आधम में जाने पर उग्रांन अपने शिष्यों तथा अन्य मुनियों के सामने रामचन्द्र का मयार्च (ईश्वर) रूप ब्रह्म किया है। ऋषाणु कबच तथा शबरी ने भी रामचन्द्र की स्तुति की है। उही से सीता जी का समाचार तथा पम्पासर का हाल ज्ञात हुआ है। पंचवटी में बास क समय रामचन्द्र ने लक्ष्मण को ज्ञान-भक्ति आदि का उपदेश किया है।

किष्किन्धाकाण्ड—पम्पासर के तीर पर रामचन्द्र उस की शोभा बर्णन करते १ विहाय करने लगे हैं और लक्ष्मण जी ने उन्हें बहुत समझया और साहस दिताना है। अपमृक के निष्क इतुमान जी भिवुठ क रूप में रामचन्द्र से मिले हैं। बाण से बेधित होने पर बाण ने धर्म की बातें बहुत कही हैं स्तुति नहीं की है और उस ने अहद को सुमीव को र्शिया है, रामचन्द्र को नहीं।

वर्षावर्णन विशद है परन्तु गोस्वामी जी के डग से नहीं है। सीता जी के खोजने के समय अहद ने एक राक्षस को राक्षस समझ बच कर दिया है बास्मीक्षीय रामायण में सीता के खोजने के शिबे चारों ओर बानरों के मेजे जाने तथा उन लोगों के खोजने का हाल अविस्तर बर्णित है।

१ इस के साथ ऐसे बर्णन का कोई कारण नहीं दीकता। यह कथा जोपक कोप होती है वसंकि ये लोग अकारण प्राणीकीक नहीं थे।

२ सुमीव अहद इतुमान तथा यामवान प्रभृति कथा सबमुच बात ही थे १ रामायण पद से तो ऐसा ही प्रतीत होता है परन्तु जाग कहते हैं कि व एक जाति के बभ्रवर्षतवासी मनुष्य हो थे। त्रिव जाति की पञ्जा पर चन्द्र का चिन्ह था वह बाबर जाति कहलाती थी त्रिव जी पञ्जा पर रीढ़ का चिह्न था वह रीढ़ कहलाती थी। जैसे

बानरों के बिल में प्रवेश करने तथा वहाँ से बहिष्कृत होने की कथा है, परन्तु बिल-निवासिनी (हेमा की सखी) रघुपत्न्या के भी राम के निष्कृत वा फर स्तुति करने और वहाँ से उस के बहिष्करण में जाने की बातें नहीं हैं। (यह कथा भगवत्काल में देखी जाती है)। इसी हेमा पर मन्व वासुदेव भाषाधी दानव आसक्त वा इन्द्र ने उसे बन्ध से मार डाला और प्रह्लाद के उस का यह स्वर्णमन्त्र बन्ध और पर हेमा को दे दिया था।

सम्प्राप्ती ने निश्चयकर मुनि की कथा तथा अपने पुत्र सुपास्य से रावण के जानकी जी को से जाने का जो हाथ हुआ था, उस बातें बानरों को सुनाई हैं। और लंका जाने के स्थले हनुमान जी कूद कर महोदर पर्वत पर चढ़े हैं।

अप्यागम में हनुमान जी बटु के ही रूप में पहले दोनों माइनों से मिले हैं। सुग्रीव के राज प्राप्त होने पर रामचन्द्र ने लक्ष्मण को क्रियायोग का उपदेश किया है। लक्ष्मण जी के श्लेष करने पर हनुमान राग अहङ्ग सुग्रीव आदि सपों ने उस से बिनय प्रार्थना की है। मन्त्रियों के सहित उन्निवृत्त हो कर सुग्रीव ने रामचन्द्र को बानर बीरों का नाम तथा उन का बस पराक्रम सल्लेख में बखान किया है।

सुन्दरकाण्ड—महोदरपर्वत से प्रस्थान कर हनुमान जी के आकाशमार्ग से समुद्र पार हो लम्बपर्वत पर पहुँचने तथा लङ्किनी बन्ध तथा की तब कथनाई प्रायः बेही है जिनका वर्णन रामचरितमानस में पाया जाता है।

उस पार लंका का विमल देख हनुमान जी को आर्ष सिद्ध होने में सन्देह हुआ है और वे मन ही मन अपने लगे हैं कि अहङ्ग, लस आमबाल छिदिन सुग्रीव इत्यादि ने ही कई एक बानरों के विनाश हमारे का वहाँ प्रवेश करना भी तुम्हरे है। अनेक सन्तप विद्वान के जगन्तर सब देखों तथा राम लक्ष्मण, जानकी सुग्रीव आदि को नमस्कार कर ये बानकी की शोक में ब्रह्म हुये हैं। उम को खोजते ये रावण के निवास में चढ़ा यह अनन्त कम्पीन आभिविद्यों के संघ विराज रहा था पशुच गये हैं। इसी मध्य में कवि ने रावण के छह आदि भयोऽऽशुभिका तथा निघावरिणों का सीम्बुर्ण वर्णन किया है। अब हनुमान जी लङ्का पर बैठे सीता जी का दर्शन कर रहे थे उसी काल में कुछ रात रहते कतिपय सलभाओं के चर रावण वहाँ पशुच कर जानकी जी को अपने बरा में लाने के थिये उन्हें भयजाने और फुसलाने लगा है और उस के छत्र की सावयवमयी सलभाओं ने सकेत द्वारा सीता को बताना है कि आप निर्भय होकर बपकारिने; यह बिना आप की इच्छा के आप के चर बलात्कार नहीं कर सकता।

वा मास का अन्तर देखर उस क वहाँ से चले जाने पर, राक्षसियों का भयजाना पुनश्चाना कसेर बने पर इवन होता विद्वता का समझाना; हनुमान का सीता से वार्त्तान्त और उस के मध्य विमल के काक (जर्बता) की कथा एवम् ब्रह्ममणिय हैने का हासल कहा गया है।

आइए इस कथियों की पत्रा पर उलू का तथा समरेण जाति की पत्रा पर सिंह का विमल हाथे से उम शैलों के बीरों को British lions और Russian bears कहते हैं। जिनों की राम रावण कथा में सी वावरविद्वाहित पत्रा सुकुन बारी जाति बानरवंशीच कही गई है।

सीता जी के अशोकवाटिका में रहने का पता विभीषण ने नहीं बताया है और न उन से इन्हें मेंट हुई है। हाँ! रावण की सभा में उन्होंने ने हनुमान को भयभीत देखा है। विभीषण की कृपा कृपा ने उन के तथा अविष्णवा मंत्री मेघाक्षी के रावण को समझाने का हाल सीता जी को सुनाया है।

प्रहस्तपुत्र, अम्बुमाली ७ मंत्री पुत्र विरूपाक्ष यूपान प्रपथ भासकण आदि बीरों का सधैर्य बंध करने के अनन्तर हनुमान ने अक्षयकुमार का युद्धक्षेत्र में घुस किया है। फिर मङ्गलशर में बैठाकर रावणसभा में जाने पर उन्हें उससे बातचीत हुई है।

आप लगाने पर हनुमान को मारी सोच हुआ है कि जिस की शोक क सिये समुद्र घंटा कर हम यहाँ आये अब वे सो अशोकवाटिका में चलकर मरम हो आस्यी हम रामचन्द्र को अब क्या समाचार करेंगे।

अनन्तर लंका से लौट कर मनुष्य में जानरों का पक्ष खाना तथा हनुमान का लंका का वृत्तान्त बर्णन करना है।

अभ्यारम के अनुसार लंकापुरी की देवी ने सीता के अशोक वाटिका में रहने का पता हनुमान को बताया है और वे सोचते २ वहाँ पहुँचे हैं। (इसमें भी विभीषण से घंट नहीं लिखी है)। इन के वहाँ पहुँचने पर पिछली पहर रात में रावण यह स्वप्न देख कर कि एक बानर पेड़ क पत्तों में छिप कर आनन्दी से बातें कर रहा है स्त्रियों के सङ्ग वहाँ गया है और उसने सीता को बहुत आस दिखाना है।

रावण की सभा में जाने पर हनुमान की ने निज वृत्तान्त कहते समय रावण को विष्णु-मक्ति का उपदेश दिया है, और किष्किन्वा लौट आने पर सीता जी का समाचार रामचन्द्र को सुनाया है तथा लज्जावहन का भी हाल कहा है।

साहायकायड — लंका का वृत्तान्त सुनकर समुद्र पार होना हुंकर आज रामचन्द्र का सोच करना हनुमान का समझना फिर सधैर्य सागर किनारे पहुँचना; सागर क्षुब्धार्थन। लहर हनुमान जी के बसे आने पर रावण का मंत्रियों के संग बिचार निरपत्तों की खुरामदी बातें विभीषण का समझना। फिर सार्वजनिक सभा; नगर की रक्षा का प्रथम सीता के अवहारण का हाल सुनाकर रावण का सबों से राय पूछनी कुम्भकर्ण का रामचन्द्र का पराक्रम तथा महिमा बर्णन कर पीछे मुझ करने की प्रतिज्ञा करनी; विभीषण तथा प्रहस्त का मेघनाद को बिकारना और समझना। रावण के कबल कटु वाक्य कहने से विभीषण का उसे त्याग कर बार मंत्रियों के संग रामचन्द्र के पास आना, और सम्मुख होने पर उन का यह कहना कि हमारा जीवन तुझ तथा राज्यप्राप्ति सब आप ही के आधीन है एवम् रावण का बलबल बर्णन कर उसके निषण तथा लंकाविध्वंस में सहायता देने की प्रतिज्ञा करनी और तब उन का लंकेय बनाना जाना।

विभीषण के परामर्श एवम् लक्ष्मण तथा सुग्रीव के अनुमोहन से समुद्र स मार्ग मंगला समुद्र पर कोप सेवुबन्धन। रावण का मेघा शुक्र का सुग्रीव और रामचन्द्र में भेद कराने के सिये आना पकड़ा जाना, रिहाई पाना। फिर शुक्र और सारण्य का बानर के मेघ में आना

विभीषण का उन्हें पकड़ कर राम के पास खाना और झुटकारा पाकर उन का राक्षस से सब सेना का हाल कहना उन लोगों के संग राक्षस का गढ़ पर चढ़कर बानरी सेना देखना समझोगे का राक्षस से मुख्य २ दूधनतियों का नामादि बर्णन करना और उन के उतम उपवेश देने से उन लोगों का घना में आना जाना उन दिना ज्ञाना फिर राक्षस का शाहूण के संग दूतों को भेजना उनका पकड़ाना, झूटना और जाकर राक्षस से सब हाल कहना ।

अप्यात्म में सब पत यही सब बातें हैं । और सेतुबन्धन के परवात् रामेश्वरस्वापन का हाल लिखा है । बाल्मीकि जी ने इस का स्पष्ट बर्णन नहीं किया है । उका से लीटते समय पुण्य विमान पर चड़े राम ने जानकी जी को मार्यत्न सब बस्तुओं को दिखाते समय कहा है कि 'हम ने महा महाबल की स्थापना की है । और अप्यात्म में शुक का पूर्व वृत्तान्त कवन एव बानरी सेना देखने के लिये राक्षस का मंत्रियों के संग गढ़ पर चढ़ना और रामचन्द्र का सब का भेजना भ्रंस करना लिखा है ।

मंत्रियों से मन्त्रणा माभारवित रामचन्द्र का फिर भुजा शर बाप धीताजी को बिलाना उनका बिलाप और धरमा का समझाना सब लोगों और राक्षस की माया का तथा मादकवान का लीटा को लीटा देने का परामर्श ।

राक्षस का गढ़ के चारों द्वारों पर सेना निरुद्ध करना रामचन्द्र का लक्ष्मण प्रसूति के संग दुबेक सिद्धर पर चढ़ना लंकावनि बर्णन एव से राक्षस को देख सुधीन का कर्मण मार कर सब के निरुद्ध पृथु जाना उस के संग द्रुपद युद्ध उस का मुकुट गिरा देना, दोनों का वाली में झुड़कना (ने सब बातें सर्वथा सच प्रतीत होती हैं) फिर अश्व का दूध पिडाना जाना राक्षस से बोझा बालीलाय चार राक्षसों का उन्हें बांधने पर उद्यत होने से उन चारों के लिये उनका छत्रांग मार कर गढ़ के सिद्धर पर चढ़ पदप्रहार से उसका एक अंग बाह देना एवम् उन के बहा से लूचते समय सब राक्षसों का बलिह होकर मृत्यु में गिर पडना ।

युद्ध आरम्भ होने पर दुष्क कास मार काव के अनन्तर समन एवों के प्रथम २ बोदाघों से द्रुपद युद्ध होने लगा है । मेकनाद अन्तर्व्याम हो सब वीरों को मूर्च्छित कर राम लक्ष्मण को नामधेय से बांध पिटा के पास इपित बला गया है । तब राक्षस की आज्ञा से बिबदा पुण्य विमान पर चढ़ा कर लीटा जी को रणक्षेत्र में मूर्च्छित भाइयों को बिलाने के लिये ले गई है उन्हें देख लीटा बिलाप करती है और बिबदा उन्हें समझाती है । फिर दक्ष आकर बालकांस घटते हैं । (अप्यात्म के अनुसार इस समय द्रुपमान द्वारा और सागर से शीघ्रपरत मंगाना गया है ।)

इस समाचार के पाने पर राक्षस के पित्तये घृणाघ बल्लभन्द्र और अक्षयपन का क्रमशः सारी सेना लेकर आना और निज निकम प्रदर्शन के परवात् उन लोगों का द्रुपमान और अश्व के हाथ से निहल होना ।

फिर सेनापत्य प्रहस्त का नारायण कुम्भ द्रुप महामार समुच्चत बोदाग्य तथा बलिष्ठ सेना के सहित आना और द्रुपुत युद्ध के अनन्तर सेनापति नील के द्वारा तथा अनन्त चार बोदाघों का क्रमशः द्विविध तार, क्रमशः और द्रुप रा क हाथ से वीरगति को प्राप्त होना । (इस एवों का बर्णन अप्यात्म में नहीं है ।)

अनन्तर स्वयम् युद्ध कर के रावण ने लक्ष्मण को बायल किया है। बुद्ध देर के बाद बिना उद्योग के होश में आये हैं। रावण भी रामचन्द्र से पराजित होकर लंका में बसा गया है। अर्थात् में इस अक्षर पर भी धीर सागर से श्रेष्ठवर्तन आना है और सुनेसा ने आदधि प्रयोग किया है। यही पर कास्तेमि की भी कथा है।

तब कुम्भकर्ण का जगाया जाना उस का रावण को उपदेश देना फिर युद्धक्षेत्र में आकर सब बीरों को अत्रित करना सुभीक द्वारा उस की नाक काट आना जब कि वह इन्हे लंका में दाबे लंका जा रहा था एवम् लक्ष्मण के द्वारा अपना कवच कटने पर उस का लक्ष्मण के बल की प्रशंसा करते राम से युद्ध करने की इच्छा प्रगट करना और अंत में उन्हीं के हाथ से निहत होना। (अर्थात् में इसी के पीछे नारदजी ने स्तुति की है।)

फिर विशिरा अतिक्रम देवातक नरान्तक महोदर तथा महापारश्व का एक संघ सेना लेकर युद्ध करने आना और कमल एवम् लक्ष्मण अर्थात् भील तथा अक्षय के हाथ से मारा जाना।

मेघनाद का निद्रुमिता में इषनादि कर क रणक्षेत्र में अन्तर्धान होकर राम लक्ष्मण एवम् सब प्रधान बानर बीरों को बाध तथा प्रहारसे से अन्वित आर मूर्च्छित करना। राम बाध के कटने से इतुमान का रात ही में हिमाक्षय से घनी बनीबूटीबाहा पर्वत खाना एवम् सर्वों का मूर्च्छा विगत तथा बंगा होना।

सुभीक की सम्मति से उसी रात को बानरों का लंका में आग लगाना फिर कुम्भ और निद्रुम का युवाय शोणिताय प्रबंध काम तथा मारी सेना के साथ आकर युद्ध करना एवम् सुभीक इतुमान मयन्द क्षिरिक के द्वारा एवम् प्रबंध और कान का अक्षय द्वारा बध। फिर मकराक्ष का रामचन्द्र के हाथ से निहत होना।

मेघनाद का फिर हवन कर के युद्ध करना और इसी समय माया की सीता को रण पर गिराकर इतुमानादि के सम्मुख लड़ से उन्हें दो दुर्बल कर देना इस पर रामचन्द्र का विहाय करना और विभीषण का समझना।

मेघनाद का फिर यह में प्रवृत्त होना लक्ष्मणजी का बानरी सेना तथा विभीषण के सहित आकर यह विन्वस करना मेघनाद का विभीषण को चिन्तारना और लक्ष्मण जी के संग तीन दिन तीन रात दुशुभ युद्ध कर बिरगति को प्राप्त होना। (अर्थात् में नारदजी के परवाह ही मेघनाद के इस युद्ध का वर्णन है। और मेघनाद के संग रामचन्द्र के स्वयम् युद्ध करने को उद्यत होने पर उस का बध लक्ष्मण ही द्वारा पूर ही से निश्चित रहने एवम् लक्ष्मण जी के कर्मिण बग की कथा कही गई है।)

फिर रावण का यज्ञ लेकर जानकी जी के बध के लिये दंडना और सुगार्धर्मजी से रोका जाना शेष सेना का राम से युद्ध करना राक्षसों का विहाय करना तथा सुपनका ही निन्दा करनी। तब महापारश्व महोदर तथा विष्णु का युद्ध करना और पहले सुगरे का सुभीक से एवम् तीसरे का अक्षय के हाथ से प्राण विगर्जन करना। वह युद्ध प्रकरण या तो



लेपक है ना राज में एक ही नाम के कई जोड़ा थे। क्योंकि ४१वें सर्ग में लक्ष्मण द्वारा विष्णुका का एकम् ७ वें सर्ग में नील और श्रमण के हाथ से बप का हाथ बहा जा चुका है। राजय के रंग मुक्त करते समय विभीषण की रक्षा करने में लक्ष्मण राजय के शक्ति-प्रहार से मूर्च्छित हुये हैं। और राम से पीकित होकर राजय लडा बठा गया है। सुवेण की सम्मति से हनुमान फिर महोदय शिपर लाने हैं और लक्ष्मण की बपा हुये हैं। तब तीन दिन तक रोमहर्षय तथा विपुल र्धमाम कर राजय बीर गति को प्राप्त हुआ है। इसी समय इन्द्र ने अपना रज सारथी बनु कनक बाण शक्ति रामचन्द्र के पास भेजा है। उस के बीरधाम पवान के अनन्तर मन्वोदरी प्रकृति तथा विभीषण के विद्याप और उस क देह सकार का हाथ बहा गया है। फिर देवागमन विभीषण का राज्यामियक सीता का अपन में प्रवेश कर अपने सतीत्व-संरक्षण की परीक्षा देनी दशरथ का पुत्रो तथा पुत्रवधू से मिलना रामचन्द्र के अतुरीप से इन्द्र के यह कहने पर कि 'शुभ बागर मातु की चठे उन सबों का नी उठना। इस में अमृत वृषि की बात नहीं है।

फिर पुण्य पर बह कर सब लोगों का रंका से प्रस्थान जानकी की को विमान पर से मार्गस्थ बस्तुओं को दिखाते किष्किन्धा से तारा आदि बागरी की स्थियों को खेते रामचन्द्र मरुद्वाज क आध्म में पनुंये हैं। नहीं सब लोप उबर गये हैं और राह में निपाद को खबर डैते मन्वीधाम में हनुमान की ने भरत जी को रामागमन का शुभ समाचार बनाया है जिसे सुन कर भरत जी च-हैं एक लाघ गऊ, १०० गाँव तथा कुण्डलादि भूपणों से मृणित सुन्दर धृशील १६ कन्वारों मार्ग्य बनाये जाने के लिये डैने को ठँवार हुये हैं।

अनन्तर भरतमिक्षाप नगर प्रवेश पुण्य का कुँवर के पाम भेजा जाना रामचन्द्र का राज्यामियेक बागरादि की विदार्य भरतजी का सुवराज बनाया जामा और समय १ पर अरवभेवादि नरु होता कहा गया है। तब रामराज्य का आनन्दप्रभ सुख निमग वस्थित है। यह सुख बर्णयित है। वह अपना रहित होकर केवल अपनेज माव से इस संसार में विवित है। हनुमन्नाटक में भी रामचन्द्र के उज्ज्वल सुमर के विषय में कहा है:— 'महाराज धीमन बगति बरुषा ते बरुषिते। पव-पारावारः परमपुरुषोऽयं भुगवते ॥ अपर्यो कैलाशं बुक्तिशयवनि स्वं करिवरं। कलानाथं राहुकमलमननो हंघमपुना ॥ रामायण की कथा बरुषतः नहीं समाप्त हुई है। उतरकाण्ड के केवल उवाचादि के न्याय सीता बनवास तथा अरवभेध प्रकरण ही को रामकथा से सम्बन्ध है। अन्य कथायं स्वर्ग की पवचार्य है और निस्सन्देह पीके जोड़ी गई है।

अप्यारम में भी प्रायः नहीं सब बाते हैं। जस में हनुमान जी हिमालय में तप करने चले गये हैं। बाकमीधीव में यह बात उतर काण्ड में कही गई है। उतरकाण्ड—धीरामचन्द्र के राजसिंहासन पर विराजमान होने पर अगस्त्य प्रमुनि श्रुतिगण चारों ओर से मिलने आये हैं। उन लोगों ने रामविजय की बखार करते मेचमाद की भी बखार की है। रामचन्द्र क यह पूछने पर कि 'सब राजसों से अधिक उची थी १ बाकमीधीव में सुपण को रंका का बंध नहीं दिखा है, बरधू से सेना के सर्वेन (बैध) मनीत होते हैं और र्धगु के माना ने।

क्यों प्रशांसा की जाती है अगस्त्य जी ने पुत्ररत्न के पुत्र विधवा से छुड़कर राक्षसों की उत्पत्ति की सम्झी शीरी कथा कहते राक्षस और उस की बहम माइनों के सम्म तप बरतान विवाहादि का हाल वर्णन किया है और मंदोदरी के संग राक्षस के विवाह के सम्बन्ध में कहा है कि मय उस कथा को सिये पूम रहा था। राक्षस के पूजने पर उस न कहा कि इबतों न हेमा नाम की अम्बरा को मुझे दे दिया था, एष हवार वर्ष तक मैं उस के साथ प्रेमासक्त रहा अब वह देव लोक में जाती गई है। उस क विग्रह से कातर में १४ वर्ष तक परमी इस स्वयंमय पुरी में रहा। अब इस कथा के विवाह के सिमे इस वन में आया हूँ। यह कथा हेमा के पर्म से है।

यह वृत्तान्त किष्किन्धाकाण्ड की विलम्बिवासिनी की कही हुई बातों से नहीं मिलता। उस में मय का इन्द्र से मारा जाना एवम् हेमा का जीविग रहना कहा गया है। इस पुस्तक का पृ ३४० देखिये और वास्मीकीय किष्किन्धा काण्ड खण्ड ११ से स का० सर्ग १२ का मिलान कीजिये। वास्मीकि जी भांग नहीं खाये हुये थे कि एक ही प्र-प में एक ही कथा को दो रीतियों से लिखते। इन में से एक अवरन खेप है।

अनन्तर अपने ७११ विमान् भ्राता यमपति कुंवर से राक्षस का युद्ध करना और उन का पुष्पक विमान छीन लाना मन्दिरवर का मुख बन्द कर इससे उनके आप से प्रस्त होना कैलाश उठाने का यत्न करना और महादेव जी के अंगूठे से पवन श्वाय जाने से पीड़ित हो हमार वर्ष तक मोक्षानाथ की स्तुति करते रहने पर राक्षस का उन से बरदान तथा अम्बरास का पाना कुशाब्ध की कथा वेदवती के कथाकर्षण से उस का शाप बना यज्ञविषय के मय से मर्या रामा का एवम् अनेक अन्य राशों का अपनी २ पराक्रम स्वीकार करना अयोध्या के राजा अरण्य का युद्ध में मिहानत करना और इन से शापित होना मारु के उपवरा से यमराज के संग धन पोर युद्ध (इसी के अन्तर्गत यमपुरी का भी इसमें दिखलाया गया है) नाथ लोचों को बरा करना मिगत कथन रैतों से युद्ध और काळक्रेय रैतों के संग युद्ध में सुपनखा के पति का बप कर देना बरण के लड़कों से युद्ध फिर अरवमनगर में बलि के दशन का वृत्तान्त सुय पराक्रम अन्धलोक गमन और पर्वत मुनि से बर्षा का वृत्तान्त जानना मा-बाठा से पराबित होना अन्धमा पर शरत् उठने से अग्ना का राक्षस को मिहारण करना और एक मंत्र बताना अरिहोदेव से तमांसा काकर पुष्पी पर गिरना एवम् एक महात्मा के हंस से अचेत गिर पडना— ये सब बातें बर्णित हैं। किन्तु अरवमनगर से छेकर त्रिलोकी बार्ने कही गई हैं वे सब खेपक मानी जाती हैं।

१ राक्षस को कई शाप हुए थे। उनके पिता विधवा ने शाप दिया था, मन्दिमिवा का शाप था कि बानों से तेरे बंध का बाण होगा वेदवती का शाप था कि मैं जानकी होकर तेरा बाण कराऊंगी, अरवप न कहा था कि उन के बराबर उस का नाश करेगे, पतिव्रता स्त्रियों ने कहा था कि स्त्रीवाप्य ही स उन का सबबाण होगा, कुपर के पुत्र महाहूबर ने शाप दिया था कि स्त्री के साथ बलात्कार करन म उन का कराल नाश सबक हो जायगा। इसी सब से उये जानकी जी के साथ बलात् करन का सादम नहीं दाता था।

फिर सती विधियों को हरण करने से तन का शाप देना राक्षस के लंका में सौद घान पर सुपनया का निज पति के स्निह विलाप करना और उस के मौसरे भाई खर आदि के संघ उस का दंडक में रहने के लिये मेवा जाना भीसेरी बहन कुम्भीनसी के हर सं जाने वाले मधु राक्षस से सनने के लिये राक्षस का मधुपुरी जाना और बहन की प्रार्थना से उस से मिठाई कर इन्द्रलोक में जा इन्द्र से बुद्ध ठानना और तुमुल संभाम के अनन्तर मेघनाद का इन्द्र को पकड़ कर लंका में ले जाना और लड़ा का उन्हें बुद्ध ठाना कहा गया है। इसी प्रकार में अहस्ता के कपाखान का भी उल्लेख है।

फिर छद्मराज न के राक्षस को युव में पकड़ लेने और बालि के उडे बंधक में दावे पर जाने का हास तथा हनुमानजी के अन्मपराक्रम का बर्णन है। तब पांच आम्बाओं में बालि और सुभीष को उत्पत्ति हरिद्वप बर्णन रक्षेत्रीय में त्रिभों से राक्षस का पकड़ा जाना एक बूढ़ी अन्धा का उसे लेकर आकाश में उड़ना और उस के हाथ से छूट कर उस के समुद्र में गिरने की कथाएँ हैं जो छेपक कही जाती हैं।

तदनन्तर जनकराज मामा बुधामित काशीराज एवम् अन्म १ रात्रों की (किन्हीं भरतजी ने सीताहरण का समाचार सुन कर सहायता के निमित्त बुद्धा मेवा था) तथा सुभीष विनीयस हनुमानादि की विदाई की बातें हैं। यहाँ बानरो की विदाई बाबारे कही गई है। बसते समय हनुमान जी ने प्रार्थना की है कि जब तक रामकथा माई जाने तब तक हमारा प्राण हमारे शरीर को परित्याग नहीं करे; अप्सरा नित्य हमें यह करिब सुनावा करें, इसी से आप के दर्शन की उत्संका नृग करेंगे।

फिर अस्ताकवन में मधुमांस बालकष्ट और नाबरह का बर्णन है। तब सोकापवाद क करण सीता जी का त्याग जन का वास्वीकि आश्रम में टहरना रामचन्द्र को शोकाक्रान्त देख सक्षमण जी का उन्हें धमसाना रामचन्द्र का भी नृग निमिराज तथा ननाति के शापादि का का इनान्त सक्षमण को सुनाना एवम् न्वाज और मिसुक तथा मिद्ध और ससुक के मपनों के न्वाज की कथाएँ हैं।

तब द्युपिरो की प्रार्थना पर रामचन्द्र की आज्ञा से शत्रुदण्ड जी ने मयुरा में जाकर सवशासुर का बप कर कर्हो अपना राज्य संरक्षापन किया है। इसी यात्रा में त्रिस रात्रि को है वास्वीकि आश्रम में टहरे से सब बुद्ध का अन्म हुआ था।

फिर एक तपस्वी शत्रु के बप द्वारा एक बुद्ध प्राणय के मृतपालक को पुनर्जीवित कर रामचन्द्र अपम्य मुनि के दर्शन को गये हैं। शत्रुओं ने इन को एक स्वयंभूदण्ड दिया है और उस का इतान्त पकड़े पर कर्हा है कि 'विपुर्भवेण का राजा श्वेत अपनी तपस्या द्वारा ब्रह्मलोक प्राप्त करने पर भी अन्नादि दान नहीं करने से अपना मांस आप मण्ड्य करने का दुःख भोगता था और उल्ले उदार पाने की पूजा में उस ने मुझे यह आभूषण दिया है। मुनि के ब्रह्मद्वैत के राजा ब्रह्म के निज बुद्ध शुद्धबाध्य की कथा का सतीत्व नष्ट करने से उस का धवनाश और उगके वैत के धरदर हो जाने का हास भी कर्हा है।

किं रामचन्द्र का यज्ञ करने का विचार बेल लक्ष्मणजी ने अरबमेघ का माहात्म्य वर्णन में इन्द्र द्वारा वृत्रासुर के बध की कथा और रामचन्द्र ने बास्मीकि वरा के राजा हल की कथा कही है, जिन्से शापवश एक मास स्त्री और एक मास पुरुष रहकर एक वय व्यतीत किया था।

नमिपारण्य में यज्ञारम्भ होने पर बास्मीकि जी की आज्ञा से लक्ष्मण अग्निवाक्य क मंत्र में आकर रामायण गान करने लगा है। उत्तरकाण्ड की कथा सुनने से यह बात हाथ होने पर कि वे दोनों वास्तव गानक सीताजी के पुत्र हैं रामचन्द्र न बास्मीकि जी तथा सीताजी को समा में बुलवा भेजा है। उस सार्वत्रिक समा में मुनि न सीता जी के श्रुत्याचार की साधी सी है। रामचन्द्र न भी कहा है कि 'हम इन्हें पूर ही से सती समझते हैं कबल लोक निन्दा क मय से हमने इन्हें परित्राय किया था। अगर जानकी जी न कदा है कि यदि न संसार में विद्याय पवित्र क और किती को नहीं जानती हूँ तो पृथ्वी फट जाय अगर न उस में प्रवेश कर जाऊँ। इतना कष्ट ही पृथ्वी फट गई है और शेषभाग के कण पर पृथ्वी माता सिंहासनाब्द बाहर निकल सीता जी को अद्भुत में ल पातास पत्नी गई हैं।' इस कथा से रामचन्द्र महा शोकित और दुःखित हुए हैं। और व्रणा न उन्हें समझा बुझा कर शान्त किया है।

किं अक्षयुष्य का आगमन रामाज्ञा से लक्ष्मणजी का सरसूत पर योगाभास से शरीर त्याग करना एकम् कुछ दिन पीछे रामचन्द्र का शेष दोनों भाइयों माताओं तथा प्रजावर्ग क अहित मित्रपाम (साक्य) विचारना है।

इस कथा क पूर्व ही रामचन्द्र न अस्म दोनों पुत्रों को मारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों का राजा बना दिया था।

अभ्यास में सदैव यही सब बातें हैं, परन्तु उस में रामसीता तथा रामचन्द्र को शीघ्रता का उपदेश करना अधिक है अगर रावणादि के यम, कर्म तथा वाणि सुमीव की अन्वेषणा क अतिरिक्त कोई अन्य उपायना नही है।

'गानवरित मानस' का उत्तरकाण्ड इन दोनों प्रथों के उत्तरकाण्ड से सर्वथा भिन्न है।

१ रघुवंश में रामायण का अनुकरण है। परन्तु पद्म पुराण में लिखा है कि लक्ष्मण के गान से यह जान कर कि वे इन क पुत्र थे रामचन्द्र सीताजी से मिलने क लिये फिर बहुत स्वयं दो गय अगर लक्ष्मण द्वारा ब फिर साई गई और सुधातम्ब स वास स्तनाम करने लगी। कुछ देर केर करक मयसूति ने भी 'उत्तररामचरित' में पही कहा है।

## उपसंहार (क)

१२ सुयो आसिम स १३९३ के पषनाने की प्रतिक्रिया ।

मीजानकीबल्लमो विजयते ।

द्विरशं नाभिसंभवे द्विरस्थापयति नाभिताम् ।

द्विददासि न चार्थिन्यो रामो द्विर्नैव मापते ॥

सुसमी जान्यो वसुध हि धरतु न सत्य समान ।

रासु तजो जेहि क्षामि विनु राम परिहरे प्रान ॥

धर्मो जयति नाधर्मस्तत्यं जयति नानृतम् ।

समा जयति न क्षोभो विप्युर्जयति नासुर ॥

अल्लाह अकबर

श्री धामन्द राम में टोडर में देवराम व कन्हारै में राममन्न में टोडर मन्कूर हर हुजर कामदह करार बादन्द के दर मवाशी मतकठे तफ्ठील-ध्यां दर हिन्दवी मन्कूर अस्त वा मशाह्वा बजराखी जान नशीन करार दावेम व एक सय पत्राह विपहा जमीन । पत्रादा किसमत मोवाफ्फ् खर दर मीजे मदनी धामन्द राम मन्कूर व कन्हारै में राममन्न मन्कूर तजवीज मन्कूर बरी माने रात्री कुरता एतराफ सहीद राही मन्कूर बना बर्रा मुहर करयह हुए ।

इस के आगे कात्री का मुहर दस्तखत हिस्से की तफ्ठील और गवाही आदि हैं । कात्री का अनुवाद - धामन्द राम बेटा टोडर बेटा देवराम और कन्हारै बेटा राममन्न बेटा टोडर मन्कूर हमूर में आकर एकरार किया कि आपस की रजामंदी से हमसोगो ने तर्के को त्रिषष्ठी तद्दील हिन्दी में ही आपा व करार दिया और मौजे मदेनी में १२ बीघा जमीन अपने आपे आप हिस्सा से अनिक तजवीज करके और इस बात पर राबी होकर एकरार छही किया, इसलिये मुहर किया गया ।

नोट—परन्तु इस पंक्तान में गोसाईं जी का नाम कहीं नहीं देला जाता । अत्र विकास म स प्रकथित तथा का ना प्र समा द्वारा प्रकथित रामाचर्यों में भी पषनाने की प्रतिक्रिया को देय कीजिये ।

## उपसंहार (ख)

शिवपुर शिखरालेख

प्रत्यर्घिचितिपासकाक्षनमु " ने कृतिफा  
 मुद्राङ्कप्रकटप्रतापतपनप्रोद्भासिताराशामुले ।  
 शोयोशोऽकत्रे प्रशासति महीं तस्मिन् नृपाक्षामलि—  
 स्फुजनमोक्षिमरीचिवीचिठिरो दृष्टवत् पादम्मोक्षे ॥१॥  
 तद्राज्यैकधुरन्बरस्य वसुधा साम्राज्यदीपागुरो  
 भीमदृष्टनर्भरामयदनमयो श्रीटोडरदमाप्ते ।  
 धर्मोर्ध्वैकविषो समाहितमनराततीऽचीकर—  
 द्वापो पायद्वयमयद्वये - जनो गोविन्ददास मुषी ॥२॥  
 मनुनिगमरसात्मसम्मिल (१६४६) वत्सरेशे  
 मुक्तिकृतिहितैयी टोडरशोयिपाल ।  
 विहितविधिपपूर्तोऽचीकरचार्यापी  
 विमलसक्षिप्तमारां वदसोपानर्पकम् ॥३॥

## पुस्तक मतप्रमेद चक्र उपसंहार (ग)

[इस चक्र को दूसरे खण्ड के दूसरे परिच्छेद का अंश समझिये]

रामचरितमानस (रामायण) से लेकर 'रामकलागङ्गा' तक की समालोचना इस प्रथम में विस्तारपूर्वक की गई है। इन १२ प्रयोगों को प्रायः सभी लोग प्राचीनकाल से पोंछाई की दृष्टि होना मानते आते हैं और सब लेखकों ने इन के नामों का उल्लेख किया है। परन्तु इन में से कई एक के विषय में अब बहुत से लोगों को संदेह होने लगा है। आगे के चक्र में उन पुस्तकों के नाम दिये जाते हैं जिन्हें लोग इतर गोसाईंकीदृष्टि होना करने लगे हैं।



गाठ (क) — 'स यह सूचित करता है कि इन लोगों ने इन पुस्तकों के नाम अपने प्रथम और लेखों में दिये हैं ।

नोट (ख) का० ना प्र० ममा की लोह वाली पुस्तकों के नाम जो इस पुस्तक के पृ० १११ में दिये गये हैं, \*म तक में नहीं हैं ।

घोरे 'कवितावली का कला का' कोई एक वृत्तक प्रथम खरकर प्राम मय किसी न 'हनुमानवाहुक' को गोसाईं जी कृत होना माना है ।

१ इन्होंने 'सतसई पर टीका लिखी है ।

२ इन्होंने दोहावली का नाम केम्प सतसई का नाम दिया है ।

३ इ इन प्रथमों में 'रामाष्टा' का नाम नहीं है ।

४ इन में स प्रथम गोसाईं जी कृत होना स्पष्ट रूप से मान नहीं गये हैं ।

५ इन्होंने इन प्रथमों का गोसाईं जी कृत हान में सन्देह है ।

१२. इन्होंने 'सतसई' को छोटक अन्व पत्रों पुस्तकों एवम् ज्ञानकीमगल और पादना मंगल में भी सन्देह है और वरम आदि छप प्राचीन पुस्तकों का इन्होंने न नाम तक नहीं दिया है ।





नोट (क) — 'स बहू स्मिन् करता हे कि इन लोगो न इन पुस्तकों के नाम अपने प्रबंधों और लेखों में दिये हैं।

नोट (ख) का० ना० प्र० समा की सौत्र बानी पुस्तकों के नाम जो इस पुस्तक के पृ १११ में दिये गये हैं, इस चक्र में नहीं हैं।

श्रेष्ठ 'कवितावली का अंश अर कोइ एक वृषक प्रय करुकर प्राय सब किछी न 'हनुमानगुरुक' को गोसाईं की कृत होना माना है।

१. इन्होंने 'सतसई पर टीका लिखी है।

२. इन्होंने 'दोहावली का नाम करुकर सतसई का नाम दिया है।

३. इन प्रबंधों में 'रामाज्ञा का नाम नहीं है।

४. इस में ये प्रबंध गोसाईं की कृत होना स्पष्ट रूप में मान नहीं गये हैं।

५. इन्होंने इन प्रबंधों को गोसाईं की कृत होना में सन्देह है।

१२ इन्होंने सतसई को छोड़ अन्य वनों पुस्तकों एवम् जानकीमंगल और पावती मंत्र में भी सन्देह है और बरष आदि शय प्राचीन पुस्तकों का इन्होंने न नाम तक नहीं दिया है।